Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Malani, Vijaykumar D., 2011, *"मोहन राकेश के गद्य - साहित्य का तात्विक अनुशीलन",* thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/688

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

मोहन राकेश के गद्य – साहित्य का तात्त्विक अनुशीलन

(सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध)

प्रस्तुतकर्ता

विजयकुमार डी. मालाणी

मददनीश शिक्षक,
श्री स्वामिनारायण गुरुकुल विद्यालय,
राजकोट

मार्गदर्शक

डॉ. दक्षाबहन जोशी

हिन्दी विभागाध्यक्ष,
स्व. एम. जे. कुंडलिया आर्ट्‌र्स, कोमर्स एन्ड
कम्प्यूटर सायन्स कोलेज,
राजकोट

वर्ष – 2011

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **विनयकुमार दामजीभाई मालाणी** ने मेरे मार्गदर्शन में पीएच.डी. की पदवी के लिए **"मोहन राकेश के गद्य साहित्य का तात्त्विक अनुशीलन "** शोध–प्रबन्ध तैयार किया हैं । इन्होंने उक्त विषय पर यथाशक्ति अध्ययन, विश्लेषण–विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरुपण किया है ।

साथ ही, यह शोध–प्रबन्ध अथवा इसका कोई अंश न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कोई अन्य उपयोग हुआ है ।

राजकोट

दिनांकः

डॉ. दक्षाबहन जोशी
हिन्दी विभागाध्यक्ष
स्व. एम. जे. कुंडलिया महिला आर्ट्स,
कोमर्स, एन्ड कम्प्यूटर सायन्स कोलेज,
राजकोट

❁ प्रास्तविक :–

अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक सर एडमण्ड गॉस ने 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिको में गद्य की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'हर प्रकार की सजग साहित्यिक अभिव्यक्ति, जो छन्दबद्ध नहीं है, गद्य–रचना होती है ।' इस परिभाषा में 'सजग' शब्द इसलिए विशेष रूप से स्मरणीय है कि शब्दों को असंयत ढंग से जोड़कर या दैनिक जीवन के किसी असंबद्ध वार्तालाप को ज्यों–का–त्यों लिखकर 'गद्य' की रचना नहीं की जा सकती । जब हम गद्य शब्द का प्रयोग करते हैं तब उसका अर्थ कविता से भिन्न एक विशेष प्रकार की साहित्यिक अभिव्यक्ति से होता है । साहित्यिक अभिव्यक्ति का तात्पर्य है, कि शब्दचयन, वाक्य–विन्यास, विचार–योजना तथा अर्थ–संगति इन सभी द्रष्टियों से वह सुचिंतित, सजग, यत्न–साध्य, संयत और अनुशासित अभिव्यक्ति है, न कि शब्दों, विचारों और वस्तुओं की असम्बद्ध सूची मात्र । पद्य की तरह गद्य में भी अपनी अंतर्लय होती है, यद्यपि पद्य की तरह गद्य छन्दोबद्ध रचना नहीं है । इसी कारण गद्य और पद्य के बीच कोई स्थायी विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं है । कविता की भाषा गद्यात्मक हो सकती है और गद्य की भाषा काव्यमय । दोनों की अपनी विशिष्टताएँ हैं । गद्य की विशेषता है कि उसमें वाक्य छन्दबद्ध पद्य की तरह एकसे वजन के नहीं होते अर्थात् पिंगल के नियमों से बँधे नहीं होते । उसमें जिन विचारों की अभिव्यक्ति दी जाती है, उनका क्रमागत संबंध व्याकरण से अनुशासित और तर्कसंगत होता है, अर्थात् उसमें विचार परस्पर संबद्ध होते हैं । उसमें शैली का गुण अनिवार्य है, यद्यपि हर लेखक की शैली अपनी होती है, अर्थात् दूसरे लेखकों से विशिष्ट होती है । उसमें वाक्य–विन्यास और वाक्य–रचना की विशिष्टता से अभिव्यक्ति में वैविध्य प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है ।

जब से मानव समाज का जन्म और विकास हुआ है, तब से मनुष्य पारस्परिक विचार–विनिमय के लिए गद्य का ही प्रयोग करता आया है । साधारण बोलचाल के गद्य में ही शैली और व्यंजना के वे सभी तत्त्व निहित रहते हैं, जिनके परिमार्जित और व्यवस्थित रूप को हम साहित्यिक गद्य कहते हैं । लेकिन फिर भी विश्व की सभी भाषाओं में गद्य–साहित्य का विकास प्रायः पद्य–साहित्य की रचना के बहुत बाद में ही शुरू हुआ । इसके अनेक ऐतिहासिक कारण हैं, आदि काल में भाषाओं का लिखित रूप प्रचलित नहीं था – लिपियों और वर्णाक्षरों का तब विकास नहीं हुआ था । इसलिए उन दिनों जीवन के मार्मिक अनुभवों और प्रयोग–सिद्ध तथ्यों की ज्ञान–राशि को छन्दोबद्ध

करके कंठाग्र किया जाता था और श्रुति–परंपरा द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी समाज के इस बढ़ते हुए ज्ञान का संरक्षण और विनिमय होता था । लिपियों के आविष्कार के बाद भी गद्य–साहित्य का विकास सभ्यता और संस्कृति के उन शांतिपूर्ण समृद्ध युगों में ही संभव हो सका, जिनमें जन–साधारण को शिक्षा–दीक्षा की व्यापक सुविधाएँ उपलब्ध हुई । हिन्दी भाषा समूह की अन्य समृद्ध और उन्नत भाषाओं में गद्य–साहित्य का निर्माण शुरू न होकर खड़ी बोली में शुरू हुआ । क्योंकि मुगल साम्राज्य के विघटन के समय फारसी के साथ–साथ फारसी मिश्रित खड़ी बोली का भी शिष्ट–वर्ग में व्यवहार होने लगा था । भारतेन्दु से हिन्दी–गद्य–साहित्य की अविच्छिन्न परंपरा का श्री गणेश हुआ ।

प्रेमचंदोत्तर युग में कहानी के क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई उसमें राकेशजी की कहानियाँ विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में आती हैं । स्वतंत्रतापूर्व भारतीय जीवन को प्रेमचंदजी ने अपने कथा–साहित्य में उभारा है तो स्वातंत्र्योत्तर युग की समस्या, पीड़ा, अलगाव, विघटन आदि राकेशजी के गद्य–साहित्य में उभरा है । राकेशजी हिन्दी गद्य–साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं । नाटक, उपन्यास और कहानी के साथ–साथ एकांकी तथा गद्य की अन्य विधाओं पर उन्होंने अपनी लेखनी की छाप छोड़ी है । जीवनी, यात्रा–वृतांत, डायरी जैसी विधाओं को भी उन्होंने सशक्त बनाया है । नाटककार के रूप में वे हिन्दी के अग्रणी रचनाकार हैं । हिन्दी नाट्‌य साहित्य को नई दिशा देने और रंगमंच में युगान्तरकारी परिवर्तन लाने में राकेशजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । 'नयी कहानी' आंदोलन के वे कर्णधार हैं । 'नयी कहानी' आंदोलन वस्तुतः हिन्दी कहानी की विकास–यात्रा का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है । 'सारिका' के संपादक के रूप में तथा स्वतंत्र रूप में भी उन्होंने हिन्दी कहानी की समृद्धि में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । ऐसे सिद्धहस्त साहित्यकार के साहित्य को जाँचने–परखने का यथा शक्ति प्रयत्न मैंने इस शोध–प्रबंध में किया है ।

विषय चयन एवम् प्रेरणास्रोत :–

मेरे शुभचिंतकों और गुरूजनों के साथ विचार–विमर्श करने के बाद मैंने मोहन राकेश पर कार्य करने का निर्णय किया । राकेशजी स्वातंत्र्तोत्तर हिन्दी – साहित्य के आधार स्तंभ के रूप में उभरे थे । प्रेमचंदजी के बाद हिन्दी–कहानी को एक नया मोड़ देने का कार्य राकेशजी की कहानियों के इर्द – गिर्द दिखाई देता है । राकेशजी ने पूरानी परंपरा को तोड़कर नये प्रयोग किये और हिन्दी – कहानी को एक नई दृष्टि प्रदान की । शायद ही किसी ओर भारतीय भाषा की कहानियों और उपन्यासों में एक साथ

इतने प्रयोग हुए हो, जितने राकेशजी के साहित्य में हुए हैं। राकेशजीने एक समूची नई पीढ़ी का इस दृष्टि से नेतृत्व किया है। यही कारण है कि मैंने उनके गद्य–साहित्य को अपने शोध प्रबंध के लिए पसंद किया।

❖ सामग्री संकलन :–

आधारभूत सामग्री का संकलन अध्ययन को विशेष सिद्धि प्राप्त कराता है। प्राप्त सामग्री जितनी पूर्ण, विश्वसनीय और अद्यतन हो, शोधकार्य उतना ही विश्वसनीय बनता है। अध्ययन कार्य के प्रारंभ से ही राकेशजी के साहित्य का प्रश्न सामने आया। किन्तु इस प्रश्न का बहुत जल्दी ही समाधान हो गया। क्योंकि श्री धर्मेन्द्रसिंहजी आर्टस् कॉलेज की पुस्तकालय में से मुझे काफी आधारग्रंथ मिल गये। साथ ही उन ग्रंथों में से उनके गद्य साहित्य की सूची प्राप्त हो सकी। सूची के आधार पर विविध प्रकाशकों के साथ दूरसंचार और इन्टरनेट के माध्यम से संपर्क किया और आधार ग्रंथ और सहायक ग्रंथों की प्राप्ति हुई। साथ ही मैंने स्व. एम. जे. कुंडलिया महिला आर्ट्स कोलेज और श्री स्वामिनारायण गुरुकुल विद्यालय–राजकोट के पुस्तकालय से भी सहायक ग्रंथ प्राप्त किए।

थोडी बहुत सामग्री सरदार पटेल विश्वविद्यालय – विद्यानगर के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डॉ. पी. एस. भोईसाहब से प्राप्त की। इसके अलावा हिन्दी भवन के अध्यक्ष डॉ. बी. के. कलासवासाहब और डॉ. शैलेषभाई मेहता ने भी मुझे पूरा सहयोग दिया।

इस प्रकार सह्रदयी और आत्मीय हितेच्छुओं के सहयोग से मेरी सामग्री संकलन की समस्या हल हुई और फलतः यह शोध–प्रबंध प्रस्तुत किया जा सका।

❖ पूर्ववर्ती शोध कार्य

राकेशजी का हिन्दी साहित्य जगत में एक नाटककार के रूप में विशेष नाम है। और नाटककार राकेशजी पर कुछ ज्यादा ही कार्य हो चूका है। साथ ही उनकी कहानियों पर भी विशेष कार्य संपन्न हो चूका है। किन्तु उनके समग्र गद्य साहित्य पर अनुसंधान कार्य कुछ कम ही हो सका है। वस्तुतः "मोहन राकेश के गद्य साहित्य का तात्त्विक अनुशीलन" से पूर्व के अनुसंधान कार्य निम्नानुसार है –

(१)	मोहन राकेश के नाटक	डॉ.द्विजराम यादव
(२)	नाटककार मोहन राकेश	सुन्दरलाल कथूरिया

(३)	मोहन राकेश का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल
(४)	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल
(५)	मोहन राकेश के कथा–साहित्य में मानवीय संबंध	चमनलाल गुप्ता
(६)	अज्ञेय और मोहन राकेश के उपन्यासों में यथार्थ की परिकल्पना	डॉ. रॉय जोसेफ
(७)	मोहन राकेश का नारी–संसार	श्रीमति मीना पिंपलापुरे
(८)	मोहन राकेश व्यक्तित्व एवम् कृतित्व	डॉ. धनानंद एम.शर्मा
(९)	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. रमेश कुमार जाधव
(१०)	मोहन राकेश की रंगसृष्टि	डॉ.जगदीश शर्मा
(११)	नाटककार मोहन राकेश	विष्णुकान्त शास्त्री
(१२)	नाटककार मोहन राकेश	जीवन प्रकाश जोशी
(१३)	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व में उदधृत	गिरीश रस्तोगी
(१४)	अपने नाटक के दायरे में मोहन राकेश	तिलकराज शर्मा
(१५)	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में	डॉ. रीता कुमार

प्रबंध परिचय

प्रस्तुत शोध प्रबंध में राकेशजी के समग्र गद्य साहित्य की तात्त्विक आलोचना एवम् सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । मैंने राकेशजी के गद्य साहित्य को केन्द्र में रखकर उनकी समीक्षा की है । इस शोध कार्य के सभी अध्यायों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं –

अध्याय :– १ **मोहन राकेश का जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्त्व और संपादित साहित्य**

प्रथम अध्याय 'मोहन राकेश का जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्त्व और संपादित साहित्य' में राकेशजी की जीवनी और उनकी रचनाओं पर विवेचन है । राकेशजी गद्य की विविध विधाओं के सशक्त रचनाकार होने के साथ–साथ भावुक कवि भी थे । नाटक के क्षेत्र में उनका प्रयोग और उनकी सृष्टि हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । कहानी, उपन्यास, एकांकी, यात्रा–वृत्तांत, जीवनी, डायरी, अनुवाद, आदि विधाओं को राकेशजीने सफलतापूर्वक समृद्ध किया है । राकेशजी का जीवन बहुमुखी तथा

प्रतिभासम्पन्न रचनाकार का जीवन था । उनका व्यक्तित्व परस्पर विरोधी तत्त्वों से निर्मित्त होकर एक असाधारण रचनाकार को जन्म देता है ।

❀ अध्याय :- २ मोहन राकेश का कहानी साहित्य

२.अ कहानियों का शिल्प विधान

२.ब कहानियों में संवेदना

दूसरे अध्याय 'मोहन राकेश का कहानी साहित्य – (अ) कहानियों का शिल्प – विधान (ब) कहानियों में संवेदना ' में राकेशजी की प्रमुख कहानियों के शिल्प और उसमें उजागर संवेदना का मार्मिक अध्ययन किया गया है । उनकी कहानियों में जीवन की विविधता के कई संदर्भ और रंग प्राप्त होते हैं और राकेशजी ने उन्हें नूतन शिल्प–प्रयोगों के माध्यम से प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की है । उनकी लगभग सभी कहानियाँ आत्म–परक द्दष्टि को लेकर लिखी गई हैं । राकेशजी की कहानियों में मानवीय संवेदना को भली–भाँति प्रस्तुत किया गया है । उन्होंने अपनी कहानियों में समाज की विभिन्न समस्याओं को उजागर कर सामाजिक चेतना फैलाने का भी यथार्थ यत्न किया है । राकेशजी ने अपनी कहानियों में बेकारी, आर्थिक–संघर्ष, सामाजिक नैतिकता–अनैतिकता आदि समस्याओं का बखूबी वर्णन किया है ।

❀ अध्याय :- ३ मोहन राकेश के कहानी – साहित्य का तात्त्विक विवेचन

(कथानक, चरित्र–चित्रण, देश–काल–वातावरण, भाषाशैली, कथोपकथन, उदेश्य, शीर्षक, प्रारंभ–मध्य–अंत)

तीसरे अध्याय 'मोहन राकेश के कहानी – साहित्य का तात्त्विक विवेचन ' में राकेशजी की प्रमुख कहानियों का साहित्यिक द्दष्टि से विवेचन किया गया है । राकेशजी की कहानियों का कथा–वस्तु आत्म–परक प्रतीत होता है । उनका मानवीय द्दष्टिकोण प्राय : उनकी सभी कहानियों में झलकता है । मानवीय संबंधो को लेकर उनकी कहानियाँ चलती हैं । उनकी अधिकांश कहानियाँ समस्यामूलक ही रही हैं । कहानी के लधु कद के कारण राकेशजी उपन्यास की तुलना अपने चरित्रों का विस्तार से विकास नहीं कर सके । फिर भी सभी कहानियों के चरित्रों को पूरा न्याय दिया गया है । देशकाल और परिवेश के आधार पर उन्होंने अपने चरित्रों का क्रमिक विकास किया है । राकेशजी ने अपने सभी चरित्रों को पूरी तरह से उभारने का यत्न किया है । इस अध्याय में राकेशजी की कहानियों की तात्त्विक – विवेचना है । कहानियों के प्रमुख तत्त्वों को ध्यान में रखकर समीक्षा की गई है ।

अध्याय :- ४ मोहन राकेश का उपन्यास साहित्य

४-अ उपन्यासों का शिल्प विधान

४-ब उपन्यासों में संवेदना

चौथे अध्याय 'मोहन राकेश का उपन्यास साहित्य - (अ) मोहन राकेश के उपन्यासों का शिल्प विधान (ब) मोहन राकेश के उपन्यासों में संवेदना' में राकेशजी के तीनों उपन्यासों के शिल्प और संवेदना पर गहन अध्ययन प्रस्तुत है । राकेशजी की अपनी शैली है, जो धीरे-धीरे चल कर एक गहरा प्रभाव छोड़ जाती है । अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने हिन्दी के कथा-जगत् को एक बार फिर समृध्ध किया है । राकेशजी ने नूतन-शिल्प प्रयोगों के माध्यम से उपन्यासों को प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की है । राकेशजी की शैली वर्णनात्मक रही है । तो कहीं कहीं आत्मकथात्मक भी द्दष्टिगोचर होती है । राकेशजी के उपन्यासों में ऊँचा उठने की महत्त्वाकांक्षा और जीवन की विषम परिस्थितियों की टकराहट के परिणाम स्वरूप जिंदगी की राह से भटककर पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन के टूटने की कथा के माध्यम से वर्तमान जीवन के विविध क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं और स्थितियों तथा जीवन-मूल्यों के विघटन का चित्रण हैं । राकेशजी के उपन्यासों में फेशन-परस्ती, बेकारी, आर्थिक-संघर्ष, सामाजिक नैतिकता-अनैतिकता और राजनीति के राष्ट्रीय- अन्तर्राष्ट्रीय दाव-पेच के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को हम नजर अंदाज नहीं कर सकते ।

अध्याय :- ५ मोहन राकेश के उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन

(कथानक, कथ्य, चरित्र-चित्रण, देश-काल-वातावरण, भाषाशैली, कथोपकथन, उद्‌देश्य, शीर्षक, प्रारंभ-मध्य-अंत)

पाँचवे अध्याय 'मोहन राकेश के उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन' में उपन्यासों के तत्त्वों का विस्तृत और सूक्ष्मत्तम अध्ययन प्रस्तुत है । राकेशजी के प्रमुख उपन्यासों के कथ्य-विधान की समीक्षा की गई है । उनके उपन्यासों की कथा किस प्रकार की है ? किस परिवेश को छूकर वह चलती या प्रवाहमान रहती है, इसकी चर्चा है । राकेशजी ने अपने उपन्यासों के कथानक को दो प्रकार से व्यक्त किया प्रतीत होता है । एक तो मात्र कथा का सीधे रूप में वर्णन किया है और दूसरें प्रकार में वे आत्मकथात्मक हो जाते हैं । उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-चित्रण दो प्रकार से किया जाता है । प्रत्यक्ष ढंग से और अप्रत्यक्ष ढंग से । प्रथम प्रकार में उपन्यासकार अपनी ओर से पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालता है, उसके गुणावगुणों का विश्लेषण करता है और दूसरे प्रकार में पात्रों के

क्रिया–कलाप और वार्तालाप से प्रकाश डाला जाता है । राकेशजी ने प्राय : दूसरे ढंग का प्रयोग विशेष रूप से किया है । फिर भी कहीं–कहीं प्रथम ढंग का प्रयोग भी देखा जा सकता है । राकेशजी के नारी चरित्रों को पाठक वर्ग की तरफ से पूरी हमदर्दी प्राप्त हो सकी है । राकेशजी ने अपने पात्रों का चित्रण सजीव, सुसंगत, स्वाभाविक और प्रभावशाली ढंग से किया है । विशिष्ट वर्गों एवम् व्यवसायों के ढंगों एवम् बोलचाल के तौर तरीकों का पूरी तरह ध्यान रखा है । राकेशजी के उपन्यासों के सभी पहलूओं को छूने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है ।

अध्याय :– ६ **मोहन राकेश के नाटक एवम् एकांकी साहित्य का तात्त्विक विवेचन**

छठे अध्याय 'मोहन राकेश के नाटक एवम् एकांकी साहित्य का तात्त्विक विवेचन' में राकेशजी के नाटक एवम् एकांकियों का सूक्ष्मत्तम अध्ययन प्रस्तुत है । कहानियों के बाद राकेशजी ने नाटक के क्षेत्र में पदार्पण किया और इस क्षेत्र में उन्होंने काफी ख्याति अर्जित की । यथार्थवादी नाट्य परंपरा का अनुकरण करते हुए राकेशजी ने अपने नाटकों में काव्य–तत्त्व और साहित्यिक गुणों को प्रतिष्ठित किया । राकेशजी के नाटकों में प्रतीकात्मकता तथा कल्पनाशील सांकेतिकता के साथ–साथ संगीत, आलोक आदि प्रभावों का कलात्मक संयोजन हुआ है । राकेशजी ने अपनी एकांकी–विधा को चुपचाप सँवारा हो ऐसा प्रतीत होता है । राकेशजी की एकांकियों में उलझाव–रहित गंभीर आंतरिक प्रभाव देखा जा सकता है ।

अध्याय :– ७ **मोहन राकेश का यात्रा–वृत्त, निबंध–साहित्य, डायरी, अनुवाद, संपादित साहित्य**

सातवें अध्याय 'मोहन राकेश का यात्रा–वृत्त, निबंध–साहित्य, डायरी, अनुवाद, संपादित साहित्य' में राकेशजी की अन्य साहित्यिक विधाओं का विवरण और समीक्षा की गई है । राकेशजी का जीवन यात्रा–वृत्तांत जीवन के गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है । यात्रा में मिले लोगों की जिंदगी को उन्होंने गहराई से अनुभव किया और उसे अपने ढंग से अभिव्यक्ति दी है । उनका यात्रा–वृत्तांत जीवन का अन्वेषण है । राकेशजी के निबंधों और लेखों में उनके वे विचार स्पष्टतः झलकते हैं जो उनके नाटक और कथा–साहित्य में अन्तर्निहित हैं । राकेशजी की विचार प्रधान साहित्यिक रचनाओं में उनके निबंध साहित्य को रखा जा सकता है । उनकी डायरी भी रचनात्मक साहित्य का एक अन्य रूप है । सच्चाई और ईमानदारी से लिखी यह डायरी दिनचर्या मात्र नहीं है ।

रचनात्मक अनुभूतियाँ और प्रेरणा का मूल स्त्रोत इस डायरी में देखा जा सकता है । प्रकृति का चित्रण और जीवन का दर्शन, दार्शनिक अभिव्यंजना आदि के समन्वय से यह सामान्य डायरी न रहकर एक साहित्यिक कृति बन गई है । अनुवाद विधा के प्रति राकेशजी की गंभीरता का पता इस बात से चलता है कि उन्होंने संस्कृत की महान कृतियों को पूरे मनोयोग और गहनता से अनुवादित किया है । अनुवाद के संबंध में राकेशजी की धारणा और उनके विचार तथा अनुवाद के प्रति उनकी गंभीरता का परिचय इस अध्याय में दिया गया है ।

अध्याय :– ८ उपलब्धियाँ एवम् सीमाएँ – निष्कर्ष – उपसंहार

अंत में 'उपलब्धियाँ एवम् सीमाएँ – निष्कर्ष – उपसंहार' अध्याय –८ में राकेशजी के साहित्य की उपलब्धियों का समाहार दर्शाया गया है । राकेशजी ने गद्य–साहित्य के क्षेत्र में एक नया संदर्भ उपस्थित किया ।

कृतज्ञताज्ञापन :

विषय–चयन से लेकर मेरे इस शोध कार्य में मेरे मार्गदर्शक गुढवर आदरणीया डॉ. दक्षाबहन जोशी के मार्गदर्शन में कार्य करने का सुअवसर मिला, सिर्फ आपका सहयोग और प्रोत्साहन ही नही; आपका ममत्व भी कुछ ऐसा रहा है, कि शब्दों के ढ़ाँचे में बयान नहीं किया जा सकता । वस्तुतः आपकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और विद्वता ने मुझे अज्ञात पथ पर अग्रसर होने का साहस प्रदान किया है । आपके उदार एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन का यह शुभ फल है कि एकनिष्ठ भाव से अपने कार्य में संलग्न रहने की धैर्य–शक्ति पा सका और अंततः शोध कार्य को संपन्न कर सका । आपका अंतःकरणपूर्वक आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ । सौराष्ट्र युनिवर्सिटी हिन्दी भवन के पूर्वअध्यक्षश्री डॉ. एस.पी.शर्मा, पूर्व प्राध्यापकश्री डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी, हिन्दी विभागाध्यक्षश्री डॉ. बी.के.कलासवा, प्राध्यापकश्री डॉ. एस.के. मेहता और श्री डॉ. एन.टी. गामित इन सभी गुढजनों ने मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यथा समय सहायता की है, इन सभी गुढजनों के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । साथ ही स्व. एम. जे. कुंडलिया कॉलेज की प्राचार्या डॉ. बानुबहन धकाण और कार्यालय अधिक्षक श्री भरतभाई राच्छ का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ । सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के कम्प्यूटर सायन्स विभाग के अध्यक्ष श्री डॉ. गिरीशभाई भीमाणी का भी अंतःकरणपूर्वक

आभार व्यक्त करता हूँ, आपने भी मुझे यथा समय मदद कर प्रेरणा प्रदान की । श्री स्वामिनारायण गुढकुल विद्यालय–राजकोट के सद्द.प.पू. महंतश्री देवकृष्णदासजी स्वामी, स्कूल व्यवस्थापक प.पू. श्री स्वयंप्रकाशदासजी स्वामी और आचार्यश्री वी.डी.वघासियासाहब के प्रति मैं सदैव कृतज्ञ और आभारी रहूँगा और उनका आशीर्वादाकांक्षी भी जिन्हों ने मुझे इस शोध–कार्य की अनुमति दी और नैतिक बल प्रदान किया ।

वर्तनी की अशुद्धियों का संशोधन और टंकण का पठन कर उन्हें सुधारने का सक्रिय सहयोग करनेवाले श्री जयेश दुधात्रा और धर्मेश दुधात्रा (रवि ग्राफिक्स), श्री जे. के. ठुमर, जीवाभाई डोडिया, हरपाल गोहिल तथा सहकर्मचारी मित्रों के प्रति कृतज्ञता समर्पित है । साथ ही मेरे माता–पिता के चरणों में वंदन के साथ परिवारजनों का मैं विशेष आभारी हूँ ; क्योंकि इस कार्य के दौरान सामाजिक कार्यो से दूर रहना हुआ जिसमें सहायक बनकर उन्होंने मूझे अवर्णनीय सहयोग दिया है । मेरी अर्धांगिनी जयश्री, दोनों बच्चे ढद्राक्षी और विवेक ने मुझे काफी सहयोग दिया जिसका मैं अंतःकरण पूर्वक ह्रदय से आभारी रहूँगा ।

विनीत

विजयकुमार डी. मालाणी

अनुक्रमणिका

अध्याय – १ मोहन राकेश का जीवन, व्यक्तित्त्व, कृतित्त्व और संपादित साहित्य		०१
१.१	जीवन	०२
१.१.१.	पारिवारिक जीवन	०५
१.१.२.	व्यावसायिक जीवन	०७
१.१.३.	आंतरिक व्यक्तित्त्व	०९
१.१.४.	बाह्य व्यक्तित्त्व	१३
१.१.५.	सामाजिक प्रभाव	१४
१.२	कृतित्त्व	१७
१.२.१.	कहानीकार	१७
१.२.२.	नाटककार	१९
१.२.३.	उपन्यासकार	२२
१.२.४.	निबंधकार	२४
१.२.५.	डायरी	२५
१.२.६.	यात्रावृत्त	२६
१.२.७.	अनुवाद	२८
१.२.८.	जीवनी	२९
१.३	निष्कर्ष	३०
	संदर्भ सूची	३२
अध्याय :– २ मोहन राकेश का कहानी साहित्य		३३
२.१	कहानी की परिभाषा	३४
२.१.१.	भारतीय विद्वानों के अनुसार कहानी की परिभाषाएँ :	३५
२.१.२.	पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार कहानी की परिभाषाएँ	३५
२.अ	कहानियों का शिल्प विधान	३७

२.ब	कहानियों में संवेदना	५४
	संदर्भ सूची	६६
अध्याय :- ३ मोहन राकेश के कहानी – साहित्य का तात्त्विक विवेचन (कथानक, चरित्र-चित्रण, देश-काल-वातावरण, भाषाशैली, कथोपकथन, उद्देश्य, शीर्षक, प्रारंभ-मध्य-अंत)		६७
३.१	राकेशजी की कहानियों का कथानक	६९
	(१) इन्सान के खंडहर (१९५० ई.)	६९
	(२) नये बादल (१९५७ ई.)	७५
	(३) जानवर और जानवर (१९५८ ई.)	८०
	(४) एक और जिन्दगी (१९६१ ई.)	८४
	(५) फौलाद का आकाश (१९६६ ई.)	८९
	(६) अन्य कहानियाँ	९३
३.२	चरित्र-चित्रण	९६
३.३	देश-काल-वातावरण	११०
३.४	भाषाशैली	११४
३.५	कथोपकथन	१२२
३.६	उद्देशर	१३५
३.७	शीर्षक	१३८
३.८	प्रारंभ-मध्य-अंत	१४२
	संदर्भ सूची	१४७
अध्याय :- ४ मोहन राकेश का उपन्यास साहित्य		१५१
४.१	मोहन राकेश का उपन्यास – साहित्य	१५२
४-अ	उपन्यासों का शिल्प विधान	१५५
४-ब	उपन्यासों में संवेदना	१६८
	संदर्भ सूची	१७६

अध्याय :- ५ मोहन राकेश के उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन (कथानक, कथ्य, चरित्र-चित्रण, देश-काल-वातावरण, भाषाशैली, कथोपकथन, उद्‌देश्य, शीर्षक, प्रारंभ-मध्य-अंत)		१७७
५.१	राकेशजी के उपन्यासों का कथानक	१७८
५.१.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का कथानक	१७८
५.१.२	'न आने वाला कल' उपन्यास का कथानक	१८४
५.१.३	'अंतराल' उपन्यास का कथानक	१८९
५.२	राकेशजी के उपन्यासों का कथ्य	१९५
५.२.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का कथ्य	१९६
५.२.२	'न आने वाला कल' उपन्यास का कथ्य	२०१
५.२.३	'अंतराल' उपन्यास का कथ्य	२०५
५.३	राकेशजी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण	२१०
५.३.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास में चरित्र-चित्रण	२११
५.३.२	'न आने वाला कल' उपन्यास में चरित्र-चित्रण	२३५
५.३.३	'अंतराल' उपन्यास में चरित्र-चित्रण	२५५
५.४	देशकाल और वातावरण	२७०
५.५	राकेशजी के उपन्यास की भाषा-शैली	२७७
५.५.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास की भाषा-शैली	२७९
५.५.२	'न आने वाला कल' उपन्यास की भाषा-शैली	२८३
५.५.३	'अंतराल' उपन्यास की भाषा-शैली	२८७
५.६	कथोपकथन	२९५
५.७	उद्‌देश्य	३०१
५.८	शीर्षक	३०४
५.९	प्रारंभ-मध्य-अंत	३०७
	संदर्भ सूची	३१२

अध्याय :- ६ मोहन राकेश के नाटक एवम् एकांकी साहित्य का तात्त्विक विवेचन		३१८
६.१	नाट्य कला की उत्पति और विकास	३२०
६.२	हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास	३२५
६.३	मोहन राकेश के नाटक	३२६
६.४	आषाढ़ का एक दिन	३२८
६.४.१	कथानक	३३०
६.४.२	रचना विधान	३३४
६.४.३	चरित्र - चित्रण	३३५
६.४.४	भाषाशैली	३४१
६.४.५	अभिनेयता	३४२
६.५	लहरों के राजहंस	३४३
६.५.१	कथानक	३४४
६.५.२	रचना विधान	३४६
६.५.३	चरित्र - चित्रण	३४९
६.५.४	भाषाशैली	३५५
६.५.५	अभिनेयता	३५७
६.६	आधे अधूरे	३५९
६.६.१	कथानक	३५९
६.६.२	रचना विधान	३६३
६.६.३	चरित्र - चित्रण	३६५
६.६.४	भाषाशैली	३७६
६.७	पैरों तले की जमीन	३७९
६.७.१	कथानक	३७९
६.७.२	रचना विधान	३८४

६.७.३	चरित्र – चित्रण	३८८
६.७.४	भाषाशैली	३९५
६.८	मोहन राकेश के नाटकों का शिल्प	३९७
६.९	मोहन राकेश का एकांकी साहित्य	४०२
६.९.१	अंडे के छिलके	४०२
६.९.२	सिपाही की माँ	४०३
६.९.३	प्यालियाँ टूटती हैं	४०४
६.१०	निष्कर्ष	४०५
	संदर्भ सूची	४०७
अध्याय :– ७ मोहन राकेश का यात्रा–वृत्त, निबंध–साहित्य, डायरी, अनुवाद, संपादित साहित्य		४११
७.१	यात्रा–वृत्तांत	४१२
७.२	निबंध	४१४
७.२.१	परिवेश	४१५
७.२.२	बकलम खुद	४१८
७.२.३	मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि	४१९
	सैद्धांतिक निबंध	४२२
	समीक्षात्मक निबंध	४२३
	चिंतनपरक निबंध	४२३
	आत्मपरक निबंध	४२५
	व्यक्तिपरक निबंध	४२६
	वर्णनात्मक निबंध	४२७
७.२.४	राकेशजी के निबंधों की भाषा–शैली	४२८
७.३	डायरी	४३०
७.४	अनुवाद	४३२

७.५	जीवनी – साहित्य	४३४
	संदर्भ सूची	४४०
अध्याय :– ८ उपलब्धियाँ एवम् सीमाएँ – निष्कर्ष – उपसंहार		४४१
	परिशिष्ट – १	
	आधार ग्रंथ	४५३
	सहायक ग्रंथ	४५४
	शब्द कोश	४५६
	पत्र पत्रिकाएँ	४५६

अध्याय :- १

मोहन राकेश का जीवन, व्यक्तित्त्व, कृतित्त्व और संपादित साहित्य

१.१	जीवन	०२
१.१.१.	पारिवारिक जीवन	०५
१.१.२.	व्यावसायिक जीवन	०७
१.१.३.	आंतरिक व्यक्तित्त्व	०९
१.१.४.	बाह्य व्यक्तित्त्व	१३
१.१.५.	सामाजिक प्रभाव	१४
१.२	कृतित्त्व	१७
१.२.१.	कहानीकार	१७
१.२.२.	नाटककार	१९
१.२.३.	उपन्यासकार	२२
१.२.४.	निबंधकार	२४
१.२.५.	डायरी	२५
१.२.६.	यात्रावृत्त	२६
१.२.७.	अनुवाद	२८
१.२.८.	जीवनी	२९
१.३	निष्कर्ष	३०
	संदर्भ सूची	३२

१.१ जीवन

" नाजुक उंगलियों के सशक्त हस्ताक्षर ..." यह है सुत्र रूप में राकेशजी के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व का परिचय।

किसी ने सही कहा है कि कलाकार या साहित्यकार की प्रेरणा-भूमि वेदना होती है। किसी की वेदना भौतिक और सांसारिक होती है, तो किसी की मानसिक। किसी भी द्रष्टि से वेदना के महत्व को अस्वीकार नहीं विया जा सकता। संस्कृत कवि भवभूति ने "एकीरस करूणास्व" कहकर वेदना को महत्ता प्रदान की है। ठीक उसी प्रकार कवि पंतजी ने भी "वियोगी होगा पहला कवि, आह के उपजा होगा गान" कहकर वेदना ही प्रकट की है। हमारे साहित्यकार राकेशजी भी इससे अलग नही है। राकेशजी महाकवि निराला की परंपरा को पुष्ट करनेवाले साहित्यकार है, जिन्होंने संपूर्ण वर्ग की वेदना को इसलिए अपने चारों ओर लपेट लिया कि उसकी समस्याओं का कोई समाधान प्राप्त कर सके।

राकेशजी को एक व्यक्ति, एक मनुष्य, एक लेखक के रूप में जानने - समझने के लिए उनका स्वयं का संपूर्ण साहित्य ही आईना है। उनकी रचनाएँ ही उनके व्यक्तित्त्व को प्रतिबिम्बित करती हैं। राकेशजी हमेशा संवेदनशील रहे हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्त्व और स्वभाव सामान्य से बिलकुल भिन्न है। भीड़ से बिलकुल अलग दिखाई देनेवाले व सारे समूह के बीच में अकेले से लडनेवाले व्यक्ति राकेशजी ही थे। बाह्य रूप से देखें तो एक खूबसूरत नौजवान, जिन्दादिल, स्पष्टवादी, जोर-जोर से ठहाके लगाता हुआ, आत्मीयता प्राप्त करने हेतु प्रसिध्ध कोफी की चुस्कियों के साथ जीनेवाले आदमी मोहन राकेश ही थे, किन्तु आंतरिक द्रष्टि में कहीं बहुत वीरान और उदास थे। उनके जीवन में अनेक ऐसी छोटी-बड़ी घटनाओं का संकलन रहा है, जिन्होंने उनके अन्दर बैठे रचनाकार को झंकझोर दिया है और प्रभावित किया है।

मोहन राकेश का पूरा नाम मदन मोहन गुगलानी था। उनका जन्म ८ जनवरी १९२५ को पंजाब प्रांत के अमृतसर नगर में हुआ। राकेशजी के पिता करमचन्द गुगलानी पेशे से वकील थे। वे अमृतसर के प्रतिष्ठित नागरिक, जागरूक कार्यकर्ता, साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधिकारी एवम् साहित्य - संगीत में रूचि रखनेवाले थे। बचपन कच्ची कोंपल के समान होता है जिधर भी मोडो मुड जाएगा। बचपन में पडे प्रभाव व संस्कार पूरी जिन्दगी अपना अमिट प्रभाव बनाए रखते हैं।

इनके पिता साहित्य प्रेमी तो थे ही, इसलिए बैठकों में मित्रों के बीच आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के साहित्यकारों की आलोचना को राकेशजी बडे ध्यान से सुनते थे। इन साहित्यिक गोष्ठियों का गहरा प्रभाव राकेशजी पर पड़ा। बचपन से ही अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति सतर्कता और प्रतिक्रिया का भाव राकेशजी के मनमें पैदा हुआ। राकेशजी को जन्म के समय परिवार में जो परिवेश प्राप्त हुआ वह प्रभावपूर्ण और संतोषप्रद भी नहीं था। घर में आर्थिक विपत्ति, सीलन से भरा घर, माँ – दादी का अंकुश उनके बाल मानस पर अपने प्रभाव छोडता रहा। इन्हें जिस परिवेश में साँस लेनी पडती थी, वह अवाँच्छित और एक भावी कलाकार के मन को कैसे भाँति ? शायद यही कारण रहा कि राकेशजी के मन में हमेशा दुनिया निकट से देखने एवम् जीवन अपने ढंग से जीने की कामना रही।

राकेशजी का बचपन जहाँ एक ओर साहित्यिक वातावरण से पूर्ण था, वहीं दुसरी ओर अपनी दादीमाँ के अपार स्नेह के कारण अंध–विश्वासों से ओत–प्रोत भी था। दादी का महत्वपूर्ण व्यक्तित्त्व राकेशजी को हर नजर से बचाए रखना चाहता था। भूत–प्रेत, जादू–टोने, डायन आदि का इस तरह डर दिखाया जाता कि बचपन घर की चार दीवारों में ही बीता। आँख बचाकर कभी गली में निकल भी गए तो पकडकर फिर बन्द कर दिया जाता। नाचने का मन होता, गली में धमाचौकडी मचाने को जी ललचाता, किन्तु दादी की आँखों से डरकर सीलन व बदबू तथा घी, अनाज, तरकारियों, धूप–चंदन की खूश्बू से मिश्रित घर में बन्द रहना पडता था। इस प्रकार बचपन में राकेशजी की अलग ही दुनिया थी। उन्होंने स्वयं लिखा है – "कभी चीटियों की पंक्तियों के साथ दीवार के सुराखों की यात्रा करता हूँ। कभी धूप में उडते जर्रो को आपस में लडाया करता हूँ। दीवारों के टूटते पलस्तर से लेकर हौज के बहते पानी तक मैं तरह–तरह के चहेरें खोजता हूँ।"[१]

राकेशजी का बचपन कर्ज का बचपन था। वकील होते हुए भी उनके पिता कर्ज से लदे थे। राकेशजी ने बचपन में ही कर्ज वसूल करेनवालों को घर आते –जाते देखा था। इन्हें पं. लोकनाथ एवम् सरदार निहालसिंह से बड़ी चिढ़ थी, जो कर्ज वसूल करने आते थे।

बचपन में किसी चीज को न छूना कडे अनुशासन को प्रेरित करता था। धन के अभाव के कारण मकान की मरम्मत नहीं हो पाती थी। दादीमाँ का पूजापाठ देखकर

बाल राकेश के मानसपट पर नाना प्रकार के विचार उठते थे। इस तरह धीरे-धीरे ये बाह्याचार, अनुशासन, नियम आदि के कारण रूढ़ियों के कट्टर आलोचक बने और यहीं से गंभीर चिन्तन और मनन का प्रवेश हुआ। हर स्थिति पर गहराई से सोचने की, सोचते रहने की प्रवृत्ति बनती गई। उनकी बाल्यावस्था में ही पिता का असमय निधन हुआ। घर का कारभार - १६ वर्ष की अल्पायु में राकेशजी के नाजुक कन्धों पर आ पडा। इस जिम्मेदारी को निभाने में इन्हें कटु सत्यों का सामना करना पडा। अपने पिता की मृत्यु का कारुणिक द्रश्य हमेशा उनके मानस-पट पर छाया रहा। पिता की मृत्यु पर माँ की सोने की चूडियाँ बेचकर किराया चूकाने के बाद ही मुर्दा उठने देना एक ऐसी प्रक्रिया थी जो उनके जीवन का एक कटु अनुभव बन गई। अनेक ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिनसे उन्हें यही लगता रहा कि कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं जो कभी नहीं बीतती। "पिता की मृत्यु के बाद अनेक शोक सभाएँ हुई, भाषण हुए लेकिन सब निरर्थक थे। फिर कोई झाँकने भी नहीं आया।"[२] इसीलिए राकेशजी मुख्य रूप से जिन्दगी की असलियत जिना चाहते थे। जैसे है वैसे बनकर जियें और विश्वास के साथ जियें, तो इनके हितों को क्या क्षति पहुंचेगी ?

अल्पायु में ही लोगों के नकली मुखोटों के प्रति राकेशजी सचेत हो गए। अपने से बाहर घर को, घर से बाहर सामाजिक बंधनों को प्रश्नात्मक द्रष्टि से देखने लगे। राकेशजी यही सोचते रहे कि लोग दिखावटीपन की झिल्लियाँ उतारकर क्यों नहीं रखते ? पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारंभ किया। 'राकेश' उपनाम रखकर वे मोहन राकेश बन गए।

इन परिस्थितियों के मध्य इनका बचपन व्यतीत होता रहा, अध्ययन चलता रहा, साथ ही लेखन कार्य भी। इनकी शिक्षा अमृतसर के लाहौर के ओरिएंटल कोलेज में हुई। वहाँ से उन्होंने शास्त्री की उपाधि ली तथा संस्कृत में एम.ए. किया। देश के विभाजन के बाद उनका परिवार जालंधर में आ बसा। २२ वर्ष की आयु में ही वे बुजुर्ग बन बैठे। साहित्यिक अभिरुचि पनपती रही। मन के क्लेश, घुटन को निकालने का रास्ता कागजों में मिलने लगा। लिखना, फाडना यही क्रम चलता रहा और यहीं से हिन्दी में एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उतीर्ण की। विद्यार्थी जीवनमें इनका काव्य-सृजन का कार्य भी चलता रहा। अध्ययन में अधिक रुचि थी अतएव 'नाटक में सही शब्द की खौज' विषय पर नेहरु फेलोशिप के अन्तर्गत कार्य कर रहे थे पर दुर्भाग्यवश वह पूरा नहीं कर पाए और उनकी जीवन यात्रा सम्पन्न हो गई।

१.१.१. पारिवारिक जीवन :

" मोहन राकेश ने संघर्ष पूर्ण जिन्दगी पाई थी । संघर्षपूर्ण जिन्दगी की सारी उलझने कडवाहट और अनुभूतियाँ उनकी रचनाओं में मुखोटा लगाए हुए दिखाई पडती है ।" [३]

इसी संघर्षमय जीवन में पारिवारिक सुख की लालसा से उन्होंने सन् १९५० में विवाह किया । उन्होंने विवाह तो किया किन्तु उनका मन कुछ उदास सा रहता । उसे महसूस हुआ कि... "विवाह के साथ ही सहसा मैंने अपने को रुके पाया, रुके हुए ही नहीं जड और स्तंभित । मैं जहाँ था वहाँ अपने को पाने के लिए या मानने के लिए कि मैं वहाँ हूँ, तैयार नहीं था ।" [४] राकेशजी आडंबरहीन थे । भावुक ह्रदयी होने के कारण उन पर किसी भी बात का असर बहुत अधिक एवम् जल्दी पडता था । वे अहंवादी थे । अपने अहं की उपेक्षा वे सहन नहीं कर पाते थे । वास्तविकता ही उनकी आस्था थी । यही कारण रहें कि उन्हें अपने इस वैवाहिक जीवनमें असफल रहना पडा । राकेशजी ने स्वयं लिखा है कि – " विवाह नाम है समझौते का, एडजेस्टमैंट का, पर अगर दोनों ओर से हो तब न. . . अगर दोनों ही अपनी कामनापूर्ति के लिए एक दुसरें के लिए नहीं है, तो हांलाकि कभी–कभी इस नये वातावरण के नये असर की अनुभूति तन–मन भर देती और जीने और काम करने की कामना को उससे उकलाहट भी मिलती, लेकिन यह अनुभूति भी उसके साथ स्थायी नहीं रह पाती । तनाव के, उलझनों के क्षण बार–बार आते रहते । 'मैं' का प्रश्न अपने व्यक्तित्त्व का प्रश्न स्वतंत्र होकर लेखन की छटपटाहट निरंतर बढती जाती । तुम जो हो, वह भी बनी रहना चाहो और अतिरिक्त लेना चाहो वह क्यों होगा .... किसी दूसरें को उपादान रूप में कभी मत ग्रहण करो, पुरुष हो, भावना हो या पत्थर । अपने से बाहर उसके स्वतंत्र अस्तित्त्व को स्वीकारो, फिर उसे छुओ... देना भी एक उपलब्धि है, उसमें भी सार्थकता हैं ।" [५]

राकेशजी पहले लेखक थे फिर पति । वे विवाहित जीवन व्यतित करते हुए स्वच्छंद भी रहना चाहते थे । अपने लेखन कार्य में बिलकुल स्वतंत्रता उनका ध्येय था । वह अपने बाह्य अस्तित्त्व को किसी भी प्रकार कम नहीं होने देना चाहते थे । इस कार्य में उनके साहित्यिक मित्रोंने राकेशजी को बहुत सहयोग दिया । उनके वैवाहिक जीवन को बनाए रखने में समझौता करवाने में इन सबका बहुत प्रयास रहा । राकेशजी की प्रथम पत्नी भी अहंवादी थी । शायद यह भावना राकेशजी के समकक्ष

पढ़ी–लिखी होने के कारण थी । वह नौकरी करती थी एवम् वेतन भी राकेशजी की तुलना में अधिक पाती थी । स्वतंत्र विचारों की महिला किसी भी प्रकार की परिस्थिति का मुकाबला करने को सदैव तत्पर थी । अतएव दोनों ही अहंवादी एवम् अपनी बातों पर अडे रहनेवाले थे । यही कारण था कि इनके वैवाहिक जीवन में दरार पडती गई । राकेशजी इस स्थिति में घर में घुटन अनुभव करने लगे । घर की आर्थिक स्थिति भी कुछ डाँवाडोल होने के कारण वे काफी द्विधा का अनुभव कर रहे थे । "सन् सतावन के अगस्त महीने में सम्बन्ध–विच्छेद के कागज पर हस्ताक्षर करके अपने असफल विवाह–सम्बन्ध से भी मुक्त हो चुका था ।"[६]

उन्हें अपनी पत्नी की कमी का अहसास भी हुआ था । उनके एक मित्रने लिखा है, "उनकी पत्नी वापस चली गई, परंतु घर को लगता था, अभी भी किसी छाया ने ग्रसा हुआ है । राकेशजी वैसे बहुत सेंसेटीव थे । किसी बात को लेकर परेशान हैं, यह वे आराम से स्वीकार नहीं करते थे, परंतु उस दिन मेरे साथ वे कुछ अधिक कोमल हो उठे ।... उस दिन जब मैंने उन्हें कुरेद दिया तो सुबक पडे ।"[७]

राकेशजी एक सुखी परिवार की खोज में हमेशा रहे किन्तु उन्हें अपने जीवन में वही नहीं मिला । उनके जीवन में अनेक प्रेमिकाएँ आई जिन्हें उन्होंने 'क', 'र', 'स' आदि नामों से पुकारा है । उन प्रेमिकाओं में उन्हें या तो वासना की गंध मिली या बचपना । परिपक्वता जो वह चाहते थे किसी में न मिली । उन्होंने शादियाँ भी की किन्तु किसी भी शादी को सफलता न मिली । कहीं पत्नी का अहम् आगे आता, तो किसी पत्नी का पागलपन । अपनी पहली पत्नी से तो तालमेल बिठाना भी चाहते थे किन्तु दोनों का अहम् आडे आता था । गृहस्थी की गाडी के दोनों पहियों में से एक के खराब होने पर दूसरा उसे जैसे–तैसे खींच सकता है, किन्तु दोनों पहियों के टस से मस न होने पर उसे कौन हिला सकता है ? यही हाल राकेशजी का रहा और उसका अन्त तलाक में परिवर्तित हो गया । यद्यपि राकेशजी अपने इस बिखराव को समेटना चाहते थे, किन्तु वह बिखरता ही गया । उनके जीवन में प्रेमिकाओं का चक्र चलता रहा । उनका व्यक्तित्त्व लडकियों को अपनी ओर आकर्षित करता था किन्तु अपरिपक्व मानसिकता से ही इनका सम्बन्ध हुआ । राकेशजी में पुरुषत्व का अहम् था । वह अपने पर आश्रित पत्नी चाहते थे और उसीमें इन्हें धोखा होता रहा । बार–बार विवाह–तलाक होने के कारण राकेशजी अंदर से टूट गए । पारिवारिक शांति की तडप इनमें रहने लगी । धीरे–धीरे विवाह के नाम से भी धृणा उत्पन्न हो गई । कुछ

लेखकोंने राकेशजी पर आरोप भी लगाया हैं कि कपड़े बदलने के समान राकेश पत्नियाँ बदलता रहा । यह सही है कि बार-बार विवाह व तलाक से पारिवारिक असंतोष ही उत्पन्न होता है किन्तु कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसा वातावरण उपस्थित कर देती हैं कि मनुष्य उनके सामने विवश हो जाता है ।

इन परेशानियों के मध्य राकेशजी ने अपना लेखन कार्य चालू रखा । पुनः ९ मई १९६० को राकेशजी दाम्पत्य सूत्र में बंध गए । उन्हें लगा कि इनकी खोज पूरी हो गई किन्तु यहाँ भी वे धोखा खा गए । यह लडकी मानसिक रूप से विक्षिप्त थी, इस लडकी के कारण अनेक जगह अपमानित होना पडा । यहाँ तक की 'सारिका' के कार्यालय से कार्य छोड़ देना पडा । तरह-तरह के लाँछन लगाए गए । अन्त में इस घुटन भरी जिन्दगी का अंत भी तलाक के रूप में हुआ ।

अन्त में अनीता इनके जीवन में रोशनी बनकर आई । जीवन की सारी खुशियों से जिनकी झोली भरने को राकेशजी तत्पर रहते थे । अपने संबंध में उन्होंने लिखा है – "अनीता तुम तीसरे नंबर पर हो, पहले नंबर पर मेरा लेखन, दूसरे पर मेरे दोस्त, तीसरे पर तुम ।"[८] अनीता के साथ उन्होंने अपना नया गृहस्थ जीवन प्रारंभ किया । अपने दोनों बच्चों पूर्वा एवम् शैली से बहुत स्नेह रहा । राकेशजी का पत्नी प्रेम भी कम नहीं था । उसी प्रेम से उन्होंने एक जीवन-तथ्य को स्पष्ट किया कि स्त्री-पुरुष के संबंध का आधार सेक्स ही नहीं है, उससे हटकर भी कुछ है, जो उम्र और शरीर के ढलान के साथ जुडा नहीं है ।

१.१.२. व्यावसायिक जीवन :

मूलतः राकेशजी का व्यवसाय लेखन कार्य ही था । विद्यार्थी जीवन से ही काव्य सृजन की ओर अग्रसर थे । यों तो नाट्य रचना, उपन्यास, कहानी, निबंध सभी विधाओं में पारंगत थे किन्तु इन सबमें नाटककार का स्वरूप अग्रणी रहा । लेखन के साथ-साथ अर्थोपार्जन हेतु कई स्थानों पर नौकरी भी की । किन्तु नौकरी से पलायन-वृति बराबर सिर उठाये रही । सन् १९४५ ई. के आसपास राकेशजी ने फिल्म कम्पनी में काम किया था, परन्तु दोहरी जिन्दगी न जी पाने के कारण वहाँ से वे इस्तीफा देकर चले आये । राकेशजी ने खुद ही लिखा है, "विभाजन के बाद काफी दिनों तक बेकारी की मार सहने के बाद बम्बई के शिक्षा-विभाग में जो लेक्चररशिप मिली थी, वह सन् १९४९ में छिन गई थी । कारण था आँखों का निर्धारित सीमा से अधिक कमजोर

होना । उसके बाद बेरोजगारी के कुछ दिन दिल्ली में कटे, फिर जालंधर के डी.ए.वी. कॉलेज में लेक्चररशिप मिल गई । लेकिन छः महीने बाद, सन् १९५० के शुरु में, बिना कन्फर्म किये उस नौकरी से भी हटा दिया गया । इस बार कारण था टीचर्ज यूनियन की गतिविधि में सक्रिय भाग लेना ।"[९] यहाँ भी राकेशजी ने जीवन के कटु यथार्थ से साक्षात्कार किया, जिन लोगों के साथ मिलकर उन्होंने अधिकारियों की दमन–नीति के विढध्ध संघर्ष छेडा था, अन्ततः वे साथ नहीं रहे । इसी समय की रचित कहानी 'लडाई' इन कटु अनुभवों और संघर्ष का प्रतिफलन है और साथ ही राकेशजी द्वारा निरन्तर सत्य केन्द्रित निर्णय लेने का उसकी प्रतीति और प्रत्यक्षता का रचनात्मक प्रमाण है । उसके बाद शिमला के बिशप काटन स्कूल में नौकरी की । सन् १९५२ में उस नौकरी को भी अलविदा कर दिया । नौकरी छोड देने पर उन्होंने जो निश्चय किया उसे राकेशजीने कुछ इस तरह लिखा है – "तय किया है कि जैसे भी हो अपनी स्वतंत्रता बनाए रखते हुए केवल लेखन पर निर्भर रहकर न्यूनत्तम साधनों में गुजारा करने की कोशिश करुंगा ।"[१०]

किन्तु उनका यह संकल्प ज्यादा देर तक न टीका । इसी बीच जालन्धर के डी.ए.वी. कॉलेज में विभागाध्यक्ष के ढप में नियुक्त हुए । उन्हें यह स्थिति बड़ी व्यंग्यात्मक लगी कि जिस कोलेज से बिना कन्फर्म हुए निलंबित कर दिए गए थे, वहीं पर उन्हें विभागाध्यक्ष पद पर आसीन किया गया । नौकरी का यह दौर काफी लम्बा रहा सन् १९५७ ई. तक वे वहाँ रहे । सन् १९६० में दिल्ली में लेक्चरर हुए, पर वहाँ भी निभा नहीं सके । सन् १९६२–६३ में 'सारिका' के संपादक रहे । 'सारिका' के संपादन–कार्य से त्यागपत्र दे देने के बाद से मृत्यु–पर्यन्त स्वतंत्र रहे । "सुबह उठकर तैयार होकर किसी दफतर को जाना उनके बश के बाहर था, नौकरियाँ की और छोडी, शायद इसीलिए कि सुबह उठकर समय पर जाने के लिए कपडे पहनने तक को गुलामी मान लेते थे ।"[११] जितने समय भी नौकरी में रहे उसे दलदल ही समझते रहे । नौकरी के दलदल में व इनकी आत्मा में गहरा संघर्ष रहता था । अर्थोपार्जन और जीवनयापन के लिए नौकरी आवश्यक थी, किन्तु जब नौकरी करते तो उससे निकलना चाहते । इनका अपना आत्मा इन्हें लेखन की ओर अभिप्रेरित करता रहता । उन्हें यह विश्वास था कि नौकरी के दलदल एवम् अपने आत्मसंघर्ष में मैं अवश्य ही जीतूंगा और वही हुआ भी ।

राकेशजी एक प्रतिभासम्पन्न कुशल लेखक थे । जिंदगी की कुरुपता के भुक्तभोगी होने के कारण उन्हें दुनियादारी से चिढ़ थी । जिस व्यक्ति को माँ की सोने की चूडियाँ बेचकर पिता की अर्थी उठानी पडी हो, वह इस समाज को, दुनिया को कभी माफ नहीं कर सकता । उसका कुण्ठाग्रस्त, पीडित होना स्वाभाविक है । ऐसे अकेले राकेशजी ही नहीं, न जाने कितने राकेश होंगे जो इस कुण्ठा को झेलते होंगे । ऐसे वातावरण से निकले हुए व्यक्ति की रचनाओं में भोगे हुए यथार्थ का चित्रण स्वाभाविक बन पडेगा । राकेशजी स्वयं ईमानदार थे । जिंदगी में गलतफहमी के कारण फँसते भी थे । जिंदगी में इतने संघर्षमय वातावरण से गुजरते हुए भी उन्होंने साहित्य की विभिन्न विद्याओं में अपनी गहन–अनुभूति, चिन्तन–शक्ति और शिल्प–कौशल का परिचय दिया है । सन् १९५९ में 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक पर संगीत अकादमी का सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार प्राप्त हुआ । इसी प्रकार १९७१ में नाट्य लेखन पुरस्कार भी इसी अकादमी से प्राप्त किया । उन्होंने अल्पावधि में हिन्दी–साहित्य को एक नई भूमि प्रदान की है ।

३ दिसम्बर, सन् १९७२ ई. को ४८ वर्ष की आयु में राकेशजी ने मानो इस्तीफा देने के सिलसिले को बरकरार रखते हुए जिन्दगी से इस्तीफा दे दिया । मृत्यु उनके जीवन में एक घटना नहीं एक बहुत पहले से चला आता एहसास था । राकेशजी के समग्र व्यक्तित्त्व को उन्हीं के शब्दों में समेटना चाहें तो कह सकते हैं – "मैं एक असम्भव व्यक्ति हूँ, उसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं बहुत ईमानदार आदमी हूँ ।"[१२]

१.१.३. आंतरिक व्यक्तित्त्व :–

पारिवारिक विडम्बनाओं, पिता की मृत्यु, सोलह वर्ष की आयु में परिवार का सारा बोझ, विवाह, तलाक, पुनःविवाह, जीवन की अस्थिरता आदिने राकेशजी की रचनाओं को एक नई दिशा प्रदान की । राकेशजी के विषय में लेखकों की भिन्न–भिन्न धारणाएँ हैं, कोई उसे निहायत गैरजिम्मेदार बताता है, कोई कहता है लिखता तो बहुत अच्छा है किन्तु आदमी अच्छा नहीं है । वह सकून की खोज में खाना–बदोशों की तरह भागता फिर रहा है । उनके व्यक्तित्त्व की ये बातें हमें उस बिन्दु पर ले जाती है जहाँ हम अनुशासनहीनता और बिखराव पाते हैं ।

"वह निहायत गैर–जिम्मेदार और अनुशासनहीन व्यक्ति है, वह संवेगों के आवेश में काम करता है, एक सही काम करते–करते तुनक कर गलत काम कर बैठता है. . . पर

सतह से नीचे उतरते ही जबरदस्त अनुशासन दिखाई पडता है । वह अनुशासन है दिमाग का और अनुशासन का । उपरी जिंदगी में यह असंगठित और बिखरा हुआ दिखाई देता है उतना ही संगठित और सुव्यवस्थित है उसके लिखने की प्रक्रिया . . . और सृजन के इसी संतुलन, संवरण, संगठन और अनुशासन के लिए यह आदमी भागता है कभी काश्मीर, कभी डलहौजी, कभी शिमला और कभी सुनसान वीर्रानों में ।"[१३]

राकेशजी नाटककार से पहले कहानीकार थे किन्तु सन् १९५८ में प्रकाशित 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक ने नाट्य जगत में धूम मचा दी । इस नाटक में लेखक का स्वयं का जीवन झांकता है । 'लहरों के राजहंस' व 'आधे-अधूरे' में पारिवारिक असंतोष, घुटन का प्रभाव है । राकेशजी का जीवन अस्थिर और अनिर्णित रहा । कभी कुछ छोड़ा कभी कुछ ग्रहण किया । पद-त्याग एवम् पत्नी-त्याग की प्रक्रिया उनके जीवन में समानान्तर चलती रही । जितनी तीव्रता ग्रहण करने के प्रति रहती थी उतनी ही छोडने के प्रति भी । इससे उनके व्यक्तित्त्व का यही मनोवैज्ञानिक तथ्य उजागर होता है, कि उन्होंने चुनाव में गलतियाँ की थी । फिर चाहे वह घर हो या व्यावसायिक जीवन । यही गलत चुनाव की स्थिति उनके नाटकों के कई पात्रों में देखने को मिलती है ।

जो लोग राकेशजी के परिचय परिधि में थे, वह उन्हें अच्छी तरह जानते थे कि उनके पास आत्मीयता का अक्षय कोष था । उसे वह सदाव्रत की तरह बांटा करते थे । इस कारण हर किसी को उनका अंतरंग होने का दावा करने का मन करता । मित्रता उनके लिए सर्वोपरि थी । कमलेश्वर, अश्क, दुष्यन्त, राजेन्द्र यादव, जगदीशचन्द्र माथुर, महेन्द्र भल्ला, जैनेन्द्र, सुरेन्द्र चतुर्वेदी आदि उनके अभिन्न मित्रों में से थे । दोनों ओर के समान भाव सच्ची मित्रता को जन्म देते हैं । यही कारण रहा कि कितनी भी नाजुक परिस्थिति राकेशजी की रही हो, उनके मित्रों ने उन्हें कभी अपने से अलग नहीं माना । सब एक परिवार के समान थे । घर में दोस्तों को लेकर साहित्य चर्चा, गपशप में उन्हें खुशी मिलती थी, आत्मिक सुख मिलता था । राकेशजी ने अपने मित्रों के बीच रहकर जीना सीखा । इनके पारिवारिक विघटन के दौरान भी इनके ये दोस्त ही आगे आकर उनका हाथ बंटाते रहे । उन्हें अपने जीवन में कभी अकेलेपन का अनुभव नहीं हुआ । मित्रों के बीच परिवार एवम् बच्चों का जिक्र खूले रूप से करते थे । बचपन को वे स्वर्णिम अवस्था मानते थे । बच्चों को देखकर स्वयं बचपन के प्रति लालायित हो उठते थे ।

इसीलिए अपनी डायरी में जहाँ भी बचपन संबंधी कुछ लिखना हुआ है वे भावुक हो उठे है।

राकेशजी का व्यक्तित्त्व कल्पनात्मक व्यक्तित्त्व था। छोटी से छोटी बात भी उन्हें सोचने को मजबूर कर देती थी। फिर चाहे वह थर्ड क्लास का वेइटींग रूम हो या बम्बई का इक्वेरियम। सौन्दर्य किसे प्रभावित नहीं करता, प्रत्येक व्यक्ति सुन्दरता की ओर आकर्षित होता है। अन्तर रहता है तो सिर्फ चिन्तन का। कुछ सुन्दरता देखकर आह्लादित होते हैं तो कुछ उसको बनानेवाले के विषय में कल्पनात्मक विचरण करने लगते हैं। इसी प्रकार राकेशजी छोटी–छोटी रंग–बिरंगी मछलियों को देखकर, फूलों व तितलियों के रंग एवम् आकार के वैविध्य को देखकर इनकी सृष्टि करनेवाले की सूक्ष्म द्रष्टि के बारे में सोचते हैं।

इनका लेखकीय व्यक्तित्त्व बहुत जल्दी शुरु हो गया था। चारों ओर के वातावरण ने उन्हें लेखन कार्य की शक्ति दी। लेखन कार्य करने के लिए शान्त वातावरण हेतु राकेशजी जगह–जगह घूमते रहे। सभी जगह प्रकृति सौन्दर्य ने इन्हें अपनी ओर रिझाया है। रात को सोते समय भी समुद्र की गर्जन, बादल, बीजली, वर्षा ....आदि राकेशजी में प्रकृति के प्रति एक ललक पैदा करते रहे। लेखन आपके लिए हमेशा अग्रणी रहा और नौकरी एक बन्धन। नौकरी तो सिर्फ आर्थिक संरक्षण के लिए की, फिर भी उससे भागने की ही सोचते रहे। अपने मन से स्वयं प्रश्न उत्तर करते रहते। वह सोचते रहते कि नौकरी एक बंधन है, इस नौकरी के फन्दे को गले से उतार कर खुली स्वतंत्र हवा में जीना चाहते थे। जीवन में ख्याति को उन्होंने कभी उपलब्धि नहीं माना। इनकी उपलब्धि इनकी खोज है, उसे पाना चाहते थे। स्वच्छंद प्रकृति के राकेशजी भला बंधन कैसे स्वीकार करते ?

मित्रों , पत्नियों एवम् प्रेमिकाओं के सहचर्य ने – व्यवहार ने उनकी द्रष्टि, उनके विश्वास और जीवन के द्रृष्टिकोण को ही बदल डाला। वह सरल ह्रदय व्यक्ति थे तभी किसी भी व्यक्ति भर विश्वास कर लेते थे और इसी विश्वास ने उन्हें जगह–जगह पर छला है। उनका यह कथन सही है कि, " सबसे गहरे घाव उनके हाथों से लगे हैं, जिन्हें मैंने वर्षो अपने घनिष्टत्तम मित्र माना है।"[२४] यहीं पर वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सभी संबंधों के निर्वाह के लिए कुटनीति (डिप्लोमेसी) आवश्यक है। वे स्पष्टवादी थे यही कारण रहा कि वे अपने लिए एक चेहरा व दुनिया के लिए दूसरा चेहरा न रख

सके । इसी कमजोरी के कारण जगह–जगह उन्हें विश्वासघात का शिकार होना पडा । जिस मित्र को अपने से बड़ा मानकर उसे प्यार किया, उसकी कद्र की उसीने अन्त में उसे भला–बूरा कहा । इसीसे राकेशजी ने अनुभव किया कि शरीर के दर्द से आदमी कराहता है किन्तु विश्वासघात के दर्द से आदमी दबता है, टूटता है । इसी कारण उनके जीवन में दर्द अधिक है । “मानवी संबंध ‘Enternal’ तो होते नहीं । मित्रता और मानवी संबंध के विश्वास को उस घटना (मित्र का अपनी बहन पुष्पा के प्रति प्रेम) ने इतनी चोट पहुँचाई कि लगता है, प्रत्येक पर सन्देह करना चाहिए मन में सन्देह उठे तो भी उसे दबा देना चाहिए । जीवन विश्वास से नहीं ‘टेक्ट’ से चलता है ।”[१७] इसी ‘टेक्ट’ (चातुर्य) की इनमें कमी थी । कई बार वे अपने आप से ही टूट जाते हैं, स्वयं से ही विरोध कर बैठते हैं । स्वयं से ही अपने दुश्मनों की सूची पूछते हैं कि उसने कितने – कितने दुश्मन बना रखें हैं । उनका यह विरोधी व्यक्तित्त्व कुछ समय तक रहता है फिर पलायन कर जाता है वे अपने उसी रूप में पुनः आ जाते हैं ।

राकेशजी के जीवन और विचार शक्ति में दार्शनिकता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है । व्यक्ति के मन की उडान, उसकी तडप पर उनकी पकड अच्छी थी । जिस प्रकार नीड में जाकर मन आकाश में उडान भरने को तडपने लगता है और आकाश में उडते समय नीड की उष्णता उसके पीछे लगी रहती है । उसी प्रकार राकेशजी को कोई बंधन बंधता भी नहीं है और मुक्ति, मुक्ति नहीं देती । वह स्वयं को ही समाज, समूह, युग विस्तार के रूप में देखते हैं, क्योंकि जिससे भी मिलते हैं सब के अंदर व बाहर के मुखौटे अलग–अलग हैं । अतः सामनेवाले का व्यक्तित्त्व इन्हें एक मुखौटा ओर दे जाता है । जीवन में मनुष्य अनुभव से कितना कुछ सीख जाता है ।

असुरक्षा, आन्तरिक विक्षोभ, निर्वासन, जीवन की शून्यता के अहसास को उन्होंने अन्दर से भोगा था । अनेक अनुभव उन्हें बाल्यावस्था में ही हुए थे । अपने वैवाहिक जीवन में स्त्री–पुरुष की संबंधहीनता को झेला । उनमें आत्मीयता की भूख थी । उन्हें एक ऐसे सुरक्षात्मक घर की तलाश थी जहाँ उन्हें सांत्वना और सुख मिले, जो उन्हें कभी न मिल सका । माँ उनके लिए आधार स्तंभ थी पर उनके अवसान के बाद राकेशजी एकदम स्तंभित रह गए, उनका भावात्मक जगत बिखर कर टूट गया । स्थितियों और चिन्तन की मिली जुली संचित अभिव्यक्ति के कारण ही कालिदास, नन्द एवम् महेन्द्रनाथ जैसे पात्रों ने उनके नाटकों में जन्म लिया ।

१.१.४. बाह्य व्यक्तित्त्व :-

राकेशजी के व्यक्तित्त्व का निर्माण किसी एक तत्त्व के कारण नहीं हुआ वरन् चहुर्मुखी धाराओं ने उसे उजागर किया । अंतरंग कारणों से उनके व्यक्तित्त्व में उतना विकास परिलक्षित नहीं होता, जितना कि बाह्य परिस्थितियों के सहयोग से होता है । आंतरिक परिस्थितियों में राकेशजी को सीमित संदर्भ दिए जो बाह्य क्षेत्र में जाकर विभिन्न परिवेश में पुलकित हुए । इस बात को उनके साथियों ने भी अलग-अलग ध्वनियों में व्यक्त किया है और राकेशजी के स्वयं के जीवन के अंतरंग पृष्ठों पर दृष्टि डालें तो वे भी बहिरंग है । मेरी ऐसी मान्यता है कि सामाजिक परिवेशों में जो घुटन व्यक्ति पाता है बाह्य परिवेशों में उन ग्रन्थियों को बड़ी गहराई से घिरा हुआ है जिसमें उनके साहित्य-चिन्तन को बड़ी गहराई प्रदान की है । राकेशजी एक चलता फिरता इतिहास थे । भारत के भौगोलिक विभिन्न आयामों में उन्होंने अपने जीवन के कई क्षण इस तरीके से गुजारे हैं, जिसमें वह व्यक्ति भी रहे है और व्यक्तित्त्व के सीमित क्षेत्र से बाहर निकले है, वैसे कोई भी व्यक्ति अपनी समस्त जीवन की अभिव्यक्ति आंतरिक परिस्थितियों में नहीं कर सकता, उसके जीवन के महत्तम भाग पर बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव होता है । यह बात मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सही उतरती है । मनुष्य इन बाह्य परिस्थितियों से जीवन के राजमहलों में विभिन्नता लाता है । अगर ऐसा न हो तो व्यक्ति में एकदम एकाकीपन या एकान्तित्ता उत्पन्न हो जाएगी और वह केवल एक स्थित व्यक्ति बनकर रह जाएगा और राकेशजी ऐसे स्थित चरित्र नहीं थे । अंतरंग से बहिरंग क्षेत्र में आने के बाद ही व्यक्ति की असलियत उसका वास्तविक चहेरा, चिन्तन तथा विश्व के सामंजस्य या संघर्ष करने की शक्ति का अहसास होता है । केवल आंतरिकता व्यक्ति को अंतर्मुखी बना देती है और इसके परिणामस्वरुप व्यक्ति अत्यंत ही बौना हो जाता है । राकेशजी इस बौनेपन की स्थिति से बहुत आगे निकल चूके थे । उन्होंने अपने आपको आदि से अनादि तक फैलाने की जो आकांक्षाएँ की थी वे इसी बहिरंगता का परिणाम थी । राकेशजी ने जो अपनी व्यक्तिगत डायरी लिखी थी उससे अवश्य ही यह स्पष्ट हो जाता है, कि वे अपने बाह्य जीवन में रचे-पचे थे । हम जब भी किसी साहित्यकार के मूल्यांकन को अपनी विवेचन सीमा में प्रस्तुत करें तो यह आवश्यक हो जाता है, कि हम उसके सर्वांगिण और विशेषकर उन पहलुओं, क्षणों का सूक्ष्मतम् दर्शन करें और दिग्दर्शन कराये जिसके माध्यम से उसका साहित्यकार साहित्य जगत में अवतरित होता हैं ।

वैसे मैंने अपने इस शोध कार्य में राकेशजी के परिचय में उनके पारिवारिक संदर्भ दिए है। वह केवल इसलिए कि व्यक्तित्त्व के निर्माण में आनुवंशिक विज्ञान (जैनेटिक–सायन्स) के आधार पर गुण और अवगुण का मूल्यांकन इसी परिवेश में हो सकता है। विकास, अध्ययन और क्रियात्मकता ये तो व्यक्ति के अपने एकदम निजी क्षेत्र हैं इसे उसके किसी भी अन्य पक्ष से नहीं जोडा जा सकता। बाह्य पक्ष में मैंने मोटे तौर पर उन पलों को समेटने का प्रयास किया है, जिन्हें बृहद रूप में सामाजिक कहा जा सकता हैं।

१.१.४. सामाजिक प्रभाव :–

"राकेश की जिन्दगी एक खुली किताब रही है। उसने जो कुछ लिखा और किया वह दुनिया को मालूम है लेकिन उसने जो कुछ जिया – यह सिर्फ उसे मालूम था।"[१६]

राकेशजी का व्यक्तित्त्व अन्तर्विरोधों से परिपूर्ण था। अलग–अलग व्यक्तियों के समक्ष उनकी प्रतिमा अलग अलग थी। कोई उन्हें निहायत घटिया किस्म का आदमी बताता है तो कोई बेहद ईमानदार। कुछ का कहना था कि राकेश भी अजीब मिट्टी का बना है। बहुत सारे टूटते संबंधों की परवाह न करनेवाला वह निर्मम व्यक्ति कहीं गहरे स्वयं इतना टूट चूका था कि माँ की मृत्यु को न सहार सका। राकेशजी अहंवादी, कभी न झुकनेवाले अत्यंत ही भावुक इन्सान थे। उनके नजदीकी लोग भी उन्हें पूर्णतः न जान सके। राकेशजी कहा करते थे, कि दुनिया के सारे सवालों के जवाब तो हम दे देते हैं और दे लेते हैं, पर अपने मन के सवालों के जवाब इस दुनिया से क्यों नहीं मिलते ? इस प्रकार की निराशा में ही उन्होंने अपनी संपूर्ण जिन्दगी व्यतीत की।

उनका व्यक्तित्त्व घूमक्कड़ व्यक्तित्त्व था। अपनी इस प्रकृति के कारण वे कहीं भी स्थिर नहीं रहे, दिल्ली, जालंधर, अमृतसर , शिमला और बंबई कहीं भी नहीं, तथा वे न व्यक्तियों से, न जगहों से और न ही नौकरियों से बंधे रह सके। उन्हें कनाट–प्लेस के गिलियारे, कॉफी हाउस की मेज–कुर्सिया तथा शिमला, श्रीनगर की पहाडियां अधिक भाँति हैं। वे कहीं नहीं टिक सकते, किसी के हो नहीं सकते। उनका व्यक्तित्त्व विसंगतियों व अन्तर्विरोधों में ग्रस्त था। उनके मासूम, बेबाक, ईमानदार व्यक्तित्त्व को सतहों के नीचे से खोजकर उनकी सांसों की सच्चाई तक जाना पड़ता है। घुमक्कड़ होने के कारण उनमें अहर्निश नूतन के सान्निध्य की अनुभूति, निजत्व का साहचर्य तथा

चारों ओर के जीवन को जानने की रागात्मक प्रवृत्ति बनी रहती थी । इसी कारण राकेशजी में जीवन के प्रति मान्यताएँ बदलती रहीं; परंतु वह एक तथ्य पर पहुंचे कि प्रत्येक मनुष्य में एक तत्त्व है जो बहुत कम व्यक्त हो पाता है इसे चाहें तो सभ्यता के संस्कार के कारण कह ले । मनुष्य वह नहीं कह पाता जो वह कहना चाहता है । वह तत्त्व है मनुष्य का मनुष्य में सहज विश्वास – बिना किसी आरोप के, बिना किसी बाधा के, बिना किसी कुण्ठा के । मानवता के प्रति भी उनका विश्वास रहा है कि काले पड़े हुए शरीर, सूखी त्वचा, जीवन के प्रति नितान्त निरुत्साह भाव, चेष्टाओं में शैथिल्य और बुद्धि के नियंत्रण का अभाव, ऐसे व्यक्तियों की श्रेणी देश के किसी भी कोने में पाई जा सकती हैं । जिस समान में मनुष्य की ऐसी श्रेणी होगी उसके गलित होने में संदेह ही क्या रह जाता है । समाज के प्रति उनके मन में विद्रोह है, आक्रोश है । जिस प्रकार दूषित हवा फूल के पूर्ण सौंदर्य के साथ खिलने में बाधक है, उसी प्रकार वह समाज भी दूषित है जहाँ मनुष्य अपने व्यक्तित्त्व का पूर्ण विकास न कर सके ।

राकेशजी ने कभी शेखी नहीं बाँटी, कभी किसी को झूठी तसल्ली नहीं दी । बहुत बार हम जिन्दगी में अभिनय करते है । राकेशजी ने जब–जब अध्यापक का, मीठा बोलनेवाले व्यक्ति का अभिनय किया तो सब लोग उसका वही वास्तविक रूप समझने लगे । किन्तु जोर से ठहाके लगाने, खरी–खरी कह देना, ईमानदारी से बात कहने का वह रूप गलत प्रतीत हुआ । उसके स्वाभाविक रूप को किसी ने स्वाभाविक नहीं माना । उन्होंने अपने मित्रों के साथ भी निश्चल रहकर विश्वास किया, उन्हें प्यार किया, उनकी कद्र की, उन्हीं मित्रों ने इन्हें नकारा है । इससे राकेशजीने यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति अकेला है ; परंतु यह अकेलापन असामाजिक या समाज विरोधी ही हो, ऐसा तो नहीं । सामाजिक होने से ही तो अकेलेपन का बोध भी है, उसीसे अकेलेपन की आवश्यकता भी है । जो अकेलापन आदमी स्वयं के लिए चुनता है, चाहता है वह तो अपने अकेले के लिए नहीं होता, बहुतों में रहने के कारण, बहुतों के बीच में पैदा हुआ होता है ।

पूरे समाज में आज यौन संबंधी चर्चाएँ हैं । आज मनुष्य इतना उच्छृंखल एवम् स्वतंत्र प्रवृत्ति का हो गया है कि अपनी सीमाओं का उसे कोई ध्यान नहीं । राकेशजी के व्यक्तित्त्व में दार्शनिक एवम् चिन्तक रूप द्रष्टिगोचर होता है । जीवन के संबंध में उन्होंने बहुत चिन्तन किया है । शाश्वत जीवन से उनका तात्पर्प रहा कि यदि कोई व्यक्ति शाश्वत जीवन की कामना करता है तो वह मृत्युपूजक है । नई कलियों का न

खिलना, नए अंकुरों का न निकलना, नए शिशुओं का जन्म न लेना भी उन्होंने शाश्वत जीवन का अर्थ माना है। जीवन की शक्ति और आकर्षण नए की उत्पति में है और उस उत्पति के लिए चाहिए पुरातन का विनाश। विनाश का महान उद्देश्य नए विकास के लिए स्थान रिक्त कर देता है। इसके साथ ही स्वयं नवीन विकास की खाद बन जाता है, क्योंकि एक स्वस्थ पौधा पल्लवित हो सके। इसी प्रकार मनुष्य का विकास परिस्थितियों की अनुकूलता पर तो है; किन्तु साथ–ही–साथ उनके चिन्तन में एक सवाल उभरा कि रंगों के विकास के संबंध में किस प्रवृत्ति ने काम किया, कुछ जीवों में आत्मरक्षा हेतु परिस्थितियों के अनुकूल रंगों का विकास हुआ, गोरे–काले वर्ण में वायु–मंडल का संबंध रहता है, लेकिन जब हम इन्द्रियों के क्षेत्र में आते हैं, तो रंगों के नाना विभेद, नाना संयोजन किसी न किसी चेतन प्रवृत्ति के होने का आभास देते हैं। इस प्रकार परिस्थिति के अनुकूल विकास करते–करते मनुष्य का विकास हुआ किन्तु रंगों के विकास के मूल में अन्य प्रवृत्ति अवश्य रही होगी।

जिन्दगी के प्रति राकेशजी की जिज्ञासा है, कि जिन्दगी में यदि कोई मुश्किल पैदा हो, परेशानी हो, अपने आप से हम हारे हो तो भी हमें इसी सिध्धांत को मानकर चलना चाहिए कि जिन्दगी की सार्थकता इसी में है, कि पराजय (हार) भी आगे जाने की उतनी ही प्रेरणा देती है, जितनी जीत या विजय दे सकती है। ऐसी पराजय में भी जीत है। मनुष्य हारकर भी कुछ सीखता है। पराजित होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना जिन्दगी का उद्देश्य नहीं है।

भाग्य के संदर्भ में राकेशजी मानते है कि पूरी मानवता का भाग्य सामान्य है। समय की गति के अनुसार जीवन में होनेवाले परिवर्तन ही मनुष्य का भाग्य है। इसे केवल एक साधारण घटना से मिला हुआ अनुकूल, प्रतिकूल संदर्भ कह सकते है। मनुष्यों में कोई छोटा–बड़ा नहीं है, न पद की द्रष्टि से न अर्थ की द्रष्टि से। साथ ही योग्यता और मानवीय गुण की द्रष्टि से भी सब समान हैं। इसप्रकार हम राकेशजी को भाग्यवादी नहीं कह सकते। वह मेहनत पर विश्वास करते है। मेहनत से मनुष्य का अपना भाग्य भी बदल सकता है। मनुष्य किसी से भी चालाकी करके स्वयं को संतोष पहुँचा सकता है, किन्तु अपने आप से तो वह चालाकी नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्य को स्वयं के प्रति ईमानदार होना चाहिए। जीवन को एक चुनौती मानकर उसका मुकाबला करने हेतु जुट जाना चाहिए। राकेशजी का स्वयं का जीवन चुनौती–पूर्ण था। इसलिए उससे संघर्ष करते हुए वे एक देदिप्यमान चिंतक बन गए।

राकेशजी के चिन्तन में अनुभूति भी समाहित है । संत्रास, पीडा, टूटन, अलगाव के बीच उन्होंने मानवजीवन की तलाश की है । राकेशजी दर्शन को मनोवैज्ञानिक आयाम प्रदान कर यह अहसास नहीं देते कि वे कहीं दर्शन के ऊपर से आरोपित कर रहे है । उनका अस्तित्त्ववाद मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । राकेशजी की गणना उन साहित्यकारों में की जाती है, जिन्होंने जिन्दगी को बहुत गहराई से महसूस किया है । राकेशजी हृदय से संवेदनशील व भावुक थे । राकेशजीने अस्तित्त्व का संकट कई बार झेला था, शारीरिक भूख व आंतरिक प्यास की अकुलाहट महसूस की थी । यह उनके व्यक्तित्त्व की सहज शक्ति की परिचायक थी । अनेक विरोधी गुण होते हुए भी जीवन-जगत से जो व्यक्ति समझौता न करता हो, वह नियति भोगने को सदा बाध्य रहता है । यही कारण रहा कि राकेशजी अंदर से बहुत चिन्तनशील व्यक्ति रहे ।

इसी चिन्तनात्मक शक्ति द्वारा उन्होंने साहित्य के लिए घर बनाया पर अपने लिए वह पूरी रेत भी जमा नहीं कर पाये । "रेगिस्तान में घर तो कैसे बनाए जाते हैं . . रेत का ही सही, लेकिन एक घर तो होना चाहिए । उसने कई घर बसाए, पर उसके मन का घर किसीने बनाकर नहीं दिया । संबंधों और दोस्ती की बहुत सी ईटें उसने थापी । उन्हें आँचे में पकाया पर बंजारों की तरह पुखता ईटों की अधबनी दीवारें वहीं छोड़कर वह कहीं ओर चला गया ।"[१७]

१.२. कृतित्त्व :-

राकेशजी हिन्दी साहित्य में एक नाटककार के रूप में उभरे । लेकिन राकेशजी ने साहित्य की सभी विद्याओं को आत्मसात किया हो ऐसा प्रतीत होता हैं । क्योंकि राकेशजी ने साहित्य के सभी पहलूओं को पूरा न्याय दिया है । उनके साहित्यिक जीवन पर हम द्रष्टि डाले तो . . .

१.२.१. कहानीकार :-

कथा साहित्य की मुक्तक विद्या 'कहानी' सृष्टि के उद्‌गमकाल से अपना संबंध रखती है । यदि यह कहे कि यह मनुष्य की मनोवृत्ति है, तो भी कोई विसंगतता दिखाई नहीं देती । सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य इस मनोवृत्ति से आसक्त होकर इसे लिपिबद्ध करता रहा और यह आज मनुष्य के जीवन का एक प्रमुख अंग बन गई है । बच्चों को खेलने से रोके और बड़ों को चौराहे पर बैठने से रोके वह है कहानी ।

कहानी साहित्य मानव मन के अंतरंग पहलुओं से अपने आप को जोडने में सफल हुआ है । आज वही कहानीकार सफल और सशक्त माना जाता है, जो मनुष्य की इन दमितताओं का चित्रण करके उसे आत्मसंतोष प्रदान करता है । ऐसे कहानीकारों में राकेशजी उन कहानीकारों मे आते है, जो स्वातंत्र्योत्तर पीढी में अपना अस्तित्त्व कहानी की पीढिका पर जमाए हुए हैं । राकेशजी इस क्षेत्रमें एक मौलिक-विचारक रहे हैं । कथ्य और शिल्प के धरातल पर उन्होंने वैविध्य रूप से नई प्रस्थापनाएँ की हैं । उनके पास यथार्थ को पकड़ने की द्रष्टि, जीवन का गहरा बोध और अनुभव विद्यमान है । सच्चाई को सम्प्रेषित करने की शक्ति राकेशजी का जन्मजात गुण रहा है ।

कहानी के क्षेत्र में राकेशजी एक विशिष्ट व्यक्ति रहे हैं, जिन्होंने इसे एक नया मोड प्रदान किया है । उन्होंने कहानी के संबंध में अपने कई निष्कर्ष स्थापित किए और उन्हीं के आधार पर अपनी सभी कहानियों की रचना की । वे कहानी को एक प्राणशक्ति व्यक्त करने का सशक्त माध्यम मानते थे । कहानी उनके लिए व्यापक जीवन क्षेत्र में फैली हुई विद्या थी । उन्होंने कहा था, कि "निरन्तर बुलबुलाते और संघर्ष करते सामाजिक पार्श्व का एक व्यापक भाग अछूता रहा है जिसकी पहचान और पकड हमारे लेखकीय दायित्व का महत्वपूर्ण अंग है ।"[२८] परिवेश के प्रति सजगता और सतर्कता उनका मौलिक गुण है । चरित्रों को भी वे कहानी में उतना ही महत्व प्रदान करते थे । प्रेमचन्दजी की तरह उनका लक्ष्य भी मनुष्य पर केन्द्रित था । उनकी कहानियों में निरन्तर विकसित और परिवर्तित होते हुए भारतीय जीवन की झलक है जिसे उन्होंने अत्यंत ही सादगी से व्यक्त किया । उन्होंने अपनी कहानियों में जगत के सप्तरंगी आकार प्रस्तुत किए । वे एक सचेतन कहानीकार थे । उन्होंने दिल की हर धड़कन को सुना और अपनी कहानियों में अत्यंत ही संवेदनात्मक रूप में अंकित किया हैं । उनकी सम्पूर्ण कहानी यात्रा मानव से मानव के ह्रदय तक चली । उन्होंने जितनी कहानियाँ लिखी, वे लगभग नौ कहानीसंग्रहों में संकलित हैं ।

राकेशजी की कहानियाँ विकसित व परिवर्तित होते जा रहे भारतीय जीवन पर आधारित हैं । हमारे आसपास का परिवेश ही उनकी कहानियों में द्दष्टिगोचर होता है । राकेशजी नई कहानी के अग्रदूत थे । नई कहानी के नाम से परवर्ती काल में विख्यात हुई कहानी धारा का प्रस्थान बिन्दु राकेशजी की प्राथमिक रचनाओं में है । उन्होंने कहानी से संबंधित अनेक प्रश्न उठाए व उन्हीं के माध्यम से उन्हें रचनात्मक द्दष्टि दी । "रचनात्मक जीवंतता और वैचारिक सक्रियता का जो सिलसिला नई कहानी से शुरु

होता है, मोहन राकेश उसका एक हिस्सा ही नहीं निगहबान भी हैं। कहानी चर्चा के कुछ अहम् सवालों को उठाने में उन्होंने पहल की और अपनी कहानी के माध्यम से उन्हें एक रचनात्मक दिशा दी।"[२९]

राकेशजी की कहानियाँ प्रथम रूपमें पाँच संग्रहों में, तत्पश्चात् चार संग्रहों में एकत्रित हैं। इस प्रकार कुल नौ संग्रह – इन्सान के खण्डहर, जानवर और जानवर, एक और जिन्दगी, नए बादल, फौलाद का आकाश, चेहरे, क्वार्टर, वारिस और मेरी प्रिय कहानियाँ में राकेशजी की समस्त कहानियाँ संग्रहित हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि राकेशजी की कहानियों में मानव मन की भीतरी शलाखों को तलाशने का काम बड़ी खूबी से किया गया है। राकेशजी अपनी कहानियों में छोटे फलक पर गहरा संकेत करना चाहते हैं और वह भी विशेष रूप से आज के तनावों और संत्रासों की ओर। एक अन्य स्तर पर राकेशजी की कहानियाँ इस द्रष्टि से भी अलग तथा समकालीन है, जहाँ समय की उपस्थिति है। शायद इसलिए यह कहानियाँ आसपास के जीवन को प्रक्षेपित करती हुई संवेदना के स्तर पर चलती है। यही कारण है कि उनकी कहानियों का विशेष महत्त्व है। उनकी कहानियों में सम-सामयिक जीवन के सुख-दुःख, अकेलापन, बिखराव और खोखलेपन को जितनी सूक्ष्मता से अंकित किया गया है उतना सूक्ष्म अंकन शायद ही कहीं हुआ। तथ्य तो यह है कि राकेशजी की कहानियाँ मानवीय संबंधों और समकालीन परिवेश में जीवित आम-आदमियों की कहानियाँ है। उनकी कहानियों की अपनी अलग पहचान समकालीन हिन्दी साहित्य में हुई है।

राकेशजी की सभी कहानियों का विवेचन मैंने अपने इस शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया है।

१.२.२. नाटककार :-

राकेशजी ने लगभग सभी विधाओं पर लिखा है, किन्तु सबसे अधिक सफलता उन्हें नाटकों में मिली है। उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया है कि नाटक सीधे रंगमंच से जुड़े रहे। इस विधा में उन्होंने बहुत ज्यादा नहीं लिखा, लेकिन जितना भी लिखा है, उसमें आधुनिक संवेदना के स्वर खुलकर सामने आये हैं। नाटककार के रूप में राकेशजी निस्सन्देह प्रसादोत्तर युग के अग्रणी नाटककार हैं। यह कह सकते है, कि

प्रसाद के बाद पहली बार हिन्दी को एक ऐसा नाटककार मिला, जिसने हिन्दी रंगमंच के लिए एक नया दर्शक पैदा किया था । नाट्य क्षेत्र में राकेशजी की अनुठी प्रतिभा के दर्शन होते है । मैं तो उनके नाट्य साहित्य को देखने के पश्चात् यही कहूँगा कि राकेशजी नाट्य जगत के लिए ही अवतरित हुए थे । नाटक रंगमंच के साथ उनका व्यक्तित्त्व उजागर हो गया हो ऐसा प्रतीत होता है । नाटक सृजन में उन्होंने एक नया शिल्प तथा एक नया मंच हिन्दी जगत को प्रदान किया । उन्होंने चार नाटकों की रचना की । 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे – अधूरे' और 'पैरों तले की जमीन' । उनके नाटकों के संदर्भ में चर्चा करें तो एक गहरी संवेदना, अलौकिक पात्र जगत और आधुनिकता से मंडित एकदम नूतन शिल्प उनके इन नाटकों में दिखाई देता है, जो हिन्दी नाट्य साहित्य में एक नवीन अभिरुचि को ही जन्म नहीं देता वरन् लेखन के क्षेत्र में नए आयाम भी प्रस्तुत करता है । उन्होंने पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' महाकवि कालिदास को लेकर लिखा है और इस नाटक को लिखते समय उन्होंने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की है वह द्रश्यव्य है – 'नाटक विषय पर लिखना अपने आपमें एक कठिन कार्य है ।' यहाँ राकेशजी का उद्देश्य कालिदास के माध्यम से एक ऐसे सर्जक का चित्र प्रस्तुत करना है, जिसके मन में लगातार द्वन्द्व चल रहा है । यहाँ पर महाकवि कालिदास की केवल कथा कहना नाटक का उद्देश्य नहीं है, बल्कि एक कवि के मन को व्याख्यायित करना राकेशजी का उद्देश्य रहा है । यही कारण है कि यहाँ पर ऐतिहासिक पात्रों के साथ कल्पित पात्रों का राकेशजी ने सृजन किया है । कालिदास जैसे चरित्र को राकेशजी ने आज की पृष्ठभूमि में रखकर देखा है । राकेशजी की विशेषता यह है कि 'आषाढ़ का एक दिन' प्रथम नाट्य रचना होते हुए भी यह उनकी प्रौढ़ कृति मानी जाती है । इसमें मल्लिका के कथन से नाटक का आरंभ होता है, वह कहती है – "आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ धाराधार वर्षा दूर–दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गई – और मैं भी तो, देखो न माँ कैसी भीग गयी हूँ ।"[२०] राकेशजी का 'आषाढ़ का एक दिन' आधुनिक संदर्भ को व्यक्त करता है, उसमें काश्मीर की जनता का विद्रोह और कालिदास की असफलता चित्रित हुई है । कालिदास की प्रिया मल्लिका, कालिदास के चले जाने पर यातना में डूब जाती है । इस तरह नाटक के अंत में करुण यथार्थ प्रस्तुत किया गया है । राकेशजी ने सर्जनात्मक अनुभव से युक्त नाटक देकर निःसंदेह हिन्दी रंगमंच और रंगकर्मियों को एक सम्माननीय भाव दिया है ।

'लहरों के राजहंस' राकेशजी का दूसरा नाटक है, जो १९६३ में लिखा गया था । इस नाटक के प्रथम संस्करण की भूमिका में राकेशजी ने इतिहास संबंधी अपने द्रष्टिकोण

को स्पष्ट करते हुए कहा है – "इतिहास और साहित्य में अंतर होता है, साहित्य इतिहास के समय में बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है, युग से युग को अलग करता नहीं, कई–कई युगों को एक साथ जोड़ देता है।"[२१] इस कथन से स्पष्ट होता है कि समय अत्यधिक बलवान होता है । 'लहरों के राजहंस' की कथा राकेशजी ने अश्वघोष के 'सौंदरनंद' काव्य से प्राप्त की है, जिसका उल्लेख उन्होंने नाटक की भूमिका में किया है । 'लहरों के राजहंस' की कथा में इतिहास और कल्पना का संयोजन है । इतना ही नहीं नाटक के प्रथम अंक में ही कामोत्सव का आयोजन है, जो उसके ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पक्ष को स्पष्ट करता है । 'लहरों के राजहंस' में कथा बिलकुल संक्षिप्त है और उसमें नाटककार का उद्देश्य 'सुंदरी' के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना है, जो बुद्धदेव को भी अपने ढंग से चुनौती देती है ।

राकेशजी की तीसरी नाट्य रचना है 'आधे–अधूरे'। इस नाटक को समकालीन जिंदगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक कहा जा सकता है । इस नाटक का फलक न तो बहुत विस्तृत है और न ही विशाल किन्तु इस नाटक की समस्याएँ आधुनिक सामाजिक जीवन से जुड़ी हुई है । यह नाटक मौजूदा जीवन की विडंबना के कुछ एक सघन बिन्दुओं को रेखांकित करता है । इस नाटक की अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा हैं, इसमें यह सामर्थ्य है, जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके । इसके पात्रों की मनःस्थितियाँ यथार्थपरक तथा विश्वसनीय है । यह नाटक एक स्तर पर स्त्री–पुरुष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज है । इसमें महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है, सावित्री भी उसे चाहती है, लेकिन ब्याह के बाद महेन्द्रनाथ को बहुत निकट से जानने के बाद उसे उससे वितृष्णा होने लगती है क्योंकि जीवन से सावित्री की अपेक्षाएँ बहुमुखी और अनंत है, इसके कारण पति की खस्ता हालत से सावित्री बहुत कटु हो गयी है । एक ओर घर को चलाने का असह्य बोझ तो दूसरी ओर जिंदगी में कुछ भी हासिल न कर पाने की तीखी कचोट है । इतना ही नहीं वह अपने बच्चों के बर्ताव से अत्यंत त्रस्त हुई है । सावित्री बची–खुची जिंदगी को ही एक पूरे, संपूर्ण पुरुष के साथ बिताने की आकांक्षा रखती है, पर यह उसकी आकांक्षा पूरी नहीं होती । 'पैरों तले की जमीन' राकेशजी का चौथा पूर्ण कालिक नाटक है, जो उनके निधन के पश्चात सन् १९७५ ई. में प्रकाशित हुआ । 'पैरों तले की जमीन' की कथावस्तु आज के आधुनिक जीवन की विडम्बना से युक्त है । इसमें यथार्थता है । प्रत्येक वर्ग, समाज का व्यक्ति इसमें अपनी कमजोरियों और आज अर्थ की महत्ता में 'कुछ बनने' की अंधी दौड में उसके सामाजिक, पारिवारिक जीवन के मूल्यों में एक टूटन, बिखराव आ जाता है ।

व्यक्ति – व्यक्ति के बीच का संबंध टूटने की कगार पर आ पहुँचा है। इसमें लोग दोहरी जिंदगी जीते हैं जो आज के समाज से हमें रुबरु कराता है।

राकेशजी ने मानव जीवन के अनादिकाल से चले आते प्रश्नों को निरुपित किया हैं। मानवीय संबंधों के प्रति ऐसी कलात्मक, विवेचनात्मक और सौन्दर्यबोधक अभिव्यक्ति राकेशजी के विराट व्यक्तित्त्व की मौलिकता है।

कथा, तत्त्व, चरित्र सृष्टि, मंचीयता आदि को उन्होंने पूर्ण स्वाभाविकता और व्यवहारिकता प्रदान की है। उनकी परिकल्पनाएँ यथार्थ से प्रेरित, समकालीन जीवन की समस्यामूलक, अस्तित्त्ववादी चेतना में भूली हुई मानव की प्रतिमूर्तियाँ हैं। अपने इन नाटकों में उन्होंने एक ऐसे मानव की रचना की है जो प्रारंभ से इस सृष्टि के साथ जूझ रहा है और जूझता रहेगा। समाज को इस वास्तविक बोध से परिचित करना उनकी सभी नाट्य कृतियों की आकांक्षा रही।

राकेशजी के चारों नाटकों का तात्त्विक विवेचन मैंने अपने इस शोध कार्य के छट्टे अध्याय में प्रस्तुत किया है।

१.२.३. उपन्यासकार :–

एक नाटककार के रूप में राकेशजी को जितनी सफलता प्राप्त हुई है, उतनी ही सफलता उन्हें एक उपन्यासकार के रूप में भी प्राप्त हुई है। यह बात ओर है कि हिन्दी के अधिकतर समीक्षकों ने उनके उपन्यासकार के व्यक्तित्त्व की अपेक्षा उनके नाटककार के व्यक्तित्त्व को अधिक महत्त्व दिया है। यदि हम उनके उपन्यासों का अध्ययन करे तो यह स्पष्ट होता है कि एक उपन्यासकार के रूप में भी राकेशजी बहुत अधिक सफल हुए है। नाटक की भाँति उनके उपन्यास में भी आधुनिक जीवन को सार्थक अभिव्यक्ति मिली है। यह सच है कि उन्होंने कुल मिलाकर तीन ही उपन्यास लिखे हैं, किन्तु उनके ये तीनों उपन्यास वर्तमान मानवीय जीवन की विसंगति को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त करते हैं। उपन्यासों में भी राकेश का द्रष्टिकोण आधुनिक सभ्यता के भिन्न–भिन्न कोणों को बड़ी गहराई और स्पष्टता से व्यक्त करता है।

उपन्यास आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सशक्त विद्या है। इसका प्रमुख कारण इसका मनोरंजन का तत्त्व तथा जीवन को उसकी बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की शक्ति और अवकाश होता है। यद्यपि साहित्य की समस्त विद्याओं में

उपरोक्त गुण होते हैं किन्तु ये अपने–अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण इन दोनों तत्त्वों का प्रस्फुटन उपन्यास जितना नहीं कर पातीं । उपन्यास का विषय मानव के सामाजिक जीवन से संबंधित होता है जो अनेक द्वन्द्वों, विषमताओं और संघर्षों से घिरा शोषण का शिकार होता है । उपन्यास इस प्रकार बाह्य यथार्थ को आधार मानकर चलता है और पूर्ण ईमानदारी से उसका चित्रण करता है ।

प्रेमचन्दोत्तर एवम् साठोत्तरी कथाकारों में राकेशजी सशक्त कथाकारों की पंक्ति में अपना स्थान रखते हैं । राकेशजी ने उपन्यास को जीवन के नए धरातल पर प्रस्तुत किया । जिसमें सजग सामाजिक चेतना, प्रगतिशील दृष्टिकोण, मानव संबंधों में उतार–चढाव, नए पुराने मूल्यों के प्रति टकराव और उससे उत्पन्न आत्मपीड़ा, अलगाव, अजनबीपन आदि को बड़ी ही संवेदना–पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है । आधुनिक युग जीवन की विषमताओं में जिस तरीके से डूबा हुआ है, उसमें से मनुष्य के स्वरूपों को प्रस्थापित करने का काम मध्यमवर्गीय समाज का व्यथित स्वरूप पति–पत्नी के अंतरंग संबंध तथा उनकी अभिशप्त और तनावपूर्ण स्थितियों का भौतिक यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके राकेशजी ने कथा साहित्य को एक नया आधुनिक बोध प्रदान किया है तथा वर्तमान पीढ़ी को अपने अस्तित्त्वों की पहचान करने के लिए बाध्य किया है ।

राकेशजी के प्रमुख उपन्यास इस प्रकार है – 'अंधेरे बन्द कमरे', 'न आनेवाला कल' और 'अंतराल' । उनके उपन्यासों में आधुनिक जीवन की यंत्रणाओं से गुजरते हुए व्यक्तियों को अपनी रचना का माध्यम बनाया, जिनमें स्त्री–पुरुष संबंधों की मुख्य भूमिका रही है । आधुनिक जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं का वास्तववादी चित्रण उनके उपन्यासों में हुआ है । समकालीन जीवन – संबंधों की कटुता, महानगरीय संत्रास, अजनबीपन, यांत्रिकता, उनके उपन्यासों में खुलकर व्यक्त हुई है । यथार्थ शैली, भाषा की सहजता और सहज अभिव्यक्ति लिए हुए उनके उपन्यासों में भिन्न–भिन्न मानवीय चरित्रों का विवेचन, परिवेश का चित्रण तथा आधुनिक बोध गहरे रूप में व्यक्त हुआ है ।

राकेशजी का उपन्यास साहित्य उन्हें एक सफल उपन्यासकार के रूप में प्रदर्शित करता है । उनके सभी उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन इस शोध प्रबन्ध के अध्याय – ४–७ में किया गया है । इसलिए यहाँ उसकी विवेचना छोड दी है ।

राकेशजी के समग्र सृजन को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक मनीषी थे, साहित्य की तपस्या को उन्होंने वरा था तथा प्रकृति ने उनमें एक विविध आयामी व्यक्तित्त्व की रचना की थी। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार समाज को बहुत कम प्राप्त होते हैं। राकेशजी भी हिन्दी साहित्य को प्रकृति की अनमोल देन थी। जिन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, यात्रा-वृत्त, डायरी, अनुवाद और कविता आदि का प्रणयन किया। विभिन्न शैलियों के सर्जक राकेशजी के अन्य परिवेश निम्न प्रकार है।

१.२.४. निबंधकार :-

राकेशजी का व्यक्तित्त्व विविध आयामी था। यही कारण है कि साहित्य की अनेक विधाओं में उन्होंने अपना कुछ न कुछ योगदान दिया है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि रचनाकार किसी एक विधा विशेष में जितनी सफलता और कीर्ति प्राप्त करता है, उतनी दूसरी किसी विधा में उसे कदाचित ही मिलती है। किन्तु कुछ प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्त्व ऐसे होते हैं, जो जिस विधा में हाथ डालते हैं उसमें उन्हें सफलता ही मिलती है। ऐसे ही महान प्रतिभा संपन्न रचनाकारों में राकेशजी थे। नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में उन्हें आशातित सफलता प्राप्त हुई है। इसके साथ ही साथ राकेशजी एक सफल निबंधकार के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। इनके निबंधों पर दर्शन और तत्त्वज्ञान का बहुत गहरा प्रभाव दिखाई देता है। राकेशजी के निबंध खासकर नई कहानी और नाटक के दर्शन पक्ष को उदघाटित करने में विशेष रूप से सफल हुए हैं।

राकेशजी के समस्त सृजन पीठिका में उनका व्यक्तित्त्व प्रभावी बन गया है। गद्य की जिस विद्या की ओर वह उन्मुख हुए उसीमें उसने संपूर्ण जीवन के चित्रों को उकेर दिया है। आत्मप्रकाशन मनुष्य की प्रबल प्रवृत्ति है, वह नाटक, उपन्यास, कहानी के साथ-साथ निबंध में भी अभिव्यक्ति पाती है। निबंध में लेखक का व्यक्तित्त्व सर्वाधिक अहमियत रखता है। रचनाकार भले ही अपनी इच्छा से साहित्य में अपने व्यक्तित्त्व का प्रक्षेपण न करे; किन्तु वह अनजाने ही उसके सृजन में समावेश कर जाता है। राकेशजी के निबंध उनके व्यक्तित्त्व को स्पष्ट करते हैं। उनके निबंध किसी एक वर्ग तक सीमित न रहकर शैली व विषय विविधता के कारण अनेक वर्ग के हो गए हैं।

राकेशजी के लेख तथा निबंधों में 'परिवेश', 'रंगमंच और शब्द', 'बकलम खुद', 'साहित्यिक और सांस्कृतिक द्रष्टि', 'कुछ और अस्वीकार', 'नयी निगाहों के सवाल' और 'हाशिए पर' महत्त्वपूर्ण है। इन निबंधों में राकेशजी का समीक्षक रूप उभरकर सामने आया है। उनके कुछ निबंधों को पढ़कर ऐसा लगता है कि इन निबंधों पर उनके व्यक्तित्त्व का गहरा प्रभाव रहा है। विशेष रूप से उनका 'यात्रा का रोमांच' नामक निबंध पढ़ते समय पाठक तीव्रता से यह प्रतीत करता है कि इन निबंधों में कहीं न कहीं रचनाकार के स्वभाव और व्यक्तित्त्व की झलक मिलती है। उनके निबंधों के माध्यम से उनकी यायावरी वृत्ति का परिचय भी पाठकों को मिलता है। राकेशजी के निबंधों को पढने से उनके विषय में सर्व साधारण रूप से पाठकों की राय बनती है कि राकेशजी वातावरण और परिस्थितियों के दबाव से नये व्यक्तित्त्व के साथ अस्वाभाविक संबंधों के बीच जिना नहीं चाहते। इस संदर्भ में स्वयं उन्होंने एक स्थान पर कहा है – "व्यक्ति अपनी आंतरिक प्रवृत्ति के अधिक अनुकूल होकर जी सकता है या अधिक उन्मुक्त भाव से अपने को नये अनुभवों के बीच खुला छोड़ सकता है।"[२२] राकेशजी का यह कथन स्पष्ट करता है कि वे प्रवृत्ति के अनुकूल होकर जीना चाहते हैं, तो साथ ही साथ नये अनुभवों के बीच भी अपने आपको खुला छोड़कर जीना चाहते है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि राकेशजी ने अपने निबंधों में अनेक स्थानों पर खुलकर अपने विषय में कहा है। राकेशजी के उपर्युक्त निबंध संग्रह बहुत कुछ अर्थ में बिलकुल नये लगते हैं। नये लगने का कारण यह भी है, कि इन निबंधों में अनेक स्थानों पर आत्मकथात्मक शैली को अपनाया गया है। इस प्रकार के निबंध व्यक्तिपरक निबंधों के अंतर्गत आते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि उनके निबंध आत्मीय कथन है। अपने से बात करते हुए हम उन्हें कई बार पाते हैं। उन्होंने कहा भी है कि "हम अंदर से विभक्त है। हर बात दो तरह से सोचते हैं। दोनों तरह से उसे ठीक पाते हैं। दोनों तरह से स्वीकार करना चाहते हैं। नहीं कर पाते, यही अन्तर्द्वन्द्व है। अन्तर्द्वन्द्व ही नियती है। हमारी नहीं सबकी। कोई न माने तो वह झूठा है हम झुठे नहीं।"[२३]

राकेशजी ने विभिन्न शैलियों में निबंध लिखे है। उनके अधिकतर निबंध समीक्षात्मक, चिंतनपरक, आत्मपरक शैली के अंतर्गत आते है। उन्होंने अपने निबंध साहित्य में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया है। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि राकेशजी की निबंध शैली विषय की द्रष्टि से मौलिक तथा उत्कृष्ट है।

१.२.५. डायरी :-

राकेशजी की डायरी भी रचनात्मक साहित्य का एक अनन्य ढप है । "राकेश उन लोगों में से थे, जो बड़ी लगन व नियमितता से डायरी लिखते है । इन डायरियों की सब से बड़ी विशेषता है, जीवन और माहौल की छोटी से छोटी चीज से बड़ी से बड़ी चीज तक अत्यंत बेलाग और गहन प्रतिक्रियाएँ ।"[२४]

सच्चाई और ईमानदारी से लिखी यह डायरी दिनचर्या मात्र नहीं है । रचनात्मक अनुभूतियाँ और प्रेरणा का मूल स्रोत इस डायरी में देखा जा सकता है । राकेशजी की डायरी में बीच-बीच में कुछ ऐसे हिस्से मिलते हैं जिनमें वह डायरी के बारे में ही जिक्र करते है । राकेशजी ने स्वयं लिखा है कि मैं जिन्दगी भर डायरी लिखने की आदत नहीं डाल सका । राकेशजी ने कईबार कोशिश की बीच-बीच में छूटती गई; किन्तु उन्होंने पुनःलिखना शुरु कर दिया । वस्तुतः डायरी एक बहुत ही व्यक्तिगत चीज होती है यही आदमी का सच्चा स्वरूप है जिसमें वह बिना लाग-लपेट के अपना अन्दर-बाहर व्यक्त करता है । इसमें केवल उसीकी नहीं अपितु उसके साथ जूडें समस्त व्यक्तियों की सच्चाईयाँ भी व्यक्त होती हैं । एक लेखक अपनी साहित्य विद्याओं के माध्यम से स्वयं को व्यक्त तो कर लेता है किन्तु यह सीमित अभिव्यक्ति होती है । डायरी लिखकर वह स्वयं को हल्का महसूस करता है । राकेशजी जैसे भावुक रचनाकार के लिए डायरी लिखना अति-आवश्यक हो जाता है । उनकी डायरी में युवाकाल से लेकर अन्त तक के अनुभव हैं । उनके जीवन में जो भी पात्र आया उसको उन्होंने सीधे सच्चे शब्दों में व्यक्त किया है । "राकेश की जिन्दगी एक खुली किताब रही है । उसने जो कुछ लिखा और किया- वह दुनिया को मालूम है । लेकिन उसने जो कुछ जिया- वह सिर्फ उसे मालूम था ।"[२५]

प्रकृति का चित्रण और जीवन का माहोल, दार्शनिक अभिव्यंजना, जीवानुभूति आदि के समन्वय से राकेशजी की डायरी सामान्य डायरी न रहकर एक साहित्यिक कृति बन गई है ।

१.२.६. यात्रावृत्त :-

यात्रा वृत्तांत से सीधा तात्पर्य है यात्रा का विवरण । मनुष्य स्वभावतः यायावर होता है । इसी वृत्ति के कारण वह एक स्थान से दूसरें स्थान पर जाकर अपनी

आत्मतृष्टि करता है अपने अनेक उद्देश्यों को पूर्ण करता है । फिर वह उद्देश्य उसके जीविकोपार्जन संबंधी हो या अन्वेषण संबंधी । कलाकार की आत्मा तो निर्बन्ध है । एक यायावर कलाकार की आत्मा तो शाश्वत यात्री होती है । वह किसी सीमा में बंधती नहीं । उसके लिए न कोई विराम है न कोई प्रतिबंध । राकेशजी का यात्रा-संस्मरण जीवन के गहरे स्तर पर जुडा हुआ है । राकेशजी स्वयं धूमनेवाला व्यक्तित्त्व रखते थे – कभी यहाँ तो कभी वहाँ । उनकी स्वयं की डायरी में आए अनेक शहरों के नाम इसका प्रमाण है । राकेशजी ने यात्रा साहित्य पर भी अपनी कलम चलाई है । उनका गद्य साहित्य अपनी विविधता में अकेला है । संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, जीवनी आदि सभी पर राकेशजी की कलम चली हैं । यात्रा संबंधी उनकी कृति 'आखिरी चट्टान तक' में गोवा से कन्याकुमारी तक की यात्रा का वर्णन बड़ी भावुकता एवम् ईमानदारी से किया गया है । 'आखिरी चट्टान तक' महान् यात्रा वृत्त नहीं बल्कि जीवन का अन्वेषण है । इस कृति का प्रथम प्रकाशन सन् १९५३ के अंत में तथा द्वितीय संस्करण १९६८ में प्रकाशित हुआ था । इसमें दक्षिण-भारत के यात्रा-संस्मरण है । इस कृति में राकेशजी का व्यक्तित्त्व तो निरुपित है ही, साथ ही प्राकृतिक आभा और विभिन्न व्यक्तियों के साथ व्यतीत किए क्षणों का आलेखन भी है । इसमें अनेक व्यक्तियों की मनःस्थिति व चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन भी है ।

राकेशजी के इस यात्रा-वृत्तांत की विशेषता है कि इसको पठते समय पाठक कहीं भी ऊबता नहीं है । यह उदाहरण दृष्टव्य है "बैठते ही जिन कुछ लोगों पर नजर पड़ी, लगा कि वे उतने परिचित नहीं है । चेहरे के अलावा और सबकुछ पहचाना हुआ था । सुखे हाथ-पैर, उलझे बाल, चिथडे वस्त्र, खोई हुई आँखें और रोयें-रोयें से छलकती शिथिलता ।"[२६] इस यात्रा-वृत्तांत में राकेशजी ने अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्त्व का बड़ा ही सुंदर विश्लेषण किया है, जो उनकी इस यात्रा में जीवन पात्र बन गये थे । पंजाबी भाई, फर्नांडिस, नंदलाल कपूर, भीमसेन, अब्दुल जब्बार आदि व्यक्तियों का चरित्र बड़े सटीक और आत्मीय शैली में प्रस्तुत किया है । इन व्यक्तियों के साथ बिताये हुए क्षणों को राकेशजी भूलते नहीं । जिन-जिन स्थानों को राकेशजी ने इस यात्रा के समय देखा उन स्थानों को उन्होंने सदा के लिए अपनी रचना में अंकित कर अमर बना दिया । राकेशजी ने आकर्षक शैली में इस यात्रा-वृत्तांत का सृजन किया है । इस विषय में कहा भी गया है, "इसकी शैली न केवल सरस और रोचक है अपितु हृदय पर अमिट छाप छोड़नेवाली है । वह जीवंत और प्राणवान है । उसमें एक ओर तो रेखाचित्र का गुण है तो दूसरी ओर उसकी चित्रात्मकता और काव्यात्मकता अदभूत है ।"[२७] इसमें संदेह नहीं

कि शैली पर राकेशजी का अभूतपूर्व अधिकार है। इस यात्रा-वृत्तांत में उन्होंने प्रमुख रूप से भावात्मक शैली का प्रयोग किया है। एक के बाद एक लगातार कई चित्र वे अंकित करते जाते हैं और प्रत्येक चित्र सहज शैली में सजकर अधिक आकर्षक और प्राणवान हो उठता है। उन्होंने इस रचना में प्रसाद शैली , तरंग शैली, चित्रात्मक शैली और संवाद शैली का प्रयोग किया है। वस्तुतः इस रचना में जिज्ञासा तत्त्व की प्रधानता है। परिणामतः यह रचना ज्ञान से परिपूर्ण हो गई है। वस्तुतः यथार्थ और कल्पना के मोहक वातावरण में इस कृति की सृजना हुई है।

राकेशजी के यात्रावृत्तों का वर्णन मैंने इस शोध प्रबंध के अध्याय - ७ में विस्तार से किया है। इसलिए यहाँ पर उसका विस्तार छोड दिया है।

१.२.७. अनुवाद :-

राकेशजी के द्वारा अनूदित तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं - 'मृच्छकटिक', 'शाकुन्तल' और 'एक औरत का चेहरा'। संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठित नाटककार शूद्रक का बहुचर्चित नाटक 'मृच्छकटिक' का हिन्दी अनुवाद राकेशजी ने प्रस्तुत किया है। संस्कृत की समृध्ध नाट्य परंपरा से गहरे परिचय के कारण उनकी नाट्य-कृतियाँ अधिक सफल है। कालिदास की विश्व-प्रसिध्ध कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' और शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' का सरल अनुवाद कर राकेशजी ने सामान्य पाठकों के लिए उसे सुलभ बनाया है। सन् १९६१ ई. में 'मृच्छकटिकम्' का अनुवाद हुआ, जिसके पीछे पूर्ववर्ती अनुवादों के प्रति असन्तोष का भाव छिपा था। सन् १९६५ ई. में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद प्रस्तुत किया गया।

अनुवाद के सम्बन्ध में राकेशजी की धारणा और उनके विचार तथा अनुवाद के प्रति उनकी गंभीरता का परिचय 'शाकुन्तल'की भूमिका से मिलता है। " 'मृच्छकटिकम्' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अनुवादों में शूद्रक और कालिदास के साथ कहाँ तक न्याय हुआ है यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु मेरा प्रयत्न अवश्य रहा है कि जहाँ तक बन पडे मूल के भाव और अर्थ दोनों की अनुवाद में रक्षा की जाय, साथ ही यह भी कि अनुवादक की ओर से अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग कम हो और किसी भी तरह का अतिरिक्त आशय उसमें न आने पाए। फिर भी कुछ स्थल ऐसे हैं, जहाँ नाटकीय अन्विति के निर्वाह के लिए या श्लोकों के अनुवाद का मुक्तक लाभ बनाये रखने के लिए थोडी-बहुत स्वतन्त्रता मुझे लेनी पडी है। उसके लिए बहुत अधिकार मैंने

अपने को नहीं दिया, पर मूल का अनुसरण करने के लिए लय और अन्विति की उपेक्षा कर जाने से अनुवाद का उद्देश्य ही शायद पूरा न हो पाता । अनुवाद में बहुत-सी सीमाएँ अनुवादक की हो सकती हैं पर कुछ सीमाएँ ऐसी भी हैं जो इस तरह के प्रयत्न में स्वतः अन्तर्हित रहती हैं । फिर मूल रचना से आज का सदियों का अन्तर-भाषा, शिल्प, भाव-योजना तथा परिकल्पना का - अपने में ही एक सीमा है ।"[२८] राकेशजी के ये अनुवाद काव्य-चेतना और रंग-दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

अंग्रेजी के सुप्रसिध्ध उपन्यासकार हेनरी जेम्स की श्रेष्ठतम कृतियों में से एक है - 'दि पोट्रेट ओफ ए लेडी । इस उपन्यास का राकेशजी ने अनुवाद किया और नाम दिया "एक औरत का चेहरा" । हेनरी जेम्स के उपन्यास सम्बन्धी कठिनाई से राकेशजी भलीभार्तिं परिचित थे और उनके सामने प्रमुख दो चुनौतियाँ थीं - अंग्रेजी महावरे और अनुवाद को अनुवाद की कृत्रिमता से बचाते हुए अपनी भाषा की सहज अन्विति में अर्थ सम्प्रेषण की । एक वर्ष के परिश्रम के उपरान्त राकेशजी ने इस उपन्यास को हिन्दी में अनूदित किया । विश्व की एक श्रेष्ठ कृति का अनुवाद राकेशजी की ही नहीं, हिन्दी साहित्य की उपलब्धि है ।

१.२.८. जीवनी :-

राकेशजी ने जीवनी साहित्य को लेकर भी अपनी कलम चलाई है । 'समय सारथी' नामक उनकी रचना जीवनी साहित्य में ही स्थान रखती है । राकेशजी ने 'समय सारथी' में क्रान्तिकारी विचारकों और आधुनिक विचारकों के जीवन-चरित्र को रेखांकित किया है । क्रान्तिकारी विचारक हर युग में रचनात्मक व्यवस्था की नींव रखते हैं, उनके चिन्तन में एक तारतम्य होता है - यह बात 'समय सारथी' में स्पष्ट है । गौतम बुद्ध, सुकरात, अशोक, जोन ओफ अर्क, कबीर, मीरा, दयानंद स्वामी, भगतसिंह, वालटेयर, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नहेरु और मार्टिन ल्यूथर देशकाल से परे मानव जाति को दिशा देने वाले 'समय सारथी' है । महापुरुषों की जीवनी और वर्तमान के संदर्भ में उनकी उपयोगिता का एक महत्त्वपूर्ण निर्देश 'समय सारथी' में है ।

इन महापुरुषों में कवि, विचारक, कलाकार, क्रान्तिकारी, तत्त्वज्ञानी और महान राजनेता है । राकेशजी ने महापुरुषों की प्रमुख घटनाओं को लेकर उनके विचारों और सिद्धांतों को भी स्पष्ट किया है । एक जीवनीकार की द्रष्टि से राकेशजी का मौलिक चिंतन इसमें व्यक्त हुआ है । गौतम बुद्ध और सुकरात की जीवनियों में शांति, करुणा,

मानवता आदि के महत्त्व को स्पष्ट किया गया है तो कबीर और मीरा की जीवनी में विद्रोह और क्रांति की भावना किस प्रकार से भाव और विचारों की एकता को लेकर चली है यह स्पष्ट किया गया है। स्वामी दयानंद सरस्वती के संदेशों को जन–जन तक पहुँचाने का काम राकेशजी ने किया है। साथ ही साथ वाल्टेयर, गांधी, नहेरु और मार्टिन ल्यूथर किंग जैसे व्यक्तियों की जीवनियों में समकालीन परिस्थितियाँ और परिवेश को यथार्थ रूप में अंकित किया गया है। राकेशजी ने बोलचाल की भाषा का प्रयोग जैसे अपनी कहानियों और नाटकों में किया है वैसे ही यहाँ पर भी उन्होंने बोलचाल की सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। राकेशजी द्वारा लिखी गई यह रचना कहीं वर्णनात्मक शैली को लेकर चली है तो कहीं भावुकतापूर्ण शैली को। इस रचना में अनेक स्तरों पर प्रसंगों और घटनाओं को नये ढंग से व्याख्यायित किया गया है। राकेशजी के इस जीवनी परक ग्रंथ का उद्देश्य महापुरुषों के जीवन की घटनाओं का मात्र क्रम या उल्लेख करना नहीं है, बल्कि राकेशजी ने महापुरुषों के महान संदेश और उनके मानवता से जुड़े हुए रूप को विस्तार से विश्लेषित करने का प्रयास किया है। निःसंदेह हिन्दी के जीवनी परक इस रचना का अपना महत्त्व और स्थान है।

१.३ निष्कर्ष :–

इन सभी पहलूओं को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं, कि राकेशजी का व्यक्तित्त्व एवम् जीवन वाङ्मयी रहा होगा। राकेशजी ने साहित्य जगत में अपना एक नया मुकाम तय किया है साथ ही साथ जीवन में आई सभी मुसिबतों एवम् कष्टों को सहकर उनसे डटकर सामना किया। राकेशजी के जीवन में इतने संघर्ष थे कि वे सीधे, सपाट व्यक्तित्त्व के नहीं रह सकते थे। उनका जीवन संघर्ष से ही शुरु हुआ है और संघर्ष में ही समाप्त हुआ। बाहर से अव्यवस्थित और आवेश से परिपूर्ण दिखाई देनेवाला उनका व्यक्तित्त्व उनके लेखन में बड़ा ही व्यवस्थित और संवेदनशील था। स्वाभिमान, जिंदादिली और दोस्तों के नाम सबकुछ लुटा देने की उनकी प्रवृत्ति ने उनके व्यक्तित्त्व को एक अलग ही रूप दिया है। बाहर से हँसी के ठहाके लगानेवाला यह रचनाकार अपने भीतरी संसार में वेदना लेकर जीता है। अपनी आंतरिक पीड़ा और व्यथा को वे खामोश होकर भोगते रहे। यह ठीक ही कहा गया है कि "मेरी द्रष्टि में राकेश का असली व्यक्तित्त्व वह नहीं था जो बाहर से आभासित होता था, वरन् वह था जो नहीं दिखाई दिया। जो उन्होंने कहा उसकी अपेक्षा जो नहीं कहा वही राकेश का असली कथ्य था।"[२९] मैं समझता हूँ कि राकेशजी अपने साहित्य, अपनी मान्यताओं

और प्रस्तुतियों के माध्यम से अपने व्यक्तित्त्व को भी विश्लेषित कर गये हैं। फिर भी कई बातें ऐसी भी है, जो अभी नहीं कही जा सकी है – यहाँ तक की अनीता की कलम से भी वह अलिखित ही रह गई है।

राकेशजी के कृतित्त्व को देखकर हम कह सकते है, कि राकेशजी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार थे। उन्होंने गद्य की विविध विधाओं को लेकर उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया है। गद्य की विधाओं में उन्होंने कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, समीक्षा, रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, जीवनी, यात्रा–वृतांत आदि बहुत कुछ लिखा, जिसमें एक सफल और श्रेष्ठ गद्यकार का सहज, स्वाभाविक और मोहक रूप दिखाई देता है। जिस किसी विधा को लेकर उन्होंने लिखा उसमें उनके भीतर बैठा हुआ एक सर्जक कलाकार और भावुक रचनाकार ही व्यक्त हुआ है। अपनी शैली के वे स्वयं निर्माता है। उन्होंने जो भी लिखा उसमें एक भावुक रचनाकार के सहज, स्वाभाविक और अप्रतिम व्यक्तित्त्व की ही अभिव्यक्ति हुई है। अनुभूति की गहरी पकड़ राकेशजी में थी। अनुभूत सत्य और भोगे हुए यथार्थ को उन्होंने अपनी हर रचना में बड़ी ईमानदारी के साथ व्यक्त किया है। अपनी रचनाओं के माध्यम से राकेशजी ने आडंबर, कृत्रिमता, सस्ती भावुकता और व्यंग्यवृत्ति को निष्कासित कर अपने पाठकों के साथ अपना आत्मीय संबंध स्थापित किया। वास्तव में उनकी रुचि रचनाओं में वर्तमान जीवन की आधुनिकता, अनुभूति का सत्य और अभिव्यक्ति की जीवंतता व्यक्त हुई है। यही कारण है कि उनका समस्त साहित्य उनकी अभूतपूर्व प्रतिभा और सृजन शक्ति का प्रमाण है।

संदर्भ सूची

१.	मोहन राकेश के नाटक	डॉ.द्विजराम यादव	२९
२.	मोहन राकेश के नाटक	डॉ.द्विजराम यादव	३०
३.	मोहन राकेश के नाटक	डॉ.द्विजराम यादव	३४
४.	मोहन राकेश के नाटक	डॉ.द्विजराम यादव	३०
५.	सारिका	मार्च १९७३	६१
६.	मेरी प्रिय कहानियाँ	मोहन राकेश –भूमिका	९
७.	मोहन राकेश के नाटक	डॉ. द्विजराम यादव	३१
८.	मोहन राकेश के नाटक	डॉ. द्विजराम यादव	३३
९.	मेरी प्रिय कहानियां	मोहन राकेश –भूमिका	७–८
१०.	मेरी प्रिय कहानियां	मोहन राकेश–भूमिका	८
११.	सारिका –मोहन राकेश स्मृति अंक	मार्च–१९७३	
१२.	नाटककार मोहन राकेश	सुन्दरलाल कथूरिया	३१
१३.	मोहन राकेश के नाटक	डो.द्विजराम यादव	३६
१४.	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	२०४
१५.	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	२०५
१६.	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	११
१७.	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	१२
१८.	नए बादल की भूमिका	मोहन राकेश	२३
१९.	सारिका – मार्च १९७३ में प्रकाशित लेख	डॉ. धनंजय वर्मा	८२
२०.	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	०६
२१.	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	०९
२२.	सातवें दशक की कहानी में मानवीय संबंध	चंद्रकान्ता बंसल	८१
२३.	परिवेश	मोहन राकेश	८६
२४.	सारिका–१९७३		८६
२५.	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	११
२६.	आखिरी चट्टान तक	मोहन राकेश	१९
२७.	मोहन राकेश का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल	४२२
२८.	शाकुन्तल की भूमिका	मोहन राकेश	०७
२९.	मोहन राकेश : व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	५९

अध्याय :– २
मोहन राकेश का कहानी साहित्य

२.१	कहानी की परिभाषा	३४
२.१.१.	भारतीय विद्वानों के अनुसार कहानी की परिभाषाएँ :	३५
२.१.२.	पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार कहानी की परिभाषाएँ	३५
२.अ	कहानियों का शिल्प विधान	३७
२.ब	कहानियों में संवेदना	५४
	संदर्भ सूची	६६

'कहानी' कहने और सुनने की बात बहुत प्राचीन है। अर्थात् कहानी संभवतः उतनी ही पुरानी है जितनी मनुष्य की जन्मकथा। वैसे तो मनुष्येत्तर प्राणियों के बीच भी कहानी बनती होगी लेकिन वह कहीं सुनी नहीं जाती होगी। वाणी का वरदान, बुद्धि और कलात्मकता मात्र मनुष्य के हिस्से में ही आई है। इसलिए कहानी के जन्म और विकास को मनुष्य के जन्म और उसकी बुद्धि के विकास के साथ जोड़कर देखना होगा, तभी कहानी के स्वरूप, विकास और उसकी विकास यात्रा को समझने में सहायता मिल सकती है।

जैसे कि कोई व्यक्ति अपनी बनी हुई बात दूसरे के आगे शब्दों के द्वारा व्यक्त करता है, वह कहानी का रूप धारण कर लेता है। वैसे भी व्यक्ति में जितना दूसरों को अपने अनुभव सुनाने का शौक होता है उससे अधिक दूसरे के विषय में सुनने की रुचि अधिक होती है। इस शौक और रुचि जिज्ञासा द्वारा कहानी का प्रारंभिक स्वरूप उभरा होगा। संक्षेप में यह कि प्रारंभिक कहानियों में घटना की बहुलता मूल बिन्दु होती थी और उसके साथ चलती हुई जिज्ञासा घटनाओं में मनोरंजन की सामग्री भी होती थी और इस प्रकार कथा में मूल बिन्दु बनते थे घटना जिज्ञासा और मनोरंजन।

२.१ कहानी की परिभाषा :

कहानी–साहित्य कला और स्वरूप की दृष्टि से इतना अधिक विकसित हो चूका है कि इसे निश्चित एवम् सीमित परिभाषा में बाँधना कठिन है। यह अवश्य आश्चर्य का विषय हो सकता है कि बड़े–बड़े मनीषियों की प्रतिभा कहानी के छोटे से रूप और आकार अथवा उसकी आत्मा को निश्चित शब्दों में क्यों न बाँध सकी ? विद्वान वर्ग की यह असमर्थता कहानी के प्रति और भी अधिक ध्यान आकर्षित करने का कारण बन गई है। विद्वानों ने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से कहानी को परिभाषित करने का यथा समय प्रयास भी किया है।

'अग्निपुराण' में कहा गया है कि "कथायिका वह विधा है जिसकी घटना रोमांचकारी अथवा आनंदोत्पादक होती है। इसका मूल संवेदनात्मक तथा विस्मयपूर्ण होता है। इसकी पदावली सौम्य अर्थ सुव्यवस्थित होती है।"

२.१.१. भारतीय विद्वानों के अनुसार कहानी की परिभाषाएँ :

डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के अनुसार "कहानी नयी रचना का कथा सम्पृक्त वह स्वरूप है जिसमें सामान्यतः लघु विस्तार के साथ किसी एक ही विषय अथवा तथ्य का उत्कट संवेदना इस प्रकार किया गया है कि वह अपने में संपूर्ण हो और उसके विभिन्न तत्त्व अंकोन्मुख होकर प्रभावान्विति में पूर्ण योग देते हों।"[१]

मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार " कहानी एक ऐसा उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल और बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही गमले का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"[२]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "सादे ढंग से केवल कुछ अत्यंत व्यंजक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर प्रगति से किसी एक गंभीर, संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होनेवाली गद्य विधा कहानी है।"[३]

बाबू गुलाबराय के अनुसार " छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करनेवाली व्यक्ति केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक उत्थान, पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालनेवाला कौतूहलपूर्ण वर्णन है।"[४]

२.१.२. पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार कहानी की परिभाषाएँ :

अमरिका के प्रसिद्ध कहानीकार एडगर एलन पो के अनुसार "कहानी की इतनी संक्षिप्त कथा होनी चाहिए कि उसे एक बैठक में पढ़ा जा सके। पाठक पर उसे एक ही प्रभाव डालना चाहिए और जो कुछ स्वयं में संपूर्ण प्रभाव की प्रगति में सहायक नहीं हो उसे स्वयं अलग कर देना चाहिए अर्थात् कहानी वह गद्य कथा है जिसके पढ़ने में आधे घंटे से लगाकर एक घंटा तक लग सकता है ।"[५]

मिस्टर फोस्टर के अनुसार "कहानी परस्पर संबद्ध घटनाओं का वह क्रम है जो किसी परिणाम पर पहुँचता है।"[६]

स्टोवन्सन के अनुसार " कहानी जीवनभर की प्रतिनिधि नहीं वरन् कुछ दिशाओं का ही वर्णन है।"[७]

कहानी का जीवन निःसंदेह युगीन जीवन से होता है । जिसमें मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है । समय के परिवर्तन के साथ साथ कहानी के ढप में अन्तर आना स्वाभाविक है, वह अन्तर ढप के स्तर पर ही नहीं किन्तु कथ्य और संवेदना के स्तर पर भी होता हैं । प्रत्येक देश के प्राचीन साहित्य में कहानी कला में धीरे–धीरे किन्तु निश्चित ढप से विकास हुआ है ।

कथा साहित्य की मुक्तक विधा कहानी सृष्टि के उदगम् काल से अपना संबंध रखती है । यदि यह कहा जाय कि यह मनुष्य की मनोवृति है, तो भी कोई अतिशयोक्ति नही हैं । सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य इस मनोवृति से प्रेरित होकर इसे लिपिबद्ध करता रहा और यह आज मनुष्य के जीवन का एक प्रमुख अंग बन गई है । कहना और सुनना इसमें जीवन की अनेक समस्याएँ चित्रित करती हैं और अपना समाधान खोजती हैं । 'पंचतंत्र की कहानियां' इसका दृष्टांत है । कहानी साहित्य मानव मन के अंतरंग पहलुओं से अपने आपको जोड़ने में सफल हुआ । आज वही कहानीकार अधिक सशक्त और सफल माना जाता है जो मनुष्य की इन दमितताओं का चित्रण करके उसे आत्मसंतोष प्रदान करता हैं । ऐसे में राकेशजी उन कहानीकारों में आते हैं, जो स्वातंत्र्योत्तर पीढी में अपना अस्तित्व कहानी की पिठिका पर जमाए हुए हैं ।

राकेशजी कहानी के क्षेत्र में एक मौलिक विचारक रहे है। कथ्य और शिल्प के धरातल पर उन्होंने वैविध्य ढप से नई संरचना की है । उनके पास यथार्थ को पकडने की द्रष्टि, जीवन का गहरा बोध और अनुभव विद्यमान है । सत्य को सम्प्रेसित करने की शक्ति राकेशजी का जन्मजात गुण रहा । उन्होंने भारतीय जीवन के वास्तविक ढप को प्रस्तुत किया है । कहानी के क्षेत्र में राकेशजी एक विशिष्ट व्यक्ति रहे हैं आपने इसे एक नया मोड़ प्रदान किया है । राकेशजी ने कहानी के संबंध में अपने कई निष्कर्ष स्थापित किए और उन्हीं के आधार पर अपनी प्रायः सभी कहानियों की रचना की । वे कहानी को प्राणशक्ति प्रकट करने का सशक्त माध्यम मानते थे । उन्होंने कहा था, कि "निरन्तर बुलबुलों और संघर्ष करते सामाजिक पार्श्व का एक व्यापक भाग अछूता रहा है जिसकी पहचान और पकड हमारे लेखकीय दायित्व का महत्त्वपूर्ण अंग है ।"[८]

राकेशजी कहानी में समूचेपन और सच्चाई के प्रतिष्ठापक थे । परिवेश के प्रति सजगता और सतर्कता उनका मौलिक गुण है । चरित्रों को भी वे कहानी में उतना ही महत्व प्रदान करते थे । प्रेमचन्द की तरह उनका लक्ष्य भी मनुष्य पर केन्द्रित था । उनकी कहानियों में निरन्तर विकसित और परिवर्तित होते हुए भारतीय जीवन की झलक

है जिसे उन्होंने अत्यंत ही सादगी से व्यक्त किया। रचनात्मक जीवंतता और वैचारिक सक्रियता उनमें बराबर जीवन पर्यन्त बनी रही। उन्होंने अपनी कहानियों में जगत के सतरंगी आकार प्रस्तुत किए है। वे एक सचेतन कहानीकार थे। उन्होंने दिल की हर धडकन को सुनकर साँचे में ढालने का काम किया। राकेशजी ने पीडित व्यक्ति की कराह को सुना, विसंगतियों, तनाव और अंतर्द्वद्व के बीच तनाव युक्त स्त्री–पुरुषों के रुपों को बारीकी से परखा। आधुनिक युग के टूटते और विशृंखलित होते हुए मानवीय रिश्तों आदि को उन्होंने अपनी कहानियों में अत्यंत ही संवेदनात्मक रुपों में अंकित किया हैं। उनकी सम्पूर्ण कहानी यात्रा मानव से मानव के हृदय तक चली।

२–अ कहानियों का शिल्प – विधान

राकेशजी एक सजग शिल्पी थे। उन्होंने कई विधाओं में अपनी रचना–शक्ति को आजमाया है। राकेशजी का सारा ध्यान रचना के 'आंतरिक शिल्प' की खोज पर केन्द्रित है, इसलिए शिल्प को एकदम तोड़ा नहीं है, हाँ बदला जरूर है, लेकिन बदलने की ईच्छा से नहीं, रचना की अनिवार्यता से। किसी भी कृति का शिल्प वस्तुतः रचनाकार के आभ्यन्तर अनुभवों से रूपायित होता है। राकेशजी ने 'बकलम खुद' में शिल्प के लिए 'रोयें–रेशे' शब्द का प्रयोग किया है। बादल के रोयें–रेशे होते हैं – वे ही उसे बनाते हैं, अनुभूति के भी रोयें–रेशे होते हैं। ये रोयें–रेशे ही रचनाकार की अनुभूति और कृति को संवारते हैं। अतः इस अध्याय में राकेशजी की कहानियों के शिल्प पर विचार किया गया है।

प्रारंभिक रूप में राकेशजी की शैली प्रगतिशील रही उस पर प्रेमचंद परंपरा का प्रभाव रहा जिसमें व्यंग्य, धर्माडम्बर व संस्कारिता के प्रति विद्रोह है। द्वितीय स्तर पर इसी विद्रोह ने जीवन के विविध संदर्भो का यथार्थ रूप ले लिया है जिसे राकेशजी ने अंकित किया है। यहाँ राकेशजी ने सामाजिक परिवेश को चिन्तन व अनुभव के द्वारा वाणी दी है। तीसरे सोपान पर मध्यवर्ग की विवशता, पीड़ा, यंत्रणा को झेलते व्यक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। यहाँ सांकेतिक शैली में वैयक्तिकता एवम् सामाजिकता का स्वर प्रतिबिम्बित हुआ है। आगे चलकर यही सांकेतिकता सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों पर अवतरित होती है। महानगरीय बोध और भयावहता को लेखक ने अपने शिल्प में बांध लिया है। राकेशजी ने अपनी कहानी–यात्रा में पूर्णतः समर्पित होकर यथार्थ के धरातल तथा समय की सत्यता को पकड़ने की सफल कोशिश की है। राकेशजी के कहानी संग्रहों से उनकी सृजनशीलता का परिचय प्राप्त होता है। वे ऐसे कहानीकार रहे हैं जिनके कहानी लेखन

को सभी ने स्वीकार किया है । विभिन्न कहानीकार विद्वानों ने उनकी समस्त कहानियों का वर्गीकरण कर कतिपय निष्कर्ष व उपलब्धियों पर पहुंचने का प्रयास भी किया है । राजेन्द्र यादव ने वर्गीकरण द्वारा उनकी कहानियों की विवेचना की है – "(१) गुजरते साये (२) प्रणय और परिणय (३) टूटा हुआ पुरुष (४) बिखरी हुई नारी ।"[९]

प्रथम वर्ग में वर्तमान पीढ़ी की परंपरागत संबंधों के प्रति परिवर्तित जीवन द्रष्टि संबंधी कहानियाँ हैं । अपने बड़ों के प्रति उपहास व अवहेलना की भावना दिखाई देती है । राकेशजी की 'आर्द्रा' कहानी में यह स्पष्ट है । 'अपरिचित','फौलाद का आकाश' जैसी कहानियाँ दूसरे वर्ग में आती हैं जिनमें स्त्री पुरुष के बदलते स्वरों की अभिव्यंजना है । एक – दूसरे के प्रति उत्पन्न आकर्षण पुनः मनःस्थिति के परिवर्तन के साथ विरक्ति के धरातल पर आ जाता है । जीवन की भाग–दौड़ में उलझा हुआ व्यक्ति, बिखरती, टूटती हुई परिस्थिति के साथ जुझता रहता है । नियति के प्रति समर्पित पुरुष की कहानियाँ, 'एक और जिन्दगी', 'पाँचवे माले का फ्लेट', 'जख्म', टूटे हुए पुरुष वर्ग की कहानियाँ है । नारी के प्रति राकेशजी की गहरी सहानुभूति है । बदलते हुए पारिवारिक व सामाजिक परिवेश में नारी के प्रति बदलते मूल्यों को राकेशजी ने रेखांकित किया है । संपर्कों के लिए संपर्कों से कटी हुई नारी के अन्तर्मन का उद्‌धाटन नई कहानी की विशिष्टता है । नारी मन में निहित आकांक्षा का स्वरूप और उसके विभिन्न संदर्भ संवेदनात्मक द्रष्टि से 'बिखरी हुई नारी' वर्ग में प्रस्तुत किए गए हैं । 'मिस पाल', 'सुहागिनें', 'जानवर और जानवर' कहानियों में बिखरी हुई नारी के जीवन संदर्भों को विश्लेषित किया गया है । राजेन्द्र यादव का यह कहानी व वर्गीकरण राकेशजी की कहानियों के अध्ययन के लिए सहायक अवश्य है । किन्तु राकेशजी की बहुत सी कहानियां छूट गई हैं जो उपरोक्त वर्गों में नहीं आ पाई हैं । डॉ. सुरेश सिन्हा ने भी इन कहानियों को चार वर्गों में रखा है । (१) आदर्शवादी कहानियों में 'मलबे का मालिक', 'मंदी', 'जंगला' कहानियाँ जो समष्टिगत चिन्तन को लेकर लिखी गई हैं । (२) जिंदगी के कटु यथार्थ संबंधित 'नये बादल', 'उसकी रोटी', 'परमात्मा का कुत्ता' को परिगणित किया है । (३) जटिल और पेचीदा कहानियों में – 'मिस पाल', 'जानवर और जानवर', 'ग्लास टैंक', 'फौलाद का आकाश' कहानियों का समावेश किया है । (४) यौन संदर्भों की कहानियों में सेक्स का स्वर प्रधान है । 'गुनाह बेलज्जत', 'आखिरी सामान', 'वासना की छाया में', 'सेफ्टी पिन' इत्यादि इस वर्ग की कहानियाँ है । "अपनी अनुभूतियों को लेकर जो कहानियाँ राकेशजी ने लिखी हैं वे अधिक महत्त्वपूर्ण बन गई हैं । इनमें 'सुहागिनें' और 'एक और जिन्दगी' उल्लेखनीय कहानियाँ हैं ।"[१०]

"डॉ. सुरेश सिन्हा का यह वर्गीकरण उचित नही होता कारण यह है कि डॉ. सिन्हा ने जो वर्ग निर्धारित किये हैं वे सभी कहानीकारों के उपर लागू किये जा सकते हैं। साथ ही इन वर्गों में रखी गई कहानियों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें किसी दूसरे वर्ग में भी आसानी से रखा जा सकता है।"" डॉ. सुषमा अग्रवाल ने इनकी कहानियों को अध्ययन सुविधा हेतु तथा इनमें निरूपित मूल संवेदना के औचित्यपूर्ण अभिव्यंजन हेतु सात वर्गो में वर्गीकृत किया है। (१) सामाजिक जीवन के यथार्थ की प्रतिबोधक कहानियाँ (२) सूक्ष्म मानव संबंधों पर आधारित कहानियाँ (३) स्त्री–पुरुष की टूटन और अकेलेपन के बोध की कहानियाँ (४) महानगरीय संत्रास और भयावहता से संबद्ध कहानियाँ (५) विभाजन और पारिवारिक विघटन की कहानियाँ (६) मनोवैज्ञानिक संदर्भो में लिखी गई कहानियाँ (७) प्रयोग की भूमिका पर लिखी गई शैल्पिक रचाव की कहानियाँ।

राकेशजी के प्रारंभिक लेखन में कहानियाँ प्रेमचंद परंपरा को समकालीनता से जोड़कर लिखी हुई हैं। इनकी कहानियों का प्रतिबिम्ब एकपक्षीय न होकर क्रियात्मक है। वह एक ओर सामाजिक संदर्भो के समकालीन परिवेश से जुड़ा है तो दूसरी ओर पारिवारिक विघटन, महानगरीय संत्रास व देश के विभाजन की समस्याओं से जुड़ा है। राकेशजी का कहानी लेखन यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है। शुद्ध यथार्थ को अभिव्यंजित करनेवाली मन्दी, मलबे का मालिक, उसकी रोटी, नए बादल, फटा हुआ जुता, हक हलाल, परमात्मा का कुत्ता और जानवर और जानवर आदि कहानियाँ है। 'मंदी' कहानी में सीजन समाप्त होने के बाद उत्पन्न हुई पहाड़ों की आर्थिक विषमता और विपन्नता को मध्यम वर्गीय समाज से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। 'मलबे का मालिक' भारत पाकिस्तान विभाजन से उत्पन्न मानव मूल्यों को निरूपित करने वाली कहानी है इसमें उत्पन्न परिद्रश्य यथार्थ से प्रेरित है। इसके पात्र समकालीन जीवन के दबाव के साथ–साथ त्रासद वैयक्तिक दबाव भी झेल रहे हैं। 'उसकी रोटी' कहानी में यथार्थ की कड़वाहट के साथ साथ संस्कारों की शुद्ध आस्था, सांस्कृतिक गरिमा की अपने से जुड़े रहने की भावना है। 'नए बादल' कहानी भी यथार्थ से जुड़ी है। इस कहानी में सार्वजनिक स्थानों पर चलने वाले अनैतिक और भ्रष्टाचारपूर्ण कार्यो पर प्रकाश डाला गया है। धर्मशाला का चौकीदार पैसे लेकर अन्य व्यक्तियों को कमरें दे देता है जबकि पहले आए व्यक्तियों को वह मना कर देता है। कहानी नायक नवयुवक व नवयुवती को लेकर संबंध कायम करने में लगा रहता है कभी भाई–बहन समझता है, कभी पति–पत्नी के संबंध तलाशता है। इस कहानी का यथार्थ एक ओर सामाजिकता

से जुड़ा है तथा दूसरी ओर स्त्री – पुरुष के साथ रहने से उत्पन्न समस्या को परम्परावादिता के माध्यम से उजागर करता है। 'परमात्मा का कुत्ता' में राकेशजी ने अत्याचार, शोषण आदि अमानुषिक कृत्यों एवम् तत्त्वों के प्रति झुंझलाहट व्यक्त की है। सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, रिश्वतखोरी, निष्क्रियता आदि का व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण किया है। वस्तुतः राकेशजी की कहानियों में झिंझोड़ देनेवाले, तिलमिला देनेवाले व्यंग्य हैं। यथार्थ निरूपण में राकेशजी भावुकता विवेचन में कहीं भी द्रवित नहीं होते। 'जानवर और जानवर' कहानी में यथार्थ का स्वर तीखा व कड़वा हो गया है। आर्थिक अभावों से उत्पन्न पीड़ा गहरे यथार्थ का बोध कराती है। इस कहानी के पात्र समस्त यातना और विडम्बनाओं को सहते हुए भी जीवन के प्रति लालायित हैं कहानी के पात्र पाल के स्वर में जीवन का स्पंदन सुना जा सकता है। फादर फिश का चरित्र काली करतूतों से भरा है, अनीता और मणि नानावती को वासनापूर्ति का माध्यम बनाया गया, अपनी अधिकारों की शक्ति का पादरी जिस तरह अनाचार आदि में दुरुपयोग करता है उससे कहानी का परिवेश व वातावरण यथार्थमय हो जाता है। इस यथार्थ को विश्वसनीय बनाने हेतु व्यंग्य का सहारा लिया गया है। 'हक हलाल' में निम्नवर्गीय तथा पैसे के समक्ष अनेक अत्याचारों को सहन करती नारी की यथार्थ स्थिति का अंकन हुआ है। कहानी का पात्र पण्डित, अपनी पण्डिताइन के भाग जाने पर उसके बदले में अपनी छोटी साली को ले आता है। पण्डिताइन के वापस लौट आने पर भी वह अपनी साली को जाने नहीं देता व वासना मूलक अत्याचारों पर परदा डालने का प्रयत्न करता रहता है। नारी की असहायता पर पुरुष की अत्याचार की कहानी पुरानी है किन्तु राकेशजी ने उसे नए स्तर से उठाकर यथार्थवादी बना दिया है। इसका यथार्थ पण्डित के यथार्थ से जुड़कर भी परिवेश से कटा हुआ नहीं है।

सूक्ष्म मानव संबंधों पर लिखी गई कहानियाँ राकेशजी के दूसरे वर्ग में आती हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय परिवेश में तथा जनमानस में एक क्रान्ति सी आ गई है। नए नए जीवन मूल्यों की स्थापना हुई है। मनुष्य समाज से कट गया है। अकेलापन, ऊब, उदासी के कारण अनेक अन्तर्विरोधों ने उसमें जन्म लिया। महानगरीय भीड़ में वह लूट गया है। पिता – पुत्र – पति – पत्नी – आदि संबंधों में आक्रोश व तनाव उत्पन्न हुआ। आज पति–पत्नी कैसा धरातल चाहते हैं यह निश्चय नहीं कर पाए हैं। 'एक ओर जिन्दगी' कहानी में नारी पुरुष के वैवाहिक जीवन के संघर्ष से जूझते दंपति की कहानी है। जिसमें प्रकाश अपनी पूर्व पत्नी बीना को तलाक देकर दूसरी शादी कर लेता है। उसकी पत्नी बीना पुत्र को ले जाती है। इधर दूसरी पत्नी निर्मला अर्ध

विक्षिप्ता है। प्रकाश पहाड़ पर घूमने जाता है वह निर्मला के व्यवहार से टूट चूका है। वहाँ पूर्व पत्नी व बेटा मिलते ही सारे अजनबीपन व दूरी के होते हुए भी मानवीय व्यवहार कहीं न कहीं मानवीय राग का स्पर्श कर जाता है। इस कहानी में एक अवश, अकेलेपन व निरर्थकता का बोध है। राकेशजी ने एक युगल के माध्यम से उन सभी की पीड़ा को संकेतिक किया है जो अपने चयन में भटक गए हैं। 'सुहागिनें' कहानी भी स्त्री पुरुष के संबंधों को व्यक्त करती है। जिसमें सुशील व मनोरमा दोनों नौकरी करते हैं। सुशील बाहर रहता है वह अपनी बहन के विवाह के लिए बचत हेतु उसे लिखता रहता है दोनों में अंतर बढ़ता जाता है। उसकी नौकरानी काशी भी परित्यक्ता है; परंतु पति के लौटने पर वह श्रृंगार करती हैं। उसकी कामेच्छा पूर्ण करती है। मनोरमा में मातृत्व भावना उमड़ती है किन्तु सुशील के समक्ष पैसा एकत्रित करना ध्येय है। मनोरमा अन्दर से पीड़ित है। काशी की पीड़ा बाहरी है। दोनों सुहागिनें हैं, किन्तु वरदानों से वंचित है। वह वंचनामय पीड़ा ही उनके व्यक्तित्व को ऐसी नामहीन ट्रेजेडी है जो उन्हें भीतर बाहर तोड़ रही है। 'अपरिचित' कहानी में परिचय की तलाश है। इसकी स्त्री पात्र बहुत से परिचितों के मध्य भी स्वयं को बेगाना अनमेल अनुभव करती है। यही स्त्री कथा–नायक से खुलकर बात करती है, पहाड़ी बच्चों में अपनापन खोजती है। वास्तव में यह कहानी बेमेल रुचियों के कारण आई तिक्तता–रिक्तता की कहानी है। स्त्री–पुरुष की रुचि भिन्नता किस सीमा तक अलगाव पैदा कर देती है नारी ऐसी स्थिति में स्वयं को कितना रिक्त व टूटा हुआ अनुभव करती है, आदि इस कहानी का कथ्य है। 'चौगान' कहानी में राकेशजी ने अनमेल वैवाहिक जीवन से आई यंत्रणा को व्यक्त किया है। नारी जीवन का बिखराव तथा पुरुष की टूटन को 'संतो' द्वारा पूरा करने का प्रयास किया गया है। 'हेनरी विल्सन' लिजी को छोड़कर अकेला हो जाता है अकेलेपन के साये को मिटाने के लिए संतों को रख लेता है किन्तु फिर भी अकेला ही बना रहता है उसकी यही ट्रेजडी है। हेनरी विल्सन जीतेजी अनेकबार अकेलेपन के क्षणों में भीतर ही भीतर कितनी बार मर चूका है। 'खाली' कहानी जुगल और तोषी के दाम्पत्य संबंधों की कहानी है। दोनों के संबंधों में कटुता व बेगानेपन का बोध है। 'फौलाद का आकाश' के पात्र रवि व मीरा ने स्वेच्छा से विवाह किया किन्तु कुछ समय बाद वे दोनों औपचारिक व कृत्रिम जिंदगी जीते हैं। रवि अपने फेक्ट्री के कार्य में बहुत व्यस्त रहता है उसे मीरा की भावुक बातों में कोई रुचि नहीं। रवि की बातें मीरा को उससे दूर करती जाती हैं। वह जितना स्वयं को रवि के समीप सोचती उतना ही अलगाव बढ़ता जाता। वह साथ पढ़नेवाले राजकृष्ण से मिलती है किन्तु शीघ्र ही लौट

आती है। रवि व मीरा दोनों की जिन्दगी उपरी तौर पर ठीक है किन्तु भीतर का अलगाव ही इस कहानी की मूल संवेदना है। इस युगल में जो तनाव व एक दूसरे को झेलने की मजबूरी है इसका कारण रवि के व्यवहार की औपचारिकता व मीरा के व्यक्तित्व की भावुकता है। 'जंगला' कहानी में रूढ़ियों पर मूल्यों की विजय दर्शायी गई है। इस कहानी का कथ्य या तो पुराने को मिट जाना है या बदल देना है यही संदेश देता है। राकेशजी ने कुछ कहानियों में मानवीय संबंधों और प्रेम का मूल्यांकन आर्थिक आधार पर भी किया है। 'बनिया बनाम इश्क' का पात्र इन्द्र नाचनेवाली से प्रेम करता है, रखेल बनाकर रखना चाहता है। वह खर्च हेतु एक हजार रूपया मांगती है जिसे देने से इन्द्र इन्कार करता है। 'हक हलाल' में पण्डित ने रूपए देकर लड़की से विवाह किया, उसके भाग जाने पर अपनी साली को ले आता है। पत्नी के लोट आने पर भी साली को नहीं जाने देता। 'वासना की छाया' में विधुर चौधरी दूसरे चौधरी को अपनी १४ वर्षिया पुत्री देकर उसकी पुत्री से विवाह करना चाहता है। 'गुनाह बेल्लजत' का सरदार सुंदरसिंह पैसा देकर सुंदरी के साथ कुछ समय व्यतीत करता है। 'मिट्टी के रंग' में मानव संबंधों का दूसरा रूप प्रस्तुत किया है। इसमें लड़ाई में मारे गए मेथिलोन के जेब से निकले पत्र व अंगुठी को सही पते पर भेजना चाहता है किन्तु अपनी एक रात की प्रेमिका को दोनों अंगूठियां उपहार में दे डालता है। 'सेफ्टी पिन' में आधुनिक उच्चवर्गीय स्त्री पुरूषों के संबंधों पर यथार्थवादी शैली में प्रभाव डाला है। 'भिक्षु' इसी शैली की कहानी है बौद्ध विहार के युवक के प्रति प्रेम स्फुरण और ग्लानि होने पर उसका चला जाना, उसके प्रेम को व्यक्त करता है। राकेशजी की कुछेक कहानियों में आज के संदर्भों में अकेले पड़ते मानव मन और उसके व्यक्तित्व को रूपायित किया गया है। अकेलेपन के बढ़ते बोध से पात्रों की टूटन और विखण्डित स्थितियाँ प्रगट हुई है। यह टूटन स्त्री–पुरूष दोनों में समान दिखाई देती हैं।

'मिस्टर भाटिया' का पात्र आर्थिक स्थिति से कमजोर है फिर भी लड़कियों में उसकी बहुत रूचि है। अक्सर बेरोजगार रहता है, रेस का शौकिन है, हवाई किल्ले बनाना उसका स्वभाव है, दहेज के पैसे के लालच में वह साधारण लड़की से विवाह करने को तैयार हो जाता है ताकि उन पैसों को रेस में लगा सके। 'भाटिया' अकेलेपन में भी जिजीविषा लिए हुए हैं। वह टूट गया है किन्तु टूटन का अस्वीकार सारे संदर्भ को यथार्थ से जोड़ देता है। 'फटा हुआ जूता' का राय भी गरीबी का शिकार है। समाज में वह उपेक्षित है। नौकरी मिलती नहीं, पहेलियां भरकर मिले इनाम से खर्च करता है। एक नौजवान की जेब से बटुआ चुरा लेता है फिर पश्चाताप करता है। यहाँ यह

स्पष्ट हो जाता है कि मानव की अधिकतर बुराइयों का उत्तरदायित्व उसकी परिस्थितियाँ ही हैं। 'जीनियस' कहानी का पात्र साधारण होते हुए भी स्वयं को असाधारण समझता है। वह टैगोर, टाल्सटोय और शेक्सपीयर को भी हेय समझता है। वह जीनियस भी गरीब है, भूख से पीड़ित है किन्तु भूख से पीड़ित होते हुए भी परिस्थितियों से हार न माननेवाला तथा भीतर से टूटकर भी टूटन को बाहरी दिखावे से भरनेवाले व्यक्ति की कहानी है। 'जख्म' का व्यक्ति अहं भाव रखता है जो टूट सकता है किन्तु झुकना नहीं जानता। इसका नायक अपने ढ़ग से जीने का कायल है। कभी नौकरी करता है कभी बेकारी का वरण करता है। वह अपने अकेलेपन को विवाह कर भरना भी चाहता है लेकिन विवाह भी नहीं करता। बेकारी में मनुष्य क्या से क्या हो जाता है इसका चित्रण यह कहानी है। 'वारिस' कहानी का अंग्रेजी का मास्टर आर्थिक अभाव की चक्की में पिसकर जर्जरित हो चूका है। वह प्रतिभा संपन्न है किन्तु उसका कद्रदान नहीं है। विवश, पीड़ित और अकेलेपन के बोध को गहनता देनेवाली यह राकेशजी की सुंदर रचना है। 'दोराह', 'धुंधलादीप', 'लक्ष्यहीन' तीनों कहानियों का पात्र केसरी नामक व्यक्ति है। ये तीनों पात्र जीवन में हारे–थके टूटे असफल व उबे हुए हैं। धुंधलादीप का केसरी अकेलेपन से पीड़ित है तो लक्ष्यहीन का केसरी निरर्थकता बोध से। राकेशजी की कहानियों के नारी पात्र भी अतृप्ति की अवस्था में जी रही हैं तथा अकेलेपन के बोझ से पीड़ित है। आकांक्षाओं की प्राप्ति का अभाव तथा परिवेश से जुड़े रहने की विवशता ने नारी पात्रों की टूटन को अधिक बढा दिया है। 'आखिरी सामान' की मिसेज भंडारी, 'सीमाएं' की उमा, 'उर्मिल जीवन' की नीरा ऐसी ही विवश व टूटी हुई नारियाँ हैं। मिस पाल को अपने मोटापे और कुरूपता के कारण समाज में उपहास का पात्र बनना पडा और इससे बनी ग्रंथि ने उन्हें कभी भी सहज नहीं होने दिया। परिवेश के दबाव, व्यथित और संत्रस्त स्वभाव के कारण मिस पाल अकेलेपन को झेलती हैं उनके पास रूप, मुहब्बत, दौलत, शौहरत में से कुछ भी नहीं। राकेशजी ने मिस पाल की कुण्ठा व ट्रेजेडी को बड़े कलापूर्ण ढंग से उजागर किया है। इसी प्रकार 'सीमाएँ' हीन भावना से ग्रस्त लड़की की कहानी है। स्वयं की कुरूपता ही उसे दुःखी करती रहती है। हीन भावना से ग्रस्त तथा प्यार की प्यासी लड़की का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस कहानी की विशेषता है। 'भूखे' कहानी की एवलीना सुंदर, आकर्षक और परिस्थितियों के थपेडों से जर्जरित है। समस्त आवारा व शरीफ लोग उसकी विवशता का लाभ उठाना चाहते हैं। पति की मृत्यु के बाद भी वह अपने बच्चे का पालन पोषण करने में हर संघर्ष का सामना करने को तैयार है किन्तु अपने यौवन का सौदा करने को वह किसी कीमत पर भी तैयार नहीं

होती। 'आखिरी सामान' की मिसेज भंडारी सुंदर हैं जिसके कारण उनके पति को गर्व है। उनके पति तरक्की पाने हेतु अपनी पत्नी का उपयोग करना चाहते हैं। पत्नी तैयार नहीं होती, बोस नाराज हो जाता है। मि.भंडारी जेल चले जाते हैं, घर का सामान नीलाम हो जाता है किन्तु मिसेज भंडारी अपने अस्तित्व रक्षण के लिए प्रयत्नशील रहती हैं, वे अकेलेपन से घिरी हैं। राकेशजी ने उनके अकेलेपन को बड़ी ईमानदारी से अभिव्यक्ति दी है। 'उर्मिल जीवन' की नीरा का विवाह अपने जीजा से होता है जिसको उसने कभी थप्पड़ मारा था किन्तु अब उसकी नियति एक पत्नी की है। अपनी विवशताओं को पी जाने वाली नारी का मर्म स्पर्शी चित्रण है। 'नन्ही' भावना प्रधान कहानी है। कम उम्र की बालिका विवाह कर ससुराल आती है अपने पति की पूर्व पत्नी से उत्पन्न नन्हीं बालिका माँ कहकर पुकारती है। मायके में कल तक बेटी सुनने की आदी बालिका माँ का संबोधन सहन नहीं कर पाती और ज्वर ग्रस्त हो जाती है। 'एक घटना' एक विदुषी की कहानी है जिसकी सारी प्रतिभा गरीबी के आवरण में छिपी हैं। 'कटी हुई पतंगे' की बाघन, रीछनी आदि उपलब्धियों से विभूषित होने वाली राजकरनी, वक्त की मार सहकर गालियां सुनने को विवश है। 'लेकिन' 'इस तरह' की राजकरनी सामाजिक व्यंग्य बाणों से विवश हो आत्महत्या कर लेती है।

राकेशजी की कहानियों में महानगरीय संत्रास और भयावहता का भी चित्रण है। उनका स्वयं का अधिकांश जीवन दिल्ली, बम्बई जैसे महानगरों में बीता तथा वहाँ की विरूपताओं को उन्होंने निकट से देखा व भोगा है। बड़े शहरों में अपना अस्तित्व बनाए रखना कितना कठिन काम है इसका चित्रण इनकी 'ठहरा हुआ चाकू', 'जख्म', 'पाँचवें माले का फ्लैट' आदि कहानियों में है। 'ठहरा हुआ चाकू' में एक युवक की दादा टाइप व्यक्ति की पुलिस में शिकायत कर देने व उस गुण्डे से उसे अपनी जीवन रक्षा का भय महानगरीय जीवन की भयावहता व जड़ता को प्रमाणित करती है। 'पाँचवें माले का फ्लैट' में बड़े शहरों की औपचारिकता पर द्रष्टिपात है। मन में कुछ तथा कहना कुछ की प्रवृत्ति है। शहरों में पडोसी अपने दूसरे पडोसी से अपरिचित रहता है। किसी को किसी से मतलब नहीं। इस कहानी के नायक अविनाश की आर्थिक स्थिति उसे कहीं बड़ा मकान लेकर रहने की अनुमति नहीं देती। सरला व प्रमिला उसके फ्लैट का अच्छा मजाक उड़ाती हैं। ऐसा लगता है मानों उस घर में रहनेवाले की आर्थिक स्थिति एवम् विवशताओं का मजाक उड़ाया गया है।

देश को आजादी की खुशी व विभाजन का दाह दोनों एक साथ मिले। देश विभाजन के साथ मनों में भी विभाजक रेखाएं पड़ गई है। ऐसे वातावरण में मानव संबंधों में परिवर्तन हुआ तथा व्यक्ति को सहायता व सहयोग न मिलने के कारण वह विकृत और हताश हो गया। 'क्लेम' कहानी परिवेश से उखड़ाव की इस कथा की मूल संवेदना है। सरकार द्वारा सहायता करने की घोषणा करने पर जनता द्वारा अधिक से अधिक क्लेम भरने की होड़ सी लग गई। 'मलबे का मालिक' में एक व्यक्ति का पूरा परिवार हिन्दू मुस्लिम दंगों की भेंट चढ़ चूका है। बूढ़ा गनी रक्खे पहलवान का पडोसी था। रक्खे पहलवान ने ही घर के लालच में गनी के परिवार को समाप्त कर दिया था। गनी के लौटने पर मकान की जगह मलबे का ढेर देखकर वह रक्खे पहलवान से अपने परिवार के संबंध में पूछता है तथा पश्चाताप करता है कि उसका पुत्र रक्खा पहलवान के यहाँ आकर क्यों नहीं छिप गया, वह उसकी रक्षा कर लेता। उसे क्या मालूम कि रक्खा पहलवान ही उसके परिवार का अपराधी है जो मलबे का मालिक बन बैठ है। 'कंबल' कहानी भी शरणार्थी केम्प में रहनेवाले परिवार की है। कंबल एक है तथा सर्दी में ठिठुरते परिवार के सदस्य अनेक। कोई भी दूसरे के लिए कंबल का त्याग करने को तैयार नहीं। अभाव जीवन मूल्यों को किस तरह प्रभावित करते हैं इस कहानी में चित्रित हैं।

बाल मनोविज्ञान संबंधी कहानी में 'पहचान' का बाल नायक शिवजीत अपने दूसरे पिता अवरोल के साथ एडजस्ट नहीं कर पाता। वह शिवजीत सचदेव से शिवजीत अवरोल बनकर स्वयं को मानो नंगा महसूस करता है। माता–पिता के संबंधों के कारण बच्चों पर पड़ते प्रभाव का चित्रण है। 'मरुस्थल' कहानी की नन्ही सात वर्षिया पात्र इन्दु अपने माता–पिता के व्यवसाय से प्रभावित है। दोनों ही उसे व्यावसायिक द्रष्टि से देखते हैं। सेठों के सामने जबरदस्ती नचवाया जाता है जिसे उसका बालमन सहन नहीं कर पाता। वह ज्वर पीड़ित हो जाती है। बालिका की दर्दीली तस्वीर पाठक के ह्रदय पटल पर बहुत गहराई से अंकित हो जाती है। 'छोटी सी चीज' नन्हें यशवीर की कथा है। कान्वेंट स्कूल में उसका बेगानापन, विवशता का स्वाभाविक वर्णन है। पारिवारिक संदर्भो में लिखी कहानियों में 'क्वार्टर' कहानी संयुक्त परिवार की जिम्मेदारियां एक व्यक्ति को कितना बेचारा बना देती हैं स्पष्ट करती हैं। 'ग्लास टैंक' भी ऐसे परिवार की कहानी है जिसका प्रत्येक सदस्य जीवन के प्रति अपनी मान्यता रखता है तथा सहमत न होते हुए भी दूसरे की भावना की कद्र करते हैं। सुभाष व नीरू अपने ढंग के

पात्र है दोनों में बचपन से लगाव है किन्तु द्रष्टिकोण अलग–अलग पूरी कहानी में एक तनाव छाया रहता है ।

राकेशजी की कहानियाँ उन्हें गहरी अंतर्द्रष्टि का कलाकार सिद्ध करती है । कुछ कहानियाँ प्रयोगधर्मिता का आभास देती हैं । 'ग्लास टैंक' में बड़ी सूक्ष्मता से पारिवारिक ट्रेजेडी को अभिव्यक्ति मिली । इसमें कृत्रिम होती जिंदगी व उसमें समाती उब, अकेलापन और संत्रास को निरूपित किया गया है । मछली व ग्लास टैंक प्रतीकार्थ लगते हैं । मछली का प्रतीक तो फिर भी ठीक है किन्तु ग्लास टैंक का प्रतीक आरोपित लगता है । मछलियां आत्मकेन्द्रित हो अपने में डूबी जिंदगी की उब व नीरसता व्यक्त करती है । नीरू उन मछलियों को देखकर उनकी मुक्ति की कामना करती है । ग्लास टैंक में उपर नीचे व शीशे से टकराती मछलियां मानों स्वतंत्र होने के लिए प्रयासरत हैं । 'सोया हुआ शहर' में भी राकेशजी की प्रयोगधर्मिता स्पष्ट होती है । महानगरों की रात की जिंदगी का वर्णन है । पूरा शहर सोया हुआ है किन्तु एक जिंदगी रात को भी चलती है । इस कहानी की प्रयोगशीलता उसके कथ्य में नहीं, शिल्प में है । कहानी में परिवेश का अंकन बड़ी सूक्ष्मता से हुआ है । सिगरेट की डिब्बी का कटा हुआ टुकडा, दुम हिलाता कुत्ता, फड़फडाता कबूतर, फ्लश के हत्थे का जोर–जोर से हिलाया जाना, चमकते हुए गोल सुनहरे पत्ते आदि प्रयोग प्रतीकार्थ लगते हैं । 'फौलाद का आकाश' कहानी का प्रत्यक्ष संकेत पति–पत्नी के मध्य एक तीसरे व्यक्ति की ओर है जो व्यवधान बनकर आया है । कहानी में चित्रित परिवेश और रवि से संबंधित सभी स्थितियां आरोपित सी प्रतीत होती हैं । राकेशजी की कहानियों में कथ्यगत ईमानदारी व शैल्पिक प्रयोगशीलता है । उनकी कहानियों में सूक्ष्म सांकेतिकता, संश्लिष्ट चरित्रों को उभारने हेतु प्रतीकों की अवतारणा की है ।

प्रत्येक रचनाकार अपनी अनुभूति से अपनी कला को सजाता संवारता है । वह ऐसे माध्यमो, विधानों व तंत्रों के अन्वेषण की खोज करता हैं जो नए भी हों, मौलिक हो तथा कहानी कला के क्षेत्र में नए प्रतिमान स्थापित करने की क्षमता हो । कला की सृष्टि में अनुभूति व लक्ष्य दोनों का स्थान सर्वोपरी है । "कहानी की शिल्पविधि में लक्ष्य और अनुभूति सबसे मुख्य तत्त्व हैं । इन्हीं के प्रकाश से कहानी के विधान में कथावस्तु की योजना, चरित्र की अवतारणा और शैली का निर्माण होता है ।"[१२] राकेशजी की कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित नई कहानी की समस्त पद्धति व रचना प्रक्रिया मिलती है । आज का कहानीकार कहानी का प्रारंभ वहां से करता है जहाँ

पहले कहानी समाप्त होती थी। कथानक के प्रति यह परिवर्तित द्रष्टि राकेशजी की कहानियों में मिलती है। राकेशजी की गिनी चुनी उच्चवर्ग से संबंधित कहानियों को छोड़कर बाकी कहानियाँ सामान्यतः मध्यवर्ग से संबंधित हैं तथा परिवार, महानगर–बोध, शिक्षित वर्ग, ग्राम्य वर्ग, मजदूर वर्ग इनके कथानक का विषय है। जीवन का शायद ही कोई क्षेत्र हो जो राकेशजी की कहानी में अछूता रह गया हो। प्रवाहशीलता, गति, प्रभावोत्पादकता, आकर्षण, वैचारिकता और मौलिकता राकेशजी की कहानियों की विशेषताएं हैं। आज कहानीकार ने काल्पनिक पात्रों का त्याग कर दिया है तथा वह अपने आसपास के परिवेश से ही पात्रों का चयन करता है। व्यक्ति के अन्तर्मन में प्रवेश करके रचनाकार ने व्यक्ति के भीतरी परिचय को प्रस्तुत करने का गहरा प्रयास किया है। बदलते परिवेश और नए विकसित होते हुए जीवन मूल्यों से वह प्रभावित हुआ। इस प्रकार यथार्थ चरित्र उसके सामने आए। परिणामतः वह अकेलेपन, ऊब, आशा–निराशा, उलझन, त्रासदी आदि मानव जीवन की समस्त विडम्बनाओं को अपनी शैली में अभिव्यजित करने लगा। राकेशजी ने भी समकालीन परिवेश को ही अपनी कृतियों में उतारा है। राकेशजी ने जीवन की कटु स्थितियों को भोगा था, झेला था। अतः उनके पात्र उन सबसे प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकते थे ? राकेशजी की कहानियों के चरित्र जीवन की प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति से प्रभावित हुए हैं वे जीवन से कटे नहीं है अपितु उसकी परिस्थितियों से संघर्ष किया है। उनके कुछ पात्र अर्न्तमुखी वृत्ति वाले हैं, कुछ स्वस्थ समर्पित, कुछ अहंवादी, कुछ संघर्षजीवी और प्रगतिशील, स्वप्नजीवी, विवश, असहाय, भ्रष्ट सभी प्रकार के पात्र हैं तथा सभी ने स्वयं को जिया है। जीवनगत त्रासदियों को सहते सहते जो टूट गए हैं वे अकेलेपन का भोग रहे हैं ऐसे पात्र अधिक मात्रा में हैं। किन्तु अकेलापन अनुभव करते हुए भी पात्र जीवन के साथ हैं।

राकेशजी सफल नाटककार हैं अतः संवादों की अभिव्यक्ति में उनका कोई सानी नहीं। यही तत्त्व कहानी में उसकी महत्ता प्रगट करता है। संवाद से कहानी की एक स्थिति दूसरी से जोड़कर उसे गति प्रदान करती है। इसी के सहारे मूल संवेदना और पात्रों के मध्य सीधा संपर्क रहता है। राकेशजी ने संवादों के लिए संवादों का प्रयोग नहीं किया किन्तु जहाँ उनकी आवश्यकता महसूस हुई वहीं पर उनका प्रयोग किया है। संक्षिप्त, चरित्र विश्लेषण में सहायक, कथा को गत्वरता प्रदान करने में संवादों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। कम से कम शब्दों के सहारे संवाद कहे गए हैं। संक्षिप्त संवादों में घनता, आकर्षण और जिज्ञासा है। उनकी संवाद शैलियों में नई पद्धति का प्रयोग है जिसमें पात्रों की मुद्राओं, स्थितियों की व्यंजना और कार्य व्यापारों की विवेचना होती

चलती है । उनके संवाद सरल शब्दों से निर्मित हैं साथ ही उनमें सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता बनी हुई है । यद्यपि आज की कहानी में संवाद कम है नहीं के बराबर । राकेशजी की 'जीनियस' कहानी ऐसी ही है किन्तु संवादहीन होकर भी प्रवाह बराबर बना रहता है । राकेशजी के संवादों में उनका पूरा परिवेश, व्यक्ति और उसका व्यक्तित्व झांकता है । राकेशजी की कहानियों का परिवेश समसामयिक जीवन का चितेरा है । परिवेश कैसा भी रहा हो उसका चित्रण राकेशजी ने ईमानदारी से किया है । राकेशजी का व्यक्तित्व नाटककार का रहा है अतएव उनकी कहानियों में चित्रित परिवेश में नाटकोचित स्पर्श है । किसी स्थान और वहाँ रखे सामान आदि का चित्रण किसी नाटकीय द्रश्य के समान किया है । राकेशजी ने परिवेश चित्रण में यथार्थ द्रष्टि से काम लिया है । उनकी कहानियों में आया परिवेश मन को बांधता है तथा एक गहरा बोध जागृत करता है । राकेशजी ने समकालीन परिवेश के सत्य को पाठकों तक अपनी सरल भाषा के माध्यम से पहुंचाया है । उनकी भाषा अनुभूति और संवेदना की भाषा है जिसमें लेखक व भाषा में प्रयुक्त शब्द साहित्यिक स्तर, जनभाषा स्तर और देशी–विदेशी शब्दावली से बनी भाषा का स्तर इन तीन स्तरों पर दिखाई देते हैं । जहाँ कहीं राकेशजी बहुत भावुक हो उठे है वहाँ साहित्यिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है, उन्होंने अत्यंत ही सीधे बोलचाल के शब्दों से अपने कथ्य को प्रेषित किया है । कई स्थानों पर अनेक अंग्रेजी शब्दों की भरमार हुई । ग्राम्य परिवेश के अनेक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं । उनकी भाषा में बिम्ब निर्माण की भी अद्‌भुत क्षमता है इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'फटा हुआ जूता' उनकी कहानी है, जिसमें फटे हुए जूते की स्थिति का बिम्ब प्रभावी हो गया है । राकेशजी की भाषा शैली में प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता, काव्यात्मकता, नाटकीयता, चित्रात्मकता सभी कुछ है किन्तु इन सबसे बढ़कर जो विशेषता है वह है – यथार्थ संदर्भों व स्थितियों को अभिव्यंजित करने की भरपूर क्षमता । उनकी भाषा जितनी साहित्यिक व काव्यमय है उतनी ही सपाट और सहज है ।

राकेशजी की कहानियों के कथानक संरचना के शिल्पगत विशेषता में यह भी देखा जा सकता है कि वे आवश्यक कथासूत्रों का चयन करके बिना संयोजक के ही पात्रों के मन का विश्लेषण करते हुए कथा को आगे बढ़ाते हैं । यहाँ एक ठोस कथानक का अभाव प्रतीत होता है, परंतु कहानी प्रभावशाली है । यहाँ कथा कहानी के केन्द्र के परिधि की ओर जाती है तो परिवेश और चरित्र परिधि के केन्द्रोन्मुख हो जाते हैं । उदाहरण स्वरूप 'जीनियस', 'बस स्टेण्ड की एक रात', 'ग्लास टैंक' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है । 'जीनियस' जैसी कहानी में कथा एकदम परिधि पर

आ गई है । कथानक के तत्त्व का ताना–बाना चरित्र विश्लेषण और वातावरण से बना है । ध्यातव्य है कि यहाँ चरित्र नामहीन है । 'वह' कथानायक है, परंतु कहानी का नायक 'वह' भी नहीं रह जाता है । "वह एक व्यक्ति नहीं, एक फिनोमेना है । अपने से बाहर वह दिखाई नहीं देता ... अपने अंदर उसका रेडिएशन महसूस किया जा सकता है ।"[२३] 'ग्लास टैंक' कहानी में भी कथानक के नाम पर कुछ कथा–सूत्र हैं, परंतु ये कथा–सूत्र एक कथानक का ढाँचा बनाते हैं, 'जीनियस' की तरह कथा गायब है ।

राकेशजी की कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो अन्त से प्रारंभ होती हैं । कुछ समीक्षक नई कहानी की विशेषता के रूप में इस प्रकार की रचना शैली का उल्लेख करते हैं । ऐसी कहानियों में अस्पष्ट सांकेतिक और प्रभावी व्यंजनाएँ रहती हैं, जिनके सहारे पाठक को अपना निष्कर्ष स्वयं पाना होता है । राकेशजी की 'सेफ्टी पिन', 'जख्म' आदि कहानियाँ इस प्रकार की हैं । 'सेफ्टी पिन' मध्यवर्गीय परिवारों के सतही लगाव और भीतरी अलगाव और बिखराव को दर्शाता है । प्रदर्शन और स्वयं को सर्वोपरि साबित करने का निर्लज्ज प्रयास सामाजिक संबंधों को कमजोर बना रहा है । इन सबके बीच कथानायक की अपनी परेशानी उधड़ी हुई बटनों को लेकर है, जिसको उसने सेफ्टी पिन से बंद कर रखा है । सबकी नजरों से बचाकर वह अपने उधेड़पन को सँभाले हैं । परंतु अंत तक जेब में से बचे हुए सेफ्टी पिनों में से एक जेब में सुराख कर बाहर निकल आती है । सेफ्टी पिन का बाहर निकल आना संकेतात्मक है, मानो समाज के सारे खोखलेपन को, ठहाकों और खुशियों की शुष्कता का संकेतात्मक वर्णन है । राकेशजी की कहानियों में ऐसे संकेतात्मक शिल्प की कहानियाँ बहुत अधिक नहीं हैं, परंतु जितनी भी हैं, वह अत्यंत सशक्त बन पड़ी हैं ।

राकेशजी की बहु–संख्यक कहानी कथानक के निर्माण की द्रष्टि से प्रेमचंद की परंपरा के करीब है । अन्वितियुक्त कथानक वाली कहानियों की संख्या काफी है । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कथानक में अन्विति के रहते हुए भी कथ्य और कला की द्रष्टि से उसमें आधुनिकता है । राकेशजी की अन्वितियुक्त कथानक वाली कहानियों में 'मलबे का मालिक', 'परमात्मा का कुत्ता', 'उसकी रोटी', 'गुनाह बेलज्जत', 'मिट्टी के रंग', 'सुहागिनें', 'एक और जिन्दगी', 'अपरिचित', 'आर्द्रा', 'मिस पाल', 'सौदा' आदि उल्लेखनीय हैं ।

राकेशजी के कहानी साहित्य के शिल्प पर विचार करते समय उनकी पात्र–योजना का अध्ययन भी अत्यंत आवश्यक हैं । उनकी कहानियों के पात्र आम शहरी और

कस्बाई मध्यवर्ग के हैं जो अपनी तमाम अच्छाइयों और बुराइयों के साथ कहानियों में अपनी उपस्थिति को रेखांकित करते हैं । राकेशजी की कहानियों में पात्रों का चयन यथार्थ परिवेश से किया गया है । सामान्य और असामान्य मानसिकता वाले पात्र राकेशजी की कहानियों में मौजूद हैं । उनके असामान्य पात्रों के संदर्भ में यह कहना अत्युक्ति न होगी कि असाधारण व्यक्तित्व के अधिकारी होने पर भी ये पात्र यथार्थ जीवन के वास्तविक पात्र हैं । ये चरित्र जीवन की यान्त्रिकता, लघु मानव, अर्थहीन, रिश्तों और अकेलेपन की भयावहता की उपज हैं । "मोहन राकेश ने अपने पात्रों को जीवन के यथार्थ से चुना है ... उन्होंने जीवन के बहु–विध पक्षों से अपने पात्रों को चुना है और उनमें जातीय विशेषताओं और वर्गगत प्रवृत्तिओं से परिपूर्ण करके यथार्थ रूप प्रदान किया है ।"[७४] पात्रों में वैयक्तिक विशेषताओं के साथ ही व्यक्तित्व–निरूपण भी राकेशजी ने अपने पात्रों में किया है । यों आत्मपरक से लगते हैं, परंतु उनकी दृष्टि समष्टिगत आधारों पर की गई है ।

राकेशजी के पात्र–योजना की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे परिवेश–प्रतिबद्ध हैं, जिससे परिवेशगत जटिलता स्वाभाविक रूप से उभरती है । 'ग्लास टैंक' जैसी कहानियों में मनःस्थिति सहज न लगकर आरोपित प्रतीत होती है । राकेशजी के पात्रों में संघर्षशील जिजीविषा अधिक है । "कुछ पात्र बेफिक्र और स्वप्नजीवी हैं तो कुछ विवश, असहाय, टूटे हुए, अकेले और भटके हुए । ऐसे पात्र अजनबियत के पुंज है । एकाध पात्र ऐसे भी हैं जो पशुवृत्तियों के शिकार होने के कारण भ्रष्ट और गुण्डा चरित्रों की श्रेणी में आते हैं ।"[७५] परिवेश बदलने पर पात्रों की चेतना भी बदल गई है, जिसे मानवीय चेतना से उभारा गया है । 'एक और जिंदगी' का नायक प्रकाश अंतर्मुखी वृत्ति के साथ ही भावुक और संवेदनशील है, परिस्थितियों की मार से व्यग्र और व्याकुल है, परंतु बीना और पलाश को देखते ही द्रवित होने लगता है – "उसका मन हुआ कि फिर नीचे जाकर बच्चे को अपने साथ ले आए, मगर कोई चीज उसके पैरों को रोके रही ... आखिर उससे नहीं रहा गया, तो उसने नीचे जाकर कुछ चेरी खरीदी और बच्चे को देने के बहाने टूरिस्ट होटल की तरफ चल दिया ।"[७६] 'जख्म' का नायक पूरी तरह अहंग्रस्त है । आत्मकेन्द्रीत इतना अधिक है कि उनकी उपस्थिति में कोई किसी के विषय में सोचे, यह उसे सह्य नहीं । वह कहता है – "मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं, उसका निगहबान हूँ । मैं जीता नहीं, देखता हूँ, क्योंकि जीना अपने में बहुत घटिया चीज है ।"[७७] यह कथन उसके भीतरी बिखराव और अहंग्रस्तता को व्यक्त करता है । राकेशजी की कहानियों में पात्र संघर्षजीवी हैं जब कि प्रगतिशील चरित्र अपने आपमें

स्वाभिमानी और विद्रोही हैं । 'जानवर और जानवर' कहानी का पात्र पाल, 'सेफ्टी पिन' की मिसैज सक्सेना तथा मिसेज सिंह इसी प्रकार के पात्र हैं । 'सेफ्टी पिन' और 'पाँचवे माले का फ्लैट' के पात्रों में वैचारिक स्तर पर प्रगतिशीलता है, जो पात्रों के अंदर से न फूटकर आरोपित–सी लगती है । जब कि 'जानवर और जानवर' का पाल पादरी फिशर से इसलिए भिड़ जाता है कि वह उसके अंदर से फूट पड़ी है । इसलिए वह पादरी से कटाक्षपूर्ण प्रश्न पूछता है कि – "रात को तो हम गरीब जानवरों को गोली मारते हैं, और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं – इसका कुछ मतलब निकलता है ?"[२८] 'मलबे का मालिक' का गनी जिन्दगी की विडम्बनाओं के बीच पिसते हुए भी जिजीविषा से युक्त है । इसीलिए रक्खा पहलवान उसके सामने अपनी सारी हरकतों को समझते हुए भी मनोवैज्ञानिक रूप से बार–बार थूककर अपनी गलत हरकतों को प्रकट नहीं होने देता । मिस्टर भाटिया कर्ज के बोझ को सहन करते हुए भी बेफिक्र है और मनसूबे ऊँचे रखता है ।

राकेशजी की कई कहानियों के पात्र नामहिन हैं । आधुनिक परिवेश और बदलते परिवेश में लघु होती व्यक्ति की सता, अकेलेपन और सामाजिक परिस्थितियाँ परिचय खोता अजनबी व्यक्ति के लिए नाम अर्थहीन हो गया है । 'परमात्मा का कुत्ता', 'अपरिचित', 'बस स्टेण्ड की एक रात', 'मन्दी', 'जख्म' आदि कहानियों के पात्र इसी कोटि के हैं जो एक समग्र व्यवस्था की इकाई के रूप में चित्रित होकर भी जिनका अलग नाम नहीं है । दूसरी ओर एक ही नाम को कई कहानियों में दोहराना भी इसी स्थिति का परिचायक है कि सामाजिक व्यवस्था में नाम अर्थहीन होता जा रहा है । 'दोराहा', 'धुंधलादीप', और 'लक्ष्यहीन' कहानियों के नायक केसरी है । पात्रों के नामकरण के संदर्भ में यह कहे कि राकेशजी के पात्रों की सृष्टि के समय उसे सामाजिक परिवेश और परिस्थिति के संदर्भ में रचा है, अतएव वहाँ नाम का महत्त्व स्वतः समाप्त हो गया है ।

'एक ठहरा हुआ चाकू' का नत्थासिंह भ्रष्ट, गुण्डा और खूनी बदमाश है । कत्ल करना उसके लिए मामूली बात है । 'हक हलाल' का पण्डित, 'आखिरी सामान' का मिस्टर भण्डारी, 'गुनाह बेलज्जत' का सुन्दरसिंह – ये सब ऐसे पात्र हैं, जिनका चरित्र भ्रष्ट और वासनाग्रस्त है । 'उसकी रोटी' की बालो, 'वारिस' कहानी के मास्टरजी, 'मलबे का मालिक' का गनी, 'आर्द्रा' की माँ – इन सब पात्रों में गहरे समर्पण भाव और स्वस्थता के दर्शन होते हैं । 'ग्लास टैंक' की ममा, 'सुहागिनें' की मनोरमा, 'एक और जिन्दगी' की बीना, 'मिस पाल' की मिस पाल, 'आखिरी सामान' की मिसेज

भण्डारी, 'उर्मिल जीवन' की नीरा, 'पहचान' का शिवजीत आदि ऐसे पात्र हैं, जो जीवन की विसंगतियों को झेलते हुए ऊब, विवशता, बेचैनी के शिकार बने हुए हैं। ये सभी पात्र यथार्थ परिवेश की उपज के कारण अतरंग और प्राणवान लगते है।

संवाद योजना का कहानियों में महत्वपूर्ण स्थान हैं। यद्यपि इसकी सर्वोपरी महत्ता नाटकों में होती है; किन्तु कहानी–कला के संदर्भ में इन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता। राकेशजी की कहानियों में संवाद तत्त्व के द्वारा मनःस्थिति का विश्लेषण, कथासूत्रों का निरूपण और पात्र के चरित्र के द्वारा परिवेश परिचय मिलता है। राकेशजी की कहानियों में संवाद संक्षिप्त और चरित्र के परिचायक है। संक्षिप्त संवाद की दृष्टि से 'जानवर और जानवर', 'बस स्टैण्ड की एक रात' तथा अन्य कहानियों में देखा जा सकता है। जैसे 'जानवर और जानवर' कहानी की संवाद–कला देखें –

"अच्छी लड़की है, ए ?"
"बहुत सीधी है।"
"मुझे डर है कि यह भी कही नानावती की तरह..."
"रहने दो – तुम उसके साथ इसका मुकाबिला करते हो ?"
"वह आई थी तो वह भी ऐसी ही थी ..."
"मैं इसे इन लोगों के बारे में सब–कुछ बता दूँगा।"[९८]

इस संवाद के द्वारा जहाँ फादर फिशर की चरित्रहीनता की ओर इंगित है, वहीं उस परिवेश की जड़ता और खोखलेपन को उद्‌घाटित किया गया है। संवाद संक्षिप्त और बोधगम्य हैं। इसी प्रकार के संवाद 'उसकी रोटी' में सुच्चासिंह और बालों के बीच मे हैं। 'एक और जिन्दगी', 'सुहागिनें', 'मिस्टर भाटिया' आदि अनेक कहानियों में संवाद प्रभावोत्पादक और तथ्य–निरूपक है। संवादो के द्वारा विविध भावों को भी व्यंजित किया गया है। कटाक्ष और व्यंग्य को भी स्वर दिया गया है। 'मिस पाल' में मिस पाल बच्चों को विश्वास दिलाती है, हम तुम्हें मारेंगे नहीं, टाफियाँ देंगे। लेकिन बच्चे आपस में खुसुर–पुसुर करते हैं –

"मर्द है।"
"नहीं, औरत है।"
"तू सिर के बाल देख, बाकी शरीर देखा, मर्द है।"
"तू कपडे देख, और सब कुछ देख, औरत है।"

"आओ, बच्चों आओ, पास आकर देखों । " – मिस पाल की आवाज से मैं जैसे चौंक गया ... बच्चे उसे आते देखकर, 'आ गई, आ गई ' .... एक बच्चे ने फिर जोर से आवाज लगाई, "कमाल है भई कमाल है ।"[२०]

इन संवादो के द्वारा कई स्तरों पर आंतरिक चोटों को उपसाया गया है । राकेशजी की अधिकतर कहानियों में संवाद तार्किक संदर्भ की व्याख्या करनेवाले, मनोभूमि का निरूपण करनेवाले और पात्र के व्यक्तित्व को मुखर करनेवाले है ।

राकेशजी की कहानियाँ शिल्प की द्रष्टि से अपनी पूर्ववर्ती कहानियों का स्वाभाविक विकास है । कफ्न, चित्र का शीर्षक, फूलों का कुर्ता, रोज जैसी बहुचर्चित कहानियों के विकासक्रम में राकेशजी की कहानियों को देखने से यह प्रतीत हो जाता है । नाटक और उपन्यास की तरह राकेशजी की कहानियाँ अपने सोद्देश्यता में एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर होती हैं । शिल्पगत विभिन्न आयामों द्वारा मध्यवर्गीय जीवन में संघर्षशील मानव के उद्दाम आशावादिता और अपराजेय क्षमता, धैर्य और न हारने वाली हिम्मत का चित्रण राकेशजी की कहानियों में हैं । गनी, मिस पाल, आर्द्रा, पाल, मिस्टर भाटिया आदि ऐसे चरित्र हैं जो अपनी कमियों और विशेषताओं के साथ अपने अंदर एक अपराजेय संघर्ष को जारी रखे हुए हैं । उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राकेशजी की कहानियों के शिल्प में नवीनता और निपुणता दोनों परिलक्षित हैं । प्रेमचंदीय और आधुनिक शैली के बीच की कड़ी के रूप में राकेशजी की कहानियों में शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

२–ब कहानियों में संवेदना

राकेशजी की कहानियों में जीवन की आभ्यन्तर संवेदना की अभिव्यक्ति है। जीवन का अनुभव सही रूप से भाव–बोध को जन्म देकर कहानी में घुल–मिल गई है। राकेशजी की कहानियों के कथानकों से ही कहानीकार ने जीवन के प्रति संवेदनात्मक द्रष्टिकोण प्रस्तुत किया है। मन की मूकता को कथानक अभिव्यक्ति देता है और उससे उत्पन्न संवेदना सूक्ष्मता को प्राप्त कर उद्देश्य को दिशा देती है। श्री छेदीलाल गुप्त के अनुसार – "नयी कहानी में संवेदनशीलता आई है, वह आज के जीवन की जटिलताओं का ही बल है।"[२७] यह जटिलता विशेष रूप से मध्यवर्गीय जीवन की छटपटाहट है। पूँजीवाद से भिड़ने में असमर्थ, आदर्शों को चरमराते हुए देखकर आज का मध्यवर्ग बौद्धिकता में अपनी समस्याओं का हल खोजता है। जटिलताओं से पराजित मानव की संवेदना राकेशजी की कहानियों में व्याप्त है। मिस पाल, मिस्टर भाटिया, जुगल, तोषी, मिसेज भण्डारी, परमात्मा का कुत्ता का कथानायक, मवाली का कथानायक, बाशी, मनोरमा, काशी आदि सभी पात्र इसी प्रकार की संवेदना से परिपूर्ण हैं। राकेशजी की कलात्मक साधना वास्तविक जीवन संदर्भो के संवेदनात्मक ज्ञान पर अधिक बल देता है। राकेशजी की रचनात्मक अभिव्यक्ति में निजी चेतना को मानवीय संवेदना से संबंधित किया है। मानव संघर्ष को अपने जीवन में अनुभव करके उसे जीवनानुभव के साथ तीव्र व्यापक किया है। राकेशजी की कहानियों का विचार और पात्र जीवन की धारा में रहते हुए एक उपलब्धि है। यथार्थ द्रष्टिकोण से उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि बिना देशकाल अर्थात् परिवेश के व्यक्ति की कल्पना अधूरी और आनुसंगिक है। परिवेश की संगति को आत्मसात् किए बिना पात्र के द्वारा सत्य या आइडिया को घटित करना असंभव है। यही कारण है कि राकेशजी की कहानियों में परिवेश की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। परंतु यह भी ध्यातव्य है कि राकेशजी ने विभिन्न सामाजिक परिवेश से मानसिक चिंतन और अंतर्द्वन्द्व को उभारा है, उनके चित्रण में ईमानदारी और संवेदनशीलता है पर कहीं भी परिस्थितियाँ इतनी तादात्म्य नहीं हैं कि कहानी का असर समाप्त हो जाए। तरह–तरह की परिस्थितियों को भोक्त होकर भी उनकी संवेदना व्यक्तिगत स्तर से उठकर सामाजिक–संवेदना का रूप ले लेती है।

राकेशजी की कहानियों की अर्थवत्ता या सोद्देश्यता की पृष्ठभूमि स्पष्ट हैं। डॉ.नामवर सिंह ने कहानी की सार्थकता को ही सोद्देश्यता का पर्याय माना है। छोटी–से–छोटी घटना और पीड़ा को नई कहानी एक अर्थ प्रदान करती है। राकेशजी

की कहानियों में ऐसी कहानियों की संख्या बहुत अधिक हैं। 'अपरिचित', 'सुहागिनें', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'कम्बल', 'सीमाएँ', 'खाली', 'क्लेम' आदि ऐसी कहानियाँ हैं। राकेशजी ने सामयिक जीवन को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ देखकर अपेक्षित चेतना प्रदान की है। यह यथार्थ एक युग का भी है और एक क्षण का भी। "इकाई का जीवन एक इकाई का जीवन ही नहीं होता, एक समाज का और एक समय के जीवन की प्रतिध्वनि भी उसमें सुनी जा सकती है।"[२२] 'एक और जिन्दगी', 'मवाली', जैसी कहानियाँ इसके उदाहरण है।

आधुनिक कथावस्तु और विशेष संदर्भों के संघात को प्रकट करनेवाली राकेशजी की कहानियों में पात्रों की मनःस्थिति उसके संघर्ष और आधुनिक जीवन में व्यक्ति के अलगाव को प्रकट करती है। आधुनिक जीवन के भागमभाग में उलझे व्यक्ति की बिखरती हुई, टूटती हुई स्थितियों के साथ-साथ परिस्थितियों द्वारा निर्धारित नियति के प्रति समर्पित पुरुष की संवेदना का वर्णन है। 'एक और जिन्दगी', 'मलबे का मालिक', 'पाँचवें माले का फ्लैट', 'जख्म', 'फटा हुआ जूता', 'परमात्मा का कुत्ता', 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'सेफ्टी पिन', 'नये बादल', 'हक हलाल', 'पहचान', 'मवाली' आदि कहानियाँ इसके उदाहरण है। निम्न मध्यवर्गीय और नौकरीपेशा पुरुष आर्थिक दबाव से टूटकर रिश्वतखोरी को अपनाता है और उसे तर्क के आधार पर सही भी ठहराता है। पुरुष की यह मनःस्थिति आधुनिक परिवेश की उपज है। धर्मशाला के चौकीदार की यह सोच कि "पैसा लेकर तो वह ईमानदारी से कह सकता था कि वे लोग, औरों से पहले उसके पास आए हैं। इसलिए कमरों पर पहला हक उन्हीं का है।"[२३] सार्वजनिक स्थानों पर भ्रष्टाचार के परिवेश में पुरुष की मनःस्थिति का यह यथार्थ चित्रण है 'परमात्मा का कुत्ता' के नायक का आक्रोश आधुनिक व्यक्ति के उस मनःस्थिति को प्रकट करता है जो दो साल की दौड़-धूप के बावजूद व्यक्ति को उसके अधिकारों से वंचित करता है। नौकरशाही के चलते व्यक्ति का परिचय इस प्रकार हो जाता है – "मेरा नाम बारह सौ छब्बीस बटा सात। मेरे माँ-बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने। ... मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूँ। मेरा और कोई नाम नहीं।"[२४] शोषक वर्ग की मनःस्थिति 'जानवर और जानवर' कहानी के पादरी में देखने को मिलती है, जो अपने अधिकार और रुतबे के चलते अनीता मुखर्जी और मणि नानवती को अपनी वासना की पूर्ति का माध्यम बनाता है। 'हक हलाल' का पण्डित अपने से बहुत कम उम्र की पत्नी के भाग जाने पर उसकी छोटी बहन को घर ले आता है। पत्नी के लौट आने पर भी वह अपनी किशोरी साली को वापस नहीं लौटाता, बल्कि सौ-दो सौ रुपये

देकर उसे भी रख लेना चाहता है । अपने वासना–मूलक अत्याचारों पर वह मानवीय संवेदना का पर्दा डालता है । “वह अब कहाँ जाएगी जी ?... इसका बाप बहुत गरीब आदमी है । उसके पास इसे खिलाने के लिए एक पैसा भी नहीं है । उसको इसका सौ–सवा सौ चाहिए सो मैं ही उसे दे दूँगा । इतने दिनों से घर में रही है, सो अब छोड़ने को मन नहीं करता । आदमी को आदमी से मोह हो जाता है ।”[२५] अर्थ केन्द्रीत समाज व्यवस्था में पुरूष की मनःस्थिति पण्डित के माध्यम से स्पष्ट है । पुरूष की विकृत मनःस्थिति का एक यथार्थ चित्रण ‘वासना की छाया में’ के जाट में है जो अपनी बेटी के बदले अपने लिए एक औरत चाहता था, “जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन राँधकर उसे खिला सकती हैं, क्योंकि वह जमींदार है और उसके घर में एक गाय और दो भैंसें हैं और उसकी हड्डियों में जितना जोर है, उससे कहीं अधिक उसकी गांठ में पैसा है ।”[२६] सेक्स के संदर्भ में पुरूष की मनःस्थिति का चित्रण ‘बनिया बनाम इश्क’ कहानी में भी चित्रित है ।

राकेशजी की कुल ६६ कहानियों में से करीबन २० कहानियों में मूल्य, संघर्ष एवम् तनाव की स्थितियों को अभिव्यक्ति मिली है । ऐसी कहानियों में ‘ग्लास टैंक’, ‘फौलाद का आकाश’, ‘क्वार्टर’, ‘मलबे का मालिक’, ‘पाँचवें माले का फ्लैट’, ‘आखिरी सामान’, ‘नये बादल’, ‘गुंझल’, ‘आर्द्रा’, ‘सेफ्टी पिन’, ‘बस स्टैण्ड की एक रात’, ‘रोजगार’ आदि को लिया जा सकता है । ‘ग्लास टैंक’ कहानी में परिवार का प्रत्येक सदस्य जीवन के प्रति अपनी मान्यताएँ रखता है । कहानी में नीरू और मम्मी का सुभाष के प्रति ढ़लना और फिर उनकी छटपटाहट में राकेशजी ने प्रतीकात्मक ढ़ंग से तनाव की स्थिति को व्यक्त किया है । मामा भी सुभाष को देखकर अपने अतीत की पीड़ा से झुलस सी जाती है और उसी भावानुकूलता में अपनी बिटिया से कहती है – “नीरू और जैसी भी होना अपनी ममा जैसी मत होना ।”[२७] यह सत्य है कि ममा सुखी है लेकिन मन का सुख नीरू के डैडी के साथ उसे कहाँ मिल सकता है । फलतः आत्म पीड़ा और तनाव से ही गुजरना पड़ता है । ‘फौलाद का आकाश’ की मीरा अपने पति रवि और मित्र राजकृष्णदास दोनों के लिए मानो ‘रिलेक्स’ का माध्यम बनकर रह जाती है । कहानी में मूल्य–बोध की व्यर्थता प्रकट होती है । ‘क्वार्टर’ कहानी में भी नयी और पुरानी पीढ़ी का मूल्य संक्रमण अभिव्यक्त है । शंकर और राधा नौकरी पेशा पति–पत्नी नई दिल्ली में गोल डाकखाने के पास, कनाट प्लेस से कुल आधा मील दूर आधुनिकता में ताल मिलाने के लिए पाँच कमरे का क्वार्टर लेते हैं, लेकिन पापा, दो भाई, बहनें, मित्र वर्ग आदि के आवागमन से क्वार्टर मुसाफिरखाना बन जाता है ।

'खाली' कहानी में जुगल और तोषी पति-पत्नी साथ रहते है, लेकिन उनके दाम्पत्य संबंध में कोई मूल्य नहीं, लगाव नहीं। इसका मुख्य कारण पति की व्यस्तता। जुगल सुबह से शाम तक दफतर के कागजातों में उलझा रहता है। डूबते सूर्य के साथ वह भी घर में आकर अस्त होती जिन्दगी को महसूस करता है।

'आखिरी सामान' कहानी में स्वरूपवान नायिका मिसेज भण्डारी आकर्षण का केन्द्र है लेकिन वह अपने पति की पदोन्नति के लिए उसके अधिकारी की वासनापूर्ति का साधन बनना अस्वीकार कर देती है, फलतः पति का जेलगमन और घर की नीलामी सहती है। आखिर में घर की नीलामी के वक्त उसे नीचे बुलाया जाता है तो वह अनुभव करती है, "सीढ़ियाँ उतरते हुए उन्हें लगा, जैसे वे आप नहीं उतर रहीं, घर का आखिरी सामान नीचे पहुँचाया जा रहा है।"[२८] कहानी का परिवेश ऐसा है जहाँ मूल्यों का ह्रास है लेकिन मिसेज भण्डारी तनाव सहते हुए अपने चरित्र-मूल्य और अस्तित्व की रक्षा स्वयं कर लेती है। 'मलबे का मालिक' राकेशजी की प्रसिद्ध कहानी है। यह कहानी विभाजन के नृशंस कृत्य एवम् संत्रस्त जीवन को सिर्फ उजागर नहीं करती किन्तु मूल्यों के ध्वंस और निर्माण की ओर संकेत भी करती है। राकेशजी की 'आर्द्रा' कहानी भी काफी प्रसिद्ध है। प्रस्तुत कहानी संबंधों के तनाव और अन्तराल में छटपटाती माँ की विडंबना और संवेदना की बड़ी करुण व्यंजना है। कहानी में बड़ा भाई आधुनिक सुख संपन्नता का जीवनयापन करता है तो छोटा भाई बम्बई की झूँपड़पट्टी का अभावग्रस्त जीवन जीता है। लेकिन माँ के दिल में दोनों के प्रति ममता है और दोनों के साथ रहकर विपरित परिस्थितियों एवम् भाईयों के बीच ह्रास ग्रस्त संबंधों के कारण तनाव की जिंदगी से वह गुजरती है। 'सुहागिने' कहानी में पति-पत्नी के संबंध एक-दूसरे के परे हैं। किसी का होना या न होना कोई माने नहीं रखता। सभी को किसी न किसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अलग-अलग रहना पड़ता है। मनोरमा को पति से दूर जाकर नौकरी करनी पड़ती है। मनोरमा की नौकरानी काशी अपने पति से दूर रहकर बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए स्कूल में दायी का काम करती है। दोनों की व्यस्त जिंदगी दोनों को एक दूसरे से काटकर रख देती है। जब भी पति सुशील की चिट्ठी आती है, तो उसे लगता है कि अकेलापन दूर हो जायेगा। पर चिट्ठियाँ पढ़कर उसे लगता है कि "जैसे वह एक चश्में से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके होंठ गीले रेत से छूकर रह गए हों।"[२९] उसका अलगाव उसे एक हिलती-डूलती काया मात्र बना देती है। दूसरी तरफ काशी अपने पति अयोध्या से इसलिए जुड़ी है कि वह उसका पति है। कहानी में सभी संबंधों का बोध बना रहता है।

मनोरमा सुशील से कुछ कहना चाहती है और वह अपना खालीपन उसे बताना चाहती है, लेकिन चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती। सुशीला के हृदय में मातृत्व उमड़ रहा है किन्तु सुशील इस बारे अभी तैयार नहीं है। "अपने को उसके शरीर में खो देने के बाद जब सुशील उससे दूर हटने लगता तो यह उसे और भी पास कर लेना चाहती थी। वह कल्पना में अपने को एक छोटे–से बच्चे को अपने में लिए हुए देखती और पुलकित हो उठती। उसे आश्चर्य होता कि क्या सचमुच एक हिलती–डुलती काया उसके शरीर के अंदर से जन्म ले सकती है। कितनी बार वह सुशील से कहती थी कि यह आश्चर्य को अपने अंदर अनुभव करके देखना चाहती है। मगर सुशील इसके हक में नहीं था। वह नहीं चाहता था कि अभी कुछ साल वे एक बच्चे को घर में आने दें।"[३०] उसका अलगाव उसे एक हिलती–डूलती काया मात्र बना देता है। दूसरी तरफ काशी अपने पति अयोध्या से इसलिए जुड़ी हुई है कि वह उसका पति है। कहानी में सभी संबंधों का बोध बना रहता है। मनोरमा सुशील से कुछ कहना चाहती है और अपना खालीपन उसे बताना चाहती है, किन्तु चाहकर भी कुछ नहीं कह पाती। अतः वह अनिर्णित स्थिति में दिखाई देती है। 'ग्लास टैंक' कहानी में भी मानवीय संवेदना के साथ मातृत्त्व को राकेशजी ने भलीभाँति प्रस्तुत किया है। कहानी की ममा अतीत की जिंदगी के डॉक्टर शम्भूनाथ से तो नहीं जुड़ पायी उसके बेटे सुभाष से जुड़ने का प्रयास भर करती है। "ममा सुभाष की बातें सुनते–सुनते काम करना भी भूल जाती थी।"[३१] सुभाष को देखकर उसके पिता शम्भूनाथ की स्मृति एवम् अनिर्णय के दर्द को चुपचाप सह लेती है। लेकिन पति के डर से प्रेम को जबान पर आने नहीं देती। दूसरी तरफ नीरू के मन में सुभाष के प्रति आकर्षण रहता है। बचपन में उसे 'ब्राऊन कैट' कहता था। आज बड़ा होने पर भी उसकी छोटी बहन को सहलाते हुए 'ब्राऊन कैट' कहता है, उस वक्त की नीरू की प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है – "यह भी लगता है कि मैं आँखों से कह रही हूँ कि जिसे तुम सहला रहे हो वह ब्राऊन कैट नहीं है। ब्राऊन कैट में हूँ। मैं यहाँ से दूर अँधेरे में खड़ी हूँ। चाह रही हूँ कि कोई आकर मुझे देख ले और गोद में उठा ले।"[३२] नीरू मानो अँधेरे में खड़ी होकर निश्चय नहीं कर पा रही है। उसका चुनाव अवसाद बन कर उसके हृदय में घुमड़–घुमड़ कर रह जाता है। ममा भी सुभाष को देखकर अपने अतीत की पीड़ा से झुलस जाती है और भावुक हो जाती है। 'एक और जिन्दगी' के प्रकाश और बीना पति–पत्नी अहं तथा तालमेल न बैठ पाने के कारण तलाक के बिन्दु पर आ जाते हैं। लेकिन रागात्मक संबंधों में पुत्र पलाश के कारण उन दोनों की स्थिति अनिश्चय की बनी रहती है। 'शिकार' कहानी में जेब कतरे पटवर्द्धन

की मनःस्थिति के निश्चय-अनिश्चय का बोध सुंदर ढंग से रूपायित हुआ है। बुधवार को पंद्रह रूपये जुए में हारकर उसके पास डेढ़ रूपया बचा था, जिससे उसने किसी तरह अब-तक काम चलाया था, लेकिन सिर्फ दो इकन्नियाँ रहने पर पटवर्द्धन चर्चगेट से अंधेरी, अंधेरी से ग्रांट रोड, ग्रांट रोड से फिर अंधेरी खड़े-खड़े गाड़ी में चक्कर लगाता है। दादर स्टेशन पर फास्ट गाडी में एक पारसी की जेब से स्पर्श होता है लेकिन भीड़ और अनिश्चिय बोध की स्थिति में काम नहीं बनता, तब एक नवयुवक की जेब पर उसकी नजर केन्द्रित होती है, लेकिन यहाँ भी "पटवर्द्धन का मन चाह रहा था कि जिन्दगी लौटकर कुछ मिनिट पहले के उस मुकाम पर चली जाए जब उसके चारों तरफ भीड़ का दबाव बढ़ रहा था, पर उसका हाथ अभी नवयुवक की जेब तक नहीं पहुँचा था।"[३३] जैसे स्त्री-पुरूष संबंधों की संवेदना को निरूपित करनेवाली कहानियों में पुरूष या स्त्री, पति एवम् पत्नी अनिर्णय के दौर से गुजरते है वैसे यहाँ राकेशजी का संकेत है कि वर्तमान परिवेश का दबाव ऐसा है कि अनिर्णय और अनिश्चय की स्थिति से हाथ सफाई में उस्ताद पटवर्द्धन जैसा जेब कतरा भी मुक्त नहीं है। 'सौदा' कहानी में अमृतसर से आया लाला कश्मीर सैर के वक्त भी इस स्थिति से मुक्त नहीं रह पाता। कश्मीर में यह लाला चंदनवाडी जाने के लिए घोडों के किराये के बारे में अनिर्णय की स्थिति-बोध से पीड़ित होने से चंदनवाडी की सैर का आनंद नहीं ले पाता और अपनी बीबी-बच्चे को भी उसकी सजा सहनी होती है। यहाँ हम स्पष्ट मानते है, कि लाला की कंजूसी काम नहीं करती बल्कि अनिश्चित मानसिक स्थिति के कारण कश्मीर यात्रा में सैर के वक्त झुझलाहट पाता है। राकेशजी का मानना है कि अपना शहर छोड़कर मनुष्य प्राकृतिक स्थान पर सोदेश्य जाता है, फिर भी मन-जीवन की स्थिति उसका साथ नहीं छोड़ती।

आधुनिक जीवन में व्यक्ति पुरानी मान्यताओं और परंपराओं को अस्वीकार कर रहा है। स्वतंत्र ढंग से जीने की उसमें एक उद्दाम भावना दिखाई देती है। विवेक और स्वतंत्र व्यक्तित्व से ही वह नैतिक और अनैतिक का चुनाव करता है। नैतिकता के दायरे में भी आगे चलकर आधुनिक युवक मानवीयता और नये मूल्यों की खोज करता है। 'जंगला' पारिवारिक संघर्ष और संवेदना को प्रस्तुत करने के साथ-साथ परंपरा और रूढ़ियों पर पुनःविचार करने पर मजबूर करती कहानी है। कथानायक बिशन के माता-पिता के अंतर्मन में चलनेवाला द्वन्द्व और अंततः मन-ही-मन बिशन और राधा के संबंध को मान लेना पुरानी मान्यताओं और रूढ़िग्रस्त नैतिकता की पराजय है। परित्यक्ता राधा के साथ बिशन के संबंधों को अस्वीकार और तिरस्कार करनेवाली माँ

अंत में यह निर्णय लेती है, कि – "मेरी तरफ से वह किसी को भी घर में ले आए, मैं यहाँ न पड़ी रहूँगी, पीछे के कमरे में पड़ी रहूँगी ।"[३४] दूसरी ओर कहानी में टूटते संबंधों के बीच वात्सल्य जैसी शाश्वत भावना के प्रबल विजय को भी दर्शाया गया है । नयी–पुरानी मान्यताओं के संघर्ष के बीच वात्सल्य–भाव मानवीय संबंधों का साथ देता है । राकेशजी की कहानियों में आर्थिक, राजनीतिक एवम् सामाजिक परिस्थिति से उत्पन्न त्रासद एवम् यंत्रणामूल्य स्थितियों के कारण समकालिन व्यवस्था के प्रति आक्रोश और अनास्था प्रकट होती है । 'मलबे का मालिक' यद्यपि भारत–पाकिस्तान विभाजन की कृत्रिमता और उससे उत्पन्न मानव संवेदना और मूल्यों को निरूपित करनेवाली कहानी है, किन्तु उसमें एक परिद्दश्य उभरा है, वह पडोशी और दो जातियों एवम् मनुष्य–मनुष्य के बीच अनास्था के तीव्रतम भाव को भी पैदा करती है । 'नये बादल' में सार्वजनिक स्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार को देखकर सामान्यजन में अनास्था तथा सार्वजनिक संस्थाओं के प्रति हमदर्द लोगों के दिल को दुःख पहुँचाता है । 'क्लेम' कहानी में शरणार्थियों को दी जानेवाली सरकारी सहायता का एक माहौल विधवा स्त्री के पात्र द्वारा सामान्यजन में इस तंत्र के प्रति अनास्था का तीव्र बोध निरूपित करता है । राकेशजी क्योंकि इस स्थिति के भोक्ता और सूक्ष्म पर्यवक्षक रहे हैं , अतः इस बोध का निरूपण बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है । जिन्होंने अपनी वास्तविक जायदाद से अधिक क्लेम माँगे उन्हें तो एक लम्बी–चौडी रकम मंजूर हो गयी किन्तु जिन्होंने सत्य का आश्रय लिया वे घाटे में रहे । एक स्त्री का १८,००० का क्लेम मंजूर होता है क्योंकि वह विधवा है । एक और व्यक्ति है जिसकी आँखों की रोशनी कम हो गयी है, वह केवल हजार रूपये चाहता है, जिससे छोटी–मोटी दुकान ही लगा सके । लेकिन उसे कुछ नहीं मिलता । 'परमात्मा का कुत्ता' भी सरकारी व्यवस्था की निष्क्रियता, घूसखोरी, जड़ता, अन्याय आदि को निरूपित करती हुई उपेक्षित आदमी की मार्मिक व्यथा और संवेदना निरूपित करती है । ये सारी कहानियाँ सरकारी तंत्र की यथार्थता चित्रित करती लोगों में उस तंत्र के प्रति बढ़ते अनास्था के स्वर को गहराती है । स्त्री–पुरूष संबंधों के ह्रास को निरूपित करनेवाली कुछ कहानियों में भी इस प्रकार की संवेदना है । जैसे 'आखिरी सामान' में पति का पदोन्नति के लिए पत्नी को उच्चअधिकारी के पास मुर्गे की तरह पेश करना स्त्री के मन में पुरूष के प्रति अनास्था को ही बढ़ानेवाली घटना है । इस वर्ग की कहानियों में एक मात्र 'उसकी रोटी' में आस्था का मंद स्वर मुखरित होता है । यद्यपि इस कहानी का प्रत्यक्ष कैनवस छोटा और साधारण है, पर यह जिस परोक्ष की ओर ऊँगली उठाती है वह न तो छोटा है और न साधारण ।

'मिस पाल' कहानी में मिस पाल बचपन में माता–पिता से स्नेह न मिलने के कारण घर छोड़कर दिल्ली जैसे शहर में नौकरी करती है। लेकिन उसके देह की सीमाहीन विस्तृति और चेहरे की रंगहीन छवि उसके लिए अभिशाप है जो ओफिस में भी उसे सबसे अलग कर देती है। वह अपने खालीपन को भरने के लिए संगीतकला एवम् चित्रकला में कुछ सार्थकता पाने का श्रम उठाती है किन्तु वहाँ भी असफल रहती है। दिल्ली की नौकरी छोड़कर मनाली के पास छोटे से गाँव में चली जाती है लेकिन यहाँ भी अकेलेपन की अनुभूति गहराती रहती है। कथानायक को छोडने आई मिस पाल को देखकर बच्चे मजाक करते है और उसका हृदय भर आता है –"मगर बच्चे पास आने की बजाय और भी दूर भाग गए। मिस पाल कुछ देर सड़क के बीच रुकी रही, फिर लौटकर मेरे पास आ गई। उस समय उसके चेहरे का भाव बहुत विचित्र लग रहा था। उसकी आँखों में आए हुए आंसू नीचे गिरने को हो रहे थे और वह उन्हें झुठलाने के लिए एक फीकी हंसी का प्रयत्न कर रही थी। उसने अपने होठों को जाने किस तरह काटा था कि एकाध जगह से उसकी लिपस्टिक नीचे फैल गई थी।"[३७] डॉ. इन्दनाथ मदान के शब्दों में "मिस पाल का एकान्त में लौट जाना, अतिथि से कटजाने की कोशिष करना, दो लड़कियों की खुसुर–पुसुर से उसके आदमी या औरत होने में संदेह का संकेत, उनको निकट आकर देखने का सूचन, पहाड़ी बालकों की सुंदरता को आँखें झपकाकर देखना आदि इस तनाव को कसते हैं और गहराते है।"[३८] 'सीमाएँ' की उमा हीन भावना से ग्रस्त है, फलतः सुंदर से सुंदर वस्त्र और अच्छे से अच्छे गहनों में भी अपनी सखी के साथ विवाहोत्सव में भी अपने आप को अकेली पाती है। 'दोराहा', 'लक्ष्यहीन' और 'धुंधला दीप' तीनों कहानियों में एक ही व्यक्ति की मनःस्थिति का चक्र चलता है। तीनों कहानियों में पात्र 'केसरी' है। केसरी ही जीवन के दोराहे पर खड़े होकर धुँधला दीप की गली से गुजर कर लक्ष्यहीन तक पहुँचता है, जहाँ पहुँचकर उसे नितांत निर्जन और एकान्त का एहसास होता है।

आधुनिकीकरण के दौर में आदमी और आदमी के बीच एक अजनबीपन बढ़ता चला जा रहा है। सहज मानवीय संबंधों की गर्मी एक ठंडी उदासीनता का रूप लेती जा रही है। आपाधापी की इस दुनियाँ में एकाकीपन और परायापन आज के जीवन की अनिवार्यता सी बन गई है। जीवन की यह अनिवार्यता वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में सर्वत्र व्याप्त है। क्योंकि वैयक्तिक संबंधों को नितान्त निर्वैयक्तिक संबंध स्थापित होते जा रहे हैं। मनुष्य का सचेतन, सहज और रचनात्मक कार्य विच्छिन्न होता जा रहा है और वह अपनी निजता खोता जा रहा है। धीरे–धीरे

संवेदन–शून्यता निःसंगता और जड़ता बढ़ गई है । राकेशजी ने स्वयं ही कहा है – "व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी एक दूसरे से भिन्न और आपस में कटी हुई इकाईयाँ न मानकर यहाँ उन्हें एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयत्न हैं जहाँ व्यक्ति समाज की विड़म्बनाओं का और समाज व्यक्ति की यंत्रणाओं का आईना है ।"[३७] क्योंकि टूटकर जुड़े रहने की समकालीन छटपटाहट राकेशजी की अधिकांश कहानियों में है ।

राकेशजी की कहानियों में बाल मनःस्थितियों का मार्मिक चित्रण है । आधुनिक जीवन की पीड़ा एवम् तनाव केवल वयस्क लोग ही नहीं झेलते हैं, बाल मन भी इस तनाव और जटिलता से प्रभावित है । राकेशजी की कहानियों में अनेक ऐसे बाल–चरित्र हैं जो आधुनिक जीवन के विघटन और तनाव से जर्जरित है । राकेशजी की प्रारंभिक कहानी 'नन्ही' में बाल मनःस्थिति का मार्मिक चित्रण है । सौतेली माँ में अपनी मृत माँ के वात्सल्य की छाया ढूँढ़ती नन्ही उपेक्षित होकर भयानक मानसिक आघात पाती है । अन्यतः ज्वरग्रस्त होकर मर जाती है । इसी कहानी में नन्हीं माँ कम उम्र की बालिका है, जो संबंधों और रिश्तों की भूलभूलैया में किंकर्तव्यविमूढ़ बनकर रह जाती है । एकाएक बेटी से माँ बन जाने की मनःस्थिति को वह स्वीकार नहीं पाती है । वह एक विचित्र अनुभूति और मनःस्थिति का शिकार बनती है । 'पहचान' कहानी में शिवजीत की माँ अपने पति सचदेव से तलाक लेकर अबरोल से विवाह कर लेती है । शिवजीत सचदेव का नाम अब शिवजीत अबरोल हो गया है । वह इस नई परिस्थिति को स्वयं 'एडजस्ट' नहीं कर पाता है । टूटते परिवार और बिखरते संबंधों के बीच नये संदर्भ की तलाश में बच्चों का हीन–ग्रन्थी से ग्रस्त मनःस्थिति का चित्रण शिवजीत के माध्यम से है । माता–पिता के संबंधों के कारण बच्चों पर पड़े प्रभाव की यह बहुत प्रभावशाली कहानी है । इसी प्रकार 'मरुस्थल' भी उसे अभिव्यक्त करनेवाली बेजोड कहानी है । सात वर्षिया इंदु की माँ नसीमा जो कभी वेश्या थी, बाद में अभिनेत्री बन जाती है । इन्दु का पिता धनपतराय जो कभी थियेटर के पर्दे खींचता था, बाद में फिल्म कार्पोरेशन का मैनेजिंग डाइरेक्टर बन जाता है । दोनों ही पुत्री को व्यावसायिक दृष्टिकोण से देखते हैं । इस छोटी उम्र में भी वह इतनी समझदार है कि देखनेवाले की बूरी दृष्टि को पहचान लेती है । उसे गोपाल इसी कारण अच्छा नहीं लगता । जब वह गोपाल को माँ से यह कहते हुए सुनती है – "अच्छा तू इंदु को मेरे हवाले कर दे, उसका जो तू चाहे ले ले ।" तो वह कहती है – "मैं तो ऐसी बात पर इसको थप्पड मारती, मगर अम्मी चुपचाप हँसती रही । .... अम्मी वैसे तो हमको पीटती है पर उसके सामने ऐसे तारीफ करती थी

जैसे सचमुच हमको बेचना ही हो ।"[३८] उसे अम्मी का गोपाल के साथ भागने की योजना बनाना भी अच्छा नहीं लगता । इन्दु पढ़-लिखकर डॉक्टर बनना चाहती है पर धनपतराय उसे पैसा कमाने का जरिया बनाना चाहता है । जब उसे रंडी की औलाद कहा जाता है तो उसकी आँखें भर आती हैं और हृदय भारी हो जाता है । एक बालिका की यह दर्दीली तसवीर पाठक के हृदय-पटल पर बहुत गहराई से अंकित हो जाती है ।

नये परिवेश में मनुष्य की स्थिति पर विचार करते हुए डॉ. सुषमा अग्रवाल ने लिखा है – "फलतः नये परिवेश में मनुष्य अनेक अन्तर्विरोधों का पुंज बन कर रह गया । उसकी आकृति पर स्याह धब्बे पड़ते गये, आँखों में धुंध छाती गई, कान और नासिका व कर्ण रंध्रों में गैसीली वायु भरती गई जिसके प्रभाव से मनुष्य न केवल हताश हुआ अपितु उसके मस्तिष्क के चूलें हिल गई, 'फास फोरस' चुकता चला गया और वह अपनी ही टाँगों पर खड़ा गट्ठर हो गया । कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य की चेतना सुन्न हो गई ।"[३९] यह स्थिति मनुष्य की संवेदनशून्यता की द्योतक है । संवेदनशून्यता की अभिव्यक्ति राकेशजी के साहित्य में भी विद्यमान है । 'खाली' कहानी का शीर्षक संवेदनशून्यता की व्यंजना करता है । कहानी के कथ्य में भी इसकी अभिव्यंजना होती है । पत्नी तोषी जो शादी के पहले हसमुख स्वभाव की थी लेकिन शादी के पश्चात् घिसीपिटी रोजमर्रा की जिंदगी से निरंतर रिक्त होने का अनुभव करती है । पति जुगल सुबह से शाम तक दफ्तर के कागजातों में उलझा रहता है । डूबते सूर्य के साथ वह भी घर में आकर अस्त होती जिंदगी महसूस करता है । शादी के आठ साल के बाद की दोनों की यह स्थिति है । जुगल को लोगों से चिढ़ थी, बल्कि अपने आपसे भी चिढ़ थी । "जुगल से शादी होने से पहले उसकी जिंदगी कितनी भरी हुई लगती थी, लेकिन अब उसके साथ रहते हुए उसकी जिंदगी बाहर की दुनिया से उत्तरोत्तर कटती गई ।"[४०] ऐसी स्थिति के बीच संवेदनशून्यता बढ़ती जाती है, जिसका प्रभाव बेबी पर भी होता है, – "बेबी उसी तरह है ... सोफे के कोने में गुमसुम बैठी हुई है ।"[४१] 'आर्द्रा' में माँ अपने बड़े बेटे लाली के परिवार में संवेदनशून्यता का अहसास करती है । "बचन सोचती कि काम करने के लिए नौकर है, और देख-भाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किस लिए है ? सवेरे पांच बजे से रात के दस बजे तक वह क्या करे ? पंद्रह दिन पहले जब वह आई ही थी, तो बच्चे उसे घेरे रहते थे । उन्हें दादी माँ से हजारों बातें कहनी और शिकायतें करनी थीं । मगर चार दिन में ही उनके लिए उसकी

नवीनता समाप्त हो गई थी।"[४२] क्योंकि शहर में रहते हुए परिवार के सभी लोगों की अपनी व्यस्तताएँ थी, जिनमें उनका समय बटा हुआ था। अपने बेटे लाली का समय कीमती था। वह आधी–आधी रात तक बैठ दूसरे दिन के केस तैयार करता था। मुवक्किलों की वजह से उसका खाने–पीने का भी समय निश्चित नहीं रहता। माँ दिन भर की थकान के बाद उसके आराम में खलेल नहीं डालना चाहती। फलतः वह मन मसौसकर रह जाती है। मातृत्व के भाव और शहरी जिंदगी की व्यस्तता की टकराहट से एक संवेदना की स्थिति पैदा होती है। राकेशजी का संकेत है कि शहर का जीवन परिवार में संवेदनशून्यता को भी भरता है। 'फौलाद का आकाश' कहानी में पति–पत्नी के संबंधों का ठंडापन अभिव्यक्त हुआ है। रवि के व्यस्त एवम् यांत्रिक जीवन से मीरा ऊब और अकेलेपन का अनुभव करती हुई संवेदनशून्यता अनुभव करती है। वह कहती है – "जब रवि बोलता, तो उसकी बात में शब्द कम और आंकड़े ज्यादा होते हैं। आंकड़े, आंकड़े, आंकड़े... मीरा को लगता कि उससे प्यार करते वक्त भी वह मन–ही–मन चुम्बनों की गिनती करता रहता होगा ...।"[४३] ब्याह के पहले मीरा ने रवि के व्यक्तित्व के साथ धुलमिल जाने की बात सोची थी, लेकिन अब वह अंतरंग से अंतरंग क्षणों में अपने को रवि से अलग पाती थी। इतने सालों से वह हररोज दोनों वक्त सिर्फ दो आदमियों का खाना बनाती आ रही थी। यहाँ मातृत्व की प्यास उजागर होती है। लेकिन पति की निरंतर यांत्रिकता, व्यस्तता, जिंदगी की एकतारता दाम्पत्य जीवन में संवेदनशून्यता में परिणत होते है। फौलाद का ठंडापन संवेदनशून्यता की व्यंजना करता है। इस प्रकार राकेशजी की 'रोजगार', 'अपरिचित', 'उर्मिल जीवन', 'हक हलाल' और 'गुनाह बेलज्जत' आदि कहानियों में यह स्थिति व्यंजित है।

राकेशजी की कहानियाँ शिल्प और संवेदना की दृष्टि से अपनी पूर्ववर्ती कहानियों का स्वाभाविक विकास है। 'कफन', 'चित्र का शीर्षक' जैसी बहुचर्चित कहानियों के विकासक्रम में राकेशजी की कहानियों को देखने से यह प्रतीत हो जाता है। नाटक और उपन्यास की तरह राकेशजी की कहानियाँ अपने सोद्देश्यता और संवेदना में एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर होती हैं। राकेशजी की कहानियों में मानवीय संवेदना का ऊहापोह ही केन्द्र में है। इस संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए राकेशजी ने अनेक प्रकार के शिल्पगत प्रयोग किए हैं। शिल्पगत विविध आयामों द्वारा मध्यवर्गीय जीवन में संघर्षशील मानव के उद्दाम आशावादिता और अपराजेय क्षमता, धैर्य और न हारने वाली

हिंमत का चित्रण राकेशजी की कहानियों में है। गनी, मिस पाल, आर्द्रा, पाल, मिस्टर भाटिया आदि ऐसे चरित्र हैं जो अपनी कमियों और विशेषताओं के साथ अपने अंदर एक अपराजेय संघर्ष को जारी रखे हुए हैं। राकेशजी की कहानियों का यह संवेदनात्मक रूप आधुनिक जीवन के घटाटोप के बीच एक आलोक स्तंभ हैं। यही उनकी कहानियों को संवेदना के स्तर पर एक अर्थवत्ता प्रदान करती है।

संदर्भ सूची

१.	कथायन भूमिका	सं. परमानन्द गुप्त	०७
२.	श्रेष्ठ कहानियाँ, , भूमिका	डॉ. विजयपाल सिंह, डॉ. राजीव सिंह	०२
३.	श्रेष्ठ कहानियाँ, भूमिका	डॉ. विजयपाल सिंह, डॉ. राजीव सिंह	०१
४.	भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत	डॉ. सुरेश अग्रवाल	३४८
५.	कथायन भूमिका	सं. परमानंद गुप्त	०६
६.	श्रेष्ठ कहानियाँ, भूमिका	डॉ. विजयपाल सिंह, डॉ. राजीव सिंह	
७.	श्रेष्ठ कहानियाँ, भूमिका	डॉ. विजयपाल सिंह, डॉ. राजीव सिंह	
८.	नये बादल की भूमिका	मोहन राकेश	२३
९.	एक दूनिया समानांतर	राजेन्द्र यादव	१०
१०.	नई कहानी की मूल संवेदना	डॉ. सुरेश सिन्हा	१०१
११.	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल	६१
१२.	हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	०४
१३.	वारिस जीनियस	मोहन राकेश	२२२
१४.	हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास	डॉ. सुरेश सिन्हा	५८१
१५.	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुष्मा अग्रवाल	१११–११२
१६.	वारिस – एक और जिन्दगी	मोहन राकेश	३२
१७.	वारिस – जखम	मोहन राकेश	२३३
१८.	वारिस – जानवर और जानवर	मोहन राकेश	१६३
१९.	वारिस – जानवर और जानवर	मोहन राकेश	१७१
२०.	क्वार्टर – मिस पाल	मोहन राकेश	३९
२१.	नयी कहानी तथ्यों के दायरे में – अप्रैल – १९६४	छेदीलाल गुप्त	०१
२२.	मोहन राकेश – एक और जिन्दगी (कहानी नये संदर्भो की खोज) प्रथम संस्करण, दिसम्बर – १९६१ ई.		१४
२३.	वारिस – नये बादल	मोहन राकेश	५७
२४.	वारिस – परमात्मा का कुत्ता	मोहन राकेश	८९

२५.	वारिस – हक हलाल	मोहन राकेश	१५३
२६.	पहचान – वासना की छाया में	मोहन राकेश	१४६
२७.	क्वार्टर – ग्लास–टैंक	मोहन राकेश	९८
२८.	पहचान – आखिरी सामान	मोहन राकेश	७३
२९.	पहचान – सुहागिनें	मोहन राकेश	४०
३०.	पहचान – सुहागिनें	मोहन राकेश	३४
३१.	क्वार्टर– ग्लास टैंक	मोहन राकेश	८४
३२.	क्वार्टर – ग्लास टैंक	मोहन राकेश	९५
३३.	वारिस – शिकार	मोहन राकेश	१२९
३४.	पहचान – जंगला	मोहन राकेश	९५
३५.	क्वार्टर – मिस पाल	मोहन राकेश	३९
३६.	हिन्दी कहानी	डॉ.इन्दनाथ मदान	११७
३७.	मेरी प्रिय कहानियाँ	मोहन राकेश	११
३८.	क्वार्टर – मढस्थल	मोहन राकेश	१५३
३९.	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल	०२
४०.	क्वार्टर – खाली	मोहन राकेश	४५
४१.	क्वार्टर – खाली	मोहन राकेश	४४
४२.	क्वार्टर – आर्द्रा	मोहन राकेश	७३
४३.	क्वार्टर – फौलाद का आकाश	मोहन राकेश	१८६

अध्याय :– ३

मोहन राकेश के कहानी – साहित्य का तात्त्विक विवेचन

(कथानक, चरित्र–चित्रण, देश–काल–वातावरण, भाषाशैली, कथोपकथन, उद्‌देश्य, शीर्षक, प्रारंभ–मध्य–अंत)

३.१	राकेशजी की कहानियों का कथानक	६९
	(१) इन्सान के खंडहर (१९५०)	६९
	(२) नये बादल (१९५७)	७५
	(३) जानवर और जानवर (१९५८)	८०
	(४) एक और जिन्दगी (१९६१)	८४
	(५) फौलाद का आकाश (१९६६)	८९
	(६) अन्य कहानियाँ	९३
३.२	चरित्र–चित्रण	९६
३.३	देश–काल–वातावरण	११०
३.४	भाषाशैली	११४
३.५	कथोपकथन	१२२
३.६	उद्‌देश्य	१३५
३.७	शीर्षक	१३८
३.८	प्रारंभ–मध्य–अंत	१४२
	संदर्भ सूची	१४७

राकेशजी की कहानियाँ विकसित और परिवर्तित होते जा रहे भारतीय जीवन पर आधारित हैं । हमारे आसपास का परिवेश ही उनकी कहानियों में झाँकता है । नई कहानी के कहानीकारों में राकेशजी का स्थान विशेष है । उन्होंने कहानी से संबंधित अनेक प्रश्न उठाए और उन्हीं के माध्यम से उन्हें रचनात्मक दृष्टि प्रदान की । "रचनात्मक जीवंतता और वैचारिक सक्रियता का जो सिलसिला नई कहानी से शुरु होता है, मोहन राकेश उसके एक हिस्से ही नहीं निगहबान भी हैं । कहानी चर्चा के कुछ अहम् सवालों को उठाने में उन्होंने पहल की और अपनी कहानी के माध्यम से उन्हें एक रचनात्मक दिशा दी ।"[१]

राकेशजी ने जितनी कहानियाँ लिखीं, वे नौ कहानी संग्रहों में संकलित हैं, जिनकी कुल संख्या ६३ हैं । राकेशजी की कहानी यात्रा में उनकी कहानियों के पाँच संग्रह काल क्रमानुसार इस प्रकार हैं ।

(१) इन्सान के खंडहर (१९५०)
(२) नये बादल (१९५७)
(३) जानवर और जानवर (१९५८)
(४) एक और जिन्दगी (१९६१)
(५) फौलाद का आकाश (१९६६)

इन संग्रहों में संकलित कहानियों को राकेशजी ने पुनः चार जिल्दों में बाँधने का कार्य भी तत्परता के साथ किया था । इन चार जिल्दों के नाम इस प्रकार है ।

(१) आज के साये
(२) रोयें रेशे
(३) एक–एक दुनिया
(४) मिले–जुले चेहरे

इन संग्रहों में समाहित कहानियाँ प्रायः वे ही हैं जो पहले पाँच संग्रहों में संकलित हैं । इनमें कुछ नई कहानियाँ भी सामिल की हैं । कदाचित इस दृष्टिकोण के पीछे यह भूमिका रही हो कि अलग स्थितियों एवम् संदर्भों की कहानियों को अलग–अलग संग्रहों में देकर एक प्रकार से उन कहानियों में व्यक्त मनोभावों को समग्ररूप से उपस्थित किया जा सके ।

इन्हीं कहानियों को राकेशजी ने तीन संग्रहों में समाहित किया है। ' क्वार्टर' में १५ कहानियाँ, ' पहचान ' में १९ और ' वारिस ' में २० कहानियाँ हैं। उनके ' पहचान' में व्यक्त कुछ मंतव्यों से यह बात ध्यान में आती है कि वे अपनी कहानियों को एक 'सेट' के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे। कमलेश्वरजीने उनकी अन्य अप्रकाशित कहानियों को उनकी डायरियों में से ढूँढ निकाला जो सारिका के मोहन राकेश ' स्मृति विशेषांक' में प्रकाशित हैं। जिनकी संख्या ०९ है।

बनिया बनाम इश्क, भिक्षु, लडाई, कटी हुई पतंगें, गुमशुदा, लेकिन इस तरह, पम्प, अर्धविराम और नन्हीं।

इस प्रकार राकेशजी की कुल ६३ कहानियाँ है। प्रमुख कहानियों का विवरण इस प्रकार हैं।

३.१ राकेशजी की कहानियों का कथानक :

(१) इन्सान के खंडहर (१९५०)

राकेशजी का यह प्रथम कहानी संग्रह १९५० में प्रकाशित हुआ। इन कहानियों में राकेशजी ने अभिजात्य वर्ग की बुलबुलाती आत्मा तथा मध्य वर्ग की घुटी हुई चेतना का सफल चित्रण किया है। उनका स्वर शोषितों, पीड़ितों और श्रमिकों के प्रति दर्याद्र है, धार्मिक आडंबरों व पाखंडों का पर्दाफाश करने में वही स्वर आवेशपूर्ण है। उनकी यह स्वर शैली प्रगति शील चेतना के धरातल पर तैयार हुई है। इस कहानी संग्रह की प्रमुख कहानियों का कथानक निम्नानुसार है।

सीमाएँ :–

इस कहानी में राकेशजी ने अविवाहित लड़की उमा की मनोदशा का चित्रण किया है। अपने आपमें अकेली और शीशे के सामने खडे होने में भी झुझलाहट महसूस करनेवाली उमा एक संस्कारी परिवार की लड़की है जो मिडिल पास करने के बाद पढ़ाई छोड़ चूकी है और घर में अपने माता–पिता के साथ रहती है। उसे हंमेशा ऐसा लगता था कि वह एक गलत शरीर में आ गई है। उसे अपने शरीर से चीढ रहती है। घर के

धार्मिक वातावरण के कारण समाज में हो रहे परिवर्तन और पाश्चात्य विचारों का उस पर प्रभाव नहीं दिख रहा था ।

वह प्राय : बाहर जाना पसंद नहीं करती थी । उसकी सखी रक्षा बिलकूल उससे विरुद्ध प्रकृति की थी – स्वच्छंद, स्वायत और सुंदर । उमा रक्षा के साथ सरला की शादी पर गई और वहाँ उसकी अन्य सखियों से परिचय हुआ तब उमा अपने को उन सब से दूर महसूस करती है । उसे इस वातावरण में भी अकेलेपन का अहसास होता है । इससे भागना चाहती है और पास के मंदिर में हो रही आरती में पहुँच जाती है । आरती के समय वह जब आँखें बंध करती है तो उसे वही सब कुछ दिखता है, शादीवाला घर, वे हसी–मजाक करती लडकियाँ, आसपासमें बैठी स्त्रियाँ । अचानक वह आँखें खोलकर देखती है तो एक नवयुवक उसकी तरफ देख रहा था । उसने अपनी नजर हटा ली ऐसा दो–तीन बार हुआ । यह देखकर वह अपने शरीर को बहुत मुश्कील से संभाल सकी । पुजारी के पास चरणामृत लेने गई तो उसके शरीर से किसीके हाथ का स्पर्श हुआ जो उसी नवयुवक का था ।

उस स्पर्श के कारण उसका लहू तेजी के साथ बहने लगा और उसे दिशा–स्थान का पता नहीं रहा । वह वहाँ से बाहर चली आई । उमा उसी स्पर्श को एक बार फिर महसूस करना चाहती थी और जहाँ उस युवक ने हाथ रखा था उस कंधे को छूने के लिए जब उसने हाथ कंधे पर रखा तो उसके पैर लड़खड़ा गये और शरीर पसीने से भीग गया, क्योंकि उसके गले की सोने की जंजीर वहाँ पर नहीं थी ।

इस प्रकार राकेशजी ने एक अविवाहित और संस्कारी युवती के मनोभावों और वेदना को भली–भाँति प्रदर्शित किया है । इस कहानी में राकेशजी ने उमा के माध्यम से नारी की विवशता को चित्रित किया है ।

दोराहा:–

इस कहानी में नायक केसरी के जीवन में निर्मित दोराहे जैसी परिस्थिति का चित्रण राकेशजी ने किया है । केसरी श्यामा नामक युवती से प्यार करता है मगर श्यामा अपने पहले प्रेमी शील नामक युवक को जलाने के लिए केसरी के जीवन से खेलती है । जब पूर्णिमा केसरी को श्यामा की सच्चाई कहती है तो वह उस पर बिगड़ता है और पूर्णिमा से बात तक नहीं करता । केसरी को जब श्यामा की असलियत पता

चलता है तब उसकी हालत दोराहे पर खड़े व्यक्ति जैसी हो जाती है। साथ ही साथ इस कहानी में राकेशजी ने स्त्री की सतृप्तता का वर्णन भली–भाँति किया हैं।

धुंधलादीप :–

इस कहानी में भी केसरी के द्विधामय और शराबी जीवन को प्रकाशित किया है। प्रेम में आहत केसरी शराब का सहारा लेता है। साथ ही बाबू मोतीलाल की पुत्री राधा के परिचय में आकर वह अपने व्यक्तित्त्व में परिवर्तन लाना भी चाहता है लेकिन फिर वहाँ अपना अतित श्यामा की बात आ जाती है। जब राधा केसरी से श्यामा के बारे में पूछती है तो केसरी कहता है , "ऐसी कोई बात नहीं। श्यामा के साथ मेरी मित्रता रही है। फिर वह अपने प्रेमी शील के साथ कराची चली गई थी। बाद में मुझे बताया गया कि मैं उसके माँ बनने के लिए उत्तरदाई हूँ। मैं ठीक नहीं जानता।"

इस प्रकार केसरी का राधा से संबंध विच्छेद होता है और राधा जिसे भाई कहकर पुकारती थी उस नरेन्द्र के साथ विवाह करती है। कहानी में राकेशजी ने संबंध विच्छेद और सामाजिक असंतुलन को बखूबी चित्रित किया है।

लक्ष्यहीन :–

इस कहानी में राकेशजी ने केसरी की जिन्दगी को आवारा और टूटे हुए व्यक्ति की जिन्दगी बताई है। दुनियाँ की नजरों में वह सनकी और व्यवहार शून्य व्यक्ति है। केसरी समाज में एक बद्‌दिमाग व्यक्ति के रूप में पहचाना जाता है। वह जब युनिवर्सिटी के मैदान में सतीष और खन्ना के साथ खेल देख रहा था तभी उसने पहली बार मंजुला को देखा। सतीष के मंजुला के बारे में पूछने पर जब केसरी कहता है, " लड़की अच्छी है, इसमें कोई संदेह नहीं। दूर से ही लगता है कि उसके शरीर में हर तरह के विटामिन है।" इस पर सतीष केसरी पर बिगड़ जाता है और उसे अभद्र कहता है। यह बात केसरी को झंकझोरकर रख देती है।

केसरी की सहपाठिनी सरोज जब लंडन से लौटकर आई तो उसी खुशी में रात्रीभोज का आयोजन किया। उसमें केसरी को भी निमंत्रण था। वहाँ केसरी का परिचय मंजुला से होता है और मंजुला केसरी से बहुत प्रभावित होती है। मंजुला केसरी को मि.शर्मा के रूप में जानती है जब उसे पता चला कि वह वही रहता है जहाँ केसरी

रहता है तब मंजुला के माध्यम से उसे पता चलता है कि मंजुला के मन में केसरी काफी बददिमाग और व्यवहार शून्य है। इस बात से आहत केसरी अंधेरे रास्ते पर चलता अपने घर की ओर चल देता है।

मरुस्थल :–

बाल मनोविज्ञान संबंधी यह कहानी नौ वर्षिया पात्र इन्दु की कहानी है। इन्दु के पिता धनपतराय कभी थिएटर के पर्दे खींचता था और आज फिल्म कॉर्पोरेशन में मैंनेजिंग डायरेक्टर है और माँ नसीम कभी वेश्या थी और आज अभिनेत्री है। माँ–बाप दोनों ही इन्दु की ओर व्यवसाय की दृष्टि से देखते हैं। उम्र में छोटी पर शयानी इन्दु देखनेवाले की बुरी दृष्टि को पहचान लेती है। वह गोपालबाबु को देखकर कहती है, " इस आदमी से हमको डर लगता है। यह हमको बहुत घूर–घूरकर देखता है।"

नसीम गोपाल के साथ बम्बई इन्दु को लेकर भाग जाने का विचार बनाती है और धनपतराय नसीम को पीटता है और नसीम को इन्दु से दूर रहने के लिए धमकाता भी है। धनपतराय की कंपनी में पैसा लगानेवाले सेठों को इन्दु की मार्केट वेल्यू समझाने के लिए इन्दु की नृत्यकला दिखाना चाहता है। इसी नृत्य कला प्रदर्शन के दौरान इन्दु बेहोश होकर गीर जाती है और घर का वातावरण मरुस्थल–सा बन जाता है।

उर्मिल जीवन :–

इस कहानी का प्रमुख पात्र नीरा नामक सत्रह वर्ष की युवती है। एक महिने पहले ही नीरा की विवाहित बहन का देहांत हो गया था। अब उसी जीजा की पत्नी बनकर नीरा अपनी जीजी के बच्चों की सौतेली माँ बनकर उनके घर आई है। जिस जीजा को उसने सालों पहले थप्पड मारा था, उसी की पत्नी बनकर उसे रहना है यह सोचकर वह थरथरा जाती है। कृष्णा आज तक उसे मौसी कहकर ही बुलाती है और अपनी माँ के वापस आने के बारे में पूछती रहती है। वह सुहागरात की सेज पर बैठी–बैठी अतीत के पन्नें टटोलती है।

राकेशजी ने इस कहानी में नीरा के माध्यम से नारी की विवशता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

वासना की छाया में :–

कथा नायक के यहाँ गढवाली रोटी बनाता है और उसकी विधवा बेटी बरतन मलती है। उसका पडोसी लंबा बूढ़ा जाट वासना की लार टपकाकर उस गढवाली से मुलाकात कराने के लिए कथानायक से कहता है। जाट जमींदार है और उसे एक जमीदारिन की जढरत है। गढवाली जाट से शादी नहीं करते इससे वह हताश हो जाता है। वह रिफ्यूजी कैंप में भी चक्कर लगा आया था। एक पहाड़िन को चार सौ में मना भी लिया था मगर उसके बाल देखकर लड़की मुकर गई। सरदार अपनी तेरह वर्षीय बेटी पुष्पा को बदले में देने के लिए भी तैयार हो जाता है।

वासना का यह विकराल ढप अपनी असलियत और विदारकता के साथ राकेशजी ने प्रस्तुत किया है।

मिट्‌टी के रंग :–

इस कहानी में दो हिन्दुस्तानी सिपाही मित्र मैथिलोन और सदानन्द की कहानी है। मैथिलोन खुशमिजाजी और वास्तववादी व्यक्ति है। जब सदानन्द कहता है कि मुझे युद्ध करना पसंद नहीं तब मैथिलोन कहता है कि हमें लडाई करने के लिए ही वेतन मिलता है और तुम्हारी जान दूसरों ने खरीद रखी है। सदानन्द को गाँव में रहती अपनी पत्नी माधवी की याद सताती रहती है।

कुछ दिनों बाद लडाई में मैथिलोन मारा जाता है। मरते–मरते उसने सदानन्द को एक चिट्ठी और सोने की दो अंगुठियाँ दी। चिट्ठी के अनुसार वह उसे मैथिलोन की बहन तक वह पहुँचाना था। मगर सदानन्द इस तरह घेरा गया था कि वह अपनी जान बचाकर भाग खडा हुआ किन्तु रेगिस्तान की रेत ने उसे विजय नहीं होने दिया। जिस सिपाही को सदानन्द की लाश मिली थी वह महानन्द ने जब चिट्ठी पढ़ी तो उसकी आंखों से आंसू बह चले। उस चिट्ठी में सदानन्द ने जोड़ दिया था कि अंगुठी उसकी बीबी माधवी को मिले। महानन्द ने इस काम का बीडा उठाया। पर छुट्टी की रात घूमते समय इजिप्शियन युवती के साथ पूरी रात बिताने के बाद उसे मूल्य चुकाते समय उसने दोनों अंगूठियां उसे दे दी।

एक आलोचना :

इस कहानी का कथानायक कैलाश एक सफल लेखक और राजकीय पुरुष है। उसकी नई किताब 'संघर्ष के सात साल' देखकर उसका मित्र उसके अतीत में चला जाता है। आर्थिक समस्या के कारण ही उसकी पत्नी तारा की मौत हो जाती है। तत्पश्चात कैलाश पुस्तकें लिखता है और उसे एक नया मंच प्रदान होता है। वह सीख गया था कि "इस दुनिया का एक ही ढंग है अवसर ; और देवता की उपासना का एक ही ढंग है – गीत गाना, फूल चढाना और देवता के कंधों पर सवार होकर अपनी ही आरती उतारना।"

सफलता पाने के बाद व्यक्ति के विचारों में आमूल परिवर्तन आ जाता है। यह राकेशजी ने इस कहानी के माध्यम से दर्शाया है।

कंबल :

यह कहानी शरणार्थी केम्प में रहनेवाली बनारसी और उसके परिवार की व्यथा की कहानी है। बनारसी की माँ गंगादेई को बनारसी के यौवन की फिकर लगी रहती थी। बनारसी की उम्र के कारण उसके मन में भी कई खयाल आते है पर माँ की झुझलाहट उसे रोकती है। रात को सोते वक्त ठंड के कारण सीकुडी बनारसी के घेरे में जब कोई कंबल देने आता है तब बनारसी आँखें मूंद लेती है और आगंतूक उसकी छाती और जांघों पर हाथ फेरता है। पिता के खांसने के कारण वह व्यक्ति कंबल ढांककर चला जाता है। मगर आधी रात गंगादेई कंबल खींच लेती है और बनारसी को ठंड में सिकुडकर रात बितानी पडती है। रात में ही उसके पिता रामसरन का देहांत हो जाता है। दूसरी रात राजू कंबल में रोता है और दोनों मा–बेटी एक दूसरी को लिपटी हुई रोती है।

इस प्रकार राकेशजी ने इस कहानी में अभावग्रस्त और केम्प में रहते लोगों की विडम्बनाओं का मार्मिक चित्रण किया है।

(२) नये बादल (१९५७)

राकेशजी का दूसरा कहानी संग्रह 'नये बादल' १९५७ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कहानियां ऐसे वातावरण में लिखी गई हैं, जब एक ओर विभाजन तथा दूसरी ओर बेकारी की मार ने सबके हृदय में पीड़ा, निराशा भर दी थी। उसी के प्रभाव से राकेशजी के जीवन में अनिश्चितता, निराशा, पीड़ा भर गई और उसी का संकेत इस संग्रह की कहानियों में हैं। युग के सामाजिक यथार्थ और वस्तु सत्य के संदर्भ में इन कहानियों में जीवन की बहुत तीव्र और कड़वी प्रतिक्रिया है तथा बदलते हुए विश्वासों की तीव्र चेतना है। इस संग्रह की प्रमुख कहानियों का कथावस्तु निम्नानुसार है।

छोटी – सी चीज :–

यह कहानी बाल मनोविज्ञान संबंधी कहानी है। इसमें नन्हें यशवीर की कथा है। उसका दाखिला कान्वेट स्कूल में होने के पश्चात उसका बेगानापन और विवशता का स्वाभाविक वर्णन राकेशजी ने किया है। मिस्टर बर्टन के साथ कैसा व्यवहार करना है ? क्या बोलना है ? आदि बातें रटकर यशवीर उसके पास जाता है किन्तु उसके पास पहुँचकर वह सबकुछ भूल जाता है। मगर इस भूल के बावजुद भी उसे बर्टन टोफि देते है और वह आनंदित होकर चला जाता है।

इस प्रकार राकेशजी ने इस कहानी में बाल मनोभावों को प्रस्तुत किया है।

अपरिचित :–

इस कहानी का स्त्री पात्र अपने पति को विदेश जाने के लिए बम्बई छोड़कर वापस अपने घर जा रही है और रास्ते में ट्रेन में समय व्यतित करने के लिए वह किसी अपरिचित से बातें करती है। उसी समय उसके अतीत और व्यक्तित्त्व का परिचय मिलता है। वह स्त्री बहुत से परिचितों के मध्य भी स्वयं को बेगाना अनमेल अनुभव करती है। यही स्त्री कथानायक से खुलकर बात करती है, पहाडी बच्चों में अपनापन खोजती है और अपने पति से भी बात करने में सकुचाती है। कहानी के कथानायक की भी यही हालत है। अपनी पत्नी नलिनी जो पेशे से अध्यापक है उसके साथ विचारभेद के कारण सुखी नहीं है। पत्नी नलिनी स्वतंत्र और महत्त्वाकांक्षी है। कथानायक उसकी किसी भी महत्त्वकांक्षा को पूर्ण करने में सहायक नही हो सकता।

नलिनी एक स्वतंत्र घर चाहती थी, जिसमें उसका शासन हो और ऐसा सामाजिक जीवन जिसमें नलिनी का महत्त्व का दर्जा हो । लेकिन कथानायक अपनी पत्नी से बिलकुल विरोधी विचार रखता था । जिससे दोनों में काफी तनाव रहता था ।

वास्तव में ये कहानी बेमेल रुचियों के कारण आई रिक्तता की कहानी है । स्त्री–पुरुष की रुचि, भिन्नता किस सीमा तक अलगाव पैदा करती है, नारी ऐसी स्थिति में स्वयं को कितना रिक्त और टूटा हुआ अनुभव करती है, आदि इस कहानी का कथ्य है ।

भूखे :–

यह कहानी एक सुंदर, आकर्षक और परिस्थितियों के थपेडों से आहत एवलीन बार्कर नामक स्त्री की है । इग्लेंण्ड में जन्मी एवलीन भारतीय युवक सत्यपाल से शादी करके भारत में लौटे । आर्थिक कमी को पूर्ण करने हेतु सत्यपाल बम्बई और फिर दिल्ली में मारा–मारा फिरता है । और शहर की दौडधामवाली जिन्दगी के कारण सत्यपाल को टी.बी. हो जाता है । फिर वह अपने बीबी बच्चे के साथ शिमला आकर रहता है और वहीं पर अपने प्राण त्याग देता है ।

सत्यपाल पेशे से चित्रकार था । सत्यपालने कई चित्र बनाये थे, पर उसे खरीदनेवाला कोई नहीं था । एवलीन को विश्वास था, कि एक न एक दिन उसके चित्र कोई खरीदेगा और उसकी स्थिति फिर अच्छी हो जायेगी । मगर उस वक्त उसके पास अपने बच्चें को खाने–खिलाने तक के पैसे न थे । समस्त आवारा और शरीफ लोग एवलीन की विवशता का लाभ उठाना चाहते थे पर एवलीन हर संघर्ष का सामना करने को तैयार है किन्तु अपने यौवन का सौदा करने को वह किसी भी किमत पर तैयार नहीं होती ।

एक पंखयुक्त ट्रेजेडी :–

यह कहानी संकेतात्मक कहानी है । इसमें राकेशजी ने दो मूर्गो को एक मूर्गी पाने के लिए संघर्ष करते दिखाया है । सफेद मूर्गा अपने अधिकार क्षेत्र में आई हुई मूर्गी पर अपना अधिकार जताने के लिए पडोश के काले मूर्गे से लडता है । पडोश का निर्बल

काला मूर्गा भी मूर्गी को पाने के लिए जी–जान से कोशीश करता है और अंत में निष्प्राण होकर गीर जाता है। इतना करने के बावजूद भी सफेद मूर्गे के हाथ मूर्गी नहीं लगती।

इस कहानी में राकेशजी ने द्वन्द्व, परिणति, भाव बदलकर जीने के प्रयास, मनुष्य के जीवन के विविध पहलुओं पर संकेत किया है।

मलबे का मालिक :–

यह कहानी विभाजन की विभीषिका के दूरगामी परिणामों की कहानी है।

विभाजन के सात–आठ साल बाद लाहौर से कुछ लोग होकी का मैच देखने अमृतसर आते है। होकी मैच देखने आये लोगों में बूढ़ा मुसलमान गनी भी है जो अपने पुत्र और पुत्रवधू के परिवार को अमृतसर में छोड़ गया था। उन दंगों के दौरान गनी का बेटा चिरागदीन, चिराग की बेगम जुबैदा, बेटियाँ किश्वर और सुलतान सब के सब मारे गये। वह एक बार अपने घर को देखना चाहता है तो पता चलता है वह मकान मलबे का ढेर बन गया है। उस अवशेष के पास दुःखी होता गनी यह नहीं जानता कि वे किसके हाथ थे जो उसके बेटे की जिन्दगी को बरबाद कर गये।

उस इलाके के दादा रक्खे पहलवान ने उस मलबे पर अपना अधिकार जमा रखा था। क्योंकि उस घर को जलाने का कार्य भी उसीने किया था। जब गनी दरवाजे की टूटी चौखट से लगकर विलाप करता हुआ रक्खे से पूछता है – " तू बता रक्खे यह सब हुआ किस तरह ? तुम लोग उसके पास थे। अगर वह चाहता तो तुम में से किसी के घर छिप नहीं सकता था ! उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी ?"

राकेशजी ने इस कहानी में विभाजन की मानसिक भूमिका का सफल मानचित्र प्रस्तुत किया है।

उसकी रोटी : –

इस कहानी की नायिका बालो अपने ड्राइवर पति सुच्चासिंह के लिए रोटी पहुँचाने जाती है। उसे रोटी ले जाने में थोडी देर हो जाती है और सुच्चासिंह अगले स्टेशन चला जाता है। जब वह वापस आता है तब बालो हाथ ऊँचा कर उसे रोटी ले

लेने के लिए आग्रह करती है। मगर सुच्चासिंह का दिमाग आसमान छू जाता है। वह रोटी लेने से मना कर देता है।

फिर रात तक वह सुच्चा का इन्तजार करती रही। जब रात को सुच्चा बस लेकर आया तब बालो सहसा अपने पति को पास देखकर आनंदित हो जाती है। सुच्चा उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है और उसे मंगलवार को घर आने का वादा कर बिदा करता है।

इस प्रकार राकेशजी ने इस कहानी में यथार्थ की कडवाहट के साथ-साथ संस्कारों की शुद्ध आस्था, सांस्कृतिक गरिमा की अपने से जुड़े रहने की भावना को व्यक्त किया है।

नये बादल :-

यह कहानी यथार्थ से जूड़ी हुई है। इस कहानी में सार्वजनिक स्थानों पर चलनेवाले अनैतिक और भ्रष्टाचारपूर्ण कार्यों पर प्रकाश डाला गया है। धर्मशाला का चौकीदार पैसे लेकर अन्य व्यक्तियों को कमरें दे देता है जब कि पहले आए व्यक्तियों को वह मना कर देता है।

पैसे देकर कमरा रखनेवाले चौधरी के कमरें में आये नवयुवक और नवयुवती को लेकर चौधरी परेशान था। वह उन दोनों के संबंध कायम करने में लगा रहता। कभी भाई-बहन समझता, कभी पति-पत्नी तो कभी घर से भागे युगलों के संबंध तलाशता है। इसी उधेडबुन में वह रात को सो नहीं पाता। जब सुबह उसकी आँख खुलती है, तो वह नवयुवक और युवती चले गये थे।

इस कहानी का यथार्थ एक ओर सामाजिकता से जुड़ा है तथा दूसरी ओर स्त्री-पुरुष के साथ रहने से उत्पन्न समस्या को परम्परावादिता के माध्यम से उजागर करता है।

मन्दी :-

इस कहानी में सीजन समाप्त होने के बाद उत्पन्न हुई पहाड़ों की आर्थिक विषमता और विपन्नता को मध्य वर्गीय समाज से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है।

कथानायक पहाड़ियों पर घूमने जाता है उस वक्त वहाँ उसके अलावा और कोई नहीं होता। उसे आता देखकर होटेल का मालिक नत्थासिंह और उसके दो बेटे उत्साह में आ जाते है और उसी उत्साह में नत्थासिंह मुर्गा बनाता है। लेकिन कथानायक कहीं ओर खाकर आता है और नत्थासिंह का बेटा अफसोस करता है कि खामखा साढ़े तीन रूपए लगा दिए।

इस प्रकार 'मन्दी' के दिनों में पहाड़ की रोनक और चहल–पहल पूर्ण हो जाने के बाद बकाया दिन काटते लोगों की असल जिन्दगी को दर्शाया है।

शिकार :–

इस कहानी का नायक पटवर्धन पाकीटमार (चोर) है। वह बम्बई की ट्रेनों में या रेलवे स्टेशनों पर पाकीट मार कर अपना गुजारा करता। जब तक उसके पास पैसें रहते थे वह अपने आप को मुसीबत में डालने के हक में नहीं था। जब उसके पास कुछ नही बचता तब वह चोरी करता।

इस कहानी के माध्यम से राकेशजी ने नवयुवकों की कार्य के प्रति उदासिनता को प्रकट किया है।

फटा हुआ जूता :–

कहानी का कथानायक राय को पहेली पर तीस रूपये का ईनाम प्राप्त होता है। वह इस तीस रूपयें से अपना नया जूता खरीदना चाहता है किन्तु बाजार में जाने के बाद तरह–तरह के जूते देखता है मोल भाव करता है पर कुछ भी खरीद नहीं पाता।

राकेशजी ने राय के माध्यम से अभावग्रस्त युवक की मनोभावनाओं, आकांक्षाओं को यथार्थ परिप्रेक्ष्य में उभारा है। आधुनिक पीढ़ी की भटकन एवम् आर्थिक विपन्नता का चित्रण किया है।

हवामुर्ग :

इस कहानी का नायक रेस्ट–हाउस का चौकीदार संतराम है। जो अपने ही रेस्ट–हाउस के जमादार हरिजन माधो के म्युनिसिपल कमेटि के इलेक्शन में खड़े रहने

की बात से जलता रहता है और रेस्ट–हाउस में आनेवालों से बार–बार यही बात करता रहता है। क्योंकि उन दोनों में अनबन रहती थी।

साथ ही संतराम को माधो से जलन इस लिए भी थी क्योंकि माधो की पत्नी तीन बच्चों की माँ होने के बावझूद लड़की–सी नजर आती थी। दूसरी तरफ उसकी अपनी पत्नी शांति जो एक बच्चे की माँ थी पर लगता था उसकी जवानी दस साल पीछे रह गई है।

माधो के इलेक्शन में जीत जाने पर संतराम को यह भय लगा रहता है कि उसकी शिकायत वह बड़े साहब को कर देगा। अपनी नौकरी के चले जाने के भय के कारण वह शांति को उसी रात मारता–पीटता है।

इसी प्रकार इस कहानी में राकेशजी ने हरिजन माधो के माध्यम से अछूतोध्धार की बात को हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

(३) जानवर और जानवर (१९५८)

'नये बादल' के प्रकाशन के एक वर्ष बाद 'जानवर और जानवर' कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें आठ कहानियों को स्थान दिया गया है। ये कहानियां राकेशजी की तत्कालीन मनःस्थितियों व परिवेश को प्रस्तुत करती हैं। इनका मूल स्वर आर्थिक स्थितियों का सामना करनेवाले निम्न मध्यवर्गीय मजबूरी, यातना, विवशता से जूझते हुए व्यक्ति की जिजीविषा से युक्त है। इनकी पृष्ठभूमि पूर्णतः सामाजिक है। द्रष्टि और मूल्य की संक्रान्ति में निर्माण और विध्वंस की गति और टूटते विश्वासों में भी एक आंतरिक मानवीय आस्था और निष्ठा का संकेत इस संग्रह की कहानियां देती है। इस कहानी संग्रह में राकेशजी परिवेश के प्रति पूरे सजग रहे हैं। आर्थिक विषमता ने भी मनुष्य को किस तरह तोड़ दिया है, लाचार बना दिया है। टूटकर भी मनुष्य जीवन की विडंबनाओं से जूझता हुआ, यातनाएँ सहता हुआ भी जीवन के प्रति रुचि, ललक लिए हुए रहता है यही इन समस्त कहानियों में दिखाया गया है। इस संग्रह की प्रमुख कहानियों का कथानक निम्नानुसार है।

आर्द्राः–

इस कहानी में राकेशजी ने दो पुत्रों के मध्य माँ की ममता की पीडा अंकित की है। बचन नामक वृद्धा के दोनों पुत्र अलग–अलग हैं। बड़ा लड़का लाली नामी वकील है तो छोटा लड़का बीन्नी बेकार और अभावग्रस्त। बचन की अवस्था कुछ न पाने और कुछ न कर सकने की अवस्था है। ममता के दर्द का बोझ उसके व्यक्तित्व को व्यापक बना देता है। जब वह बीन्नी के पास होती है, तो उसे लाली और उसके परिवार की याद आती है। जब वह लाली के यहाँ होती है तो उसे बीन्नी रह–रहकर याद आता है। दोनों अलग–अलग शहरों में होने के कारण और दोनों भाईयों के वैचारिक मतभेदों के कारण बचन विभाजन की पीडा का दर्द महसूस करती है।

शायद इस कहानी में देश के विभाजन को इंगित किया हो ऐसा प्रतीत होता है। देश स्वतंत्र तो हो गया पर लोगों के मन भी देश के विभाजन की तरह विभाजित हो गये।

क्लेमः–

यह कहानी भारत–पाकिस्तान के विभाजन के समय को दर्शाती और तत्पश्चात मानव संबंधों में हुए परिवर्तन को दर्शाती है।

साधुसिंह नामक ताँगेवाला अपनी सवारी को मोडल टाउन ले जा रहा है। ताँगे में बैठी स्त्री और अन्य दो व्यक्ति क्लेम की बातें कर रहे है। स्त्री अपने पति को कम क्लेम भरने के लिए कोसती है और अपनी दरिद्रता पर अफसोस व्यक्त करती है। साथ में बैठे सरदार अपनी समजदारी पर गर्व के साथ कहते है कि उसे साठ हजार का क्लेम मिला। तीसरा व्यक्ति उन दोनों को धिक्कारता है क्योंकि उसे आज तक एक फूटी कौडी भी नहीं मिली।

इस प्रकार इस कहानी में सरकार से प्राप्त हो रहे क्लेम को प्राप्त करने के लिए लोग झूठ बोलकर भी अधिक से अधिक क्लेम भरने की होड करते है। ताँगेवाला साधुसिंह भी अपने आपको उसी स्थिति में पाता है वह भी निर्वासित था। पर उसने कोई क्लेम नहीं किया; क्योंकि उसके पास कुछ न था। अपनी पत्नी भी वहाँ छूट गई

थी । बड़े चाँव से लगाया आम का वृक्ष उसे रहरहकर याद आ जाता था और मन में कहता है अब तो अपनी घोडी ही उसके सब क्लेम पूरे करेगी ।

आखिरी सामान :–

यह कहानी मिस्टर एण्ड मिसेज भंडारी की है । मिस्टर भंडारी कम समय में दौलतवान होने के लिए भ्रष्टाचार करते है । स्वरूपवान पत्नी का उसे गर्व है । पत्नी से बेहद प्यार करनेवाला मिस्टर भंडारी तरक्की पाने के लिए अपनी पत्नी तक का उपयोग करने से हिचकिचाता नहीं । अंत में उसी के साथीदारों के द्वारा उसे फसाया जाता है और रिश्वत लेने के जुर्म में उसे केद हो जाती है ।

मिसेज भंडारी इन सब में अकेले होने के बावजूद वह अपने अस्तित्व का प्रयास करती है । अपने घर की सभी चीजों की नीलामी करवाकर वह अपने पति को छूडाने का प्रयास करती है । राकेशजी ने उसके अकेलेपन को बड़ी ईमानदारी से अभिव्यक्ति दी है ।

परमात्मा का कुत्ता :

यह कहानी स्वतंत्रता के उपरान्त भी हमारी गैरजिम्मेदारी के कारण अन्य लोगों को होनेवाली परेशानी का चित्रण करनेवाली कहानी है । स्वतंत्र देश के नागरिक अपने अधिकारों से समाज द्वारा वंचित रहते हैं । जीवनभर अधिकारों से वंचित मनुष्य की व्यवस्था का खोखलापन अन्याय से घिरे व्यक्ति की परेशानियों का सिर्फ चित्रण ही नहीं किया बल्कि नायक (बारह सौ छब्बीस बटा सात) चिल्लाकर कमिश्नर साहब से अपना काम पूरा कर लेने के बाद लोगों से कहता है – "चूहों की तरह बिटर–बिटर देखने से कुछ नहीं होता । भौंको, भौंको, सब के सब भौंको । अपने आप सालों से कान फट जाएंगे ।"

इस प्रकार राकेशजी ने अत्याचार, शोषणादि अमानुषिक कृत्यों व तत्त्वों के प्रति झुंझलाहट व्यक्त की है । सरकारी व्यवस्था के खोखलेपन, रिश्वतखोरी, निष्क्रियता आदि का व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण किया है ।

मिस्टर भाटिया :

इस कहानी का कथानायक भाटिया आर्थिक स्थिति से कमजोर है फिर भी लडकियों में उसकी बहुत रुचि है। इतवार को फिल्म की तीन टिकट खरीदता। बोक्स ऑफिस की खिड़की बन्द हो जाने पर वह टिकट किन्हीं दो लड़कियों को बेच देता।

अकसर बेरोजगार रहता है, रेस का शौकीन है, हवाई किल्ले बनाने में वह वक्त बिताता है। दहेज के लालच में वह साधारण लड़की से विवाह करने को तैयार हो जाता है क्योंकि उन पैसों को रेस में लगा सके। भाटिया अकेलेपन में भी जिजीविषा लिए हुए हैं। वह टूट चूका है किन्तु टूटन का अस्वीकार सारे संदर्भ को यथार्थ से जोड़ देता है।

जानवर और जानवरः

इस कहानी में आर्थिक अभावों से उत्पन्न पीडा को दर्शाया गया है। इस कहानी के पात्र पीटर, जोन, पाल, अनिता, नानावती आदि यातना व विडम्बनाओं को सहते हुए भी जीवन के प्रति लालायित हैं। इस कहानी में पहाडी स्कूल का चित्रण है। वहाँ के वातावरण, वहाँ की त्रस्त जिन्दगी, सहमते शिक्षक, मेट्रन की लाचारी और विवशता का चित्रण इस कहानी में चित्रित है। फादर फिश का चरित्र काली करतूतों से भरा पडा है। अपनी कैनेडीयन कुतिया को पाल के देशी कुत्ते (बेबी) के साथ देखने पर फादर बेबी को गोली मार देता है। साथ ही अनीता और नानावती को अपनी वासनापूर्ति का माध्यम बनाता है और अपनी अधिकार शक्ति का दुरुपयोग भी करता है।

राकेशजी ने इस कहानी में व्यंग्यों की बारिश कर दी है। इस कहानी के पात्र अपनी आर्थिक विटंबना (विवशता) के कारण पादरी से जूड़े हुए है।

मवाली :

यह कहानी महानगर के मानवीय संबंधों की कहानी है। इस कहानी का नायक तेरह–चौदह साल का लड़का है। वह आवारा और दरीद्र है। बम्बई की चौपाटी में घूमता फिरता किसी का सामान उठाता है और अपनी मस्ती में मस्त रहता है। मगर घूमने आये परिवार को देखकर उसे उसमें अपनापन दिखाई देता है मगर उसी अपनेपन में उससे एक चम्मच गुम हो जाती है। जिसके कारण परिवार के प्रमुख पुरुष के हाथ

की मार पडती है और उसका अमूल्य खजाना सीपियों और अपनी माँ के दिए हुए तावीज से हाथ धोना पडता है।

इस प्रकार राकेशजी ने इस कहानी में ऊँचनीच और आर्थिक असमानता का मानवजीवन पर पड़े प्रभाव का चित्रण किया है।

(४) एक और जिन्दगी (१९६१)

सन १९६१ में प्रकाशित 'एक और जिन्दगी' कहानी संग्रह में ९ कहानियां संग्रहित है। मानवीय संबंधों की यंत्रणा झेलते हुए पात्र इन कहानियों में हैं। इन कहानियों में समाज में रहते हुए व्यक्ति का अकेलापन प्रतिबिंबित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं राकेशजी की यंत्रणा व अकेलापन इन कहानियों में उतर आया है। अगस्त १९५७ में राकेशजी विवाह बंधन से मुक्त हुए, नौकरी से त्यागपत्र दे ही चुके थे अतएव चारों ओर से अकेले थे। मानवीय रिश्ते बेमान सिद्ध हो रहे थे। इस समय जो पीड़ा व अकेलेपन का दर्द राकेशजी ने झेला उसे हर इकाई के माध्यम से परिवेश के अनुसार मूर्तित करने का राकेशजी ने सुंदर प्रयास किया। व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी, एक दूसरे से भिन्न और आपस में टूटी हुई इकाइयाँ न मानकर यहाँ उन्हें एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयत्न है जहाँ व्यक्ति समाज की विडंबनाओं का और समाज व्यक्ति की यंत्रणाओं का आईना है।"[२] इस संग्रह की प्रमुख कहानियों का कथानक कुछ इस प्रकार हैं।

मिस पाल :

इस कहानी में राकेशजी ने कुल्लू और मनाली के बीच के रायसन गाँव में स्थित मिस पाल के मनोभाव को प्रस्तुत किया है। वार्तानायक मैं यानी रणजीत की अचानक मुलाकात होने से मिस पाल के आनंद का ठिकाना नहीं रहता। मिस पाल अपने मुटापे के कारण दिल्ली में अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे देती है और रायसन में आकर रहने लगती हैं। दिल्ली में रणजीत के अलावा सभी उसका मजाक उडाते थे।

आज जब वह उससे मिला है, तो उसने उसका अच्छी तरह से आतिथ्य करने का निश्चय किया। किन्तु अभावपूर्ण स्थिति में और शारीरिक तकलीफ के कारण वह ऐसा नहीं कर सकी। मिस पाल अपनी खाने की चीजें भी दो–तीन दिनों की एक साथ बना

लेती थी । शाम को जब मिस पाल को ट्राउट मछली नहीं मिली तो वह उदास हो गई और जो चावल बनाने थे वह भी नीचे लग गये । रात को जब मिस पाल और रणजीत मैदान में कुर्सियाँ लगाकर बैठे तब मिस पाल ने अपने अतीत की किताब खोलकर रणजीत के सामने रख दी । मिस पाल को अपने परिवार और माता–पिता से जो प्रेम मिलना चाहिए था वह न मिला और उपेक्षा का कारण बन गई । इस स्थिति में उन्होंने नौकरी करने का कारण देकर घर छोड़ दिया और अकेलेपन का शिकार बन गई । दिल्ली के दफतर में उन पर होती टिप्पणियों के कारण ही उसने त्यागपत्र दे दिया था ।

रणजीत के आग्रह पर वह जब उसके साथ कूल्लू सामान खरीदने आई और बस स्टेशन पर मिस पाल पर स्कूल के बच्चों के द्वारा उसके शरीर को लेकर हो रही खुसर–पुसर के कारण रणजीत विचित्र अनुभव करता है । बच्चे उसे देखकर – " कमाल है भई कमाल है !" जैसी फब्तियाँ कसते है । इन सबको नजर अंदाज कर मिस पाल अपने आँसुं दबाकर रणजीत को हँसी–हँसी बिदा करती है और कहती है कि दिल्ली में किसी से न कहना कि वह मुझसे मिला था ।

इस प्रकार इस कहानी में मिस पाल की मनो–वेदना को राकेशजी ने भलीभाँति प्रस्तुत किया है ।

सुहागिनें :–

यह कहानी दो सुहागिन औरतों की है । सुहागिन होने के साथ–साथ दोनों औरतें अपने पति से दूर है । मनोरमा एक पहाडी स्कूल की हेडमिस्टरेस है और उसकी नौकरानी काशी एक त्यक्ता स्त्री है । जिसका पति उसे छोड़कर दूसरी स्त्री के साथ रहता है । वह जब भी यहाँ आता है, काशी के साथ मारझुड करता है और उसके जमा किए सभी रूपये ले जाता है ।

मनोरमा अपने पति सुशिल से बेहद प्यार करती है मगर सुशिल की ओर से समय–समय पर चिट्ठी न पाने से मनोरमा को बूरा लगता है । मनोरमा अपने पति से दूर रहकर बिलकुल टूट चूकी है । उसके अंदर रही माँ एक संतान चाहती है, मगर सुशिल इसके बारे में अभी तैयार नहीं । सुशिल अपने पर रहीं जिम्मेदारियों के बोझ तले दबा हुआ है । उसे अपनी बहन की शादी करनी है और दो भाईयों को पढ़ाना है । मगर मनोरमा के मनमें माँ बनने के अरमान साफ–साफ दिखाई देते है । वह काशी की

बेटी कुंती में अपनी संतान को महसूस करती है । कभी–कभी वह सुशिल के साथ बिताये लम्हों में सुशिल को ही बच्चा समझकर प्यार करती है ।

इस तरह कहानी में सुहागन होने के बावझूद वियोग और अलग–अलग रहकर नौकरी करनेवाले पति–पत्नी के मनमुटाव तथा नीरसता को दर्शाया है ।

आदमी और दीवार :–

इस कहानी का नायक सत्ते एक अध्यापक है । वह जिस घर में रहता है, उस घर की लकडी की दीवार पर तरह–तरह के वाक्य लिखे हुए है जो शायद अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा लिखे गये है । उन सब में बनी ऊदबिलाव की आँख सत्ते को ज्यादा परेशान करती है । सत्ते के मनमें चल रहे मनोमंथन का कारण उसकी बहन राजो है । राजो की पिटारी में से अपने मित्र हरीश की चिठ्ठियों को पाने के कारण सत्ते आपे से बाहर हो गया । जिसे वह अपना मित्र समजता था उसके इस प्रकार उसकी बहन के साथ के संबंध को लेकर वह बिगड़ गया । उसने राजों को बहुत बूरी तरह से पीटा । इस पर वह अपने आप को दोषी समजता है ।

इस प्रकार शायद यह कहानी राकेशजी की अपनी जिन्दगी की घटना पर आधारित कहानी लगती है । उन्होंने लिखा है कि , “मुझे सबसे गहरे घाव उनके हाथों लगे हैं जिन्हें मैंने वर्षों अपने घनिष्टत्तम मित्र माना है । क्या जीने के लिए, सभी संबंधों के निर्वाह के लिए डिप्लोमेसी आवश्यक है ?”[३]

बस स्टैन्ड की एक रात :–

इस कहानी के कथा नायक को बस स्टैन्ड पर एक रात बितानी पडी । अपने अनुभवों और अतीत के संस्मरणों को याद कर वह रात बिताता है । साथ ही आस–पास के लोगों की मनःस्थिति को बखूबी चित्रित किया है । ठंड दूर करने के लिए जलाई गई अंगीठी पर अपना अधिकार जमाते व्यक्तियों को दर्शाया है । अंत में मेनेजर की आज्ञानुसार कूली अंगीठी उसके कमरें में ले जाता है ।

गुनाह बेलज्जत :–

होटल के काउन्टर पर खड़े सरदार सुन्दरसिंह को कोई यह सूचना देता है कि सुन्दरी और उसकी बहन शम्मी को लेकर पुलिस घुम रही है, तो उसके होश ठिकाने नहीं

रहते । क्योंकि बदनाम सुन्दरी उन लोगों के नाम बता रही थी और पुलिस उन्हें पकड़ रही थी, जिन–जिन के घर सुन्दरी और उसकी बहन शम्मी को ले जाया गया था । सुन्दरसिंह ने भी कुछ लम्हें सुन्दरी के साथ बिताये थे । वैसे तो सुन्दरसिंह शरीफ आदमी था । पर उसे अपनी बीवी भागवन्ती की सूरत से नफरत थी । इसी कारण एक सुंदर स्त्री के साथ रात बिताने के लिए उसने सुन्दरी को बुलाया था । वह मन ही मन खीज जाता कि भागवन्ती की वजह से ही उसकी जिन्दगी तबाह हो गई । सुन्दरसिंह के मन में यह डर था कि कहीं सुन्दरी उसका नाम दे देगी और डर के मारे वह भागवन्ती से सुन्दरी को घर लाने की बात को कहता है । मगर भागवन्ती 'मन के लडडू मत फोडो' कहकर इस बात को हँसी में उडा देती है ।

इस प्रकार राकेशजी ने कहानी के अंत में भागवन्ती के द्वारा तिरस्कृत सुन्दरसिंह की कमियों को दर्शाया है ।

एक और जिन्दगी :–

इस कहानी में स्त्री–पुरुष के वैवाहिक जीवन के संघर्ष से जूझते दंपति का वर्णन है । कथानायक प्रकाश अपनी पूर्व पत्नी बीना को वैचारिक मतभेद के कारण तलाक दे देता है और कुछ समय अकेला रहकर अंत में अपने मित्र की बहन निर्मला से शादी कर लेता है । इससे पूर्व प्रकाश अपने पुत्र को पाने के लिए अदालत का सहारा लेता है पर अंत में बिना को ही पुत्र का अधिकार मिला । इधर दूसरी शादी के थोडे दिनों बाद प्रकाश को पत्ता चलता है कि निर्मला को बार–बार दौरे पडते हैं और वह पागलपन का शिकार थी ।

निर्मला के व्यवहार से त्रस्त होकर प्रकाश जब पहाड पर धूमने जाता है, तो वहाँ अपनी पूर्व पत्नी एवम् पुत्र के मिलने से वह रोमांचित हो जाता है । अजनबीपन व दूरी होते हुए भी मानवीय व्यवहार कहीं न कहीं मानवीय राग का अनुभव कराता है ।

इस कहानी में राकेशजी ने प्रकाश और बीना के माध्यम से लाचारी, अकेलेपन और निरर्थकता का परिचय दिया हैं । राकेशजी ने इस युगल के माध्यम से उन सभी पीडा को संकेतार्थ किया है जो अपने चयन में भटक गए हैं ।

हक हलाल :

यह कहानी विभाजन की विभीषिका के माध्यम से शुरु होती हुई आगे चलती है। यह कहानी शिमला के पहाडी की कहानी हैं। कथानायक के यहाँ अखबार देने आनेवाले पैंतीस–चालीस साल के पंडित के मनोव्यापार को इस कहानी में दर्शाया गया है। इसी पंडित ने अपने से बीस साल छोटी युवती से डेढ सौ रुपया देकर शादी की थी। पंडित की बीबी किसी दूसरें मर्द के साथ भाग जाती है तो पंडित लड़की के पिता को डराकर–धमकाकर उसकी छोटी बेटी (अपनी साली) को अपने घर में ले आता है। और अपनी पहली बीबी के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट भी लिखवाता है।

उसकी पत्नी के वापस आ जाने के बाद भी पंडित पत्नी की छोटी बहन को अपने घर में ही रखता है और लोगों के मुबारकबाद देने पर पंडित कहता है, कि – " हजूर, परमात्मा का इन्साफ था और मेरा हलाल का पैसा था। वरना, मैंने कोई उम्मीद थोड़े ही रखी थी ?"

इस प्रकार राकेशजी ने इस कहानी में पहाडी इलाकों की गरीबी और वहाँ की लड़कियों की अवस्था का चित्रण भली–भाँति किया है।

जीनियस :

इस कहानी का पात्र साधारण होते हुए भी स्वयं को असाधारण समझता है। वह टैगोर, टोल्सटोय और शेक्सपीयर को हेय समझता है। टोल्सटोय, गोर्की और चेखव जैसे लेखकों को वह कोपीइस्ट कहता है। वह जीनियस भी गरीब है, भूख से पीड़ित है किन्तु भूख से पीड़ित होते हुए भी परिस्थितियों से हार न माननेवाला तथा भीतर से टूटकर भी उस टूटन को बाहरी दिखावे से भरनेवाले व्यक्ति को राकेशजी ने जीनियस के रुप में प्रस्तुत किया है।

(७) फौलाद का आकाश (१९६६)

नौ कहानी का संग्रह 'फौलाद का आकाश' सन् १९६६ में प्रकाशित हुआ। इन कहानियों के संबंध में कई परिवर्तन हुए हैं। इस संग्रह से पूर्व राकेशजी की कहानियों में निश्चित थीम और कथानक होता था, परिवेश व पात्र से साक्षात्कार होता था किन्तु बाद वाली कहानियों में यह सब गौण हो गया व इसके विपरीत अनुभव प्रधान हो गया।

"उसके कुछ उत्तप्त क्षण, उन पर व्याप्त किसी मनःस्थिति की वर्तुलाकार गति और वे सूक्ष्मत्तर सूत्र को एक व्यापक परिद्रश्य से जोड़कर उस मनःस्थिति को सार्थक बनाते हैं।"[४] इस संग्रह में राकेशजी ने अपनी कहानी को सार्थक पठनीयता से विकसित कर सूक्ष्मत्तर संवेदनाओं और अनुभवों के अंतर्विरोधी और जटील रंगों–रेखाओं के अमूर्त शैली के चित्रों के समान बनाया है। इन कहानियों के प्रति राकेशजी ने अपने विचार प्रस्तुत करने हुए लिखा है, "इन संग्रह की दो–तीन कहानियों को छोड़कर प्रायः सभी में बड़ी आबादी वाले शहरों की जिन्दगी उसकी भयावहता को चित्रित किया गया है। हालांकि भयावहता के संकेत इन कहानियों में व्यक्ति के माध्यम से ही समाने आते हैं। फिर भी उनका केन्द्र व्यक्ति न होकर उसके चारों ओर का संत्रास है।"[५] इस संग्रह की प्रमुख कहानियों का कथानक इस प्रकार है।

ग्लास टैंक :–

इस कहानी में संकेतों के माध्यम से पारिवारिक विसंगतताओं (मतभेदों) को अभिव्यक्ति मिली है। इस परिवार के हर सदस्य का अपना – अपना महत्त्व है। साथ ही सुभाष नामक लड़के से अतिरिक्त भावुकता इस कहानी की विशेषता है। सुभाष पारिवारिक तौर पर प्रारंभ से परिचित था। नीरु अपनी मम्मी की सुभाष के प्रति जो भावुकता है उसे समझ पाती है किन्तु परिवार के अन्य सदस्य उसे विशेष महत्त्व नहीं देते, उनके पति का द्रष्टिकोण भी इस भावुकता के पक्ष में नहीं है और इसी कारण अव्यक्त टकराहट के साथ यह कहानी एक तनाव में उभरी है।

जब सुभाष उनके घर आता है, तो नीरु उसे देखकर उसके प्रति आकर्षित होती है पर अपने मनोभाव को मन में दबाकर रखती है। कहानी के आरंभ में ही नीरु के विचार प्रकट होते है वह ग्लास टैंक में मछलियों को देखकर सोचती है कि इन मछलियों को इस पानी में तनिक भी अच्छा नहीं लगता। वह एक दूसरी से कुछ बातें करती है और बार–बार शीशे से इस लिए टकराती है कि शीशा टूट जाए और वह मुक्त हो जाए। इस प्रकार नीरु कहीं न कहीं किसी न किसी बंधनों से मुक्ति पाना चाहती है।

कहानी सुभाष के आगमन और उसके चले जाने के बीच प्रवाहमान रहती है। मम्मी अपनी संतानों से ज्यादा सुभाष से प्रेम करती है। इस प्रकार कहानी प्रेम, टकराहट और तनाव को लेकर चलती है।

फौलाद का आकाश :–

यह कहानी दाम्पत्य संबंधों की कहानी है । इसके प्रमुख पात्र रवि और मीरा नामक पति–पत्नी है । दोनों ने अपनी इच्छा से विवाह किया किन्तु कुछ समय के पश्चात् दोनों ओपचारिक एवम् कृत्रिम जिन्दगी जीते हैं । रवि स्टील प्लांट में लेबर–एडवाइजर था और अपनी फेक्ट्री के कार्य में व्यस्त रहता है उसे अपनी पत्नी मीरा की भावुक बातों में कोई दिलचस्पी नहीं । रवि की बातें मीरा को उससे दूर करती जाती हैं । मीरा जितना स्वयं को रवि के समीप सोचती उतना ही अलगाव बढता जाता है । फेक्ट्री में मजदूरों की हडताल की मध्यस्थता के लिए आ रहे राजकृष्ण से मीरा फोन पर बात करते वक्त समज नहीं पाती कि उससे क्या बात करे? राजकृष्ण मीरा के साथ युनिवर्सिटी में पढ़ता था और हाल में वह एक प्रसिद्ध राजपुरुष है । मीरा उससे मिलने जाती है तो उस वक्त राजकृष्ण की वासना का शिकार बनती बनती रह गई और शीघ्र ही वहाँ से चली आई ।

इस प्रकार इस कहानी में रवि और मीरा के तनाव और एक दूसरे को झेलने की मजबूरी को दर्शाया है ।

एक ठहरा हुआ चाकू :–

यह कहानी बासी नामक एक नवयुवक की कहानी है । नोकरी की खोज में दर–दर फिरता और अपनी प्रेमिका मिन्नी से अकेले में मिलनेवाला बासी आजाद खयालोंवाला व्यक्ति है । वह मिन्नी से मिलने एक हलवाई की दुकान पर जाता है और वहाँ दोनों घंटों बाते किया करते ।

एक दिन घर लौटते समय वह बर्फ लेने के लिए स्कूटर से उतरता है । उसी समय वहाँ का गुंडा नत्थासिंह स्कूटर में बैठ जाता है । वहाँ दोनों के बीच वाक्‌युद्ध होता है उसी दौरान नत्थासिंहने जेब में से चाकू निकाल दिया । उसे देखकर ही बासी वहाँ से भाग खड़ा होता है ।

अपने घर पर पहुँचकर उसने सारी बात अपने मित्र महेन्द्र को बताई और महेन्द्र ने बासी को पुलिस में रिपोर्ट लिखवाने के लिए उकसाया । पुलिस स्टेशन पर जब बासी को शनाख्त करने बुलवाया गया तब बासी इतना डरा हुआ था कि उसे अपने आप पर

गुस्सा आ रहा था कि उसने रिपोर्ट क्यों लिखवाई । पुलिस स्टेशन में वह काफी मनोमंथन करता रहा । जब नत्थासिंह को लाया गया तब उसे देखकर बासी कँपने लगता है और उससे आँखें मिला न सका । अंत में वह थानेदार को कहता है कि, “हाँ, वही आदमी है यह ।”

इस कहानी में राकेशजी ने समाज में प्रवर्तमान बुझदीली–कायरता को प्रदर्शित किया है । साथ ही नत्थासिंह जैसे गुंडों का रक्षण करनेवाले अधिकारीयों की बात से हमें वाकेफ किया है ।

चौगान :–

यह कहानी हैरी विल्सन नामक पचपन वर्षीय विदेशी व्यक्ति की है । जो कभी लन्दन के क्लबों और नाचघरों का शौकीन फैशन परस्त युवक था । अपनी बीमारी के कारण वह हिन्दुस्तान के एक कस्बे में आकर स्थायी हुआ । कुछ वर्ष तो अकेले काट लिए मगर जब वह अकेलापन बहुत ही असह्य प्रतीत होने लगा तो सत्रह साल की सन्तो को रख लिया और उसकी माँ को पांच हजार रूपये देकर दूसरे गांव भेज दिया । उससे भी उसका अकेलापन दूर नहीं हुआ । विल्सन चाहता है, सन्तो उसकी बात को समझ सके और उसके दर्द की गहराई को नाप सके । और इसी बीच उसका निधन हो जाता है । उसकी इच्छा के अनुसार उसकी कब्र उसीके घर के बगीचे में तय की गई जगह पर बनवाई गई । सन्तो आज भी उसकी कब्र के पास बैठे रात की नीरवता में चौगान से आनेवाली सम्मिश्र आवाजें सुनती है । जो अकेलापन विल्सन ने सहा था वही अकेलेपन का शिकार सन्तो हो गई ।

सेफ्टी पिन :–

इस कहानी में आधुनिक उच्चवर्गीय स्त्री–पुढषों के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है । कथा नायक अपने मित्र सुदर्शन के घर रात्री–भोजन पर जाता है । रास्ते में अपनी पतलून के बटनों के अन्दर का अस्तर उधडा मालूम हुआ और रास्ते में से सेफ्टी पिन लेकर रेस्टोरां के टोयलेट में उसे अंदर से टांक लेता है । सुदर्शन की पत्नी मिसेज सक्सेना कथानायक को अपना उपन्यास सुनाती है । लेकिन उसमें आते स्त्री पात्रों के अफेर वार्तानायक को छू जाते है । एक के बाद एक घर में आये महेमानों का परिचय मिलने पर पता चलता है कि सभी स्त्रियों के किसी न किसी के साथ चक्कर थे । जैसे

मिसेज सिंह ने अडतालीस साल के जागीरदार मेजर से तीसरी शादी की थी। इससे पहले भी मिसेज सिंह के सुदर्शन के साथ संबंध थे और कई बोय फ्रेन्ड भी थे।

कहानी के अंत में चन्दर के आने के बाद शानो और मिसेज सिंह के बीच कुछ अनबन हुई हो ऐसा प्रतीत होता है। वह दोनों चन्दर को अंदर भेजने के लिए कथानायक से कहती है।

इस कहानी में राकेशजी ने सेफ्टी पिन के माध्यम से मानवीय संबंधों के तानेबाने को दर्शाया है।

जंगला :–

राकेशजी ने इस कहानी में ढढियों पर मूल्यों की विजय दर्शायी है। बनवारी भगत का लड़का बिशना दूसरें की ब्याह कर छोडी हुई औरत से शादी कर लेता है। इस पर ढढिचुस्त भगत और उसकी पत्नी फूलकौर नाराज हो जाते है और अपने बेटे को घर से निकाल देते है। अकेलेपन की जिन्दगी से बाझ आकर वह दोनों अपने बेटे और बहु को वापस घर लाने का समझौता करते है।

इस कहानी का कथ्य पुराने को मिट जाना या बदल देना यही संदेश देता है।

पांचवे माले का फ्लेट :–

इस कहानी में राकेशजी ने बड़े शहरों की भयावहता का चित्रण किया है। शहरों में अपना अस्तित्व बनाए रखना कितना कठिन काम है, इसका चित्रण कथानायक अविनाश के माध्यम से बखूबी किया है। इस कहानी में बड़े शहरों की औपचारिकता पर द्रष्टिपात किया गया है। मन में कुछ तथा कहना कुछ की प्रवृत्ति है। अविनाश की आर्थिक स्थिति उसे कहीं बड़ा मकान लेकर रहने की अनुमति नहीं देती। सरला और प्रमिला दोनों बहनें उसके फ्लेट का अच्छा मजाक उडाती है।

अविनाश प्रमिला को चाहता था, मगर उसे कह नहीं सका और प्रमिला का परिवार दिल्ली चला जाता है और अविनाश एकाकी जीवन व्यतीत करता है। प्रमिला और सरला अपने भाई को छोडने बम्बई आई थी। और अचानक सरला की भेंट

अविनाश से हो गई । पूरा दिन अविनाश उनके साथ रहता है, मगर सोचता है कुछ और कहता है कुछ ।

इस प्रकार राकेशजी ने इस कहानी में अविनाश के माध्यम से लोगों की आर्थिक स्थिति एवम् विवशताओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है ।

सोया हुआ शहर :

यह एक प्रतीकात्मक कहानी है । महानगरों की रात की जिन्दगी का वर्णन किया गया है । पूरा शहर सोया हुआ है किन्तु एक जिन्दगी रात को भी चलती है । इस कहानी की प्रयोगशीलता उसके कथ्य में नहीं किन्तु शिल्प में है । कहानी में परिवेश का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से हुआ है । सिगरेट की डिब्बी का फटा हुआ टुकडा, दुम हिलाता कुत्ता, फडफडाता कबूतर, फ्लश के हत्थे का जोर–जोर से हिलाया जाना, चमकते हुए गोल सुनहरे पत्ते आदि प्रयोग प्रतीकात्मक लगते हैं ।

(६) अन्य कहानियाँ

खाली :

इस कहानी में तोषी नामक विवाहित स्त्री के एकाकी जीवन की कथा है । विवाह पश्चात उसे अपने जीवन में परिवर्तन लाना पडता है । एक चंचल और स्वच्छंदी युवती को विवाह पश्चात अपने पति के विचारों पर चलना पडता है इसे राकेशजी ने तोषी के माध्यम से दर्शाया है । अपने पति (जुगल) की संकुचितता उसे खलती है । इस कहानी में राकेशजी ने तोषी के अंतद्वद्वों को बखूबी प्रस्तुत किया है ।

जुगल संकुचित मनोवृति का था । उसे अपनी पत्नी की साडी के पल्लू की ज्यादा फिकर लगी रहती । अगर कभी साडी का पल्लू नीचे आ जाता तो वह त्यौरी डालकर कहता, “तुम्हें खुद ही अपने आप की शरम नहीं, तो दूसरा तुमसे क्या कह सकता है ? तुम्हें अच्छा लगता है अपने को उघाडकर दिखाना, तो ठीक है ... दिखाती रहा करो ।”

तोषी इन सबको छोड़कर एकबार जाने का विचार करती है । अपने न रहने पर घर की क्या हालत हो सकती है ? इसका विचार करने के बाद फिर वह उसी परिवेश में

अपने स्थान पर अपना काम करने लगती है और उसी मोड़ पर राकेशजी ने कहानी को छोड़ दिया है । इस कहानी में राकेशजी ने तोषी और जुगल दोनों के संबंधों में कटुता और बेगानेपन को पेश किया है ।

क्वार्टर :–

यह कहानी एक मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार की है । इस कहानी का नायक शंकर स्कूल में शिक्षक है । उसे स्कूल की ओर से क्वार्टर मिला है । क्वार्टर बड़ा होने के कारण शंकर के चाचा के दो लड़के, उसका भाई, पिताजी सभी उनके साथ रहने आ जाते है । इसके कारण शंकर और उसकी पत्नी राधा दोनों को आर्थिक दबाव में जिन्दगी बितानी पडती है । उसी बीच दोनों पति–पत्नी में भी मनमुटाव होता है । उसकी दोनों बहनें भी छुटियों में वहाँ आ जाती है । उन दोनों को घर में हुए परिवर्तन कुछ अच्छे नहीं लगते । फिर शंकर के क्रोधित होने पर दोनों शंकर की तरफदारी करती है ।

शंकर के पडोश में रहनेवाली मिसेज शर्मा को इस परिवार के प्रति काफी हमदर्दी है । यह हमदर्दी भी शंकर के कारण ही है । यह इस बात से प्रतीत होता है – "मिसेज शर्मा उसकी बेरुखी को देखती हैं, सहती हैं और साथ–साथ क्षमा करती जाती हैं । भाई साहब की खातिर । वे कुछ आंखें झपकाती चुप खड़ी रहती हैं । अगर भाई साहब की जिन्दगी इससे न जुड़ी होती, तो वे कभी इससे कुछ पूछने, कुछ कहने के लिए न आती ।"

कहानी के अंत में राधा शंकर पर चारित्र्य संबंधी आक्षेप करती है जिसके कारण शंकर विचलित हो जाता है और घर से बाहर शैर करने चला जाता है ।

खंडहर :–

इस कहानी में राकेशजी ने शहर में फैले धर्माडम्बर के प्रति व्यंग्य किया है । अमृतसर के बांके बिहारी मंदिर और उसमें आनेवाले हरिभक्तों और गौस्वामी पर व्यंग्य के फूल बरसाये हैं । मंदिर में जाने से पूर्व मोहनलाल जैसे भक्त विलायती लट्ठा खरीदने से हिचकिचाता नहीं ।

इस प्रकार कहानी में धार्मिक अन्ध विश्वास और ढ़कोसलों का पर्दाफास किया गया है ।

सौदा :–

कथानायक लाला अपने परिवार के साथ पहलगाँव घूमने आया है । वहाँ से लोग चंदनवाडी घोड़े पर बैठकर जाते है । लाला भी अपने लिए घोड़ों का बन्दोबस्त करता है मगर घोड़ेवालों ने उस दिन सवारी के चार ढपये कर दिये थे । लाला स्वभाव से कंजूस होने से घोड़े नहीं करता । एक–एक कर सब घोडें चले गये और अन्त में कोई घोड़ा न बचा ।

लाला अपने स्वभाव के कारण अकेला रह जाता है, उसे घोड़ा नहीं मिलता । इस कहानी में राकेशजी ने लाला के माध्यम से धनिक वर्ग की धन–लोलूपता का दर्शन कराया है ।

पहचान :–

बाल मनोविज्ञान संबंधी इस कहानी का कथावस्तु माता–पिता के संबंधों के कारण बच्चों पर पडते प्रभाव को दर्शाता है ।

कहानी का बाल नायक ग्यारह साल तीन महीने का शिवजीत सचदेव अपनी माँ के साथ मसूरी में रहता है और उनके पिता दिल्ली में रहते है । हार्निया की बीमारी से ग्रस्त शिवजीत सचदेव एक दिन शिवजीत अबरोल बन जाता है । उसकी माँ ने डॉ.हरदेव अबरोल से दूसरा विवाह कर लिया । उसके दिल्ली निवासी पिता उसको ले जाने आते है, मगर उसकी माँ ने उसे देने से साफ इन्कार कर दिया । शिवजीत को रह–रहकर अपने पिता और उसके साथ बिताये पल याद आते रहते है ।

अपनी बिमारी को किसी के सामने प्रस्तुत न करनेवाला शिवजीत अब सब को बता देना चाहता है । उसने अपने दोस्तों को बता दिया और हर्निया की पेटी भी दिखाई । अंकल अबरोल से बने पापा अबरोल के साथ वह स्वयं का मेल नहीं बिठा सकता । इस प्रकार कहानी में राकेशजी ने बाल मानस की मानसिकता और जढरतों का शिवजीत के माध्यम से चित्रण किया है ।

रोजगार :-

इस कहानी में बीमार जमशेद दारुवाला और उसकी बहन की कथा है । जमशेद बीमार होने के कारण उसे घर की बजाय मिसेज एडवर्ड्स की होटल में किराये पर रखा जाता है । वह डेढ साल से वहाँ रहता है और उसकी बहन इसका किराया अदा कर रही है । लेकिन अचानक मिस. दारुवाला छः महिने गायब हो गई तो जमशेद अपनी बहन के बारे में अनाब–शनाब बोलता और मनमानी करता । मिसेज एडवर्ड्स से दिन में एक–दो बार लड़ता ।

मिस. दारुवाला के न आने से एक दिन अचानक जमशेद होटल छोड़कर कहीं भाग जाता है । छः सात दिन बाद जब मिस. दारुवाला होटल पहुंचकर यह जानती है, कि उसका भाई कहीं भाग गया तो उसे बहुत दुःख होता है । मिसेज एडवड्स के पूछने पर पत्ता चलता है कि उसका ऑपरेशन हुआ था । पर किस चीज का यह पूछने पर वह आँखें झुका देती है ।

इस प्रकार इस कहानी में एक बहन अपने भाई के इलाज के लिए अपने शरीर का व्यापार करने से भी नहीं हिचकिचाती, तो दूसरी तरफ भाई उसी बहन को कौसता रहता है ।

राकेशजी की कहानियों में अभिजात्य वर्ग की बुलबुलाती आत्मा तथा मध्य वर्ग की घुटी हुई चेतना का सफल चित्रण हुआ है । उनके कथानक में शोषितों, पीड़ितों और श्रमिकों के प्रति दर्याद्र है, धार्मिक आडंबरों व पाखंडों का पर्दाफाश करने का किया जाता है । विभाजन के कारण उत्पन्न समस्याओं को राकेशजी की कहानियों में विशेष स्थान मिला है ।

३.२ चरित्र चित्रण :-

राकेशजी की कहानियों के तत्त्वों पर विचार करते समय उनके चरित्रों की सृष्टि का अध्ययन भी अत्यंत आवश्यक है । प्रथमतः उनकी कहानियों के पात्र आम शहरी और कस्बाई मध्यवर्ग के हैं जो अपनी तमाम अच्छाईयों और बुराईयों के साथ कहानियों में अपनी उपस्थिति को रेखांकित करते हैं । सामान्य और असामान्य मानसिकता वाले चरित्र राकेशजी की कहानियों में मौजूद हैं । उनके असामान्य चरित्रों के संदर्भ में यह

कहना अत्युक्ति न होगा कि असाधारण व्यक्तित्व के अधिकारी होने पर भी ये चरित्र यथार्थ जीवन के वास्तविक पात्र हैं । ये चरित्र जीवन की यान्त्रिकता, लघु मानव, अर्थहीन रिश्तों और अकेलेपन की भयावहता की उपज हैं । राकेशजी की 'मिस पाल', 'निर्मला' और 'जख्म' का कथानायक आदि ऐसे पात्र हैं ।

राकेशजी की कई कहानियों के पात्र नामहीन हैं । आधुनिक परिवेश और बदलते परिवेश में लघु होती व्यक्ति की सत्ता, अकेलेपन और सामाजिक परिस्थितियाँ परिचय खोता अजनबी व्यक्ति के लिए नाम अर्थहीन हो गया है । व्यक्ति या तो नंबर या फिर नामहीन बनकर रह जाता है । 'परमात्मा का कुत्ता', 'अपरिचित', 'बस स्टैण्ड की एक रात', 'मन्दी', 'जख्म' आदि कहानियों के पात्र इसी कोटि के हैं जो एक समग्र व्यवस्था की इकाई के रूप में चित्रित होकर भी बेनाम है । दूसरी ओर एक ही नाम को कई कहानियों में दोहराया जाना भी इसी स्थिति का परिचायक है कि सामाजिक व्यवस्था में नाम अर्थहीन होता जा रहा है । 'दोराहा', 'धुँधला दीप' और 'लक्ष्यहीन' कहानियों का नायक केसरी है । पात्रों के नामकरण के संदर्भ में यह तथ्य ध्यातव्य है कि राकेशजी के पात्रों की सृष्टि के समय उसे सामाजिक परिवेश और परिस्थिति के संदर्भ में रचा है, अतएव वहाँ नाम का महत्त्व स्वतः समाप्त हो गया है ।

राकेशजी की कहानियों की तात्त्विक विशेषता यह भी देखी जा सकती है कि वे आवश्यक कथासूत्रों का चयन करके बिना संयोजक के ही पात्रों के मन का विश्लेषण करते हुए कथा को आगे बढ़ाते हैं । यहाँ एक ठोस कथानक का अभाव प्रतीत होता है, किन्तु कहानी प्रभावशाली है । यहाँ कथा कहानी के केन्द्र की परिधि की ओर जाती है तो परिवेश और चरित्र परिधि के केन्द्रोन्मुख हो जाते हैं । उदाहरण स्वरूप 'जीनियस', 'बस स्टैण्ड की एक रात', 'ग्लास टैंक' आदि कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है । 'जीनियस' जैसी कहानियों में कथा एकदम परिधि पर आ गयी है । कथानक के तत्त्व का ताना-बाना चरित्र विश्लेषण और वातावरण से बना है । ध्यातव्य यह भी है कि यहाँ चरित्र नामहीन है । 'वह' कथानायक है, परंतु कहानी का नायक वह भी नहीं रह जाता । "वह एक व्यक्ति नहीं, एक फिनोमेना है । अपने से बाहर वह दिखाई नहीं देता । ... अपने अंदर उसका रेडिएशन महसूस किया जा सकता है ।"[६] 'ग्लास टैंक' कहानी में भी कथानक के नाम पर कुछ कथा-सूत्र हैं, परंतु ये कथा-सूत्र एक कथानक का ढाँचा बनाते हैं, 'जीनियस' की तरह यहाँ कथा गायब नहीं है । यहाँ एक नारी कथा के केन्द्र में है जिसके मन की असंमजस से कथा आगे बढ़ती है, पर पूरी कहानी में

व्यक्ति के व्यक्तित्व की तलाश है – संबंधों की टकराहट है और जीवन को देखने–परखने और समझने की कोशिश है, सपने बुनने की अभिलाषा है । तभी तो ममा कहती है – "तू मेरी तरह मत होना ... ।"[७] 'बस स्टैण्ड की एक रात' में कथा–सूत्र कहानी को आगे बढ़ाते हैं, पर यहाँ 'जीनियस' और 'ग्लास टैंक' की अपेक्षा कथानक अधिक सुस्पष्ट है । यहाँ भी पात्र के नाम बेमाने हैं, परिवेश और परिस्थिति कथानक पर अधिक प्रभावी हैं । कथा के अभाव में भी ये कहानियाँ प्रभावशाली बन पड़ी है – शिल्पगत सशक्तता के कारण । कथानक की संरचना में कथा से अधिक चरित्र को महत्त्व देकर ये कहानियाँ रची गयी हैं ।

राकेशजी की कहानियाँ जीवन की हर स्थिति के भोक्ता, सह–भोक्ता, अच्छे–बुरे, के मिले–जुले रूप, परिवेश की जटिलता से प्रेरित और प्रभावित होकर निर्मित है । कहीं–कहीं पर चरित्रों की मनःस्थितियाँ आरोपित प्रतीत होती हैं जैसे 'ग्लास टैंक' की 'ममा'। परंतु राकेशजी की कहानियों में ऐसे चरित्रों की संख्या नगण्य है । राकेशजी ने मध्यवर्गीय जीवन के सभी स्तर से अपने चरित्रों को जोड़ा है । एक तरह से उनके पात्रों का निर्माण किया है । यही कारण है कि राकेशजी के पात्र टूटने–बिखरने और बनने की प्रक्रिया से गुजरते हैं । इसलिए राकेशजी के पात्र सामाजिक परिवेश की उपज होकर भी समाज के लिए कोई उच्चत्तम मूल्यों का संदेश नहीं देते । इस संदर्भ में यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि स्वाधीनता के परवर्ती युग में हमारे समाज में सामाजिक आदर्शो का बहुत बड़ा अभाव भी रहा है । भटकाव की स्थिति, अनिर्णय की स्थिति और परिवेश के दबाव से व्यक्ति अपने अंदर ही अंदर सिकुड़ता गया, जिसके कारण उसके व्यक्तित्व का ह्रास और लघु हो जाना स्वाभाविक था । राकेशजी के चरित्रों के संबंध में डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का यह कथन द्रष्टव्य है – "राकेश की समस्याकुल कहानियों के पात्र अपने प्रारंभिक रूप में विराट मानवीय चेतना का आभास देते हैं, किन्तु अंत में वे अंतर्मुखी हो जाते हैं । वे अकेलेपन और अजनबीयत का बोझ ढोते रहते हैं । उसकी आस्था और सामाजिक दृष्टि भी बहुत पुष्ट नहीं है । वे भटकते अधिक हैं । उनके पात्र एक–दूसरे के प्रति समर्पित नहीं हैं । वे असामाजिक हैं, वे अहं की परिधि से बाहर नहीं निकल पाते हैं । वे प्रायः अजनबी और बेचैन रहते हैं ।"[८]

अंतर्मुखी, भावुक और संवेदनशील पात्रों की सृष्टि राकेशजी ने की है, जैसे – 'एक और जिन्दगी' का प्रकाश, पर विशेष परिस्थिति में ये पात्र अनपेक्षित कर बैठते हैं और प्रतिकूल स्थिति को पुनः अनुकूल बनाने को तत्पर भी होते हैं । असामाजिक और

अहं से ग्रस्त 'जख्म' का कथानायक है। वह स्वयं को सब से अलग और श्रेष्ठ कहता है, परिस्थितियों में घिरे व्यक्ति का परिस्थिति पर विजय पाने का यह एक असफल प्रयास है। "मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता ... मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं, उसका निगहबान हूँ। मैं जीता नहीं देखता हूँ क्योंकि जीना अपने आप में घटिया चीज है।"[९]

चरित्र गठन की प्रक्रिया में राकेशजी की कहानियों में संघर्षजीवी चरित्रों की संख्या भी पर्याप्त है। 'सुहागिनें' की काशी, 'जानवर और जानवर' का पाल जो अपनी संपूर्ण जिजीविषा के साथ विषम परिस्थितियों से संघर्षशील है। 'जानवर और जानवर' के पाल का विद्रोह क्रियात्मक स्तर पर है तो 'सेफ्टी पिन' और 'पाँचवें माले का फ्लैट' के चरित्रों की प्रगतिशीलता केवल वैचारिक स्तर पर है। ऐसे पात्रों की प्रगतिशीलता आरोपित प्रतीत होती है। परंतु पाल की प्रगतिशीलता वैचारिक और स्वभावगत है, वह जीवन की दोहरी स्थिति के प्रति खुलकर विद्रोह करता है। "रात को तो हम गरीब जानवर को गोली मारते हैं और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं – इसका कुछ मतलब निकलता है।"[१०] जीवन के संघर्षों से जूझते और अपराजेय जिजीविषा वाले चरित्रों में 'मलबे का मालिक' का गनी उल्लेखनीय है। मानवीय गुणों से परिपूर्ण गनी विषम-से-विषम और विकट परिस्थिति में भी अपने जीवन-मूल्यों से नहीं डिगता। राकेशजी के चरित्र की सृष्टि में गनी एक महत्त्वपूर्ण पात्र है और राकेशजी की कहानियों में अपनी तरह का अकेला भी है। जिसकी मानवता के आगे रक्खा पहलवान की दानवी प्रवृत्ति भी वशीभूत हो जाती है। राकेशजी की कहानियों में एक ओर गनी है तो दूसरी ओर बेफिक्र और स्वप्नजीवी 'मिस्टर भाटिया' भी है। जो मस्ती और बेफिक्री की हद तक जा चुका है। गनी और भाटिया राकेशजी के चरित्र सृजन के दो विपरीत छोर हैं।

राकेशजी की कहानियों के प्रमुख चरित्र में कुछ ऐसे भी हैं, जो भ्रष्ट और वासना से ग्रस्त है ; पर उनके चित्रण में भी राकेशजी पूरी तरह निरपेक्ष है। उनके सुधार अथवा दैवी न्याय जैसी कोई बात उन चरित्रों पर लागू नहीं होता, परिस्थितियों के बीच से यह चरित्र गुजरते हैं और अपनी पहचान छोड़ जाते हैं। 'एक ठहरा हुआ चाकू' का नत्थासिंह, 'हक हलाल' का पण्डित, 'गुनाह बेलज्जत' का सुंदरसिंह आदि इस कोटि के चरित्र हैं। राकेशजी की कहानियों में बहुत पात्र ऐसे भी हैं जो जीवन की त्रासदियों से बनते-बिगड़ते हैं। ऐसी स्थितियों से गुजरते पात्रों में 'ग्लास टैंक' की ममा, नीरू, 'सुहागिनें' की मनोरमा, 'एक और जिन्दगी' की बीना, प्रकाश, 'मिस पाल' की मिस

पाल, 'आखिरी सामान' की मिसेज भण्डारी, 'फौलाद का आकाश' की मीरा, 'अपरिचित' की नारी पात्र, 'फटा हुआ जूता' का राय, 'खाली' की तोषी, 'सीमाएँ' की उमा आदि उल्लेखनीय हैं। राकेशजी के चरित्र अपने परिवेश में जी कर अस्तित्व की केन्द्रीय स्थिति को वहन कर रहे हैं। इनके अधिकांश पात्र जिन्दगी में रचे–बसे लोग हैं, जो सारी विषमताओं, विसंगतियों और संश्लिष्टताओं के बावजूद अपने अस्तित्व की स्थिति को इन्सान की तरह जीते हैं। 'आर्द्रा' जैसा चरित्र राकेशजी की पूरी श्रद्धा की उपज है। जिसके माध्यम से पुरानी पीढ़ी के प्रति एक संस्कारगत श्रद्धा प्रवर्तमान है। तरुण व्यक्ति चरित्रों में फ्रस्टेड चरित्र के रूप में मिस्टर भाटिया है। 'शिकार' का पटवर्द्धन भी एक बेकार की त्रासदी से ग्रस्त तरुण चरित्र है। जख्म का कथानायक भी तरुण पीढ़ी के आक्रोश की अभिव्यक्ति है। 'काला रोजगार' का नायक अपनी बहन को आजीविका कमाने की छूट देता है – मगर उसे कहानी के अंत में पता चलता है कि वह अपने शरीर को बेचकर उसका खर्च उठा रही थी। संबंधों का खोखला पड़ जाना और एक नये अर्थ की भूमिका में संबंधों के बनने–बिगड़ने को ये चरित्र रेखांकित करते हैं।

आर्थिक दबाव से नैतिक और चारित्रिक मूल्यों को व्यक्ति अस्वीकार करता जा रहा है। अनैतिकता और चारित्रिक अवमूल्यन आधुनिक अर्थ–केन्द्रित समाज की नियति है। नारी के संदर्भ में यह बात अधिक मुखरित है – 'जानवर और जानवर' कहानी में मैट्रन बनने के लिए अनीता को पादरी से अस्मत का भी सौदा करना पड़ता है। आधुनिक समाज में आर्थिक विपन्नता अभिशाप के साथ–साथ मानव की नियति बन गयी है। संबंधों के विघटन के पीछे आर्थिक विपन्नता बहुत बड़ा कारण है। 'सोया हुआ शहर', 'रोजगार','हक हलाल', 'मरुस्थल', 'वासना की छाया में', 'सुहागिनें', 'अपरिचित', 'एक और जिदंगी', 'गुनाह बेलज्जत' आदि कहानियों की कथावस्तु की संरचना में आर्थिक विपन्नता से उभरे सामाजिक संबंधों का विघटन मुखरित है। 'हक हलाल' मध्यवर्गीय परिवार में सामाजिक अन्याय को उजागर करता है। कहानी के पात्रों के व्यर्थता बोध, उसकी छटपटाहट आदि आर्थिक विपन्नता की उपज है। अपनी दोनों बेटियों को वृद्ध पिता अपनी उम्र के व्यक्ति को बेचकर आर्थिक विपन्नता से पार पाना चाहता है तो दूसरी ओर अर्थ के बल पर वृद्ध पण्डित नारी का शोषण भी करता है। 'रोजगार' की साधना होटल की मालकिन "जब–तब पाँचवीं मंजिल के किसी कमरे के लिए ... हरबंस सिंह टैक्सी ड्राइवर को भेजकर उसे बुलवा लिया करती है।"" अपने भाई का इलाज और अपने निर्वाह के लिए साधना कोलगर्ल बनने को बाध्य है।

आर्थिक विवशता ने उसे 'टैक्सी' बनाकर रख दिया है। आर्थिक विपन्नता के कारण शरीर के स्तर पर शोषण का बड़ा ही सुंदर चित्रण 'सोया हुआ शहर' में हुआ है। नगर और महानगरीय जीवन की बीभत्सता का बड़ा ही यथार्थ और कटु प्रतीकात्मक चित्रण इस कहानी में है। शहर का सोया हुआ होना, इन्सान के रूप में लोलुप कुत्तों का जागना प्रतीक ही है। दिन के उजाले का इन्सान रात के अँधेरे में कुत्ता बन जाता है। यान्त्रिकता और महानगरीय जीवन के आधुनिकीकरण की सफल अभिव्यक्ति हुई है। 'मरुस्थल' का पिता धनपतराय को अपनी बेटी इन्दु के बड़े होने में कमाई के दिन याद आते हैं। इस कहानी में आधुनिक जीवन में अर्थ के कारण निर्मूल होते संबंध का वर्णन है। पिता–पुत्री और पति–पत्नी के संबंध में अलगाव की स्थिति के मूल में अर्थ ही है। 'आखिरी सामान' की मिसेज भण्डारी अपने पति के द्वारा शोषित है। पदोन्नति पाने के लिए अपने अधिकारी के पास वह अपनी पत्नी को सौंपना चाहता है। परंतु मिसेज भण्डारी जब वहाँ से बच निकलती है तो "मिस्टर भण्डारी का बारह सौ की नौकरी पाने का मनसूबा पूरा नहीं होता।"[१२] और पति–पत्नी के संबंधों में तनाव पैदा होता है। 'चौगान' की वृद्धा माँ अपनी बेटी 'सन्तो' को पैसे के कारण वृद्ध पिता की उम्र के साहब को सौंप देती है। सन्तो देह के स्तर पर साहब से जुडना चाहती है। एक–दूसरे से जुडने की असफलता साहब और सन्तो की विवशताभरी कहानी सुनाती है। 'आखिरी सामान', 'सोया हुआ शहर', 'हक हलाल', 'रोजगार', 'चौगान', 'सुहागिनें' आदि कहानियों में नारी कुछ और नहीं मेज–कुर्सी की तरह एक उपयोगी सामान है, जिसे पुरूष कभी भी अपने फायदे के लिए बेच सकता है। राकेशजी की कहानियों में आर्थिक समस्याओं से जूझते, टूटते, निर्वासित और अजनबी होते मध्यवर्गीय तथा निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन–सत्य का उद्‌धाटन मिलता है।

राकेशजी की कहानियों के पात्रों में वास्तविकता के त्रासद–बोध से एक व्यापक संक्रमण की भावना है और उनके मानसिक स्तर पर भी यह संक्रमण हावी है। निरंतर निःसंग होने की यंत्रणा और अकेलेपन की दुर्निवार अनुभूति व्यक्ति में बिलगाव की स्थिति पैदा करती है। राकेशजी की कहानियों की कथावस्तु में इन परिस्थितियों को खोजा जा सकता है। व्यक्ति सबसे कटकर आत्मनिवर्सन की स्थिति में जीता है। आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण औपचारिकता से जकडता मानव स्थापित मान्यताओं और रीति–रिवाजों से कटता जा रहा है। भारतीय परिवेश में निरंतर खण्डित होते व्यक्ति राकेशजी की कहानियों की कथावस्तु का प्रमुख घटक है। इस संदर्भ में

'लक्ष्यहीन', 'दोराहा', 'गुमशुदा', 'मिस पाल', 'वारिस', 'भूखे', 'जख्म', 'धुँधला दीप', 'खाली' आदि कहानियाँ द्रष्टव्य हैं।

'लक्ष्यहीन', 'दोराहा' और 'धुँधला दीप' तीनों कहानियों का नायक केसरी है। तीनों कहानियों में व्यक्ति की मनःस्थिति का चक्र चलता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि व्यक्ति का नाम यहाँ महत्त्वहीन है बल्कि मानव जीवन के संत्रास को झेलते व्यक्ति की मनःस्थिति का वर्णन है। केसरी आधुनिक व्यक्ति है, जो जीवन के 'दोराहे', से गुजरकर 'धुँधले दीप' की गलियों में 'लक्ष्यहीन' जीवन के अकेलेपन और अलगाव–बोध को झेलता है। अनिर्णय की स्थिति में वह दिशाहीन जीवन व्यतीत करता है। जीवन में कई चरित्रों से जुडने पर भी उसका जीवन अनिर्णय की स्थिति में एकान्त और लक्ष्यहीन हो जाता है। पूर्णिमा, श्यामा, मनोहर, राधा, सरोज, मंजुला आदि सभी उसके लिए अपूर्ण और खण्डित जीवन के खण्ड हैं। अनिर्णय की स्थिति, समर्पण भावना का अभाव और द्वन्द्वात्मक स्थिति में भटकाव उसके अकेलेपन के कारण हैं। आधुनिक जीवन की अवसंगति और अकेलेपन का प्रभावशाली वर्णन 'मिस पाल' में है। "आज की आधुनिक नारी की प्रतिनिधि है 'मिस पाल', साथ ही महानगरीय परिवेश में जीवन की निःसंगता तथा व्यर्थता–बोध की खिन्नता मिस पाल में देखी जा सकती है। वह एक ऐसी जगह की तलाश में है, जहाँ यहाँ की–सी जिन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करते हों।"[७३] नौकरी छोड़कर नयी जगह आने पर भी वह शून्यताबोध और अजनबीपन की अनुभूति से उबर नहीं पाती। अपना पालतू कुत्ता (पिंकी) उसे इन्सान से अधिक पसंद है। अकेलेपन से पार पाने के लिए वह चित्र बनाती है, परंतु जीवन की तरह चित्र भी अव्यवस्थित और अधूरे होते हैं। आधुनिका मिस पाल घुटन और अवसाद से टूट रही असफल जिन्दगी जीती है। उसकी बिखरी जिन्दगी में "हर चीज दूसरी चीज की जगह काम में लाई जा रही थी, एक कुर्सी ऊपर से नीचे तक मेले कपड़ों से लदी थी। दूसरी पर कुछ रंग बिखरे थे और एक प्लेट रखी थी। जिसमें बहुत–सी कीलें पड़ी थीं।"[७४] 'खाली' कहानी का जुगल आधुनिक व्यक्ति की असहायता का व्यंग्यात्मक रूप है। दूसरी तरफ शादी से पहले की हँसमुख और शोख तुषी घिसेपिटे दाम्पत्य जीवन से ऊबी हुई है। जिन्दगी अर्थहीन और बेरंग है। इस दायरे से चाहकर भी वह बाहर नहीं निकल पाती और खण्डित जीवन जीती है। वर्तमान जीवन का परिवेश और रोजमर्रे की घिसीपिटी परिस्थितियों में वे एक–दूसरे की उपस्थिति को भी अनुभव नहीं कर पाते। आधुनिक परिवेश में खण्डित एवलीन

'भूखे' कहानी का मुख्य चरित्र है । एक असहाय और संवादहीनता की स्थिति में एवलीन की घुटन व्यक्त हुई है ।

राकेशजी की प्राय सभी कहानियों में मानव की बिलगाव और खण्डित होने की स्थिति स्पष्ट है । मानव जीवन में पुरानी मान्यताओं और परंपराओं का अस्वीकार है । स्वतंत्र ढंग से जीने की उसमें एक उद्दाम भावना दिखाई देती है । विवेक और स्वतंत्र व्यक्ति से ही वह नैतिक या अनैतिक का चुनाव करता है । नैतिकता के दायरे में भी आगे चलकर आधुनिक युवक मानवीयता और नये मूल्यों की खोज करता है । 'चाँदनी और स्याह दाग', 'जँगला' आदि कहानियों में नवीन मूल्यों की तलाश है । 'चाँदनी और स्याह दाग' प्राचीन मूल्यों और नैतिकता के समक्ष नये मूल्यों को स्थापित करता है जिसमें मानवीयता को महत्त्व दिया गया है । कबाइलों के द्वारा लुटी प्रेमिका मेहर को निस्संकोच स्वीकार करने में नायक समदू का मानवीय दृष्टिकोण उभरकर सामने आता है । परंपरित नैतिकता का प्रश्न यहाँ कोई मायने नहीं रखता । मेहर को अपनाने में मानसिक दृढ़ता का परिचय देता समदू परंपरित मूल्यों और मान्यताओं को झकझोर देता है । 'जँगला' पारिवारिक संघर्ष की कहानी होने के साथ-साथ परंपरा और रूढ़ियों पर पुनःविचार करने पर मजबूर करती है । कथानायक बिशन के माता-पिता के अन्तर्मन में चलने वाला द्वन्द्व और अंततः मन-ही-मन बिशन और राधा के संबंध को मान लेना पुरानी मान्यताओं और रूढ़िग्रस्त नैतिकता की पराजय है । परित्यक्ता राधा के साथ बिशन के संबंध को अस्वीकार और तिरस्कार करने वाली माँ अंत में यह निर्णय लेती है कि, "मेरी तरफ से वह किसी को भी घर में ले आये । मैं यहाँ न पड़ी रहूँगी, पीछे के कमरे में पड़ी रहूँगी ।"[७८] दूसरी ओर कहानी में टूटते मानवीय संबंधों के बीच वात्सल्य जैसी शाश्वत भावना की प्रबल विजय भी इंगित है । नयी-पुरानी मान्यताओं के संघर्ष के बीच वात्सल्य-भाव मानवीय संबंधों का साथ देता है ।

राकेशजी की कहानियों में बिखरती हुई, टूटती हुई स्थितियों के साथ-साथ परिस्थितियों द्वारा निर्धारित नियति के प्रति समर्पित पुरुष का वर्णन है । एक ओर जिन्दगी, मलबे का मालिक, पाँचवें माले का फ्लैट, जख्म, फटा हुआ जूता, परमात्मा का कुत्ता, एक ठहरा हुआ चाकू, सेफ्टी पिन, नये बादल, हक हलाल, पहचान, मवाली आदि कहानियाँ इसके उदाहरण हैं ।

निम्न मध्यवर्गीय और नौकरीपेशा पुरुष आर्थिक दबाव से टूटकर रिश्वतखोरी को अपनाता है और उसे तर्क के आधार पर सही भी ठहराता है। पुरुष की यह मनःस्थिति आधुनिक परिवेश से उपजी है, जहाँ रिश्वत लेन–देन की प्रवृत्ति के पनपने के लिए उर्वर जमीन उपलब्ध है। धर्मशाला के चौकीदार की यह सोच कि "पैसा लेकर तो वह ईमानदारी से कह सकता था कि वे लोग औरों से पहले उसके पास आए हैं। इसलिए कमरों पर पहला हक उन्हीं का है।"[७६] सार्वजनिक स्थानों पर भ्रष्टाचार के परिवेश में पुरुष की मनःस्थिति का यह यथार्थ चित्रण है। इसी कहानी में परंपरावादी चौधरी के मन में दो नवयुवक और एक नवयुवती के संबंधों को लेकर जो ऊहापोह मचा रहता है, वह परंपरावादी पुरुष के उस मनःस्थिति का वर्णन है जो आधुनिक संदर्भ में अर्थहीन है, जिससे वह स्वयं अपने को ही परेशान करने के अलावा कुछ ओर नहीं कर पाता है। 'परमात्मा का कुत्ता' के नायक का आक्रोश आधुनिक व्यक्ति के उस मनःस्थिति को प्रकट करता है जो दो साल की दौड़–धूप के बावजूद व्यक्ति को उसके अधिकारों से वंचित करता है। परसाईजी की 'भोलानाथ का जीव' की तरह वह मृत्यु के बाद भी फाइल से चिपका नहीं रहता बल्कि आक्रोश से व्यवस्था–विरोधी बन जाता है। नौकरशाही के चलते व्यक्ति का परिचय इस प्रकार हो जाता है – "मेरा नाम बारह सौ छब्बीस बटा सात। मेरे माँ–बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने। ... मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूँ। मेरा कोई नाम नहीं।"[७७] शोषक पुरुष की मनःस्थिति 'जानवर और जानवर' कहानी के पादरी में देखने को मिलती है, जो अपने अधिकार और रुतबे के चलते अनीता मुखर्जी और मणि नानवती को अपनी वासना की पूर्ति का माध्यम बनाता है। 'जानवर और जानवर' का फादर 'फिश' और नये बादल का चौकीदार दो अलग–अलग धरातल पर पुरुष की विकृत मनःस्थिति का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। इसी संदर्भ में 'मवाली' के धनी पिता को भी देखा जा सकता है। 'हक हलाल' का पण्डित अच्छी तरह समझता है कि पैसों के बल पर वह अपनी चरमराती हड्डियों के ढाँचे वाले शरीर के लिए कोमल किशोरियों को पा सकता है। पण्डित अपने से बहुत कम उम्र की पत्नी के भाग जाने पर उसकी छोटी बहन को घर ले आता है। पत्नी के लौट आने पर भी वह अपनी किशोरी साली को वापस नहीं लौटाता है, बल्कि सौ–दो सौ रुपये और देकर उसे भी रख लेना चाहता है। अपने वासनामूलक अत्याचारों पर वह मानवीय संवेदना का पर्दा डालता है। "वह अब कहाँ जाएगी जी ?.. उसका बाप बहुत गरीब आदमी है। इसके पास उसे खिलाने के लिए एक पैसा भी नहीं है। उसको उसका सौ–सवा सौ चाहिए सो मैं ही उसे दे दूँगा। इतने दिनों से घर में

रह रही है, सो अब छोड़ने को मन नहीं करता। आदमी को आदमी से मोह हो जाता है।"[७८] अर्थ केन्द्रित समाज–व्यवस्था में पुरूष की मनःस्थिति पण्डित के जरिए स्पष्ट है। नारी पुरूष के लिए केवल वस्तु है यह मनःस्थिति परोक्ष रूप में उस पिता में भी है जो बूढ़े पण्डित को अपनी दोनों बेटियाँ बेच देता है। इस संदर्भ में पुरूष की विकृत मनःस्थिति का एक यथार्थ चित्रण 'वासना की छाया में' के जाट में है जो अपनी बेटी के बदले अपने लिए एक औरत चाहता था, "जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो उसे अपना यौवन राँधकर उसे खिला सकती है, क्योंकि वह जमींदार है और उसके घर में एक गाय और दो भैंसें हैं और उसकी हड्डियों में जितना जोर है, उससे कहीं अधिक उसकी गांठ में पैसा है।"[७९] सेक्स के संदर्भ में पुरूष मनःस्थिति का चित्रण 'बनिया बनाम इश्क' कहानी में भी चित्रित है।

अर्थ को सब कुछ मानकर उसे सेक्स और शोषण का माध्यम बनाने वाले पुरूष पात्रों के अतिरिक्त राकेशजी की कहानियों में विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों के पुरूष पात्र हैं। 'जख्म' का नायक अहं का शिकार है। अपने स्व के प्रति केन्द्रित यह पात्र किसी दूसरे के बारे में सोचने तक का विरोध करता है। उसका अहं उसके भीतर के बिखराव को ही व्यक्त करता है। "मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता .... मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं उसका निगहबान हूँ। मैं जीता नहीं देखता हूँ क्योंकि जीना अपने आप में घटिया चीज है।"[८०] राकेशजी के पुरूष चरित्र केवल शोषण और अहं पर केन्द्रित नहीं है, बल्कि वैचारिक स्तर पर भी वे प्रगतिशील हैं। गनि जैसे चरित्र जिजीविषा से परिपूर्ण है। दूसरी तरफ बेफिक्र मिस्टर भाटिया है जो भावी जीवन के रंगीन सपनों में अपना वर्तमान स्वाहा कर देता है। 'वारिस' के मास्टरजी शिक्षा के प्रति पूर्णतया समर्पित चरित्र है।

जीवन की परिस्थितियों से जूझकर 'फटा हुआ जूता' का राय हताशा–निराशा के बीच झूल रहा है। इसके अतिरिक्त राकेशजी के अधिकांश पुरूष चरित्र की मनःस्थितियाँ सेक्स और अर्थ को केन्द्र में रखकर बनती–बिगड़ती हैं। मानव जीवन के विघटन को राकेशजी के पुरूष चरित्र झेलते हैं। चूँकि आधुनिक युग–जीवन की पीड़ा में दो पहलू हैं – सेक्स और अर्थ। इसीलिए राकेशजी के पुरूष पात्रों में पीड़ा का संदर्भ भी इन दो पहलुओं पर केन्द्रित है। इनसे वैवाहिक संबंधों में तनाव और बिखराव, समाज–व्यवस्था में न्याय के अभाव से उत्पन्न आक्रोश, अर्थ के प्रबल दबाव से मानवीयता का

समाप्त होना सब कुछ राकेशजी के पुरुष चरित्र में उजागर है। साथ ही ऐसे पात्रों की भी कमी नहीं है जो अर्थ और सेक्स को आधार बनाकर शोषक की भूमिका में हैं।

राकेशजी की कहानियों के नारी चरित्र अधिक प्रभावशाली हैं। नारी सामाजिक स्तर पर अपनी पहचान बनाने में कामयाब तो हुई है, किन्तु जीवन के संघर्ष ने उसके परम्परित और आदर्श रूप पर कई प्रश्न छोड़ जाती हैं। ऐसी स्थिति में नारी का जीवन दोहरे संघर्ष से गुजरता है। एक ओर घर से बाहर आकर बाहर की जिन्दगी की रफ्तार और उथल–पुथल के साथ चलना, दूसरा अपनी परम्परित छवि के साथ–साथ उच्च मानवीय मूल्यों और संस्कारों को संरक्षित रखना। इस प्रक्रिया में आज की नारी अपनी–अपनी जिन्दगी ढोती है। राकेशजी की कहानियों में भी नारी की मनःस्थितियों में इस चीज का प्राधान्य दिखाई देता है। किलकारी मारती बालिकाएँ या यौवन के सपनों में सज–धजकर सँवरती नारी राकेशजी की कहानियों में नहीं है। जीवन की जटिल परिस्थिति से उत्पन्न 'सीमाएँ' युवती नारी के अंदर पुरुष के स्पर्श का आभास देता है, पर लूटे और छले जाने का क्रूर यथार्थ अनुभव भी। नारी जीवन की विभीषिका राकेशजी की बालिकाओं में भी है। 'मरुस्थल' की इन्दु अपने पिता धनपत के लोभ के कारण अपनी प्रतिभा का विकास नहीं कर पाती है और घुटकर रह जाती है। ज्वरग्रस्त इन्दु का चिल्लाकर बार–बार कहना कि – 'मैं रंडी नहीं हूँ।' बालिका के अचेतन मन के भावों को स्पष्ट करता है, साथ ही किशोर मनःस्थिति के उथल–पुथल को भी दर्शाया है। किशोर मन में जीवन की परिस्थितियों के प्रति कटुता और संबंधों पर प्रश्न इसी उम्र से ही शुरू हो जाता है। 'एक घटना' की विदुषी अर्थ के अभाव में अपने पिता की जीवन भर की कमाई पाण्डुलिपियों को २०० रूपयें में बेचने पर बाध्य होती है। आर्थिक अभाव से मूल्यों के विघटन को झेलती मनःस्थिति समाज के प्रतिकूल परिवेश और आधुनिक जीवन की उपज है। वासना की छाया में भोली–भाली पुष्पा बूढ़े बाप के हवस के कारण बट्टे में दी जाने वाली वस्तु है। वह समझती है कि बाप की गाली बच्ची को नहीं लगती पर 'बापू जो गाली नहीं देता, वह गाली उसे लग रही है।"[२१] आर्थिक अभाव और संबंधों के निर्वाह में टूटती नारी की मनःस्थिति 'उर्मिल जीवन' की नीरा में है। जीजी की मृत्यु के बाद उसकी दो बच्चियों कृष्णा और मीरा को पालने के लिए वह अपने जीजा से विवाह करने के लिए बाध्य होती है। नारी जीवन की विवशता और घुटन से भरी मनःस्थिति नारी के मार्मिक अनुभव में उभरती है कि "दो मोटे–मोटे होठ, नाक के लम्बे बाल और विचित्र गंध। निकट और निकट। आँखों के दो गहरे गड्ढे। नीरा हिचकिचाई। चाहा बाँहें झटक दे और जोर से तमाचा लगाए, जिससे सारा

वातावरण झन्ना उठे... मगर हाथ नहीं उठ सका।"[२२] नारी की विवश मनःस्थिति का यह सजीव चित्रण है। वर्जनाओं और निषेधों के बीच पली भारतीय नारी 'आदमी और दीवार' की राजी की तरह पुरूष के रूप में भाई सत्तो द्वारा प्रताड़ित है। हरीश ने सत्तो को पत्र लिखा था जिसमें सभी बाते पारिवारिक थीं, परंतु तीन बिन्दु का संकेत सत्तो के मन में संदेह भर देता है। सामाजिक नैतिकता में पुरूष का व्यभिचार पौरूष है तथा नारी मुक्ति की बात करते हुए भी पराए पुरूष के साथ उसका सामान्य संबंध संदेह से परे नहीं है। राकेशजी के नारी–पात्रों में ऐसे भी पात्र हैं जो नारी के दूसरे रूप को उजागर करते हैं। 'पाँचवें माले का फ्लैट' की सरला अविनाश की सहूलियत के लिए नंगे बाजुओं पर से साडी का पल्लू ढलक जाने देती हैं तो 'दोराहा' की श्यामा शील की अनुपस्थिति में केसरी की ओर झुकती है और शील के आने पर केसरी की ओर देखती तक नहीं।

राकेशजी की कहानियों में नारी की मानसिकता अत्यंत सशक्त रूप में 'मिस पाल' और 'आर्द्रा' में चित्रित हैं। परिवेश से जूझती 'मिस पाल' शहरी और ग्रामीण परिवेश कहीं भी जीवन की आर्थिकता नहीं ढूँढ़ पाई। बचपन की असुरक्षा उसे पुरूष से डरने का संस्कार देती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'मरूस्थल' की इन्दु, 'वासना की छाया में' की पुष्पा की मनःस्थिति की परिणति 'मिस पाल' की मनःस्थिति में हुई है। मिस पाल मन से बिखरी चली जाती है। सहकर्मियों के बीच वह घुटन को महसूस करती है। उनकी टुच्ची बातें और व्यंग्य उसकी हीन भावना को बढ़ाती हैं। मिस पाल का संघर्ष समझौता में ही समाप्त होता है, वह चुनाव की प्रक्रिया से गुजरती है परंतु विडम्बना यह है कि चुनाव से स्थितियाँ पूर्ववत् ही रहती हैं। उस पर छीटाकशी करने वाले लोग दिल्ली में भी थे और रायसिन गाँव में भी। रणजीत का अपने घर में गर्मजोशी से स्वागत करती है और कुछ देर के लिए वह क्षणिक आवेग में बहती प्रतीत होती है परंतु फिर से वह एकाकीपन के सन्नाटे में चली जाती है। मिस पाल कौमार्य व्रत लेकर प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ती नारियों की एकाकीपन, अजनबीपन, बिखराव, ऊब, उकताहट और व्यर्थताबोध की मनःस्थिति को प्रकट करती है। आधुनिक परिवेश और जीवन की व्यर्थता–बोध से मिस पाल का विकास हुआ है। यदि मिस पाल अतंर्मुखी स्वभाव की है तो 'जानवर और जानवर' की मेट्रन शैली बहिर्मुखी स्वभाव की है। जिसके कारण वह प्रौढ़ उम्र तक अविवाहित रहने पर भी कुण्ठाग्रस्त नहीं है। उसकी भावनाओं का उदात्तीकरण हो गया है। वह हँसमुख और अत्यंत सामाजिक है। पीटर जब मजाक में कहता है कि उससे कम उम्र का पोल उससे शादी करना चाहता है तो वह

कहती है – "तो मुझे और क्या चाहिए ? मुझे एक साथ पति भी मिल जाएगा और बेटा भी।"[२३] परंतु अकस्मात शैली का नौकरी से निकाला जाना उसके अंदर भयावह रूप से असुरक्षा की भावना भर देता है। 'रोजगार' की होटल की मालकिन इस बात से दुःखी है कि पुरूष उसके नारी होने का लाभ उठाते हैं पर दिल से उसे नहीं चाहते। राकेशजी की कहानियों में अविवाहित, अधेड़ उम्र की नारियों की मानसिकता को बखुबी उजागर किया गया है। उनकी यही मानसिकता विभिन्न घात-प्रतिघात और सामाजिक परिवेश की उपज हैं, साथ ही अंत में उनमें एक असुरक्षा का भाव भी पनपता है।

अविवाहित अधेड़ नारियों की मानसिकता के साथ-साथ विवाहित जीवन की मार को सहने वाली नारियों की मनःस्थितियाँ भी अपनी परिपूर्णता में राकेशजी की कहानियों में व्यक्त हैं। राकेशजी के कई नारी चरित्र एक घर की तलाश में भटकती हैं। 'भूख' की नायिका एवलीन पति की बेकारी और बीमारी का सामना करते हुए बच्चे का लालन-पालन भी साहस के साथ करती है। "नितान्त अभाव में भी माँ और पत्नी के कर्त्तव्य से च्युत न होकर 'बोल रूप डांस' की आवाज को अनसुनी कर सोसाईटी गर्ल बनने का प्रलोभन ठुकराने वाली दृढ़ निश्चयी युवती एवलीन राकेश की कहानियों में अकेली ही है।"[२४] 'फौलाद का आकाश' की मीरा पति रवि की यान्त्रिकता के कारण एक अजीब मनःस्थिति से गुजरती है। जीवन प्रेमरहित संबंधों के कारण जड़ बन जाता है। "मीरा को लगता है कि उससे प्यार करते वक्त भी वह मन-ही-मन चुम्बनों की गिनती करता रहता होगा... तभी तो उसका आवेश एक चरम पर पहुँचकर एकाएक रह जाता था।"[२५] आधुनिक जीवन का पति जब पूरी तरह व्यावसायिक हो जाता है तो नारी की मनःस्थिति मीरा जैसी हो जाना कोई आश्चर्य नहीं है। व्यावसायिक और स्वार्थी पति व्यवसाय के कारण पत्नी का सौदा भी करता है। मीरा का सहाध्यायी राजकृष्ण एक मंत्री है, जो रवि की मिल में झगड़ा निपटाने आता है। रवि अपनी पत्नी मीरा का इस्तेमाल कर आगे बढ़ता है। वह गेस्ट हाउस में राजकृष्ण से मिलने मीरा को भेजता है, जहाँ मीरा राजकृष्ण की वासना का शिकार बनती है। रवि की मिल की हड़ताल टूट जाती है, वह खुश होता है। पत्नी का रूमाल और पर्स गेस्ट-हाउस के चपरासी से पाकर भी रवि आँख मूंद लेता है। मीरा लापरवाही से पर्स अलमारी में और रूमाल धोबी के कपड़ों में डालती है। नारी की घुटन से उत्पन्न मनःस्थिति के साथ-साथ आधुनिक जीवन में पुरुष की मानसिक क्रूरता का भी परिचय इस कहानी में है। 'आखिरी सामान' की मिसेज बेला भण्डारी भी महत्त्वाकांक्षी व्यावसायिक पति की मानसिक उत्पीड़न का शिकार है। पति उसे अपनी पदोन्नति के लिए उच्च अधिकारी के

हवस का शिकार बनाना चाहता है परंतु बेला पति की इच्छा को पूरा नहीं कर पाती। जिनके फलस्वरूप पति सुशील को फँसाकर कैद करवा दिया जाता है और घर का सारा सामान बिक जाता है। बेला भी आखिरी सामान की तरह घर से बाहर आती है। पति की कायरता एवम् स्वार्थपरता से दुःखी बेला की मानसिकता एक नारी की दुःखद स्थिति को प्रकट करता है। 'खाली' की तोषी अपने पति जुगल के व्यवहार से नाखुश है। जुगल का शक्की स्वभाव तोषी को जीवन से अलगाव की स्थिति में ला खड़ा करता है। तोषी यही सोचती रहती कि वह कोई ऐसा काम करे जिससे जुगल दुःखी हो। वह चाहकर भी घर इसलिए नहीं छोड़ती कि शायद उसके घर छोड़ देने पर जुगल खुश होगा। नारी घुटन की समस्या को राकेशजी ने तोषी के चरित्र के माध्यम से स्पष्ट किया है।

परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नौकरी करने वाली स्त्रियों को पति मात्र कमाऊ मशीन ही समझता है। ऐसा ही एक चरित्र है 'सुहागिनें' की मनोरमा। मनोरमा को पति के पत्र में प्यारसूचक संबोधन अर्थहीन लगते हैं। उसका अभाव दोहरा है : मातृत्व का अभाव और पत्नीत्व का अभाव। दूसरी ओर मनोरमा की नौकरानी काशी है जिसका पति अजुध्या किसी ओर औरत के साथ रहता है और कभी-कभी पत्नी से फल के बगीचे के पैसे लेने आ जाता है। काशी के तीन-चार बच्चे भी इस कभी-कभार के मिलन की निशानी हैं। काशी का दुःख पति की क्रूरता, आर्थिक संकट और सपत्नी का दुःख है। मनोरमा और काशी दोनों की पीड़ा दो स्तर पर है। एक मातृत्व की कामना से दुःखी है, दूसरी मातृत्व का अपना कर्त्तव्य न निभा सकने के कारण। 'एक और जिन्दगी' में दाम्पत्य संबंधों के अनेक पहलुओं को प्रकट किया गया है। पति और पत्नी दोनों गलत चुनाव की पीड़ा से ग्रस्त हैं। "बीना समझती थी कि जान-बूझकर उसे फँसा दिया गया है। प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे कसूर हो गया है।"[२६] तलाक के बाद एक और चुनाव भी परिस्थिति में परिवर्तन नहीं ला पाता। 'गुंझल' कहानी पति-पत्नी और दूसरी स्त्री की कहानी है। 'गुनाह बेलज्जत' का फेरीवाला सुंदरसिंह होटलवाला बनते ही अपनी बीबी की शक्ल से भी नफरत करता है। बीबी हरजीत कौर को मायके भेजकर कमरे को ऐसे देखता है जैसे अभी-अभी उसने जाले-आले उतारकर ठीक किया है। पुरुष की लम्पटता पारिवारिक विघटन का कारण है, तो इस लम्पटता के लिए उकसाने वाली भी नारी ही है। दो अलग छोरों पर अलग-अलग मनःस्थिति वाली नारियाँ हैं। 'क्वार्टर' की राधा

पति शंकर की लम्पटता से परेशान है । दूसरी ओर मिसेज शर्मा और सरोज जैसी स्त्रियाँ हैं जिनका बैठने का तरीका कुछ अलग ही है ।

अनमेल विवाह की दुःखद स्थिति को झेलती 'हक हलाल' के बूढ़े पण्डित की सत्रह–अठारह वर्षिया पत्नी भाग जाती है, परंतु अंततः उसी घुटन में उसे लौट आना पडता है । एक नयी घुटनभरी परिस्थिति के बीच जिसमें उसकी छोटी बहन सपत्नी की भूमिका में होती है । आज के पुरुषप्रधान अर्थ की भूमिका वाले समाज में नारी 'कटी हुई पतंग' की राजकरनी जैसी है जो अपनी जमीन से उखड़ी और पुरुष की लोलुप दृष्टि से बिंधी हुई है । 'कम्बल' की बनारसी शरणार्थी शिबिर में कम्बल पाने के लिए पुरुषों को अपनी छाती को छू लेने देती है ताकि कड़कती ठंड में उसे कम्बल मिल सके । वह कम्बल भी उसकी माँ छीन लेती है, छोटे बच्चे को ओढ़ने के बहाने । नारी चरित्रों की मानसिकता का एक यथार्थ और मार्मिक चित्रण इस कहानी में है । बनारसी नींद के बहाने पुरुष के स्पर्श को चुपचाप सहकर कम्बल प्राप्त करती है तो माँ पुत्र के बहाने बेटी से कम्बल हड़प लेती है । आवरण से ढँके आचरण के नीचे का घिनौनापन और विवशता का यह चित्रण बहुत ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी बन पड़ा है । "राकेश की नारी चरित्रों को जो चीज विश्वसनीय और सजीव बनाती है, वह है उनका अंतर्द्वन्द्व । नारियाँ प्रायः दो विकल्पों के बीच झूलती हैं, निर्णय नहीं ले पातीं हैं, पीड़ा का उदात्तीकरण नहीं कर पाती इसलिए निराश रहती हैं । ... उनकी नारियों के चरित्र को नैतिक अथवा अनैतिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह तो यथार्थ है ।"[२७]

३.३ देश–काल–वातावरण :–

नई कहानियों में प्रभाव को द्रढ़ करने के लिए वातावरण का बहुत अधिक सहारा लिया गया है । वातावरण के सहारे नया कहानीकार अपने उद्देश्य और कथ्य को प्रभावी बनाता है । नया कहानीकार वातावरण को महत्त्व देकर केवल वातावरण के लिए कहानी नहीं लिखता, बल्कि कहानी वातावरण की वस्तुस्थिति के अनुसार स्वयं निर्मित होती है, वह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । नयी कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक ढ़ाँचेबद्ध शिल्प को नहीं अपनाती । "फार्मूला लेखक वही होता है, जो नये–नये जीवनानुभवों में चुकते हुए कहीं ठहर जाता है,... जो जीवन के सत्य की प्रामाणिक अभिव्यक्ति नहीं दे पाता और उसके लिए नये मुहावरे की तलाश में पीछे छूट जाता है ....।"[२८] राकेशजी की कहानियों का वातावरण अपने आप में किसी पात्र से कम

महत्त्वपूर्ण नहीं है। राकेशजी की कहानियों का कथ्य केवल व्यक्ति का कथ्य नहीं, बल्कि वह समय का कथ्य है। समय की आकुलता, गहरा असंतोष और विद्रोह का स्वर उनकी कहानियों में प्रकट है।

कहानी के प्रभाव को घनीभूत करने के लिए नयी कहानी में वातावरण को बहुत महत्त्व मिला है। राकेशजी की कहानियों में वातावरण कहानी की मूल संवेदना से संबंध पात्र की मनःस्थितियों का प्रतिरूप और सामयिक जीवन का चितेरा है। समकालीन परिवेश के वे निष्ठावान कहानीकार हैं। उनकी कहानियों का वातावरण वस्तुतः किसी चरित्र से कम नहीं है। राकेशजी की प्रत्येक कहानी में चित्रित वातावरण परिवेश के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और अंतद्रष्टि को दर्शाता है। राकेशजी के द्वारा वर्णित वातावरण मध्यवर्गीय, उच्चवर्गीय, निम्न मध्यवर्गीय, सरकारी, गैर सरकारी शिक्षा संस्थान आदि में त्रासद जीवन का वातावरण है। राकेशजी की कहानियों के वातावरण का एक योगवाही रूप है जो एक विशिष्ट अर्थ को प्रकट करता है। सजीव वातावरण के चित्रण के उदाहरण स्वरूप : 'जख्म' कहानी के नगरीय परिवेश का एक विशेष कोण से किया गया वर्णन देखा जा सकता है। – "सड़क के उस तरफ पत्थर के खम्भों से डोलचों की तरह लटकते कुमकुमे एक–सी रोशनी नहीं दे रहे थे। रोशनी उनके अंदर से लहरों में उतरती जान पड़ती थी, जो कभी हल्की, कभी गहरी हो जाती थी। रोशनी के साथ–साथ कोरिडोर की दीवारों, आदमियों और पार्क की गई गाड़ियों के रंग हल्के गहरे होने लगते थे। बिजली के तारों से ऊपर, आसमान से सटकर अँधेरा हल्की धूल की तरह इधर–उधर मँडरा रहा था। कुछ अँधेरा पास के कोने में बच्चे की तरह दुबका था। ठंडी हवा पतलून के पायचों से ऊपर को सरसरा रही थी।"[२९] 'सोया हुआ शहर' कहानी में भी प्रारंभ में जिस परिवेश का वर्णन है, वह अत्यंत सजीव है। घने अंधकार में निद्राधीन शहर का वर्णन बहुत ही सुंदर है। खाली सड़क पर फैली हुई पतली चमकदार झिल्ली की तरह रोशनी दौड़ते कुत्ते, बस स्टोप के शेड से सटा पेड़ और उसके पीछे के आसपास के परिवेश का बिम्बात्मक शैली में वर्णन किया गया है। राकेशजी की कहानियों का परिवेश कथानक का एक अंश है, आरोपित नहीं। 'अपरिचित' कहानी में ट्रेन के डिब्बे के अंदर का जो परिवेश चित्रित है वह एक अपरिचित वातावरण को अधिक गहराता है। अपरिचित की स्थिति से परिचय पाने की दिशा का संकेत भी उस वर्णन में है। "खिड़की से सिर सटाकर भी बाहर कुछ दिखाई नहीं देता था। फिर भी मैं देखने की कोशिश कर रहा था। कभी किसी पेड़ की हल्की रेखा ही गुजरती नजर आ जाती तो कुछ देख लेने का संतोष होता।"[३०] इस संदर्भ में यह तथ्य भी सामने आता है कि राकेशजी की

कहानियों के परिवेश का अलग अस्तित्व नहीं है, बल्कि वे कथा और चरित्र के साथ संश्लिष्ट हैं। 'मिस पाल' में वर्णित वातावरण का बिखराव मिस पाल के व्यक्तित्व के बिखराव से जुड़ा है तो "उसके गद्दे पर जो झीना रेशमी कपड़ा बिछा रहता था।"[३७] वह उसके अंदर के व्यक्तित्व के आवरण का प्रतिरूप है। कहानी के अंत में दो खाली डिब्बे हाथ में लिए हुए रणजीत को विदा देने का बिम्ब मिस पाल के जीवन का ही प्रतिबिम्ब है। वातावरण चित्रण की संश्लिष्टता की दृष्टि से मिस पाल एक मार्मिक कहानी है।

राकेशजी का व्यक्तित्व मूलतः एक नाटककार का व्यक्तित्व था। उनकी कहानियों के वातारण में नाटकीयता का स्पर्श है। परिवेश के चित्रण में नाटकीय वर्णन मिलता है, जिसमें साजो–सामान के ब्योरें को महत्त्व मिला है। 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी का नाटकीय रूपान्तरण इस बात का सशक्त प्रमाण है। 'बारह सौ छब्बीस बटा सात' के नाम से उक्त कहानी का सफल रूपान्तरण राकेशजी की कहानियों की नाटकीयता का सफल उदाहरण है। परिवेश के नाटकीय वर्णन के उदाहरणस्वरूप 'एक ठहरा हुआ चाकू' कहानी का यह वर्णन द्रष्टव्य है – "कमरे में कुछ–एक कुरसियाँ थीं लकड़ी की। वैसी ही, जैसी सब पुलिस स्टेशनों पर होती हैं। कुरसियों के बीचोंबीच एक मेजनुमा तिपाई थी जो कि कुहनी ऊपर रखते ही झूलने लगती थी। आठ फुट और आठ फुट का वह कमरा इनसे पूरा घिरा था। टूटे पलस्तर की दीवारें कुरसियों से लगभग सटी हुई जान पड़ती थीं। शुक्र था कि कमरे में एक दरवाजे के अलावा एक खिड़की भी थी।"[३८] वातावरण के वर्णन में राकेशजी ने यर्थाथबोध का परिचय दिया है। उनकी कहानियों में वर्णित परिवेश की पीठिका पर समकालीन व्यक्ति अपनी पूरी तस्वीर के साथ उतरता जाता है। 'बस स्टैण्ड की एक रात','मवाली', 'मिस्टर भाटिया', 'मिस पाल', 'आर्द्रा' आदि कहानियाँ उक्त तथ्य को सफलतापूर्वक रेखांकित करती हैं।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में भ्रष्टाचार और उससे उत्पन्न होनेवाली अमानवीयता को भी उजागर किया है। भ्रष्टाचार का सब से बड़ा शिकार मध्यवर्गीय व्यक्ति है। पदोन्नति के लिए पत्नी को उपभोग की वस्तु के रूप में देना (आखिरी सामान), नौकरी के लिए अस्मत का सौदा करना (जानवर और जानवर) आदि मानव जीवन में सामान्य बनता जा रहा है। भ्रष्टाचार के चलते मध्यवर्ग पिसता जा रहा है, शिक्षित और योग्य व्यक्ति अभाव और असहायता के बोध से ग्रस्त है। 'मंदी' और 'सौदा' दो परस्पर विपरीत धर्मी कथानक प्रतीत होते हैं – परंतु दोनों कहानियों में वातावरण प्रमुख है – अलग–अलग संदर्भ में।

राकेशजी की कहानियों में महानगरीय संत्रास व भयावहता का भी चित्रण है । उनका स्वयं का अधिकांश जीवन दिल्ली, बम्बई जैसे महानगरों में बीता तथा वहाँ की विरुपताओं को उन्होंने निकट से देखा व भोगा है । बड़े शहरों में अपना अस्तित्व बनाए रखना कितना कठिन काम है इसका चित्रण इनकी 'ठहरा हुआ चाकू', 'जख्म', 'पाँचवे माले का फ्लैट' आदि कहानियों में है । 'ठहरा हुआ चाकू' में एक युवक की दादा टाईप व्यक्ति की पुलिस में शिकायत कर देने व उस गुण्डे से उसे अपने जीवन रक्षा का भय महानगरीय जीवन की भयावहता व जड़ता को प्रमाणित करता है । 'पाँचवे माले का फ्लैट' में बड़े शहरों की औपचारिकता पर दृष्टिपात है – मन में कुछ तथा कहना कुछ की प्रवृत्ति है । शहरों में पडोसी अपने दूसरे पडोसी से अपरिचित रहता है । किसी को किसी से मतलब नहीं । इस कहानी के नायक अविनाश की आर्थिक स्थिति उसे कहीं बड़ा मकान लेकर रहने की अनुमति नहीं देता । सरला व प्रमिला उसके फ्लैट का अच्छा मजाक उड़ाती हैं । ऐसा लगता है मानों उस घर में रहनेवाले की आर्थिक स्थिति एवम् विवशताओं का मजाक उडाया गया है ।

देश को आजादी की खुशी व विभाजन का दाह दोनों एक साथ मिले । देश विभाजन के साथ मनों में भी विभाजक रेखाएँ पड़ गई थी । ऐसे वातावरण में मानव संबंधों में परिर्वतन हुआ तथा व्यक्ति को सहायता व सहयोग न मिलने के कारण वह विकृत, हो गया है । 'क्लेम' कहानी परिवेश से उखड़ाव ही इस कथा की मूल संवेदना है । सरकार द्वारा सहायता करने की घोषणा करने पर जनता द्वारा अधिक से अधिक क्लेम भरने की होड़ सी लगी । 'कंबल' कहानी में भी शरणार्थी केम्प के वातावरण का चित्रण बहुत ही सुंदर बन पडा है । "तीस घरों की परिधियां, जिनके बीच एक भी दीवार नहीं । फिर भी सबका एक–एक घर अपना है । तामचीनी के बर्तन, टीन के पीपे, चारपाईयों के पाये, पुराने जूते, टूटे बक्से, चूल्हे, ईटें और जाने किन–किन वस्तुओं के घेरे में हर परिवार ने अपने को दूसरों से अलग कर लिया है ।"[३३]

बदलते परिवेश व विकसित होते हुए जीवन मूल्यों से वह प्रभावित हुआ इस प्रकार यथार्थ चरित्र उसके सामने आए । परिणामतः वह अकेलेपन, ऊब, आशा–निराशा, उलझन, त्रासदी आदि मानव जीवन की समस्त विडम्बनाओं को अपनी शैली में अभिव्यंजित करने लगा । राकेशजी ने भी समकालीन परिवेश को ही अपनी कृतियों में उतारा है । राकेशजी ने जीवन की कटु स्थितियों को भोगा था, झेला था अतः उनके पात्र उन सबसे प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकते थे ? राकेशजी की कहानियों में

चरित्र जीवन की प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित हुए हैं वे जीवन से कटे नहीं हैं वरन् उसकी परिस्थितियों से संघर्ष किया है। राकेशजी ने अपनी कहानियों में पात्रों के माध्यम से वातावरण और समय को बखुबी चित्रित करने का प्रयास किया है।

३.४ भाषाशैली :–

अभिव्यंजना की प्राणशक्ति का नाम भाषा है। यह एक ऐसी शक्ति है जिसके जीवंत प्रयोग के बीना रचनाकार का कथ्य ठीक से सम्प्रेषित नहीं हो पाता है। फिर एक गद्यकार के लिए तो भाषा का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण होता है। उसकी भाषा में प्रेषणीयता और अर्थवत्ता जितनी अधिक होगी वह उतना ही अधिक सफल होगा। निश्चय ही आज के लेखक को अभिव्यक्ति के स्तर पर उसके कई आयामों का सामना करना पड़ता है। जीवन और अनुभूतियों की जटिलता ने लेखक का काम पहले से काफी मुश्किल कर दिया है। राकेशजी और उनके सहयोगियों ने जब लिखना शुरू किया तब भाषा–परंपरा के विरुद्ध एक सजग चेतना सक्रिय हो उठी थी। कमलेश्वर के शब्दों में, "चारों तरफ विचारों, प्रतिक्रियाओं, वादों–प्रतिवादों, आंदोलनो, नारों, शोषण, अत्याचार, असुरक्षा इत्यादि की इतनी उलझी हुई आवाजें थीं कि आदमी अपनी पुरानी भाषा की आवाजें सुन ही नहीं पाता था।"[३४] इस प्रकार एक नये आंतरिक संकट के कगार पर खड़े आदमी के लिए पुरानी भाषा अर्थहीन हो गई। अनुभव के बदलते ही भाषिक अभिव्यक्ति की स्थितियाँ बदल गई थी और बदली हुई संवेदनाओं के साथ एक नई भाषा की खोज होने लगी थी। दरअसल राकेशजी की भाषा यह नई भाषा की खोज है जो उनके नाटकों के संदर्भ में नाट्य–भाषा भी कहलाती है।

राकेशजी के विचार में "भाषा केवल शब्द–योजना नहीं। भाषा का संबंध इस प्रक्रिया के ही साथ है जो कि प्रयोग के नये संदर्भो में शब्दों को नई अर्थवत्ता प्रदान करती है।"[३५] राकेशजी भाषा को जीवन के अंदर से खोजने के हिमायती थे तथा वे अनुभूति के बल पर नई अर्थवत्ता और नये संदर्भ के लिए प्रयत्नशील थे। राकेशजी की दृष्टि में केवल शब्द का महत्त्व नहीं था, अपितु वे तो उस शब्द से ध्वनित अर्थ को नया संदर्भ और नया आयाम देना चाहते थे, जिससे भाषाई चेतना का विकास हो और भाषा जिन्दगी के यथार्थ को सही रूप में पकड़ सके।

परिवर्तित जीवन–दृष्टि को व्यंजित करने के लिए भाषागत नवीनता का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। समस्यामूलक जीवन के वर्णन में भाषा के स्तर पर नये

कहानीकारों ने नवीनता दिखाई है । नये शब्दों का निर्माण, अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग, नवीन मुहावरों का प्रयोग आदि नयी कहानी की भाषागत विशेषताएँ हैं । कहानीकार राकेशजी की भाषा जीवन के यथार्थ और विषमताओं को बखूबी व्यंजित करती है । व्यंजकता, सपाटता और सांकेतिकता के कारण लेखक और पाठक के बीच एक भाषागत ऐक्य दिखता है । राकेशजी की कहानियों की भाषा का प्रथम स्तर साहित्यिक स्तर है जहाँ परिस्कृत शब्दावली का सफल और सरल प्रयोग है । कहानी में भावुकता से पूर्ण क्षणों में राकेशजी की काव्यात्मक प्रवृत्ति ने परिस्कृत शब्दावली पूर्ण भाषा को अपनाया है । इस प्रकार की शब्दावली भाषा में अनायास प्रयुक्त हुई हैं । काव्यात्मक भावुकता के अतिरिक्त ऐसी शब्दावली पूर्ण भाषा वैचारिकता और व्यंग्य के आग्रह से भी प्रयुक्त हुई है । काव्यात्मक वर्णन दाम्पत्य जीवन वर्णन वाली कहानियों में अधिक हैं । ‘सुहागिनें’ कहानी में मनोरमा की भावुकता के वर्णन में राकेशजी ने काव्यात्मक शब्दावली का प्रयोग किया है – “खिड़की से दूर तक धुला निखरा आकाश दिखाई देता था । हवा का जरा–सा झोंका आता तो चीड़ों और देवदारों की पंक्तियाँ तरह–तरह की नृत्य मुद्राओं में बाँहें हिलाने लगतीं । पत्रों और टहनियों पर से फिसलकर आती हवा का शब्द शरीर को इस तरह रोमांचित करता कि शरीर में एक जड़ता–सी छा जाती है ।”[३६] राकेशजी की अनेक कहानियों में इस प्रकार की शब्दावलियों का प्रयोग है, ‘उर्मिल जीवन’, ‘एक और जिन्दगी’, ‘खाली’ , ‘मिट्टी के रंग’ आदि उल्लेखनीय हैं । व्यंग्य के आग्रह से परिस्कृत शब्दावली का प्रयोग ‘धुँधला दीप’ जैसी कहानियों में है – “कितना अच्छा हो जो मानवीय भावनाओं को भी स्थूल रूप दिया जा सके । पागलपन की गोलियाँ ? प्रेम की टिकियाँ । कविता का पाउडर । तब तो अपने सब मित्रों को वह यही उपहार भेजा करे । कविता की पुड़िया पानी के साथ खाओ और छन्द लिखो ।”[३७] वैचारिकता के आग्रह से भी इस प्रकार की भाषा का प्रयोग राकेशजी की कहानियों में है । “मैं पाँच साल से मंजिल–दर–मंजिल विवाहित जीवन से गुजरता आ रहा था – रोज यही सोचते हुए कि शायद आनेवाला कल जिन्दगी के इस ढाँचे को बदल देगा । सतह पर हर चीज ठीक थी, कहीं कुछ गलत नहीं था, मगर सतह के नीचे जीवन कितनी–कितनी उलझनों और गाँठों से भरा था ।”[३८] राकेशजी की कहानियों में ऐसी शब्दावलियों का अधिक प्रयोग है जो साहित्यिक और परिष्कृत है ।

राकेशजी यथार्थ जीवन की संवेदना एवम् स्थिति तथा उसकी सार्थक अभिव्यक्ति के सजग चिंतक और शिल्पी रहे है, अतः उनके साहित्य में कई स्तर उभर कर आये है ।

लेकिन सर्वत्र भाषा की अर्थवत्ता विद्यमान है। मुख्यतया राकेशजी की भाषा के तीन स्तर पाये जाते हैं : साहित्यिक भाषा, जनभाषा एवम् देशी–विदेशी शब्दावली की भाषा।

राकेशजी की भाषा का पहला स्तर साहित्यिक स्तर है जिसमें परिस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया है। "परिस्कृत शब्दावली का प्रयोग राकेशजी ने वहाँ किया है, जहाँ अधिक भावुक हो उठे है और उनकी कवित्व–शक्ति मुखरित हो उठी है।"[३९] जैसे – 'वासना की छाया में' कहानी में कथानायक तेरह–चौदह वर्षीय पुष्पा को देखकर सोचने लगता है वह "कोश लेकर कविताओं के अर्थ नहीं ढूँढेगी। वह जिधर देखेगी कविताएँ फूटने लगेंगी।"[४०] 'मन्दी' कहानी में पहाडी जीवन का वर्णित परिदृश्य, 'एक और जिन्दगी' में प्रकृति की पृष्ठभूमि का वर्णन, 'गुंझल' में प्रकृति और यात्रा वर्णन, 'आर्द्रा' में माँ की भावुकता आदि में साहित्यिक भाषा दृष्टिगत होती है। राकेशजी शब्द को मूलतः ध्वनि मानते है क्योंकि शब्द की उत्पत्ति नाद से हुई है। राकेशजी का कथन है, "नाद के उत्पत्ति से लेकर आज तक शब्द मूलतः नाद–धर्मा ही है। इसलिए नाद के आरोह–अवरोह में ही शब्द का आंतरिक नाटक निहित है। कहना चाहिए कि नाद ही शब्द है और उसके आरोह–अवरोह की लय उसकी अर्थ संगति।"[४१] तात्पर्य यह हुआ कि लय की संगति ही शब्द की अर्थ संगति बदल देती है। शब्द वही होते है लेकिन उच्चारण भेद से, प्रयोग से केवल बलाघात मात्र से बदल देने से उसके अर्थ बदल जाते हैं और शब्द कभी भी घिसा पिटा या कृत्रिम नहीं लगता। शब्द का सर्जनात्मक प्रयोग राकेशजी की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है। राकेशजी की साहित्यिक भाषा इसलिए पूरी संप्रेषणीयता और ताजगी लिए हुए है।

राकेशजी की भाषा का दूसरा स्तर जनभाषा का है। जो प्रायः अधिकांश रचनाओं में उपलब्ध है। राकेशजी अपने गद्य–साहित्य में बोलचाल की भाषा के ही पक्षधर थे। सीधी सरल भाषा का यह रूप काफी प्रभावी और स्वाभाविक होने के साथ साथ कहानी को अधिक संप्रेषणीय बनाता है। राकेशजी का कथन है, "मैं जानने की भाषा के बजाय निरंतर जीने की भाषा की ओर जाना चाहता हूँ"[४२] साहित्यिक कृति में जनभाषा का इतना समर्थ और सफल रूप समकालीन अन्य लेखकों में मिलना भी मुश्किल है। राकेशजी की भाषा का असली रूप बोलचाल से शब्दों के मेल से ही बना है। यह वह स्तर है जो उनकी भाषा को सीधी, सरल और व्यावहारिक बनाता है। राकेशजी भाषा की व्यावहारिकता के पक्षपाती थे। जनभाषा ही जनमानस की सार्थक अभिव्यक्ति करता है। जनभाषा दो पक्षों के बीच आत्मीयता–अपनापन का अहसास

कराती है। राकेशजी की भाषा एक ऐसे रचनाकार की भाषा है जिसमें शब्द सीधे–सादे किन्तु गहन अर्थोद्धाटक एवम् यथार्थ से संपृक्त और अनुभूति के संताप को बखूबी व्यंजित करने की क्षमता से युक्त है। अतः राकेशजी की भाषा को सीधी–सरल और व्यावहारिक बनाता है। इसके उदाहरण उनकी सभी कहानियों में देखे जा सकते है। स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित प्रयोग द्दष्टव्य है –

(अ) "कभी यह सोचकर भी उसके शरीर में झुरझुरी भर जाती कि इतने सालों में वह हर रोज दोनों वक्त, दो आदमियों का, सिर्फ दो आदमियों का खाना बनाती जा रही है।"[४३]

(आ) "इतना बड़ा घर था, खाने–पहनने और हर तरह की सुविधा थी, फिर भी उमा के जीवन में बहुत बड़ा अभाव था जिसे कोई चीज नहीं भर सकती थी।"[४४]

(इ) "उसका चौड़ा चौकोर चेहरा, वैसे ही भयानक था, अपने ढीले–ढाले काले सूट में वह और भी भयानक लग रहा था। चेचक के दागों और झुर्रियों से भरा उसका चेहरा दीमक खाई लकड़ी की तरह जान पड़ता था। दूर से ही उस आदमी की आवाज सुनकर वचन का दिल धड़कने लगता और वह अपना दरवाजा बंद कर लेती।"[४५]

(ई) " 'क्या हाल है भाटिया ?' मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा। 'फाइन' और वह होठों पर एक अधूरी सी मुस्कराहट ले आया। 'ये किताबें क्यों बेच रहे थे।'
'यूं ही... पैसे की जरूरत थी।'
'इन दिनों डांस सीख रहे हो क्या ?' "[४६]

राकेशजी की कहानियों से दिये गये उदाहरण प्रमाणित करते है कि उनकी भाषा का सही रूप यही है – सीधा, सपाट, सरल और व्यावहारिक। इस प्रकार अधिकांश कहानियों में आरंभ, मध्य और अंत में संवाद और संवेदना के निरूपण में, विचार और व्यंग्य में सर्वत्र सीधी–सादी बोलचाल की भाषा विद्यमान है। अतः राकेशजी की भाषा सीधी–सादी, सरल और घरेलू है किन्तु इसमें घटियापन नहीं है। सरलता और सहजता जनभाषा का महत्त्व का गुण है। भाषाकीय शुद्धता अपेक्षित है। राकेशजी ने अपने समग्र कहानी साहित्य में भाषा का ऐसा रूप देकर एक नया प्रेरक आयाम दिया है।

राकेशजी की रचनाओं में भाषा का एक तीसरा रूप भी है, जहाँ उन्होंने बेधड़क अंग्रेजी एवम् उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। कही–कहीं तो पूरे वाक्य विदेशी शब्दावली में प्रयोजित है। फिर भी ये प्रयोग आरोपित नहीं लगते हैं। क्योंकि देशी या विदेशी शब्दों के प्रयोग में राकेशजी रचनाकार की दृष्टि से काफी सजग थे। "शब्द वह किसी भी भाषा का हो, अपने में एक रूढ़ अर्थ या कुछ एक रूढ़ अर्थों को अभिव्यक्त करने की ही क्षमता रखता है, हालांकि जिस प्रक्रिया से यह क्षमता उसे प्राप्त होती है, वह स्वतः अर्थ की रूढ़ियों को तोड़ती चलती है। भाषा का संबंध इस प्रक्रिया के ही साथ है जो कि प्रयोग के संदर्भों में शब्दों को नई अर्थवत्ता प्रदान करती है।"[४७] इस तरह रचनाकार की भाषा में विदेशी शब्दों का प्रयोग एक अर्थवत्ता लिए है। शब्दों के संबंध में कोशकार की दृष्टि रचनाकार की दृष्टि से बहुत अलग होती है। रचनाकार शब्दों को रूढ अर्थो तक अपने को सीमित नहीं रखता। नये–नये शब्दों को भी वह अपनी भाषा में आत्मसात कर लेता है, बशर्ते भाषा के जीवन्त संदर्भों की अपेक्षा उनसे पूरी होती हो। रचनाकार को समर्थ, सार्थक और सजीव अभिव्यक्ति के लिए कईबार ऐसे शब्दों का चुनना भी अनिवार्य हो जाता है। राकेशजी ने बखूबी से अंग्रेजी और उर्दू–फारसी के शब्द प्रयोग से मिलकर बनी भाषा का प्रयोग किया है, जो बोलचाल की भाषा या जनभाषा से निकट–सी लगती है। जैसे निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत है –

- "ड्राइंगरूम काफी खुला और बड़ा था, अकेले बैठने के लिए बहुत ही बड़ा। रात को वहाँ से गुजरकर पेन्ट्री में जाना पड़ता तो मीरा को अपने अंदर एक डर–सा महसूस होता। ड्राइंगरूम का खालीपन एक तसवीर की तरह लगता, दीवारों के चौखटे में जड़ी तसवीर की तरह। बेडरूम के अलावा और कमरों की बतियाँ बुझाकर जब शंकर अपने क्वार्टर में सोने चला जाता तो किसी–न–किसी काम से रोज उसे उधर जाना पड़ता है।"[४८]

- "शायद साबित करने के लिए कि वह खुद अभी उतनी ही शोख और कमसिन है ... पर शराफत के तकाजे से ही बात कह दी जो वह सुनना चाहती थी।"[४९]

- "खुदा नेक की नेकी बनाए रखे और बद की बदी माफ करे ! ... अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे !"[५०]

- "मिसेज सिंह के चेहरे पर जो भाव आया, वह कुछ–कुछ फ्रांसीसी किस्म का था। कन्धे भी उन्होंने खास कान्टीनेटल अंदाज से हिलाये। इससे बाहें सोफे से

बाहर फैल गई। उन्हें समेटती हुई वह खड़ी हुई उठकर एक जायजा लेती नजर उन्होंने नंगे फर्श पर डाली। दूसरी अपनी सैण्डिल पर और तीसरी चौखट की दहलीज पर।"[५१]

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि राकेशजी ने अपने साहित्य में धडल्ले से उर्दू–फारसी एवम् अंग्रेजी शब्दावली का एक साथ सार्थक प्रयोग किया है। ऐसी शब्दावली से भाषा की व्यंजकता बढ़ती चली है। कथ्य और अभिव्यक्ति में ये शब्द कहीं भी अलगाव का आभास नहीं देते। यही लगता है कि भीतर से उठी हुई अनुभूतियाँ खुद ब खुद इन शब्दों के पास इस मंशासे चली गई है कि 'तुम हमें अभिव्यक्ति दो।' भाषा की शैलीगत विशेषताओं में राकेशजी की कहानियों में भावुकतापूर्ण काव्यमयी पंक्तियाँ दिखती हैं। अलंकृत, चित्रात्मक शैली के कारण राकेशजी की कहानियों की भाषा अनेक अर्थ छवियों से दीपित हो उठी है। जीवन का वर्णन भावुकता से परे नहीं हो सकता है, राकेशजी आधुनिक जीवन में चितेरे हैं तो यत्र–तत्र उनकी कहानियों की वर्णन–शैली काव्यात्मक बन पड़ी है। "उसे लगा कि सितारा लॉन में घास पर उतर आया है, वहाँ से आँख झपकता हुआ उसे ताक रहा है। वह उठी और रबड़ की चप्पल वहाँ छोड़कर लॉन में उतर गयी। पास जाकर देखा कि शबनम की एक अकेली बूँद उस सितारे को अपने में समेटे है।"[५२] काव्यात्मक शैली कहानियों के कथ्य को अधिक संप्रेषित करती है, न कि अलंकृत। "खिड़की के किवाड़ की छाया वामन के चरण की तरह तिरछी ऊपर की ओर जा रही थी।"[५३] भाषा की यह काव्यत्मकता शैली कहीं लक्षणा और कहीं व्यंजना के सहारे अनेक नये संकेतों को प्रकट करती है। काव्यात्मक शैली के अतिरिक्त राकेशजी ने भावगर्भिता को प्रकट करने के लिए बिम्बात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। पात्र की मानसिक स्थितियों को परिस्थितियों के संदर्भ में लेखक ने बिम्बात्मक शैली में अधिक सफलता से प्रकट किया है। "जूते के मैले सिकुड़े हुए तलवे तिरछे होकर आधा–आधा इंच ऊपर को सरक आये थे। पीछे की दोनों ओर की सींबनें उधड़ रही थीं। उसे याद नहीं था कि यह जूता उसने कब खरीदा था – उसे खरीदे हुए कम–से–कम अढ़ाई–तीन साल हो चूके थे। जूते के दाँत बहुत पहले ही निकलने लगे थे, पर राय उसे ठोंक–पीटकर लटकाता आ रहा था। कुछ महीने पहले सामने के जूते के होंठ भी खुल गये थे, पर राय ने मोची को चवन्नी देकर उन्हें बन्द कर दिया था। मगर उसके बाद जब जूते की बगलें शिकायत करने लगीं तो राय को बैठकर गम्भीरतापूर्वक सोचना पड़ा ...।"[५४] इसी प्रकार की बिम्बात्मक शैली 'परमात्मा का कुत्ता' के प्रारंभ में प्रयुक्त है। 'सोया हुआ शहर' कहानी की पूरी शैली ही बिम्बात्मक

है । भावों का गहराई से वर्णन करने के लिए राकेशजी ने अलंकृत शैली को भी अपनाया है । किसी एक विशेष प्रकार की शैली में बँधकर उन्होंने कहानी के शिल्प को नहीं गढ़ा बल्कि कथा और संवेदना के अनुसार शैली रूप लेती गयी है । बिम्बात्मक शैली के साथ-साथ प्रतीकात्मक शैली का भी प्रयोग राकेशजी ने किया है ।

कहानीकार राकेशजी की भाषा-शैली में नाटककार का रूप भी दिखाई पड़ता है । 'फौलाद का आकाश' और 'जख्म' कहानियों में यह शैली है । 'जख्म' कहानी के प्रारंभिक अनुच्छेद नाटकीय शैली से परिपूर्ण है । अति नाटकीयता कहानी के प्रारंभिक अनुच्छेदों को असह्य बना देती है । अति नाटकीयता ने वाक्य गठन की असामान्य शैली को जन्म दिया है – "हाथ पर खून का लोंदा, सूखे और चिपके गुलाब की तरह । फुटपाथ पर औंधे पीपे से गिरा गाढ़ा कोलतार ... सर्दी से ठिठुरा और सहमा हुआ । एक-दूसरे से चिपके पुराने कागज... भीगकर सड़क पर बिखरे हुए । खोदी हुई नाली का मलबा... झरकर नाली में गिरता हुआ । बिजली के तारों से ढँका आकाश ... रात के रंग में रंगता हुआ । चिकने माथे पर गाढ़ी काली भौहें... उँगली और अँगूठे से सहलाई जा रही हैं ।"[७७] वाक्य गठन में संज्ञा पहले और कृदंत विशेषण का अंत में प्रयोग से उत्पन्न कृत्रिमता के कारण बहुत-सी चीजों और दृश्यों को समेटने का लेखकीय उद्देश्य विफल हो जाता है । इसी प्रकार 'ग्लास टैंक' का प्रारंभिक अंश में निरर्थक-सा प्रतीत होता है ।

यथार्थ संदर्भों और स्थितियों को अभिव्यंजित करने के लिए राकेशजी ने अपनी कहानियों में एक विशेष प्रकार की शैली भी विकसित की है । न केवल संदर्भानुकूल और पात्रानुकूल भाषा है बल्कि परिवेश के अनुकूल भी भाषा-शैली का प्रयोग है । यथार्थ स्थितियों की अभिव्यंजना में छोटे-छोटे वाक्य, सरल सपाट अलंकारविहीन शैली में अर्थगर्भिता की कुशलता छिपी है । साथ ही इस प्रकार की शैली ने पात्र की मनःस्थिति भी परत-दर-परत परिवेश के साथ उघड़ती जाती है – "हवा थी । गर्मी भी थी । सामने गिरगाँव की सड़क थी आसानी से क्रॉस कर सकता था । मगर घर जाने को मन नहीं था । खाना खाने जाने को भी मन नहीं था । न ईरानी के यहाँ, न गुजराती के यहाँ, न ब्रजवासी के यहाँ । रोज तीनों जगह बदल-बदलकर खाता था । एक का जायका दूसरे से दब जाता था । पैसे अदा करने में सहूलियत रहती थी । चेहरे भी नये-नये देखने को मिल जाते थे । शिकायत भी तीनों से की जा सकती थी ।"[७८] छोटे-छोटे वाक्यों के सहारे घटना चक्र की कुशल अभिव्यक्ति राकेशजी की शैली की एक प्रमुख

विशेषता है । 'जानवर और जानवर', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'मलबे का मालिक', 'परमात्मा का कुत्ता', 'सुहागिनें' आदि कहानियों में इस प्रकार की शैली अपनाई गयी है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में उर्दू–फारसी शब्दों का प्रयोग किया है । जैसे " 'तकल्लुफ', 'हिमाकत', 'तिजर्बा', 'ऐयाशी', 'उदबिलास', 'तकसीम', 'नुकस', 'रसूख', 'रुतबा', 'तरददुद', 'तफरीह'।" 'मलबे का मालिक', 'सौदा', 'मवाली', 'जानवर और जानवर', 'हक हलाल', 'गुनाह बेलज्जत', 'गुमशुदा', 'चौगान', 'शिकार', 'आदमी और दीवार', 'आखिरी सामान' और 'जंगला' आदि कहानियों के शीर्षक भी उर्दू–फारसी शब्दावली के हैं ।

राकेशजी ने अपने साहित्य में उर्दू–फारसी शब्दों की तरह अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग अधिक छूट के किया है । भारत में आजादी के पश्चात् शहरी एवम् भद्र समाज में अंग्रेजी का प्रयोग बढ़ता चला है, दरअसल राकेशजी की भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है । जैसे – " 'लैंडस्केप', 'लेबर ऑफिसर', 'पालिटिक्स', 'ग्लास टैंक', 'क्वार्टर', 'सीरीयसली', 'पेण्टर', 'पोट्रेट', 'वंडरफुल', 'जेंटलमेन'।"

राकेशजी की भाषा में कुछ ऐसे भी शब्द भी आये हैं जो ठेठ बोलचाल के हैं और ग्राम्य परिवेश की धरोहर हैं । इन पर प्रादेशिकता का रंग चढ़ा हुआ है, जैसे –"निढाल, जनख, चटखारों, लुगडी, मुटियार, महिया, चेहमें, गोइयाँ, कुलिच्छिनी, सोहणेओ, चूजेओ, निपूते, किलटा ।"

राकेशजी ने अपनी भाषा में मुहावरे एवम् कहावतों का प्रयोग किया है । यह इस बात का उदाहरण है कि राकेशजी की जनभाषा या बोली की भाषा के प्रति कितने सजग हैं । रचनाओं में वे ही कहावतें और मुहावरे आये हैं जो रोजमर्रा जिन्दगी में अंग बने हुए हैं । जैसे –

"सब करनी कर्तार की ।"[५७]

"घर में नहीं भूसा, नाम मेरा भूसा"[५८]

"लिए जाओ कर्ज और किए जाओ ऐश"[५९]

राकेशजी एक पंजाबी परिवार के थे। उनकी मातृभाषा पंजाबी थी। इसीलिए उनकी भाषा में अंग्रेजी और पंजाबी के सिर्फ शब्द ही नहीं, पूरे के पूरे वाक्य भी मिलते हैं। राकेशजी हिन्दी को एक जनभाषा का साहित्यिक रूप देने में अंग्रेजी एवम् अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को अपनाने में अशुद्धि का ख्याल नहीं रखते बल्कि जनभाषा की प्रकृति एवम् प्रवृत्ति मानते है। राकेशजी की भाषा में अनेक अंग्रेजी शब्द जनभाषा के मानो अंग बन गये है – जैसे

"थेंक यू, थेंक यू वेरी मच।" [६०]

"ओ दैट आई हैंड विग्ज आफ एजल्स।" [६१]

इसी प्रकार पंजाबी भाषा के शब्द एवम् वाक्य–प्रयोग भी वस्तुपक्ष एवम् शिल्प पक्ष में सजीवता की अभिवृद्धि करते है जैसे –

"चल अफसरा, चल तेरे सद के चल।" [६२]

"सोहणे ओ, बैठ जाओ।" [६३]

"आ, तुझे चिज्जी देंगे।" [६४]

इस प्रकार स्पष्ट है कि राकेशजी की भाषा–शैली विविधतामय और आकर्षक है। उन्होंने अपनी कहानियों में अनेक शैलियों का प्रयोग कर अपनी भाषा–शैली को काफी उन्नत एवम् समृद्ध किया है।

३.८ कथोपकथन :–

कथोपकथन का कहानियों में महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। यद्यपि इसकी सर्वोपरी महत्ता नाटकों मे होती है किन्तु कहानी–कला के संदर्भ में इन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। राकेशजी एक सिद्धहस्त नाटककार थे इसलिए नाटकीय सक्रियता उनकी भाषा का एक सक्रिय गुण है। नाटकीय सक्रियता अर्थात् भाषा के द्वारा प्रस्तुत व्यक्ति या स्थिति को जीवंत या क्रियाशील रूप में व्यक्त करना राकेशजी की निजी भाषिक विशिष्टता है। उनकी कहानियों में अनेक स्थान पर कथोपकथन के माध्यम से उन्होंने पात्रों के माध्यम से अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। राकेशजी की कहानियों में कथोपकथन के द्वारा मनःस्थिति का विश्लेषण, कथासूत्र का निरूपण और पात्र के चरित्र

के द्वारा परिवेश परिचय मिलता है । कथोपकथन या संवाद का संबंध कथावस्तु और पात्रों के अनुकूल ही होता है । संक्षिप्त मनोवैज्ञानिक एवम् प्रभावशाली कथोपकथन कहानी के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं । राकेशजी की कहानियों में कथोपकथन संक्षिप्त और चरित्र के परिचायक है । संक्षिप्त संवाद की दृष्टि से 'जानवर और जानवर', 'बस स्टैण्ड की एक रात' तथा अन्य कहानियों में देखा जा सकता है ।

जैसे –

"अच्छी लड़की है, ए ?"
"बहुत सीधी है ।"
"मुझे डर है कि यह भी कहीं नानावती की तरह..."
"रहने दो–तुम उसके साथ इसका मुकाबिला करते हो ?"
"व आई थी तो वह भी ऐसी ही थी ..."
"मैं इसे इन लोगों के बारे में सब–कुछ बता दूँगा ।" [६५]

इन संवाद के द्वारा जहाँ फादर फिशर की चरित्रहीनता की ओर संकेत है, वहीं उस परिवेश की जड़ता और खोखलेपन को प्रदर्शित किया गया है । इसी प्रकार के संवाद 'बस स्टैण्ड की एक रात' और 'उसकी रोटी' में है –

"क्यों भाई साहब, क्या खयाल है, गवा हिन्दुस्तान को मिल जाएगा या नहीं?"
"गोआ हिन्दुस्तान का है साहब, और हिन्दुस्तान का ही रहेगा ।"
"कहते हैं गवा बहूत खूबसूरत जगह है ?"
"जी हां, गोआ का लैण्डस्केप – क्या कहने हैं !"
"यहां से गवा किस रास्ते से जाते हैं ?" [६६]

"सुच्चासिंह शायद अगली बस लेकर आएगा ।" वह आदमी बोला ।
"हां ! इसके बाद अब उसीकी बस आएगी ।"
"बड़ा जालिम है जो तुझसे इस तरह इंतजार कराता है ।"
"चल वीरा, अपने रास्ते चल !" बालो चिढ़कर बोली, "वह क्यों इंतजार कराएगा? मुझे रोटी लाने में देर हो गई थी जिससे उसकी बस निकल गई । वह बेचारा सवेरे से भूखा बैठा होगा ।"
"भूखा ? कौन सूच्चा स्यों ?" [६७]

'रोजगार' में होटल में बैठे व्यक्तियों में जो कानाफूसी हो रही है वह द्दष्टव्य है –

"कौन है यह ?"

"उसकी बहन है।"

"उस हरामी की ...।"

"हां, उसकी बड़ी बहन है।"

"सगी बहन ?"

"सुना यही है कि सगी बहन है।"

"और इनके मा–बाप ?"

"मा–बाप का पता नहीं है। यह बहन ही कभी–कभी यहाँ आ जाती है।"

"वैसे करती क्या है ?"

"यह भी ठीक पता नहीं। ... सुना है यह टैक्सी है ...।" [६८]

इस तरह के संवादों के माध्यम से राकेशजी ने सामान्य जनों की मानसिकता को बखूबी चित्रित किया है। 'रोजगार' कहानी का नायक आवारा और सरफिरा है। उसकी बहन अपने शरीर को बेचकर उसका गुजारा करती है। लेकिन वह जब अपने भाई को मिलने आती है, तभी वहाँ बैठे लोगों में इसप्रकार की कानाफूसी होती है।

'कम्बल' कहानी के नवदंपति के संवादो से राकेशजी ने नववधू की मानसिकता को भलीभाँति प्रस्तुत किया है –

"आज बरसात न होती, तो घूमने चलते।"

"हां।"

"तूने किला देखा है।"

"हां।"

"मैं अब किले के पास ही तरकारी बेचा करुंगा।"

"हूँ।"

"लगता है रात को बहुत ठंड पडेगी।"

"हूं।" [६९]

इसके साथ राकेशजी ने 'मिस्टर भाटिया' में भाटिया के माध्यम से एक आवारा और दिवास्वप्न देखनेवाले व्यक्ति को सुंदर ढंग से सजाया है। उसकी बेफिक्री इस संवाद के माध्यम से स्पष्ट होती है –

"क्या हाल है भाटिया ?" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा।

"फाइन।" और वह होंठों पर एक अधूरी–सी मुस्कराहट ले आया।

"ये किताबें क्यों बेच रहे थे ?"

"यूं ही पैसों की जरूरत थी।"

"इन दिनों डांस सीखते रहे हो क्या ?"

"नहीं, सिर्फ दो–एक दिन गया था।" और उसके चेहरे से मुस्कराहट गायब हो गई।

"फिर ?"

"लड़की के साथ नाचना अच्छा नहीं लगा, छोड़ दिया।"

"और पब्लिसिटी का क्या चक्कर था ?"

"पब्लिसिटी ब्यूरों में नौकरी की आशा थी।"

"फिर ?"

"नहीं मिली।"

"और कुछ ?"

"इंश्योरेंस की एजेंसी ली थी।"

"कुछ काम किया ?"

"एक दोस्त का केस मिल रहा था, पांच हजार का, मगर..."

"मगर...?"

"मगर उसकी बीबी नहीं मानी।"

"तो आजकल क्या कर रहे हो?"

"आजकल ... आजकल आराम कर रहा हूं।"[७०]

राकेशजी ने इस प्रकार के छोटे संवादों के माध्यम से देश की गरीबी और प्रणाली पर भी व्यंग्य और कटाक्ष किया है। 'उलझते धागे' में यह देखा जा सकता है –

"इन बेचारों की भी क्या जिन्दगी है ?" छूटकू कह रहा है।

"मजदूर की जिन्दगी हो ही क्या सकती है ?"

"हम भी तो मजदूर है।"

"हमारी भी क्या जिन्दगी है ?"

"चार आदमी मिलकर एक आदमी को खींचे, यह हैवानियत है।"

"तेरे पास सिगरेट के लिए एक आना है ?"

"नहीं। तेरे पास ?"

"नहीं।"

"इस मूल्क में आर्ट इस तरह भूखा मरता है।" ७१

राकेशजी की कई कहानियों में संवाद प्रभावोत्पादक और तथ्य–निरूपक है। उन्होंने संवादों के माध्यम से विविध भावों को भी व्यंजित किया है। जैसे–

"रात को हम लोगों ने खामखाह आपको जगाए रखा," मैंने कहा, "आज रात को ठीक से सोइएगा।"

उसके होठों पर ऐसी मुसकराहट आई जैसे उससे मजाक किया गया हो। "गाडी में खूब नींद आती है न ?" उसने कहा।

"आप आज चले जाएंगे ?"

उसने सिर हिलाया, "एक दिन के लिए भी मुश्किल से आ पाया हूं।"

"वहां जरूरी काम है ?"

"बहुत जरूरी नहीं, लेकिन काम है। पहली नौकरी छोड़ दी है, दूसरी के लिए कोशिश करनी है।"

"एक दिन बाद जाकर कोशिश नहीं की जा सकती ?" एकाएक मुझे लगा कि मैं यह सब क्यों कह रही हूं। डेडी सुनेंगे तो क्या सोचेंगे।

"परसों एक जगह इण्टरव्यू है।" उसने कहा।

"वह तो परसों है न। कल तो नहीं ...।" और मैं बाहर चली आई, उसकी आंखों में देखने का साहस नहीं हुआ।" ७२

यहाँ कहानी नायिका का आगंतुक नवयुवान के प्रति प्रेम और आतिथ्यभाव दिखाई पड़ता है और नायिका के हृदय में उठ रहे भावात्मक तुफान को दर्शाया गया है। इसके विपरीत 'एक और जिन्दगी' में राकेशजी ने पति–पत्नी के बीच के झगड़े को भी कथोपकथन के माध्यम से पेश कर कहानी में भावात्मकता का निरूपण किया है –

"मैं कुछ नहीं चाहती। आपसे मैं क्या चाहूंगी।"

"तुमने सोचा है कि तुम्हारे इस तरह व्यवहार करने से बच्चे का क्या होगा ?"

"जब हम अपने ही बारे में कुछ नहीं सोच सके, तो इसके बारे में क्या सोचेंगे!"

"क्या तुम पसंद करोगी कि बच्चे को मुझे सौंप दो और खुद स्वतन्त्र हो जाओ ?" ७३

"चौधराइन, आज कुछ कमाई हुई ?"

चौधराइन मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम आजकल बात नहीं करती !"

नूरजहां बेगम कुछ न कहकर पिंडली खुजलाने लगती है।

"चाय पिएगी ?"

नूरजहां बेगम फिर मुंह बिचका देती है।

"नूरजहां बेगम, उदास क्यों है ? इसलिए कि तेरा बाप कोढ़ी मर गया है ?"

नूरजहां बेगम चुपचाप आग तापती रहती है।

"आज सर्दी बहुत है।"

"नूरजहां बेगम को दुअन्नी दे और साथ ले जा।"

"क्यों नूरजहां ?"[७४]

इस संवाद में राकेशजी ने शहरी नारी की निर्बलता और उस पर हो रहे अत्याचारों पर प्रकाश डाला है। नूरजहां के पिता की मृत्यु हो गई है, इसे भी लोग मजाक में ले रहे है। स्त्री को मात्र एक शारीरिक तृप्ति का साधन बताया गया है। इसी प्रकार का संवाद 'कम्बल' में मा–बेटी के बीच का है –

आलू छीलते बनारसी का हाथ कट गया। गंगादेई झुंझला उठी, "हाय री, क्या करूं मैं तुझको ! उठने–बैठने की तो बात ही गई, तुझे अपने शरीर का भी होश नहीं!"

बनारसी झल्लाई, "और क्या करना है मुझको ? गला घोंट दे मेरा। मां जो है तू ...।" [७५]

माँ को चूप कराने के लिए बनारसी का कथन पाठकों पर गहरी छाप छोड़ जाता है। इस कहानी में बनारसी के माध्यम से राकेशजी ने शरणार्थी केम्पों में हो रही सेवा और उसमें छीपे अपने स्वार्थ को बखूबी चित्रित किया है। तो 'अपरिचित' में सिर्फ समय व्यतित करने के लिए की गई बातचीत भी हमारे सामने आती है –

"लगता है आपको बच्चों से बहुत प्यार है," वह बोली, "आपके कितने बच्चे हैं ?"

मेरी आंखें उसके चेहरे से हट गई। बिजली की बत्ती के पास एक कीड़ा उड़ रहा था।

"मेरे?" मैंने मुसकराने की कोशिश करते हुए कहा, "अभी तो कोई नहीं है, मगर ..."

"मतलब ब्याह हुआ है, अभी बच्चे-अच्चे नहीं हुए।" वह मुसकराई "आप मर्द लोग तो बच्चों से बचे ही रहना चाहते हैं न ?"

मैंने होंठ सिकोड़ लिए और कहा, "नहीं यह बात नहीं..."

"हमारे ये तो बच्ची को छूते भी नहीं," वह बोली, "कभी दो मिनट के लिए भी उठाना पड़ जाए तो झल्लाने लगते हैं। अब खैर वे इस मुसीबत से छूटकर बाहर ही चले गए हैं।" और सहसा उसकी आंखें छलछला आई। रुलाई की वजह से उसके होंठ बिलकुल उस बच्ची जैसे हो गए थे। फिर सहसा उसके होंठों पर मुसकराहट लौट आई – जैसा अक्सर सोए हुए बच्चों के साथ होता है। उसने आंखें झपककर अपने को सहेज लिया और बोली, "वे डॉक्टरेट के लिए इंग्लेण्ड गए है। मैं उन्हें बम्बई में जहाज पर चढ़ाकर आ रही हूं। ... वैसे छः-आठ महीने की बात है। फिर मैं भी उनके पास चली जाऊंगी।"[७६]

कहानी नायक रेल में मुसाफरी कर रहा था, उसी वक्त कहीं से एक औरत अपने बच्चे को लेकर रेल में बैठी और कहानी नायक के साथ इस प्रकार समय व्यतित करने के लिए बातें करती है। ऐसा सामान्य रूप से हर किसी के साथ होता है, कि दूरी कम करने के लिए एक-दूसरें से बातें कर समय व्यतित करते है। राकेशजी ने भी इस कहानी में जो औरत अपने पति से खुलकर बात भी नहीं करती वह किसी अपरिचित के सामने कैसी खुलकर बातें कर अपने हृदय का बोज हल्का कर रही दिखाई देती है। राकेशजी ने अपनी कई कहानियों में कथोपकथन को लम्बा भी कर दिया है मगर उसमें कहीं कोई भावना छीपी प्रतीत होती है – जैसे

"खास आपके लिए मुर्गा बनाया था," नत्थासिंह ने कहा, "हमने सोचा था कि भाई साहब देख लें, हम कैसा खाना बनाते हैं। खयाल था दो-एक प्लेटें ओर लग जाएंगी। पर न आप आए, और न किसी और ने ही मुर्गे की प्लेट ली। हम अब तीनों खुद खाने बैठे हैं। मैंने मुर्गा इतने चाव से, इतने प्रेम से बनाया था कि क्या कहूं ! क्या पता था कि खुद ही खाना पड़ेगा। जिन्दगी में ऐसे भी दिन देखने थे ! वे भी दिन थे कि जब अपने लिए मुर्गे का शोरबा तक नहीं बचता था ! और एक दिन यह है। भरी हुई पतीली सामने रखकर बैठे हैं ! गांठ से साढ़े तीन रूपये लग गए, जो अब पेट में जाकर खनकते भी नहीं ! जो तेरी करनी मालिक !"

"इसमें मालिक की क्या करनी है ?" बसन्ता जरा तीखा होकर बोला, "जो करनी है, सब अपनी ही है ! आप ही को जोश आ रहा था कि चढ़ाई शुरू हो गई है, लोग आने लगे हैं, कोई अच्छी चीज बनानी चाहिए । मैंने कहा था कि अभी आठ–दस दिन ठहर जाओ, जरा चढ़ाई का रूख देख लेने दो । पर नहीं माने ! हठ करते रहे कि अच्छी चीज से मुहूरत करेंगे तो सीजन अच्छा गुजरेगा । लो, हो गया मुहूरत !"[७७]

इसके द्वारा हमें ज्ञात होता हैं कि पहाडों की जिन्दगी और वहाँ आजिविका के लिए सिर्फ नीचे से आने वालों के अलावा और कोई रास्ता नहीं है । मन्दी के दिनों में दिन काटना और गुजारा करना कितना मुश्किल हो जाता है । साथ ही दो पीढ़ी के बीच रहे अंतराल को भी प्रस्तुत करने में राकेशजी को सफलता प्राप्त हुई है । 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी में भी राकेशजी ने प्रतीकात्मक ढंग से लम्बे संवादों की योजना की है । जैसे –

"एक तुम्हीं नहीं, यहां तुम सबके–सब कुत्ते हो," वह आदमी कहता रहा, "तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूं । फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो – हम लोगों की हड्डियां चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो । मैं परमात्मा का कुत्ता हूं । उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ, और उसकी तरफ से भौंकता हूँ । उसका घर इन्साफ का घर है । मैं उसके घर की रखवाली करता हूँ । तुम सब उसके इन्साफ की दौलत के लुटेरे हो । तुम पर भौंकना मेरा फर्ज है, मेरे मालिक का फरमान है । मेरा तुम से अजली बैर है । कुत्ते का बैरी कुत्ता होता है । तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ । मैं अकेला हूँ, इस लिए तुम सब मिलकर मुझे मारो । मुझे यहाँ से निकाल दो । लेकिन मैं फिर भी भौंकता रहूंगा । तुम मेरा भौंकना बंद नहीं कर सकते । मेरे अंदर मेरे मालिक का नर है, मेरे वाहगुरु का तेज है । मुझे जहाँ बंद कर दोगे, मैं वहाँ भौकूंगा, और भौंक–भौंककर तुम सबके कान फाड़ दूंगा । साले, आदमी के कुत्ते दुम हिला–हिलाकर जीनेवाले कुत्ते ... !"

"बाबा जी, बस करो," एक बाबू हाथ जोड़कर बोला, "हम लोगों पर रहम खाओ, और अपनी यह सन्तवानी बंद करो । बताओ तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा केस क्या है ... ?"

"मेरा नाम है बारह सौ छब्बीस बटा सात ! मेरे माँ–बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने । अब यही नाम है जो तुम्हारे दफ्तर का दिया हुआ है । मैं बारह

सौ छब्बीस बटा सात हूं। मेरा और कोई नाम नहीं है। मेरा यह नाम याद कर लो। अपनी डायरी में लिख लो। वाहगुरु का कुत्ता – बारह सौ छब्बीस बटा सात।" [७८]

इस संवाद के माध्यम से राकेशजी ने गरीब और बेसहारा किसानों की मनोवेदनाओं को और हमारे देश में फैले भ्रष्टाचार को दर्शाने का नम्र प्रयास किया है और उसमें राकेशजी काफी हद तक सफल भी हुए हो ऐसा प्रतीत होता है। अपने नाम पर एलाट हुए गड्ढ़े के स्थान पर दूसरी जमीन प्राप्त करने के लिए अर्जी दे देने के दो सालों तक कुछ न होने के बाद एक साधारण किसान इस हद तक आ जाता है कि घर से सभी सदस्यों को लेकर कार्यालय पहुंच जाता है और हंगामा खड़ा कर देता है और जो दो साल की मिन्नतों से न हो सका आज उसके भौंकने से हो गया। इस संवाद के माध्यम से राकेशजी ने हमारी प्रणाली पर भी वेधक कटाक्ष भी किया है।

तो 'धुंधला दीप' में आकर राकेशजी का कथा–नायक स्पष्टवक्ता हो गया हो ऐसा प्रतीत होता है – जैसे

"एक ऐसी बात है जो शायद आप बताना नहीं चाहेंगे।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं। श्यामा के साथ मेरी मित्रता रही है। फिर वह अपने प्रेमी शील के साथ कराची चली गई थी। बाद में मुझे बताया गया कि मैं उसके माँ बनने के लिए उत्तरदाई हूँ। मैं ठीक नहीं जानता।"

इतने स्पष्ट शब्दों में बात सुनने की आशा राधा को नहीं थी। वह पल भर अवाक् उसे देखती रही। फिर आंखें हटाकर उसने धीरे–से कहा, "तब तो ठीक ही है।" [७९]

कथानायक केसरी अपने अतीत की बात को इतनी सहजता से राधा के सम्मुख प्रकट कर देता है। यह असाधारण घटना है। इस संवाद के द्वारा केसरी पाठको के मन पर छा जाता है, क्योंकि सच बोलने की शक्ति दिखाकर वह सही माने में नायक बन गया।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी को भी स्थान दिया है। 'सेफ्टी पिन', 'मिस्टर भाटिया', 'मिस पाल', 'जखम' आदि कहानियों में परिवेशगत अंग्रेजी शब्दों को राकेशजी ने मिश्रित किया है। जैसे –

"वह सीरीयसली कह रहा था, सुदर्शन...!" मिसेज सिंह ने अपने बालों को हाथ से सहेज लिया।

"मैं भी सीरियसली कह रहा हूं," सुदर्शन गिलास वापस देता हुआ बोला, "मुझे चाहे एक लाख न भी मिलता।"

मेजर सिंह फिर हँसे ... अकेले। "दैट्स इट... दैट्स इट। यह विट मुझे बहुत पसंद है। शाम की सारी उदासी एक फिकरे से दूर हो जाती है।"

"डोण्ट दैट ... नोट दैटे..." मेजर जल्दी से बोले, "मेरा मलतब था कि ..."

"रहने दो," मिसेज सिंह ने उन्हें काट दिया, "तुम्हारा मतलब हमेशा बोरिंग होता है।"[८०]

इस संवाद के माध्यम से शहरों की आधुनिकता के नाम पर हो रहे नंगे अनुकरण को राकेशजी ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। कहानी में शहर के भद्र समाज में औरतें शराब पीने से भी कतराती नहीं है। ऐसे आधुनिक भारत की कल्पना राकेशजी ने इतने सालों पहले की यह उनकी दूरंदर्शी स्पष्ट करती है। इसके विपरीत नारी को स्वमानी दर्शाते हुए कुछ संवाद उनकी कहानी 'भूखे' में प्रदर्शित है। जैसे –

"यह बच्चे को दे दीजिए," उसने अंदर जाकर कहा।

"आपसे किसने लाने को कहा है ?"

"कहा तो किसी ने नहीं, ये मैं अपनी तरफ से..."

"इन्हें वापस ले जाइए।"

वह बुदबुदाता हुआ वापस लौट आया।

एक आवाज सुनाई दी,"सूद साहब, अण्डे घर की मुर्गियों के हैं या बाजार की ?"[८१]

कथानायिका एवलीन का बच्चा अण्डे के लिए जीद कर रहा है मगर आर्थिक कमी के कारण वह उसे अण्डा नहीं दिलवा सकती। तो होटल का मालिक उसे जब अण्डा देने जाता है तो स्वमानी एवलीन उसे लेने से इनकार कर देती है। वह जानती है कि अगर एक बार उसे ले लिया गया तो वह आदत हो जाएगी और वहाँ के लोग उसके विधवा होने का फायदा भी उठायेगे। उसे यकीन था, कि उसके पति द्वारा बनाई हुई बहुत सी तसवीरें अच्छी कीमत पर बिक जाएंगी। लोग तस्वीर खरीदने आते है,

किन्तु उसका मजाक उडाते रहते है । दरअसल में वे सब कुछ ओर ही चाहते है । लेकिन एवलीन ने अपना स्वमान बचाकर रखा है ।

राकेशजी की कई कहानियों में कटाक्ष और व्यंग्य भी देखने को मिलता है –

"अपनी–अपनी तकदीर की बात है भाई साहब, कोई किसी दूसरे की तकदीर थोड़े ही ले सकता है ?" सरदार मध्यस्थता करता हुआ बोला, "हम और आप भी दुखी हैं, और यह भाई भी दुखी है – कौन यहाँ दुखी नहीं है ? कोई कम दुखी है, कोई ज्यादा दुखी है ।"

"आपको साठ हजार मिल रहे हैं, आपको किस चीज का दुख है ?" वह व्यक्ति अब और कुढ़ गया ।

"मिल रहे हैं, यह भी तकदीर की बात है," सरदार बोला, "क्लेम भरते हमें अक्ल आ गई, उसी का फल समझिए । नहीं हमें भी ये दस–बीस हजार देकर टरका देते ।"

"आपने क्लेम ज्यादा का भरा था ?"

"हमारी डेढ़ लाख की जायदाद थी । मगर हमें पता था कि असली क्लेम भरेंगे तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा । सो वाहेगुरु का नाम लेकर हमने इस तरह फार्म भरा कि जायदाद की असली कीमत तो कम–से–कम वसूल हो ही जाए । मगर इन बेईमानों ने फिर भी कुल साठ हजार का ही क्लेम मंजूर किया है । हम छः भाई हैं – दस–दस हजार लेकर बैठ रहेंगे ।"[८१]

इस संवाद में कटाक्ष और व्यंग्य तो दिखता ही है साथ ही मानव मन की विचित्रता के भी दर्शन होते है । हमारे पास जितना है हम उसमें गुजारा करने के बजाय अधिक की आशा रखते है और न मिलने पर हम परंपरा को दोषित ठहराते हैं । सरकार पैसें देने में देर कर रही है और कम दे रही है, इसकी शिकायत करने वाले खुद अपने गिरेबान में नहीं देखते कि उसने कितना गलत काम किया है, जो फोरम भरते वक्त अपनी जायदाद की कीमत को ज्यादा दर्शाया । इस प्रकार हम दूसरों पर दोषारोपण कर अपनी गलतियों से बचना चाहते है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों में बाल–सहज वृत्ति को भी कथोपकथन के माध्यम से बड़ी चारुता से निभाया है । 'एक और जिन्दगी' कहानी में प्रकाश और उसके बेटे पलाश के बीच का संवाद देखा जा सकता है ।

"तूने पापा को पहचाना नहीं था क्या ?"

"पैताना ता," बच्चा बांहें उसके गले में डाले झूलने लगा।

"तो तू झट से पापा के पास आया क्यों नहीं ?"

"नहीं आया," कहकर बच्चे ने उसे चूम लिया।

"तू आज ही यहां आया है ?"

"नहीं, तल आया ता।"

"अभी रहेगा या आज ही लौट जाएगा ?"

"अबी तीन–चाल दिन लहूंदा।"

"तो पापा के पास मिलने आएगा न ?"

"आऊंदा।" [८३]

राकेशजी ने इस संवाद के द्वारा बच्चों की तूतलाने वाली भाषा का निरूपण कर वास्तविक परिवेश दर्शाने का प्रयास किया है और काफी हद तक उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। प्रकाश अपनी त्यक्ता पत्नी बीना और पुत्र पलाश से कश्मीर में मिल जाता है। प्रकाश का पितृ हृदय उसे पलाश से मिलने को अधीर बना देता है। दोनों जब एक–दूसरे से मुलाकात करते है, उस समय हुई बाप–बेटे के बीच की बातें भावनात्मक हो जाती है। कुछ इसी प्रकार की बाल मानस की जिज्ञासा वृत्ति 'मरुस्थल' में देखने को मिलती है।

"हिश् !" वह बोली, "हम तो डाक्टरी पढ़ेंगे, हम ब्याह थोड़े ही करवाएंगे ?"

कुछ देर वह चुपचाप एलबम के पन्ने उलटाती रही। फिर उसने पूछा, "अच्छा आप बताइए मैं हिन्दू हूं कि मुसलमान ?"

"तेरा नाम क्या है ?" मैं उसे बहलाने लगा।

"इन्दु।"

"तो तू हिन्दू है।"

"नाम से क्या होता है ?" वह बोली, "बाबूजी हिन्दू हैं और अम्मी मुसलमान हैं। मैं न हिन्दू हूं न मुसलमान।"

"नहीं है तो न सही। हिन्दू–मुसलमान होने से क्या होता है ?"

"अब तो नहीं होता, पर जब मैं बड़ी हो जाऊंगी, तब तो होगा।"

"क्या होगा ?"

"यह आप अपने–आप समझ लें। हम नहीं बताएंगे।" [८४]

मा–बाप दोनों के धर्म अलग होने पर बच्चों पर उसका क्या असर होता है ? यह इन्दू के संवाद के माध्यम से हम जान सकते है । बच्चें मानसिक तौर पर कितने बड़े होते जा रहे है, यह राकेशजी ने दर्शाने का प्रयास किया है । इन्दु पहले ब्याह करने से मना करती है, किन्तु संवाद के अंत में वह ब्याह के बाद की परिस्थिति का विचार भी पाठकों के सामने रख जाती है । इस प्रकार राकेशजी की 'सुहागिनें', 'उर्मिल जीवन', 'भूखे', 'मिस पाल' आदि कहानियों में बाल मानस की जिज्ञासा वृत्ति को और उसके छोटे–से दिमाग में उठने वाली समस्याओं को हमारे सामने रखा गया है । 'मिस पाल' में मिस पाल बच्चों को विश्वास दिलाती है, हम तुम्हें मारेंगे नहीं, टाफियाँ देंगे । लेकिन बच्चे आपस में खुसुर–पुसुर करते हैं जैसे–

"मर्द है ।"

"नहीं, औरत है ।"

"तू सिर के बाल देख, और सब कुछ देख, बाकी शरीर देखा, मर्द है ।"

"तू कपड़े देख, और सब कुछ देख, औरत है ।"

"आओ, बच्चों आओ, पास आकर देखों ।" मिस पाल की आवाज से मैं जैसे चौंक गया ... बच्चे उसे आते देखकर, 'आ गई', 'आ गई' .... एक बच्चे ने ....फिर जोर से आवाज लगाई, "कमाल है भई कमाल है ।" [८९]

इन संवादों के द्वारा कई स्तरों पर आंतरिक चोटों को उपसाया गया है । राकेशजी की अधिकतर कहानियों में संवाद तार्किक संदर्भ की व्याख्या करनेवाले, मनोभूमि का निरूपण करने वाले और पात्र के व्यक्तित्व को मुखरित करनेवाले है ।

राकेशजी के समस्त कहानी साहित्य में कथोपकथन को देखा जा सकता है । यानी उनकी कहानियों में कथोपकथन स्वाभाविक, पात्रानुरुप, चोटदार और मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । संक्षिप्तता और उद्देश्यपूर्णता राकेशजी के संवादों की विशेषता है । उन्होंने आत्मकथात्मक विधि का प्रयोग कर संवाद का नवीन प्रयोग किया है । मनोवैज्ञानिकता और भावात्मकता का तत्त्व उनकी कहानियों की जान बन गया है । अतः हम कह सकते है, कि राकेशजी ने अपनी कहानियों में संवादों को स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है ।

३.६ उद्देश्य :–

कहानी साहित्य का महत्वपूर्ण तत्त्व है – उद्देश्य । कहानी का जन्म मुख्यतः मनोरंजन तथा उपदेश के हेतु ही हुआ था । नई कहानी में इस तत्त्व के प्रति लेखकों का विशेष आग्रह मिलता है । इसीलिए वर्तमान युग के कहानीकार ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक क्षेत्रीय उद्देश्य से कहानी की रचना करते हैं । नीति शिक्षा, मनोरंजन, कौतूहल सृष्टि, सुधार भावना, हास्य सृष्टि, समस्याओं का चित्रण, जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण आदि तत्त्व उद्देश्य के रूप में आधुनिक युग में विकसित हुए है । इस प्रकार से कहानी का स्वरूप हिन्दी साहित्य में निरंतर विकासशीलता का द्योतन करता हुआ अपने भावी विकास की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता है । राकेशजी की प्रमुख कहानियाँ मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं को उजागर करती हैं ।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश की मान्यताओं में बहुत तेजी से परिवर्तन हुआ । इसमें न केवल व्यवस्था में परिवर्तन हुआ, अपितु मूल्यों का संक्रमण भी अधिक तीव्रता से हुआ, जिससे विचार और चिंतन के क्षेत्र में नए प्रतिमान स्थापित हुए । आध्यात्मिकता, संस्कार, आदर्श का यथार्थ और आधुनिकता के बीच संघर्ष ने भारत के निम्न मध्यवर्ग को अनेक अंतर्विरोधों एवम् विडंबनाओं का शिकार बना दिया । इसका नारी की स्थिति पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा । परिवर्तित परिवेश के प्रभाव में स्त्री–पुढष, पति–पत्नी, माता–पिता, भाई–बहन, प्रेमी–प्रेमिका आदि के संबंध महत्त्वहीन हो गये । स्त्री–पुढष संबंधों में आदर्श और परंपरागत मूल्यों का तिरस्कार है, नये मूल्यों की तलाश है, उसकी खोज जारी है । ऐसा लगता है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत की यह सदी आधुनिक संकट बोध को भली–भाँति वहन कर सकने में असमर्थ रही और नए भारत के परिवर्तित समाज में वह सुचारु नहीं रही । फलस्वरूप स्त्री–पुढष संबंधों में धर्म, परंपरा और संस्कृति से प्रभावित परंपरागत संबंधों का चित्रण, आधुनिकता के स्पर्श से शिक्षा, सौंदर्य, सामाजिक जीवन तथा आचार व्यवहार के विविध संदर्भ, तनाव, आधुनिक संबंध, फैशन और मूल्यहीनता, निजी व्यक्तित्व, वैयक्तिक कला का स्पर्श, परस्पर सहयोग, पतिव्रता धर्म की नई व्याख्या तथा संबंध विच्छेद इसके मुख्य आयाम उभर कर आये । पारिवारिक घूटन और टूटन स्त्री–पुढष के इस नवीन आयामों का परिणाम है । राकेशजी के कहानी साहित्य में घर एवम् पारिवारिक स्थिति की अभिव्यक्ति प्रमुख रूप से हुई है ।

राकेशजी की 'सुहागिनें','एक ओर जिन्दगी','चौगान', 'फौलाद का आकाश', 'सेफ्टी पिन', 'मिस पाल', 'उर्मिल जीवन', 'उसकी रोटी', 'मिट्टी के रंग', 'पहचान',

'हक हलाल', 'गुंझल', आदि कहानियाँ स्त्री–पुरुष के संबंधों को अभिव्यक्त करनेवाली विशेष उल्लेखनीय है।

'सुहागिनें' में संबंधों और दाम्पत्य जीवन में अर्थ और सेक्स दोनों के प्रभाव को उद्देश्य में रखा गया है। एक तरफ पति और संयुक्त परिवार के लिए घर से दूर मनोरमा नौकरी करती है और मातृत्व से वंचित है। पति के लिए 'होने' का बोध केवल अर्थ के स्तर पर है। दूसरी ओर काशी का शराबी पति भी दूसरी प्रेयसी के साथ रहकर काशी से केवल आर्थिक और शारीरिक स्तर पर संबंध बनाये रखता है। मनोरमा तो देह के स्तर पर भी पति के लिए 'न होने' की स्थिति में है। परंतु संबंधों को ढोने और रखने के लिए एक आंतरिक दबाव निरंतर बना रहता है। इस कहानी का उद्देश्य बदलते परिवेश और कमजोर रिश्तों के बीच नारी की मनोदशा को चित्रित करना है। 'अपरिचित' कहानी दाम्पत्य संबंधों की जटिलता को निरूपित करती है। स्त्री–पुढष की बेमेल ढचियों के कारण दाम्पत्य जीवन में रिक्तता, कटुता आती है। 'चौगान' कहानी का उद्देश्य अनमेल एवम् असमान वैवाहिक जीवन में आती यंत्रणा और कसक को व्यक्त करना है। 'सेफ्टी पिन' में आधुनिक उच्चवर्गीय स्त्री–पुढषों के संबंधों पर यथार्थवादी शैली में प्रकाश डाला गया है। 'मिस पाल' – एक ऐसी नारी की कहानी है जिसे समाज में दूसरों के उपहास का पात्र बनना पड़ा। इस कहानी का उद्देश्य यह है कि बिखरे मन और फैले तन के कारण व्यक्ति को जीवन की विडंबनाओं का भार जीवनभर ढोना पडता है। 'उर्मिल जीवन' की नीरा का विवाह उसकी बड़ी बहन की मौत के एक महीने बाद उसके जीजा से होता है। कभी जीजा के बलपूर्वक चूमने पर उसने थप्पड़ मार दिया था लेकिन अब उनकी पत्नी है। यहाँ स्त्री–पुढष के बेमेल संबंध और पारिवारिक जीवन की हास्यास्पदता को राकेशजी ने बखूबी चित्रित किया है। ' गुंझल' कहानी में चंदन और कुतंल पति–पत्नी के बीच आपसी तनाव एवम् टूटन निरूपित है। विवाह के इतने समय के पश्चात दोनों एक दूसरे को नहीं समझ पाते। चंदन कुंतल से कुछ जानना चाहता है, "तुम अपने मन में क्या चाहती हो, क्योंकि तुम्हारे मन की बात का मुझे अभी तक पता नहीं चल सका।"[८६] कुंतल स्पष्ट करती है, "हम अपने लिए न तो कुछ चाहते हैं और न ही इस विषय में हमें कोई बात करनी है।"[८७] दोनों एक दूसरे को न चाहकर भी कुछ चाहतें हैं। दोनों एक दूसरे के साथ रहकर भी नहीं रहना चाहते और दोनों एक दूसरे से मुक्त होना चाहकर भी मुक्त नहीं हो पाते। आधुनिक दाम्पत्य जीवन की मानो यह एक अबूझ पहेली–सी है।

स्वतंत्रता के बाद का कहानी साहित्य आंदोलनधर्मी कथा–साहित्य है । नई कहानी आंदोलन के प्रारंभ में राकेशजी का नाम विशेष रूप से लिया जाता है । राकेशजी की कहानियाँ व्यक्ति समाज की विडम्बनाओं का तथा समाज व्यक्ति की यंत्रणाओं का आईना है । डॉ. रमेश कुंतल मेघ ने राकेशजी की कहानियों के संदर्भ में लिखा है – "उनकी कहानियों में दोहरापन या द्विधा की अनुभूति इतनी सूक्ष्म और तीव्र है कि वे लगातार 'ओर' के बरास्ते दो विभिन्न पात्रों या दो विपरीत मानसिकताओं या दो विडम्बनाओं अथवा दो विरुद्ध घटनाओं की तुलना करते रहे ।"" आधुनिक कथावस्तु और विशेष संदर्भो को प्रकट करनेवाली राकेशजी की कहानियों में पात्रों की मनःस्थिति उसके संघर्ष और आधुनिक जीवन में व्यक्ति के अलगाव को प्रकट करती है । आधुनिक जीवन के भागमभाग में उलझे व्यक्ति की बिखरती हुई, टूटती हुई स्थितियों के साथ–साथ परिस्थितियों द्वारा निर्धारित नियति के प्रति समर्पित पुढष का वर्णन है । 'मलबे का मालिक', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'जख्म', 'फटा हुआ जूता', 'परमात्मा का कुत्ता ', 'एक ठहरा हुआ चाकू ', 'नये बादल', 'हक हलाल', 'मवाली' आदि कहानियाँ इस उद्देश्य को चित्रित करती है । राकेशजी की ६३ कहानियों में से करीब २० कहानियों में मूल्य, संघर्ष एवम् तनाव की स्थितियों को अभिव्यक्ति मिली है । ऐसी कहानियों में ' ग्लास टेंक', 'फौलाद का आकाश', 'क्वार्टर', 'आखिरी सामान','वासना की छाया में ', 'मलबे का मालिक', 'खाली', 'आर्द्रा', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'एक और जिन्दगी', 'रोजगार', 'नये बादल', 'गुंझल', 'सेफ्टी पिन', 'बस स्टेण्ड की एक रात' आदि को लिया जा सकता है । आधुनिक जीवन में व्यक्ति पुरानी मान्यताओं और परंपराओं को अस्वीकार कर रहा है । स्वतंत्र ढंग से जीने की उसमें एक ललक दिखाई देती है । विवेक और स्वतंत्र व्यक्तित्व से ही वह नैतिक या अनैतिक का चुनाव करता है । नैतिकता के दायरे में भी आगे चलकर आधुनिक युवक मानवीयता और नये मूल्यों की खोज करता है । 'चाँदनी और स्याह दाग', 'जंगला' आदि कहानियाँ नवीन मूल्यों की तलाश के उद्देश को स्पष्ट करती है ।

राकेशजी की कहानियों का उद्देश आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति से उत्पन्न त्रासद एवम् यंत्रणामूल्य स्थितियों के कारण समकालिन व्यवस्था के प्रति आक्रोश और अनास्था प्रकट करना है । 'मलबे का मालिक' यद्यपि भारत–पाकिस्तान विभाजन की कृत्रिमता और उससे उत्पन्न मानव मूल्यों को निरुपित करनेवाली कहानी है, किन्तु उसमें एक परिदृश्य उभरा है – वह पडोशी और दो जातियाँ एवम् मनुष्य–मनुष्य के बीच अनास्था के तीव्रत्तम भाव को भी पेदा करती है । 'नये बादल' सार्वजनिक

स्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार को देखकर सामान्यजन में अनास्था तथा सार्वजनिक संस्थाओं के प्रति हमदर्द लोगों के दिल को दुःख पहुँचाता है । 'क्लेम' कहानी में शरणार्थियों को दी जानेवाली सरकारी सहायता का एक माहौल विधवा स्त्री के पात्र द्वारा सामान्यजन में इस तंत्र के प्रति अनास्था का तीव्र बोध निरुपित करता है । राकेशजी इस स्थिति के भोक्ता और सूक्ष्म पर्यवक्षक रहे हैं । अतः इस बोध का निरूपण बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है । 'परमात्मा का कुत्ता' भी सरकारी व्यवस्था की निष्क्रियता, घूसखोरी, जड़ता, अन्याय आदि को निरुपित करती हुई उपेक्षित आदमी की मार्मिक व्यथा को निरुपित करती है ।

इस प्रकार राकेशजी की कहानियों में समाज सुधार, स्वतंत्रता के पश्चात उत्पन्न विभाजन की विभिषिका, सरकारी कार्यो में हो रहे भ्रष्टाचार, स्त्री–पुढष संबंधों में दरार, यौन उत्पीड़न, बाल मनोविज्ञान, आदि विषयों का सोद्देश्य चित्रण किया है ।

३.७ शीर्षक :–

साहित्यकारों के मतानुसार किसी भी कहानी का नामकरण बहुत ही सावधानी के साथ अच्छी तरह सोच–विचार कर किया जाना चाहिए । साहित्यशास्त्र के पण्डितों के मतानुसार शीर्षक के द्वारा ही उसका स्वरुप; वर्ण्य–विषय एवम् मंतव्य स्पष्ट हो जाना चाहिए । किसी भी कहानी का नामकरण चार प्रकार से किया जा सकता है, यथा – (१) नायक अथवा नायिका के नाम पर, (२) किसी मुख्य घटना के आधार पर, (३) किसी घटना–स्थल के नाम के आधार पर, (४) कहानी में निहित संदेश अथवा उसके उद्देश्य के आधार पर । इस संबंध में एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है । कहानी के शीर्षक यानी नामकरण में कम से कम शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए । केवल एक शब्द वाला नाम सर्वाधिक उपयुक्त रहता है ।

राकेशजी ने सामयिक जीवन की जटिलताओं एवम् मन की गुत्थियों को व्यक्त करने के लिए विविध प्रकार के प्रतीकों का सहारा लिया है, जिनमें मूर्त एवम् अमूर्त दोनों ही प्रकार के प्रतीकों को लिया गया है। प्रतीक विधान से शिल्प–सौंदर्य में वृद्धि और व्यंजना–शक्ति का विस्तार हुआ है। प्रतीकों के माध्यम से अन्तर्भाव और मनःस्थिति को आसानी से व्यक्त किया जा सकता है। राकेशजी ने अपने कहानी साहित्य में प्रतीकात्मकता का बहुत ही सचेत वर्णन किया है।

राकेशजी की कहानियो के अधिकांश शीर्षक प्रतीकात्मक है। 'मलबे का मालिक' कहानी में मलबा शरीर का प्रतीक है। शरीर मलबे का ढ़ेर ही तो है, जो वृद्धावस्था को प्राप्त गनीमियाँ एवम् 'रक्खे' पहलवान के शरीर की स्थिति का प्रतीक है। यों तो समूची कहानी का प्रतीकार्थ भी स्पष्ट है। "मलबे पर बैठा रक्खा पहलवान समाज के उन ठेकेदारों का प्रतीक है जो आज भी पुरानी परंपराओं को अपनी संपति मानकर उसकी सुरक्षा के लिए प्रयत्नवान बने रहते है।"[८९] लगभग सभी आलोचकों के अनुसार यह मलबा टूटते और टूटे हुए जीवन–मूल्यों की कहानी है। "असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मालकियत है!"[९०] यहाँ अप्रयत्क्ष रूप से सरकारी तंत्र के खोखलेपन के प्रतीक के रूप में बतलाया गया है। इस प्रकार 'मलबे का मालिक' शीर्षक प्रतीकात्मक और संकेतार्थ होते हुए यथार्थ है। 'जानगर और जानवर' कहानी में कुत्ते के माध्यम से जानवर और इन्सान के अंतर को गहराया गया है। कुत्ता जानवर है, अपने आपमें व्यक्त है। जबकि फादर फिशर मनुष्य के रूप में जानवर है जो शोषण और कृत्रिमता भी प्रतीकात्मक है। जबकि बाहर से भले आदमी का मुखौटा ओढ़े हुए है। इस प्रकार कहानी का शीर्षक सांकेतिक प्रतीत होता है। 'सेफ्टी पिन' शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। 'ग्लास टैंक' एक मुक्तिकामी नारी का प्रतीकार्थ है जो ग्लास टैंक की मछलियों की तरह विवश और लाचार हैं। मछली और ग्लास टैंक के प्रतीक के विषय में डॉ. सुषमा अग्रवाल के अनुसार – "इनका प्रतीकार्थ पूरी तरह हृदयग्राह्य प्रतीत नहीं होता है। 'मछली' का प्रतीक तो फिर भी संवेद्य प्रतीत होता है, किन्तु 'ग्लास–टैंक' का प्रतीक आरोपित लगता है।"[९१] फलतः यहाँ ग्लास टैंक उस कृत्रिम जीवन का प्रतीक है जिसमें मात्र बाह्याड़म्बर है। जबकि मछली घुटन का प्रतीक है। 'जख्म' शीर्षक प्रतीकार्थ व्यक्त करता है। व्यक्ति हाथ से जख्मी बन चुका है। 'सोया हुआ शहर' महानगरीय जीवन की विडम्बनाओं का प्रतीक है, जिसे अनेक प्रतीकों द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। प्रयोगात्मक भूमि पर लिखी गई कहानियों में प्रतीक, बिम्ब एवम् सांकेतिकता की सुंदर सजावट है।

राकेशजी की कहानियों के शीर्षक बिंबात्मक भी है । बिम्ब प्रयोजन के बारे में राकेशजी के विचार – "आज के युग की साहित्यिक अभिव्यक्ति में हम एक चीज की प्रमुखता देखते है और वह है बिम्ब और विचार का सामंजस्य अर्थात् बिम्बों का ऐसा संगठन कि विचार उसके बीच से प्रस्फुटित हो, चरित्र और घटनाएँ कुछ ऐसे मूर्त चित्रों के रूप में प्रस्तुत की जायें वही लेखक के अभिप्राय या संकेत को स्पष्ट कर दे ।"[९२] पात्र की मानसिक स्थितियों को परिस्थितियों के संदर्भ में राकेशजी ने शीर्षको के माध्यम से सफलता से आरोपित किया है । जैसे – "जूते के मैले सिकुड़े हुए तलवे तिरछे होकर आधा–आधा ईंच उपर को सरक आये थे । पीछे की दोनों ओर की सींबनें उघड़ रही थी । उसे याद नहीं था कि यह जूता उसने कब खरीदा था – उसे खरीदे हुए कम–से–कम अढ़ाई–तीन साल हो चूके थे । जूते के दाँत बहुत पहले ही निकलने लगे थे, पर राय उसे ठोक–पीटकर लटकाता आ रहा था । कुछ महीने पहले सामने के जूते के होंठ भी खुल गये थे, पर रायने मोची को चवन्नी देकर उन्हें बंद कर दिया था ।"[९३] यहाँ फटे हुए जूते की स्थिति का बड़ा प्रभावी बिम्ब है और साथ ही कहानी के शीर्षक से यथार्थ है । इसी प्रकार की बिम्बात्मक शैली 'परमात्मा का कुत्ता' के प्रारंभ में प्रयुक्त हुआ है जो शीर्षक को सार्थक सिद्ध करता है । 'सोया हुआ शहर' कहानी की पूरी शैली बिम्बात्मक है इस कहानी में आये बिम्ब कहीं रात्रि का निस्तब्धता के, कहीं कार व साइकिल के तेजी से चले जाने के ओर कहीं मकान की छतों के दृश्य बिम्बों को उजागर करते चलते हैं । राकेशजी की 'ठहरा हुआ चाकू' कहानी को नगरीय संत्रास और वहाँ की भयावह विरूपता को चित्रित करती है । इस कहानी का शीर्षक घटना प्रधान है । 'ठहरा हुआ चाकू' कहानी में राकेशजी ने आतंक का रोमांचकारी चित्रण मार्मिक ढंग से किया है । साथ ही गुंडा–गर्दी, लूंट–खसोट, बलात्कार, असुरक्षा की भावना, डकैती और आये दिन की दुर्घटनाओं से मानव मन किस प्रकार संत्रस्त है, इसका यथार्थ चित्रण किया गया है । इस कहानी के नायक ने अपने पर हमला करनेवाले गुंडे नत्थासिंह के विरुद्ध पुलिस में शिकायत दर्ज की । लेकिन कहानी नायक के मनोमंथन और बड़े शहरों की मानसिकता को इस कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।

राकेशजी ने अपनी कहानियों के शीर्षक में सांकेतिकता का विपुल प्रमाण में प्रयोग किया है । सांकेतिकता नई कहानी की एक प्रमुख उपलब्धि है, क्योंकि कहानी का शीर्षक संकेत करता ही नहीं, स्वयं भी एक संकेत है । आज की कहानी की चेतना और अनुभूति को आत्मसात करने के लिए सांकेतिकता का उपयोग किया गया है ।

राकेशजी की 'जख्म' कहानी का शीर्षक इसका श्रेष्ठ उदाहरण है, जहाँ राकेशजी ने कहानी के अर्थ को स्पष्ट न कर उसकी गति को संकेत देकर स्पष्ट किया है।

'मिस पाल' कहानी नायिका प्रधान और नायिका के नाम पर आधारित कहानी है। इस कहानी में राकेशजी ने दफ्तर में काम करनेवाले लोगों या कर्मचारी वर्ग पर मात्र व्यंग्य नहीं किया, लेकिन आधुनिक शिक्षित और सभ्य लोगों की अमानवीयता की ओर भी संकेत किया है। मिस पाल की शारीरिक विडंबना और मानसिकता का चित्रण भी किया है। इस कहानी में सिर्फ मिस पाल के ही जीवन की चर्चा होने के कारण इस कहानी का शीर्षक 'मिस पाल' योग्य है। इसी प्रकार की कहानी है 'मिस्टर भाटिया'। नायक प्रधान इस कहानी का शीर्षक यथायोग्य है। इस कहानी का नायक मिस्टर भाटिया हजारों में एक है। जो आम तौर पर महानगरीय परिवेश में अक्सर पाये जाते है। जो खयाली पुलाव बनाते रहते है और प्रतिष्ठा पाने में असफल होकर अंत में सामान्य कार्य करने पर विवश हो जाते है।

माँ की ममता की कहानी है 'आर्द्रा'। माँ की ममता आर्द्रा नक्षत्र तथा मादा सुअर और उसके बच्चों के द्वारा मार्मिक संकेत से दर्शाया है। माँ की ममता अपने सभी बच्चों पर एक समान रहती है, जैसे आर्द्रा नक्षत्र में सभी स्थान पर एक सी बारीस होती है। इस प्रकार इस कहानी का शीर्षक भी संकेतार्थ होने के साथ साथ सार्थक है। 'सुहागिनें' कहानी का शीर्षक भी संकेतार्थ है। कहानी की नायिका मनोरमा और उसकी नौकरानी काशी दोनों सुहागिन होने के बावजूद भी अपने पति का सुख प्राप्त नहीं कर पाती और उनसे दूर आकर रहना पड़ रहा है। इस कहानी में राकेशजी ने मनोरमा और काशी के माध्यम से आधुनिक नारी की मनोव्यथा को बखूबी चित्रित किया है। 'उसकी रोटी' कहानी का शीर्षक भी संकेतार्थ और घटना प्रधान है। कहानी की नायिका अपने बस ड्राईवर सुच्चासिंह के लिए रोटी लेकर जाती है। इस घटना को प्रस्तुत करती कहानी का शीर्षक यथार्थ और सार्थक है। 'कंबल' कहानी का शीर्षक भी प्रतीकात्मक या संकेतार्थक कहा जा सकता है। इस कहानी की नायिका बनारसी अपने परिवार के साथ निर्वासित शिबिर में आर्थिक समस्याओं के बीच रहती है। राकेशजी की कई कहानियों के शीर्षक घटना प्रधान भी है। जैसे – 'पाँचवे माले का फ्लैट' इस कहानी का शीर्षक घटना स्थल पर आधारित है। कहानी नायक पाँचवे माले के फ्लैट में रहता है और उस फ्लैट की खस्ताना हालत के कारण ही प्रमिला सतीश से शादी नहीं करती। 'मन्दी' कहानी का शीर्षक भी घटना स्थल और घटना प्रधान पर आधारित

कहा जा सकता है। 'धुंधलादीप', 'लक्ष्यहीन' और 'दोराह' तीनों कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक है। तीनों के नायक का नाम केशरी है। ये तीनों पात्र जीवन में हारे–थके असफल व उबे हुए हैं। तीनों कहानियों के शीर्षक सार्थक और कथा के अनुरूप है।

राकेशजी के कहानी साहित्य में सभी प्रकार के शीर्षक देखे जा सकते है। राकेशजी ने कहानियों के शीर्षक देते समय काफी सावधानी रखी हो ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि कहानी के नामकरण से ही उसके कथावस्तु का निर्धार किया जा सकता है। राकेशजी की कहानियों के शीर्षक घटना के आधार पर, मुख्य चरित्र के नाम के आधार पर या घटना स्थल के आधार पर देखें जा सकते है।

३.८ प्रारंभ–मध्य–अंत :–

राकेशजी की कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो अन्त से प्रारंभ होती हैं। कुछ समीक्षक नई कहानी की विशेषता के रूप में इस प्रकार की रचना शैली का उल्लेख करते हैं। ऐसी कहानियों में अस्पष्ट सांकेतिक और प्रभावी व्यंजनाएँ रहती हैं, जिनके सहारे पाठक को अपना निष्कर्ष स्वयं पाना होता है। राकेशजी की 'सेफ्टी पिन', 'जख्म' आदि कहानियाँ इस प्रकार की हैं। 'सेफ्टी पिन' मध्यवर्गीय परिवारों के सतही लगाव और भीतरी अलगाव और बिखराव को दर्शाता है। प्रदर्शन और स्वयं को सर्वोपरि साबित करने का निर्लज्ज प्रयास सामाजिक संबंधों को कमजोर बना रहा है। इन सबके बीच कथानायक की अपनी परेशानी उघड़ी हुई बटनों को लेकर है, जिसको उसने सेफ्टी पिन से बंद कर रखा है। सबकी नजरों से बचाकर वह अपने उघेड़पन को सँभाले हैं। परंतु अंत तक जेब में से बचे हुए सेफ्टी पिनों में से एक जेब में सुराख कर बाहर निकल आती है। सेफ्टी पिन का बाहर निकल आना संकेतात्मक है, मानो समाज के सारे खोखलेपन को, ठहाकों और खुशियों की शुष्कता का संकेतात्मक वर्णन है। राकेशजी की कहानियों में ऐसे संकेतात्मक शिल्प की कहानियाँ बहुत अधिक नहीं हैं, परंतु जितनी भी हैं, वह अत्यंत सशक्त बन पड़ी हैं। 'ग्लास टैंक' का उदाहरण भी लिया जा सकता है, हालाँकि इस कहानी में संकेतात्मकता प्रारंभ में है और कहानी के अंत तक आते–आते ग्लास टैंक के जल में तैरती 'गोल्ड फिश' की तरह कथानायिका भी सुंदर ग्लास टैंक में कैद है। यह ग्लास टैंक अंदर और बाहर दोनों तरफ है, संभवतः इसीलिए ग्लास टैंक में तैरती मछलियों को देखना कथानायिका को अच्छा लगता है। इस से संबंधित कहानियों में 'जख्म' का भी उल्लेख किया जा सकता है। जहाँ प्रतीकात्मक प्रारंभ है, जो एक तरह से कहानी का अंत से प्रारंभ होना भी दर्शाता है। बाहर और अंदर से

जख्मी कथानायक सारे समाज से जूझने की हिम्मत रखता है। वह व्यक्ति लेखक को – कई बार, कई जगह, कई रूपों में मिला है। हर जगह एक अशान्त विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में। अपने परिवेश और परिस्थिति के प्रति अत्यंत असहनशीलता और विद्रोही बनकर भी वह जीने की अदम्य लालसा रखता है, जख्मी होकर भी बीस साल और जीना चाहता है। "उसकी जिन्दगी जितनी दुर्घटनापूर्ण होती गयी थी, उतना ही मेरा उससे लगाव बढ़ता गया।"[९४] यह व्यक्ति लेखक का ही एक हिस्सा है। 'जख्म' का कथानायक और सूत्रधार दोनों नामविहीन हैं, कहानी में किसी भी पात्र का नामकरण नहीं किया गया – कोई भी नाम देकर ऐसे पात्र को हम अपने आसपास पा सकते हैं। वर्तमान में वह जितना अधिक संघर्षशील होता गया और जीवन को जीने के लिए जूझता रहा उतना ही उसका जीवन दुर्धटनापूर्ण होता गया और वह लेखकीय मानसिकता के करीब आता गया। इस कहानी की एक अन्य विशेषता यह भी है कि – 'कफन' की तरह यहाँ भी निरपेक्ष वर्णन है। अस्थित होते हुए भी लेखक कहीं भी हावी नहीं है। चरित्र और कथानक अपनी दिशा में बढ़ते जाते हैं। हालाँकि पारम्परिक कथानक का यहाँ भी निरपेक्ष वर्णन है, जिसमें से सारा संदर्भ रूपायित है।

कुछ कहानियों के सूत्र चरम सीमा पर स्पष्ट होते हैं। प्रारंभ से कथानक अस्पष्ट और बिखराव भरा होता है किन्तु जैसे–जैसे कहानी आगे बढ़ती है, सारे सूत्र सिमटकर स्पष्ट हो जाते हैं और पूरी कहानी में अन्विति आ जाती है। इस संदर्भ में 'मन्दी', 'पाँचवे माले का फ्लैट', 'सौदा', 'सीमाएँ', 'खाली', 'जानवर और जानवर', 'हक हलाल' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। पहाड़ी जीवन में आई मंदी का वर्णन कहानी के प्रारंभ से ही है। प्रारंभ में ही चेयरींग क्रास पर अकेला घूमता कथानायक अनुभव करता है कि वह वहाँ अकेला ही है। "घाटी में एक जली हुई इमारत का जीना इस तरह शून्य की तरफ झाँक रहा है जैसे सारे विश्व को आत्महत्या की प्रेरणा और अपने ऊपर आकर कूद जाने का निमंत्रण दे रहा हो।"[९५] पूरी कहानी में जो मंदी व्याप्त है वह प्रारंभ से बिखरे रूप में आने लगता है, परंतु कहानी के अंत तक जाकर जब पूरे वर्णन पर ध्यान केन्द्रित होता है तो प्रतीत होता है कि प्रारंभ का सारा वर्णन अन्त की ओर उन्मुख था। एक पचास–पचपन वर्ष का व्यक्ति जो कथानायक को नत्थासिंह के होटल में भेजता है, ताकि उसे सस्ता और अच्छा खाना मिले। कथानायक नत्थासिंह के होटल का एक अकेला ग्राहक है। शाम को रेस्तराँ में कथानायक पूरे हाल में स्वयं को अकेला पाता है। यहाँ तक कि होटल का एकमात्र कर्मचारी किसी आखिरी ग्राहक को छोड़ने गया हुआ था। उसके लौटने पर कथानायक उसकी बातचीत और आगन्तुक

लड़की से वार्तालाप मंदी के वातावरण को ही मुखर करता है । कथोपकथन के द्वारा वातावरण के आंतरिक भाव को बड़े प्रभावी ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है । रात को नत्थासिंह कथानायक के इन्तजार में विशेष भोजन बनाता है – मंदी के दौर में ग्राहक बनाए रखने के प्रयास में । कहानी के अन्त में कहानी के प्रारंभ का वह वृद्ध नत्थासिंह के होटल में आकर कथानायक को उसके होटल में भेजने के बदले में एक प्याली चाय की माँग अधिकारपूर्वक करता है । मंदी के दौर में सब कोई कुछ–न–कुछ कमा लेने की होड़ में हैं, परंतु वातावरण सब पर हावी है । पूरे कथानक के बिखरे सूत्र चरम सीमा पर मिल जाते हैं । जो वृद्ध एक सामान्य चरित्र के रूप में कहानी के प्रारंभ में आकर चला जाता है, वह अन्त में अपना पूर्ण प्रभाव छोड़ जाता है । कथानक से कथा का मूल बिंदु से परिधि की ओर संरचण का यह एक सशक्त उदाहरण है । परिवेश इस कहानी में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है – चरित्र और कथा उसकी परिधि में विचरण करते हैं । शिल्पगत नवीनता का यह एक सफल उदाहरण है ।

'पाँचवें माले का फ्लैट' प्रतीकात्मक कहानी है । प्रमिला और अविनाश का संबंध प्रारंभ में तो सतही प्रतीत होता है किन्तु जैसे–जैसे कहानी चरम सीमा की ओर अग्रसर होती है – इस संबंध का आंतरिक पक्ष उभरकर सामने आता है । अंत में संबंधों के अंतराल का कारण भी सामने आता है– 'पाँचवें माले का फ्लैट' के प्रतीक के रूप में । कहानी की संरचनागत विशेषता यह है कि कथानक की सीमा काफी फैली होने के बावजूद लेखक ने पूर्व चिंतन शैली में उसके स्केच को खींचा है । कथानक की कमी होते हुए भी कथा यहाँ वर्तमान है, परंतु परिवेश की परिधि में । परिवेश यहाँ भी कहानी का मुख्य तत्त्व है, जिससे कथानक और चरित्र का निर्माण हुआ है । 'सौदा' कहानी में सौदेबाजी का चित्रण किया गया है । लाला वर्गगत चरित्र है । राकेशजी की कहानियों में ऐसे वर्गगत चरित्र बहुत कम हैं । 'सौदा' कहानी के अंत में जाकर ऐसा प्रतीत होता है कि कथा–सूत्र तो मिल गया है परंतु कहानी का अंत अधूरा छूट गया है । यह अधूरापन अपने आप में पूर्ण भी हैं । सौदा तय करने वाला लाला अपनी संकुचित दृष्टि के कारण अंत तक असफल रहा है – यह अधूरे समापन से स्पष्ट है । इस कहानी में अड़ियल लाला और घोड़ेवाले दोनों परिवेश से बनते–टूटते हैं । वृद्ध घोड़ेवाले का बिना बक्षिश चलने की मजबूरी परिस्थितिजन्य है और लाला का तीन रूपये के बजाय चार रूपये में सौदा तय करना भी परिस्थितिजन्य है । व्यंग्य तो यह है कि कहानी के अंत में अन्य घोड़ों की तलाश में लाला का बाजार में भटकना और वृद्ध बीमार घोड़ेवाले का उसके पीछे–पीछे चलना दोनों के अस्वाभाविक संतोष को दर्शाता है, जो परिस्थिति से

दबे होने के कारण उपजता है। समझौता से उत्पन्न यह आत्मसंतोष दोनों में देखा जा सकता है। 'सीमाएँ' कहानी का अंत अपना आभास देर तक छोड़ता है। उमा वयःसंधि से गुजरती हुई नवयुवती है, जो अपने असुंदर होने की हीन–भावना से भी ग्रस्त है। अपनी सहेली सरला की शादी में सज–धजकर जाती है और लौटते वक्त मंदिर में देव–दर्शन के लिए जाती है। भीड़ में नवयुवक की दृष्टि से उसमें सिहरण होता है, उसका स्पर्श उसे गुदगुदा देता है – परंतु बाहर निकलते ही स्पर्श का आभास तो रहता है, पर गले में पड़ी सोने की जंजीर नहीं रहती। कहानी का एकदम चरम सीमा पर आकर अंत हो जाता है। इस तरह के शिल्प को अपनाकर यशपालजी की भी एक कहानी 'फूलों का कुर्ता' देखी जा सकती है, परंतु इस कहानी में अंत 'एण्टीक्लाइमेक्स' जैसा है। उमा की जंजीर नहीं, बल्कि उसके सारे सपने और भावनाओं पर डाका पड़ता है। असुंदर होने की हीन–भावना सुदृढ़ हो जाती है कि उसके रूप पर कोई भी आकर्षित नहीं होगा। कथानक का चरम सीमा पर 'एण्टीक्लाइमेक्स' होना भी कहीं–न–कहीं 'एण्टीक्लाइमेक्स' न होकर सामान्य है। कथानक के अंत के बाद संभवतः और कुछ शेष नहीं रह जाता है। परिपूर्ण परिसमाप्ति एक झटके के साथ इस कथानक में है, कथानक की परिसमाप्ति का यह शिल्प राकेशजी की कहानियों में बहुत अधिक नहीं है।

'खाली' कहानी में जुगल और तोषी के दाम्पत्य जीवन का खालीपन व्याप्त है – परिवेश कहानी में सर्वत्र प्रभावी है। इस खालीपन के बीच तोषी की घुटन, बिखरे को समेटने का प्रयास, बिना इरादे के भटकना, जुगल का उसके शरीर से ही उलझे रहना, पति–पत्नी होकर भी एक–दूसरे से कटे रहना, बाहर की दुनिया से केवल दो–एक लोगों के जरिए जुड़े रहना आदि कहानी में एक के बाद एक सामने प्रकट होता है। कथानक का अंत एक तरह से पुनरारम्भ है। यह 'खाली' अज्ञेयजी की पसिद्ध कहानी 'रोज' के अत्यंत निकट की है। कथानक का निर्माण परिवेश से होता है। मूल कथ्य परिवेश ही है – जिससे शून्यता उभरती है। कथानक की संरचना में यह नयी कहानी के शिल्प की विशेषता है। 'जानवर और जानवर' में केवल दो विरोधी पात्र और विचार को सामने रखकर टिप्पणी नहीं की गयी है बल्कि सामान्यजीवी लोगों के जीवन की उस दुर्घटना को दर्शाता है, जो सतही तौर पर दुर्घटना नहीं लगती है। यहाँ कथानक के केन्द्र में जीवन का आक्रान्त होने की कथा ही कथानक के मूल में है। 'हक हलाल' का कथानक एक तरफ कथानक के पूर्ववर्ती ढ़ाचें को अपनाकर घटनाओं के घात–प्रतिघात से आगे बढ़ता है, दूसरी ओर अंत में आकर पूरी कहानी में परिस्थितियाँ और उससे उत्पन्न

विसंगतियाँ हावी होती हैं । कहानी वहाँ समाप्त होती है, जहाँ से इस कहानी को फिर से दोहराया जा सकता है । पण्डित की पत्नी परिस्थितियों से भागती है, परंतु परिस्थितियाँ अपने साथ और विकटता लेकर सामने आती हैं । पण्डित के घर से भागकर वह पुनःमजबूरन लौटती है तो अपनी बहन को सौत के रूप में पाती है । धन और परिस्थितियाँ यह नियंत्रणकर्ता है । "उसकी आँखें पहले से लाल रहती और वह चलते–चलते अकारण पत्थरों को ठोकर मारने लगती है ।"[९६] यह उसके आक्रोश और परिस्थितियों से जूझने का असफलता का प्रतीक है । दूसरी तरफ पण्डित ने पैसे से पत्नी और उसकी बहन को खरीदा है, इसके लिए बड़े धार्मिक भाव से वह दोनों को वस्तु समझता है । पत्नी के लौट आने को वह हलाल के पैसे का हक समझता है । पूरी कहानी में वातावरण प्रमुख है, किन्तु उसके प्रति एक तीखा व्यंग्य भी अतःसलिल की तरह प्रवाहित है । राकेशजी ने पूरी ईमानदारी से कथानक को प्रस्तुत किया है, निरपेक्षता के प्रति पूरी सतर्कता है । यह इसके कथानक के शिल्प की विशेषता है कि पाठक अपने–आप कहानी के अंत तक पण्डित की मासूमियत के बावजूद उससे घृणा करता है । कथानक के निर्माण में लेखकीय निरपेक्षता इसकी संरचना की सफलता है ।

राकेशजी की कहानियाँ कहानी साहित्य में एक नये मोड़ का प्रतिनिधित्व करती है । इनमें जीवन के माध्यम से कहानी और कहानी के माध्यम से जीवन की खोज की गई है । उनकी अधिकांश कहानियाँ आजादी के बाद के वर्षों में लिखी गई है । राकेशजी की प्रत्येक कहानी में मानव मन की भीतरी तह को छूने का सफल प्रयास किया है । राकेशजी की कहानियों में जीवन–बोध है । जीवन की उन्हीं बातों को उन्होंने प्राधान्य दिया है, जो हमारे आस–पास घुमती है । इसी कारण वे कहानीकार के रूप में सफल हुए है । उनकी प्रारंभिक कहानियों में उनके तत्कालीन परिवेश और प्रतिक्रियावादी मानस की अनुभूतियों का प्रतिफलन है और निरंतर विकसित और परिवर्धित होते आ रहे भारतीय जीवन की झलक है ।

संदर्भ सूची

१	सारिका– मार्च – १९७३ में प्रकाशित लेख	डॉ. धनंजय वर्मा	८२
२	मेरी प्रिय कहानियाँ , भूमिका	मोहन राकेश	११
३	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	२०४–२०५
४	एक समर्पित कथा यात्रा लेख – सारिका	डॉ. धनंजय वर्मा	८३
५	मेरी प्रिय कहानियां भूमिका	मोहन राकेश	
६	वारिस जीनियस	मोहन राकेश	२२२
७	क्वार्टर ग्लास टैंक	मोहन राकेश	९८
८	द्वितीय युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	१८०
९	वारिस – जख्म	मोहन राकेश	२३३
१०	वारिस जानवर और जानवर	मोहन राकेश	१६३
११	मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ	मोहन राकेश	३००
१२	नई पहचान आखिरी सामान	मोहन राकेश	७१
१३	क्वार्टर मिस पाल	मोहन राकेश	१६
१४	क्वार्टर मिस पाल	मोहन राकेश	२०
१५	क्वार्टर मिस पाल	मोहन राकेश	१६
१६	वारिस नये बादल	मोहन राकेश	५७
१७	वारिस परमात्मा का कुत्ता	मोहन राकेश	८९
१८	वारिस हक हलाल	मोहन राकेश	१५३
१९	पहचान वासना की छाया में	मोहन राकेश	१४६
२०	वारिस – जख्म	मोहन राकेश	२३३
२१	पहचान – वासना की छाया में	मोहन राकेश	१४६
२२	पहचान – उर्मिल जीवन	मोहन राकेश	८२
२३	वारिस – जानवर और जानवर	मोहन राकेश	१५६
२४	मोहन राकेश के कथा–साहित्य में मानवीय संबंध	चमनलाल गुप्ता	२४
२५	क्वार्टर फौलाद का आकाश	मोहन राकेश	१८६
२६	वारिस एक और जिन्दगी	मोहन राकेश	१६
२७	मोहन राकेश के कथा–साहित्य में मानवीय संबंध	चमनलाल गुप्ता	३०
२८	नयी कहानी : प्रकृति और पाठ	श्री सुरेन्द्र	५३

२९	वारिस – जख्म	मोहन राकेश	२२६
३०	क्वार्टर – अपरिचित	मोहन राकेश	१४०
३१	क्वार्टर – मिस पाल	मोहन राकेश	१५
३२	पहचान एक ठहरा हुआ चाकू	मोहन राकेश	११
३३	वारिस – कंबल	मोहन राकेश	१०१
३४	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर	२०४
३५	परिवेश	मोहन राकेश	१९३
३६	पहचान – सुहागिने	मोहन राकेश	३८
३७	क्वार्टर – धुँधला दीप	मोहन राकेश	११८
३८	क्वार्टर – अपरिचित	मोहन राकेश	१४७
३९	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल	१२४
४०	पहचान	मोहन राकेश	१४०
४१	'नटरंग–२१' 'शब्द और ध्वनि',	मोहन राकेश	१०
४२	साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि	मोहन राकेश	१५९
४३	क्वार्टर	मोहन राकेश	१८९
४४	क्वार्टर	मोहन राकेश	४७
४५	क्वार्टर	मोहन राकेश	६३
४६	वारिस	मोहन राकेश	१००
४७	परिवेश	मोहन राकेश	१९३
४८	क्वार्टर	मोहन राकेश	१८९
४९	पहचान	मोहन राकेश	२०७
५०	पहचान	मोहन राकेश	१५७
५१	पहचान	मोहन राकेश	११८
५२	क्वार्टर – फौलाद का आकाश	मोहन राकेश	१८४
५३	वारिस – एक आलोचना	मोहन राकेश	९४
५४	वारिस – फटा हुआ जूता	मोहन राकेश	१३२
५५	वारिस – सोया हुआ शहर	मोहन राकेश	६८
५६	पहचान – पाँचवे माले का फ्लैट	मोहन राकेश	२१५
५७	वारिस	मोहन राकेश	६५
५८	वारिस	मोहन राकेश	९९
५९	क्वार्टर	मोहन राकेश	१८२
६०	क्वार्टर	मोहन राकेश	२५

६१	क्वार्टर	मोहन राकेश	५८
६२	क्वार्टर	मोहन राकेश	१५९
६३	पहचान	मोहन राकेश	१८१
६४	क्वार्टर	मोहन राकेश	१४०
६५	वारिस जानवर और जानवर	मोहन राकेश	१७१
६६	पहचान बस स्टैण्ड की एक रात	मोहन राकेश	१८०
६७	पहचान उसकी रोटी	मोहन राकेश	१६५
६८	वारिस रोजगार	मोहन राकेश	४६
६९	वारिस कम्बल	मोहन राकेश	१०२
७०	वारिस मिस्टर भाटिया	मोहन राकेश	१२०–१२१
७१	वारिस उलझते धागे	मोहन राकेश	२१५
७२	क्वार्टर ग्लास टैंक	मोहन राकेश	९४
७३	वारिस एक और जिन्दगी	मोहन राकेश	१७
७४	पहचान बस स्टैण्ड की एक रात	मोहन राकेश	१७७
७५	वारिस कम्बल	मोहन राकेश	१०२
७६	क्वार्टर अपरिचित	मोहन राकेश	१४३
७७	वारिस मन्दी	मोहन राकेश	८३
७८	वारिस परमात्मा का कुत्ता	मोहन राकेश	८९
७९	क्वार्टर धुंधला दीप	मोहन राकेश	१२७
८०	पहचान सेफ्टी पिन	मोहन राकेश	११६
८१	क्वार्टर भूखे	मोहन राकेश	१६९
८२	क्वार्टर क्लेम	मोहन राकेश	१७६
८३	वारिस एक और जिन्दगी	मोहन राकेश	१४
८४	क्वार्टर मरूस्थल	मोहन राकेश	१५८
८५	क्वार्टर मिस पाल	मोहन राकेश	३९
८६	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ	मोहन राकेश	३८२
८७	मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ	मोहन राकेश	३८२
८८	‘हिन्दी साहित्य पचास वर्ष’, लेख : हिन्दी कहानी में व्यक्ति, परिवार और समाज	डॉ. निरूपमा सेवती	६७
८९	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल	१३२–१३३
९०	पहचान मलबे का मालिक	मोहन राकेश	१५५
९१	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल	१०३

९२	साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	११४
९३	वारिस फटा हुआ जूता	मोहन राकेश	१३२
९४	वारिस जख्म	मोहन राकेश	२२२
९५	वारिस मन्दी	मोहन राकेश	७५
९६	वारिस हक हलाल	मोहन राकेश	१५४

अध्याय :– ४

मोहन राकेश का उपन्यास साहित्य

४.१	मोहन राकेश का उपन्यास – साहित्य	१५२
४–अ	उपन्यासों का शिल्प विधान	१५५
४–ब	उपन्यासों में संवेदना	१६८
	संदर्भ सूची	१७६

४.१ मोहन राकेश का उपन्यास – साहित्य

उपन्यास आज के साहित्य की सब से अधिक प्रिय और सशक्त विधा है। इसका प्रमुख कारण इसका मनोरंजन का तत्त्व तथा जीवन को उसकी बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की शक्ति और अवकाश होता है। यद्यपि साहित्य की समस्त विधाओं में उपरोक्त दोनों गुण होते हैं किन्तु ये अपने–अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण इन दोनों तत्त्वों का प्रस्फुटन उपन्यास जितना नहीं कर पाती। उपन्यास यथार्थ की प्रतिच्छाया है जिसमें मानव जीवन का चित्रण होता है। उपन्यास का विषय मनुष्य के सामाजिक जीवन से संबंधित होता है जो अनेक द्वन्द्वों, विषमताओं एवम् संघर्षो से घिरा शोषण का शिकार बना रहता है। उपन्यास इस प्रकार बाह्य यथार्थ को आधार मानकर चलता है और पूर्ण ईमानदारी से उसका चित्रण करता है। उपन्यास को आज के साहित्य का नेपोलियन कहा गया है। इसका क्षेत्र व्यापक है। अनेक लेखक हैं व असंख्य पाठकगण। वस्तुतः पाठक ही उसकी प्रसिद्धि के मूल कारण हैं। नवीन विलोचन शर्मा का मत है, कि "साहित्य का यह रूप निम्न श्रेणी का होने पर भी कितना महत्त्वकांक्षी था, यह इसीसे पता चलता है कि जब वह मनोरंजन का साधन बनकर लोकप्रिय हो रहा था, तभी वह सामाजिक जीवन के सत्य का वाहक बन सकने के लिए भी प्रयास कर रहा था, यद्यपि उसे पूर्णतः कृतकार्य होने के लिए तब तक प्रतीक्षा करने पड़ी जब तक प्रेमचंद ने उसका अछूतोद्धार नहीं कर दिया।"[१] यद्यपि अन्य साहित्यांगों की अपेक्षा उपन्यास में जीवन का चित्रण अधिक वास्तविक बन पड़ता है किन्तु उपन्यास हूबहू अस्त–व्यस्त, उच्छृंखल जीवन के प्रति नहीं वरन् उपन्यासकार उस जीवन को व्यवस्थित तथा श्रृंखाबद्ध करके प्रस्तुत करता है। वह अपनी कल्पनाओं के आधार पर जीवन की पुनर्सृष्टि करता है।

आज के जीवन की समस्त जटिलता, यथार्थ के विविध सूक्ष्म आयाम, दैनिक जीवन के साधारण दीखने वाले परंतु महत्त्वपूर्ण कार्य–व्यापार, नए परिवेश, संवादों की अनन्त भंगिमाएँ उपन्यास में जीवंत रूप से व्यक्त हो सकती हैं। उपन्यास जीवन के हर गली कूचे में घूम सकता है। आवश्यकतानुसार छोटी या बड़ी किसी भी चीज का चित्रण कर सकता है। कहना चाहिए कि यथार्थ का विश्वास दिलाते हुए आगे बढ़ना इसका मूल उद्देश्य है। उपन्यास यथार्थ पर आधारित रहता है वह यथार्थ के सहारे यथार्थ को चित्रित करता है। इसमें कथा के साथ–साथ काव्य के समान भावुकता और संवेदना पाठकों को तल्लीनता

प्रदान करती है। प्राकृतिक दृश्य सौन्दर्य के प्रति आकर्षित करते हैं। इसमें निबंध जैसी चिन्तन मूलकता, नाटक के समान संवाद योजना, रंगमंच के विधान की तरह परिवेश विधान अर्थात् देशकाल होता है। इसीलिए आलोचकों द्वारा इसे 'जेबी थियेटर' कहना उचित प्रतीत होता है। उपन्यास को सीमा में नहीं बांधा जा सकता। यह संगठित रूप से जीवन की प्रचुर व्यापकता समेट सकता है। कहने का तात्पर्य है कि उपन्यासकार जीवन के यथार्थ के गहन अनुभव से, सर्जनात्मक कल्पना की अदभूत शक्ति द्वारा, विचारों की गहनता व जीवन के विवेचन से एक वास्तविक एवम् उद्‌देश्यपूर्ण उपन्यास की रचना कर सकता है।

प्रेमचंदोत्तर एवम् साठोत्तरी कथाकारों में राकेशजी सशक्त कथाकारों की पंक्ति में अपना स्थान रखते हैं जिन्होंने कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं पर जीवन के नए धरातल प्रस्तुत किए है। जिसमें सजग, सामाजिक चेतना, प्रगतिशील दृष्टिकोण, मानव संबंधों की पुनर्व्याख्या, नए पुराने मूल्यों के प्रति टकराव और उससे उत्पन्न आत्मपीड़ा, अलगाव, अजनबीपन आदि को बड़ी ही संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है। आधुनिक युग जीवन की विषमताओं में जिस तरीके से डूबा हुआ है उसमें से मनुष्य के स्वरूपों को प्रस्थापित करने का काम मध्यवर्गीय समाज का व्यथित स्वरूप पति–पत्नी के अंतरंग संबंध तथा उनकी अभिशप्त और तनावपूर्ण स्थितियों का भौतिक यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके राकेशजी ने कथा–साहित्य को एक नया आधुनिक बोध प्रदान किया है तथा वर्तमान पीढ़ी को अपने अस्तित्वों की पहचान करने के लिए बाध्य किया है। राकेशजी ने कुल छ उपन्यासों की रचना की है ; 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल', 'अंतराल', 'स्याह और सफेद', 'कांपता हुआ दरिया' तथा 'कई एक अकेले' है। इनमें से 'अंधेरे बंद कमरे' एक माइलस्टोन उपन्यास के रूप में अपनी प्रतिष्ठापना कर चूका है। 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास राकेशजी का चर्चित उपन्यास भी रहा है तथा साहित्य अकादमी पुरस्कार से अलंकृत भी हो चुका है। राकेशजी के ये छहों उपन्यास बड़े ही सशक्त दिखाई देते हैं, क्योंकि इनके शीर्षक अपने आप में एक विस्तरण और गहराई को लिए हुए हैं।

उपन्यासों के कथानक के माध्यम से राकेशजी ने समकालीन जीवन बोध के स्वरूपों को निजी स्तर पर एक चिंतक, द्रष्टा, और ईमानदार साहित्यकार के रूप में उभारा है। मानव जीवन के संबंधों की अत्यंत ही संवेदनशील कहानी उनके कथा साहित्य का साहित्य–

जगत को एक अनमोल योगदान है। इनके प्रथम तीनों उपन्यासों में मानव–मानव के प्रति उत्पन्न द्वन्द्वों और अंतर्द्वन्द्वों को ध्वनि प्रदान की है। दाम्पत्य जीवन मनुष्य की एक अहं और अत्यंत प्राकृतिक अवस्था है साथ ही अस्तित्ववाद भी उसके जीवन में उतना ही प्रमुख बनता जा रहा है। इन दोनों मनःस्थितियों का एक जीता जागता चित्र राकेशजी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। जीवन की इन समस्याओं के द्वारा राकेशजी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में खटखटाएँ हैं।

हिन्दी कथा–साहित्य के साठोत्तर वर्षों में जिन उपन्यासकारों ने जीवन के यथार्थ स्वरूप को परिभाषित किया, मानव संबंधों की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की और नये–पुराने मूल्यों के टकराहट से उत्पन्न पीडा से युक्त आधुनिक बोध को प्रस्तुत किया उनमें राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, उषा प्रियंवदा और मोहन राकेश के नाम विशेष उल्लेखनीय है। राकेशजी का औपन्यासिक मानस एक ऐसा दर्पण है, जिसमें स्वातंत्र्योत्तर समाज की विभिन्न छवियों के रंग दिखायी देते हैं। मध्यमवर्गीय समाज की जो तस्वीर राकेशजी के उपन्यासों में है, उसकी रूपरेखा की एक पहचान उनकी कहानियों के माध्यम से भी की जा सकती है। उसमें एक ओर आजादी, देश के विभाजन और स्वतंत्र भारत की कतिपय समस्याओं का चित्रांकन है तो दूसरी ओर उनकी थोडी बहुत कहानियों में राजनैतिक और नैतिक संदर्भ भी मिले हुए हैं। उपन्यासों की स्थिति कहानियों से एकदम भिन्न तो नहीं कहीं जा सकती, किन्तु संवेदना और धारणा के धरातल पर वे काफी सशक्त और आधुनिक है। उनके तीनों उपन्यासों मे मानव –जीवन के जीवंत पहलू, स्त्री–पुरुषों के संबंधों और उससे उत्पन्न द्वन्द्व–प्रतिद्वन्द्व और आंतरिक द्वन्द्व को उभारा गया है। 'अंधेरे बंद कमरे', में हरबंस और नीलिमा के माध्यम से दाम्पत्य जीवन के 'उबाऊ संदर्भो और तनावजनित अंतर्द्वन्द्वों को व्याख्यायित किया गया है। 'न आने वाला कल' अस्तित्ववादी चेतना से युक्त उपन्यास है और 'अंतराल' किस अर्थ में अंतराल है यदि इस समस्या को एक किनारे रख दिया जाये तो आत्म–निर्वासन से गुजरता हुआ अंतर्द्वन्द्व के बिंदु की ओर ही बढता है। डॉ. सुषमा अग्रवाल के मतानुसार " राकेश का उपन्यास साहित्य समकालीन जीवन बोध के परिद्रश्यों को उभारता हुआ अंततः मानव के राग संबंधों की कहानीनुमा तस्वीर बनकर रह गया है" राकेशजी के उपन्यास –

'अंधेरे बंद कमरे' (१९६१ ई.), 'न आने वाला कल' (१९६८ ई.) और 'अंतराल' (१९७२ ई.) का विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत है ।

४ –अ उपन्यासों का शिल्प – विधान

राकेशजी हिन्दी के एक मौलिक उपन्यासकार हैं । उनके उपन्यासों की संख्या कम होते हुए भी उन्होंने हिन्दी साहित्य में उपन्यासकार के रूप में एक विशिष्ट स्थान बना लिया है । यह उनकी औपन्यासिक सर्जना की मौलिकता का द्योतक हैं । उनके तीनों प्रकाशित उपन्यास शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास में आधुनिक संवेदना दाम्पत्य जीवन की अभिशप्त और तनावपूर्ण स्थितियों को उठाया गया है । इसमें राकेशजी ने हरबंस और नीलिमा की जटिल व तनावपूर्ण मनःस्थिति के साथ एक आधुनिक स्थिति को व्यक्त किया है । इस तरह संबंधों के मूल्यगत विघटन का बोध कराया गया है । साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत यह उपन्यास दिल्ली की चमक–दमक तथा वहाँ के जीवन की अंतहीन आकांक्षाओं–जटिलताओं और तनावपूर्ण स्थिति के विश्लेषण को समेटे हुए हैं । संस्कृति का ह्रास होता हुआ तथा एक नई संस्कृति की ओर संकेत किया है । एक शिक्षित पति अपनी शिक्षिता और आधुनिक पत्नी के साथ तालमेल नहीं बैठा पाता और न ही उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्वीकार कर पाता है । विवाह से पहले युगल प्रेमी एक दूसरें के प्रति आकृष्ट रहते हैं; किन्तु विवाह के कुछ समय बाद ही उनका वह प्रेम स्रोत सूख जाता है और वे दाम्पत्य जीवन के स्नेह विहीन बंधन में दम तोड़ने को विवश हो जाते हैं । वे पति–पत्नी न रहकर एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं केवल कर्तव्य–बोध या प्रबल ईर्ष्या के कारण मात्र साथ रहते हैं । इस उपन्यास के पात्र मधुसूदन शुक्ला, मधुसूदन – सुषमा, हरबंस शुक्ला, उना–नीलिमा आदि के अल्प स्नेह आज की जिंदगी की ऊब, कुण्ठा, विवशता के परिचायक हैं । यह उपन्यास स्वीकार और अस्वीकार के मध्य झेलते पति–पत्नी के अभिशप्त जीवन के अनेक रूपों का विस्तृत रूप लिए हुए हैं । नए उपन्यासकार ने पाठकों से सीधा संबंध न रखकर कथक अथवा वर्णन कर्ता की सृष्टि की है । कलाकार अपनी कृति से अलग, अद्रश्य तथा अव्यक्त रहता है । कथक का प्रयोग परंपरागत है केवल इसका प्रयोग नए संदर्भ में हुआ है । राकेशजी के 'अंधेरे बंद कमरे' का कथक भी एक पत्रकार है जो कभी कॉफी हाउस में, कभी हरबंस के घर अन्य पात्रों से मिलता है । इस प्रकार परिस्थिति विशेष में फँसे पात्रों की मानसिक दशा के वर्णन के सहारे वह उपन्यास की

कथावस्तु को निश्चित अंत की ओर अग्रसर करता है । 'अंधेरे बंद कमरे' का नेरेटर (कथक) मधुसूदन एक पत्रकार है जो दिल्ली के सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन की सूचनाओं की भरमार रखता है । उसका व्यक्तित्व सबसे समर्थ संयत तथा सहानुभूतिपूर्ण है । वह आदर्शवादी व व्यवस्था प्रिय है । एक नेरेटर के सभी गुण उसमें हैं । प्रतीत होता है कि उपन्यास में मूर्तित परिवेश का संपूर्ण ज्ञान मधुसूदन को है ।

उपन्यास की प्रमुख कथा के साथ–साथ मधुसूदन, सुषमा, श्रीवास्तव, ठकुराईन, शुक्ला, सुरजीत, इबादत अली आदि की अन्य प्रासंगिक कथाएँ चलती है । इन कथाओं का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है । मूलकथा के साथ उनका समायोजन नहीं बैठता । इन कथा प्रसंगों से उपन्यास को रोमानी वातावरण अवश्य मिला है तथा मध्यवर्गीय पात्रों की सार्थक व असार्थक स्थितियों का ब्यौरा मिलता है । 'अंधेरे बंद कमरे' की कथा का केन्द्र बिंदु हरबंस और नीलिमा की जिंदगी का बंद कमरा है । यद्यपि कहीं कहीं पर बहुत से सम्बद्ध–असम्बद्ध संदर्भो व घटना प्रसंगों के लम्बे–लम्बे वर्णन एवम् विवरणों से मूलकथा का सूत्र टूटने लगता है किन्तु इन वर्णनों की औपन्यासिकता, रोचकता और आकर्षण पुनः पाठक को आकर्षित कर लेती है । ठकुराईन के यहाँ का परिवेश, अरविंद और मधुसूदन के संबंध से रहस्यपूर्ण होता है । इबादत अली और उसकी पुत्री खुरशीद के संदर्भ कथा में रोचकता लाते हैं । उपन्यास में कौतूहल अनेक स्थानों पर रहता है किन्तु उसका पूर्णतः निर्वाह नहीं हुआ है । हरबंस और नीलिमा के मध्य बढ़ती दूरी कौतूहल उत्पन्न करती है किन्तु कोई विशेष आधार नहीं मिलता । खीझ, ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा के नित नए आयाम दंपति के मध्य हैं इससे कौतूहलता को पूर्णता नहीं मिलती । चरम सीमा पर पहुंचने में पाठक खाली हाथ लौट आता है किन्तु यह सब होते हुए भी राकेशजी पाठक को आशा में बांधे रखते हैं, उसकी वृत्ति को जिज्ञासु व कौतूहली बनाए रखते हैं । एक उपन्यासकार के लिए यह बहुत बड़ी बात है कि वह कौतूहल पूर्णता के अभाव में भी पाठक के मन में उठी जिज्ञासा को अंत तक बनाए रखे । इस उपन्यास में संभाव्यता सर्वत्र विद्यमान है । मध्यवर्गीय दाम्पत्य जीवन की जड़ता, अलगाव, अंतर्द्वन्द्व, ईर्ष्या, अपनी मनोकामनापूर्ति हेतु किसी भी स्तर पर पहुंच जाना, सामाजिक जीवन में घुलने मिलने की नारी प्रवृत्ति आदि सम्भाव्यता के संदर्भ हैं । महत्वाकांक्षा की इच्छुक नीलिमा का उमादत्त ग्रुप के साथ चले जाना, ऊबानू से उसका संबंध बढ़ाना, उसकी मनः स्थिति के अनुरूप हैं । 'अंधेरे बंद

कमरे' गत्वरता व नाटकीयता के गुण से पूर्ण तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह उपन्यास अंधेरी गलियों व कमरों की संस्कृति को विश्लेषित करनेवाला उपन्यास है। अतैव कथा एक सीमा तक ही गतिशील हो सकती है। इसका कथानक सीमित घटनाओं के आधिक्य के कारण गति–हीनता का शिकार हो गया है किन्तु उसमें रोचकता, संभाव्यता एवम् आत्मीयता भरपूर मात्रा में है।

'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास चरित्रांकन की दृष्टि से जीवंत है। इसके सभी पात्र अपना रास्ता स्वयं बनाते हैं। उनमें अपने ढंग से जीने की कामना है। अपने में पूर्ण स्वतंत्रता, ईमानदारी व जिम्मेदारी आदि आधुनिक बोध की मांग इन पात्रों में हैं। यद्यपि पात्रों के व्यक्तित्व के विकास हेतु उपन्यास में अवसर कम हैं। सभी पात्र अपनी भावनाओं के सहारे बढते चले जाते हैं व बंद कमरों में कैद हो जाते हैं। ईर्ष्या, खीझ तथा हीन भावना का शिकार हरबंस अपनी कमजोरी छुपाता लंदन भाग जाता है। इसका चरित्र अनेक दुविधाओं में बंटा है। आधुनिकता का दम भरनेवाला प्रोफेसर हरबंस प्राचीन परंपराओं को नहीं त्याग पाता। एक ओर वह अपनी पत्नी के बढ़ते कदमों पर रोक लगाकर प्राचीन रूढ़ियों व संस्कृति का हिमायती बन बैठता है। इस तरह मनःताप के साथ असंतुलन पैदा होता है। आधुनिकता का हामी हरबंस ऊपरी तौर पर आधुनिकता स्वीकार करता है मन से नहीं। इसी प्रकार हरबंस की पत्नी व उपन्यास की नायिका नीलिमा अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु कला संसार में खो जाना चाहती है। उसके आधुनिक नारी के व्यक्तित्व में कहीं कोई दुराव–छिपाव नहीं है। लड़कों की तरह हंसना, उन्मुक्त चाल–ढाल, सिगरेट, शराब का सेवन सब मर्दानगी की बातें हैं। एक ओर वह फेशनेबल नारी है तो दूसरे रूप में पति निर्भर भी। वह हरबंस के साथ रहना भी चाहती है और नहीं भी। नीलिमा के माध्यम से लेखक ने आधुनिक नारी की विडम्बना व उसके अंतर्विरोधी व्यक्तित्व को उजागर किया है। एक ओर वह स्वातंत्र्य का वरण करने को उत्सुक है वहीं दूसरी ओर उसके संस्कार उसके मार्ग में बाधक है। इसी प्रकार सुषमा श्रीवास्तव आधुनिक नारियों की प्रतिनिधि हैं जो पुरूषों के समकक्ष अपना जीवन यापन करना चाहती है किन्तु बाद में प्रेम के प्रपंची रूप से पराजित होकर परंपरागत पारिवारिक जीवन की ओर लौटने की इच्छुक है। वह प्रौढावस्था में भी घर बसाकर रहने को उत्सुक है उसका पारखी कोई नहीं, वह सब की परख करती फिरती है। मधुसूदन को माध्यम बनाकर अपनी अतृप्त इच्छाओं

की पूर्ति करना चाहती है। उपन्यास का नेरेटर मधुसूदन का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। वह कस्साबपुरे में ठकुराइन की कैद में रहता हुआ भी कनाट–प्लेस की चमक–दमक तथा महानगर की अभिजात्य संस्कृति में खो जाना चाहता है। उसका यायावर स्वभाव अनेक बंद कमरों की रिपोर्टिंग लेता हुआ एक दर्शक रूप में अपने मन को राहत पहुँचाता है। अन्य पात्र शुक्ला, सुरजीत आदि अपनी–अपनी वृत्तियों के भोक्ता है। इस उपन्यास के सभी पात्र निम्न मध्यवर्गीय, मध्यवर्गीय और अभिजात्यवर्गीय इन तीनों प्रकारों के हैं। सभी अपनी–अपनी जगह ठीक हैं किन्तु कहीं कहीं पर मनोवैज्ञानिक रूप से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं वे अपने जीवन में काफी गलतियाँ करते रहते हैं। हरबंस का लंदन जाते समय अपनी पत्नी को नीलिमा के स्थान पर 'सवि' लिखना, नीलिमा द्वारा अपने पति का जन्मदिन भूल जाना, हरबंस का नीलिमा के जन्मदिन पर पत्र न भेजना आदि बातें ऐसा स्पष्ट करती हैं, कि कष्टकर स्थिति से बचने के लिए ही ये मानसिक गलतियाँ होती हैं। हरबंस और मधुसूदन दोनों के भीतर एक अभाव, एक शून्यता है। यह अभाव प्रेम भर सकता है किन्तु प्रेम करने में दोनों असमर्थ है। इस उपन्यास के सभी पात्र महानगर के परिवेश की उत्पति हैं जहाँ अलगाव और अजनबीपन की तीव्रतम समस्या है। 'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र वर्तमान को छोड़कर अतीत या भविष्य में जीते हैं। प्रेम भावना भी उनके लिए अतीत की चीज है या भविष्य का स्वप्न है। हर पात्र प्रेम की निष्फल लड़ाई लड़ता प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि प्रेम के इन घुटन भरे अंधेरे बंद कमरों से निकलने का कोई मार्ग इस वर्तमान परिवेश व व्यवस्था में नहीं है।

राकेशजी एक सफल उपन्यासकारों की श्रेणी में आते हैं इसमें मुख्य हाथ उनके रचना शिल्प व संवाद का है। राकेशजी प्रमुखतः नाटककार हैं, संवाद लिखने में माहिर हैं। कहानी हो या उपन्यास उनकी संवाद कला गतिशील, सहज, चरित्रोद्घाटक व प्रवाही है। यही संवाद शिल्प उनके अनेक कमजोर तत्त्वों को ढ़क लेता है। 'अंधेरे बंद कमरे' अस्तित्ववादी भूमिका पर लिखा गया व्यक्तिवादी उपन्यास है। इसमें सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा वैयक्तिकी पर बल दिया गया है। नए उपन्यासकारों की मुख्य चिंता आधुनिक जीवन के जटिल ताने–बाने में व्यक्तित्व की सही खोज करना है। यही कारण रहा कि संवाद मनोविश्लेषणात्मक और आत्मविश्लेषण को प्रस्तुत करने लगे हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' में पात्रों की भाषा व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। इसके संवाद कथा सम्बद्ध और गत्वरता से

युक्त है। राकेशजी की कलम से वही शब्द निकले है जिनमें स्पन्दन है, भावों की गहनता है। ऐसा लगता है मानों उपन्यासकार का मानस अर्थपूर्ण शब्दों का खजाना है जो कहीं से भी शब्दों का चयन कर लेता है। इस उपन्यास की भाषा काव्यात्मक, भावात्मक, संगीतात्मक, संवेदनशील है तथा यथार्थ की वाहिका, जटिल मनःस्थितियों की सहज विश्लेषिका के रूप में भी विद्यमान है। भाषा का ही महत्त्व है कि उपन्यास में मनोदशा का चित्रण नए प्रतीकों व प्रतिमाओं द्वारा किया गया है। लंदन में बैठे वियोगी हरबंस के दुःख भाव का चित्रण राकेशजी की भाषा सामर्थ्य व कल्पनाशीलता को दर्शाता है। "पात्रों की मानसिक स्थितियों को व्यक्त करने में राकेश ने भाषा की लय को नए मोड़ दिए हैं, शहरी जीवन की घुटन को अभिव्यक्ति देने में शब्द जाल की खूब कांट–छांट की है। इसमें मानव संबंधों की परतों को उघाडने में लेखक ने आधुनिकता की चुनौती का सामना भी किया है। और अपनी दृष्टि से मानवीयता को निरूपित भी किया है।"[२]

'अंधेरे बंद कमरे' में पात्र–योजना की दृष्टि से राकेशजी ने अपने समग्र कृतित्व को हरबंस और नीलिमा पर केन्द्रित रखा हैं। उन दोनों के संबंध को उजागर करने के लिए राकेशजी ने दोनों चरित्रों मे भिन्नता का समावेश किया है। यही कारण हैं कि नीलिमा का अन्य सब कलात्मक विधाएँ छोड़कर नृत्य की ओर रुझान, हरबंस द्वारा नीलिमा को नृत्य सीखने और कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करना तथा नृत्य को अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का प्रयास किसी भी संवेदनशील नारी के लिए अनिवार्य संघर्ष का स्रोत है। दोनों ही के जीवन में आत्मीयता के अभाव में लकवा मार गया है। यद्यपि नीलिमा को हरबंस के पास लौटकर उसे आधुनिक नारी के रूप में आगे बढ़ने से अवरुद्ध कर दिया है। मधुसूदन के पात्र को एक नेरेटर और रिपोर्टर के रूप में रखकर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसमें तीव्र घात–प्रतिघात संघर्ष का निरूपण नहीं कर पाये है। शुक्ला से प्रभावित तथा सुषमा के संपर्क की मनःस्थिति के अतिरिक्त यह पात्र मात्र एक कथक है, अनुभूतिपरकता के अभाव में उसके व्यक्तित्व की स्थापना नहीं हो पाई है। उसके पास मात्र सूचनाओं का संग्रह है। सुषमा का प्रसंग अत्यंत रोचक और मार्मिक लगता है। पृष्ठभूमि के अभाव में – "निम्मा के पास मधुसूदन को भेजकर जैसे उसके दिन फिरे वैसे ही सभी गरीब लड़कियों के दिन फिरे की मुद्रा में लेखक वह प्रसंग समाप्त कर देता है। वह

नितान्त सतही एवम् अविश्वसनीय लगता है।"[3] क्योंकि मधुसूदन में जिस व्यक्तित्व का निरूपण किया गया है, उस स्थिति में आदर्श की स्थापना विश्वसनीय नहीं लगती।

राकेशजी का दूसरा उपन्यास 'न आने वाला कल' स्कूली परिवेश पर लिखा गया है। यह उपन्यास टूटते मानव संबंधों की छटपटाहट की यथार्थता का बोध करता है। राकेशजी का यह कथा-प्रयोग अस्तित्ववादी विचारधारा से प्रभावित है। 'अंधेरे बंद कमरे' के सात वर्ष पश्चात् राकेशजी के समक्ष एक नई तलाश का प्रश्न खड़ा हुआ और वह था 'न आने वाला कल' का प्रश्न। आधुनिक समाज के ढ़ाँचे को देखते हुए भावी जीवन का कुछ भी निश्चित् नहीं कहा जा सकता। जो आज विद्यमान है, वह कल हो या न हो। मनुष्य या उसका कल। कुछ भी निश्चित् नहीं है। यांत्रिक जीवन एवम् बौद्धिकता की निष्प्राणता के कारण आज जीवन अस्थिर हो गया है। एक अडिग जड़ता छायी हुई है। अस्थिरता व अनिश्चितता के मध्य पिसती जिन्दगी का भविष्य अभिशप्त प्रतीत होता है। प्रतिदिन की बढ़ती अकुलाहट, शून्यता तथा एकाकीपन ने मानवीय दृष्टि एवम् चिन्तना को धुंधला दिया है। राकेशजी ने मनुष्य की पीड़ा को जाना है, भोगा है, अनुभव किया है और इसी आधार पर इन सब समस्याओं को अपने इस उपन्यास में पिरो दिया है। अस्तित्व की समस्या तथा दाम्पत्य संबंधों की निरंतर बढ़ती कटुता को लेकर लिखे गए इस उपन्यास के समस्त पात्र अनिश्चय व द्विधा-बोध की स्थिति से जकड़े हुए हैं।

स्कूल के सभी अध्यापक व अध्यापिकाएँ अपने भविष्य से आसंकित, त्रस्त और निराश हैं। 'न आने वाला कल' एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो एक ओर नारी का वरण करता है तथा दूसरी ओर स्कूल के वातावरण से त्रस्त है। अपनी घुटनभरी व अकेलेपन से बोझिल जिन्दगी से मुक्ति का उसके पास न कोई सही रास्ता है न आधार। उसके समक्ष अस्तित्व रक्षण की सबसे बड़ी समस्या है।

इस उपन्यास का कथानक सूक्ष्म है। एक मिशनरी स्कूल के हिन्दी अध्यापक मनोज की कथा को यह उपन्यास प्रस्तुत करता है। मनोज स्व-अस्तित्व रक्षा के प्रयत्न हेतु अनेक त्रासद अनुभवों से गुजरता है। उसका अकेलापन उसे कचोटता है। वह एक ओर स्कूल से त्यागपत्र देता है तो दूसरी ओर अपनी पत्नी शोभा के साथ सहयोग नहीं कर पाता। मनोज की इमेज शराब पीने वाला व वासना – प्रिय के रूप में है, शोभा पूर्व पति की मृत्यु के

बाद मनोज से दूसरा विवाह करती है किन्तु अलग–अलग व्यक्तित्व के कारण दोनों में समायोजन नहीं हो पाता । मनोज का त्यागपत्र एक प्रमुख घटना का रूप ले लेता है, जिससे चपरासी से लेकर हैड मास्टर सभी प्रभावित होते हैं । त्यागपत्र की व्यक्तिगत समस्या सामाजिक हो गई है यह राकेशजी के प्रस्तुतीकरण की ही विशेषता है । समग्र उपन्यास में एक गति है, प्रवाह है जिसने राकेशजी को एक सफल उपन्यासकार की पंक्ति में ला खड़ा कर दिया । मनोज और शोभा की प्रमुख कथा के साथ–साथ शारदा व कोहली, काशनी व फकीरे तथा टोनी व्हिसलर आदि की कथा चलती है । सभी में स्त्री पुरुष के संबंधों की विद्रुपताओं एवम् विसंगतियों का चित्रण है । मनोज के त्यागपत्र की घटना से उत्पन्न भय सब के मन में व्याप्त है । सभी के मन में एक ही प्रश्न है किन्तु विचार व उत्तर विभिन्न हैं । एक समस्या एवम् एक ही परिवेश कें विचार–विनिमय में भिन्नता तथा अलग–अलग निष्कर्षों की अवतारणा ने उपन्यास को रोचकता प्रदान की है । प्रारंभ से अंत तक उपन्यास अबाध्य गति से आगे बढ़ता जाता है कहीं भी उसका आकर्षण कम नहीं होता ।

इस उपन्यास का नायक मनोज मिशनरी स्कूल का जागरूक अध्यापक है जिसका जीवन संघर्षमय है । यथार्थ की मार सहन करते हुए भी वह अपने स्वाभिमान को, अपने अस्तित्व को बचाए हुए हैं । वह सदैव अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रति बेचैन है अपने अस्तित्व पर किसी भी प्रकार का प्रहार उसके लिए असहनीय है फिर वह चाहे उसकी पत्नी शोभा हो या साथ काम करनेवाली बानी ही क्यों न हो ? इसी अस्तित्व की रक्षा हेतु उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया है । समस्त सहकर्मचारी हैड के प्रति विरोध के लिए उकसाते हैं किन्तु वह स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है और अपने अस्तित्व के प्रति चैतन्य बना रहता है । मनोज स्कूल के अन्य अध्यापकों से भिन्न प्रकृति का है । सभी अध्यापक हैड से नाखुश हैं किन्तु मनोज त्यागपत्र देकर व्यवस्था के प्रति विद्रोह कर अपनी जीवंतता का परिचय देता है । वह मुक्तिकामी प्रकृति का है । वह स्वातंत्र्य बोध से भरकर बंधनों को एक साथ ही अस्वीकार कर देता है । 'न आने वाला कल' में मनोज के समक्ष नौकरी छोड़ने और पत्नी छोड़ने की ये दो समस्याएँ हैं । छोड़ने में एक अस्वीकार है । वह सोचता है शायद वह छोडकर वह स्वयं को मुक्त अनुभव कर सके । शोभा और मनोज का पति–पत्नी का संबंध हरबंस और नीलिमा के ही समान था, लेकिन मनोज इससे निकलने

का जो विकल्प तलाशता है वह अस्वीकार है । अस्वीकार के इस क्रम में वह समस्त मानवीय संबंधों के लिए सर्वथा अयोग्य हो जाता है । मनोज आधुनिक परिवेश के यथार्थ से पूरी तरह टूट चुका है । प्रेम में अक्षमता स्वयं में आंतरिक समस्या नहीं है वरन् अलगाव व अकेलेपन का सूचक है । आधुनिक व्यक्ति प्रेमहीन होने के कारण अलगाव व अकेलेपन का दुःख झेलता है । वह हताश होकर यथार्थ से अपने संबंध पुनः प्रेम के माध्यम से स्थापित करने का प्रयास करता है किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं होती । अस्वीकार का यह क्रम मनोज को असंभव स्थिति तक पहुंचाता है और वह मान लेता है कि जीवन असंभव है इसलिए प्रेम भी असंभव है । मनोज के व्यक्तित्व में रिक्तता है, अंतर्द्वन्द्व है । उसके चरित्र में अकेलेपन व ऊब का बोध गहरापन लिए हुए हैं । शोभा के खुर्जा चले जाने पर वह बानी व काशनी से प्रेम व्यापार चला कर अपनी स्वार्थी व कामुक प्रवृत्ति ही प्रदर्शित करता है । वह एक अस्तित्ववादी पात्र है । जागरूक, मुक्तिकामी, अकेला, ऊबा हुआ, व्याकुल, कामी और स्वार्थी व्यक्तित्व वाला मनोज अपने हृदय की रिक्तता से आने वाले कल की सीमा का आभास पा लेता है ।

मनोज की पत्नी व उपन्यास की नायिका अपने पूर्व पति की मृत्यु के पश्चात् मनोज से विवाह करती है, किन्तु तालमेल नहीं बिठा पाती । दोनों पति–पत्नी का स्वातंत्र्य बोध आडे आता रहता है, एक भी झुकना नहीं चाहता । दोनों ही अपने अपने ढ़ंग से जीना चाहते हैं । शोभा पर अपने पूर्व पति एवम् ससुराल की अमिट छाप अभी तक है वह उसी ढ़ंग से रहना चाहती है । वह भी अपने अस्तित्व रक्षण के प्रति जागरूक है । वह साहसी है, निर्भिक है व घरेलू जीवन जीना चाहती है । वह एक घरेलू नारी के रूप में रहना चाहती है । वह स्वतंत्र और अस्तित्ववान विचारों की नारी है । स्कूली परिवेश पर लिखे गये इस उपन्यास में स्कूल के सभी अध्यापक व सदस्य विषाद, ऊब और अकेलेपन के वातावरण में स्वयं को जबरदस्ती घसीटते प्रतीत होते हैं । इस उपन्यास में व्यक्ति व्यक्ति के संबंधों, दाम्पत्य जीवन की कटुता और विसंगतियों की अभिव्यक्ति है । आज प्रत्येक व्यक्ति का मन अनेक यंत्रणाओं के बीच दबा हुआ है, उसका मानस दर्पण की तरह टूटकर बिखर चूका है । ऐसी स्थिति में भी वह अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रति चिंतित है । अस्तित्व की चिंता व भावी कल के प्रति अनजानें सवालों से घिरे होने की स्थिति का चित्रण ही इस उपन्यास का उद्देश्य है । हैड मास्टर मि.टोनी व्हिसलर के अत्याचारों से समस्त अध्यापक वर्ग दुःखी है

फिर भी सहना पड़ रहा है। मनोज हैडमास्टर से नहीं डरता किन्तु सभी को अपने न आने वाले कल की चिन्ता है। स्पष्टतः सबकी एक ही तलाश है, एक ही बिन्दु पर दृष्टि केन्द्रित है वह है न आने वाला कल। अस्तित्व की समस्या से सराबोर उपन्यास के सभी पात्र अपने अपने आने वाले कल को खोज रहे हैं। सब के समक्ष अनिश्चितता का दायरा हैं जिससे वह निकल नहीं पा रहे हैं। मनोज के त्यागपत्र से सभी चिंतित है। इस उपन्यास में "आज के टूटते, बल्कि टूटकर भी न टूट पाते मानव संबंधों के बीच व्यक्ति की अकुलाहट का अंकन अस्तित्ववादी मानवतावाद के आधार पर किया गया है।"[४] समस्त पात्रों की चिन्ता अस्तित्व की रक्षा की ही है। इस उपन्यास की अनेक स्थितियाँ अस्तित्ववाद के सोपानों से गुजरती दिखाई देती हैं। राकेशजी ने "आधुनिक जीवन की विसंगतियों, संत्रास, अकेलापन मानव संबंधो की कृत्रिमता और मृत्यु भय आदि की अस्तित्ववादी चिंतन के प्रकाश में विश्लेषित करने की कोशिश की है। लेखक ने ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं जिनमें व्यक्ति मुक्ति पाने के लिए छटपटा उठता है।"[५]

दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न ऊब, रिक्तता के साथ–साथ अन्य अजनबी स्थितियाँ भी इस उपन्यास में उत्पन्न हो गई हैं। मनोज व शोभा के साथ–साथ शारदा व कोहली, जैन व टोनी आदि अन्य पात्रों में भी यह अकेलेपन का बोध दृष्टिगत होता है। अस्तित्ववाद के अनुसार व्यक्ति का पूर्ण अस्तित्व होना चाहिए। वह किसी भी, कैसी भी परिस्थिति में खण्डित नहीं होना चाहिए। इसी के परिणामस्वरुप शोभा या शारदा अपने स्वातंत्र्य बोध के कारण अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती हैं। दोनों ही पति–पत्नी पारस्परिक निकटता नहीं चाहते। उपन्यास की नारी पात्र शोभा व बानी का चेतना बोध सक्रिय है। वह सदैव अपने स्वातंत्र्य बोध से यह महसूस करती है कि वे मनुष्य हैं, पदार्थ नहीं। दोनों ही नहीं चाहती कि कोई चीज समझकर उनका इस्तेमाल करें। बानी मनोज के साथ किसी भी सीमा तक जाने को तैयार है किन्तु वह भी यही सोचती है कि "मैं नहीं चाहती किसी भी व्यक्ति का मुझ पर इतना अधिकार हो कि मैं उसके बिना जी ही न सकूं।"[६]

'न आने वाला कल' उपन्यास में अस्तित्व की चिन्ता में घुलते पात्रों का चित्रण है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों, मानव संबंधों और उसमें आए तनाव आदि को अभिव्यक्ति से रंजित यह उपन्यास अस्तित्ववादी भूमिका पर लिखा गया है। मानवीय एकांतता, ऊब, उलझन, व्यक्ति की छटपटाहट का राकेशजी ने बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से चित्रण किया है।

आज के ऊब, अकेलेपन से युक्त टूटते हुए मानव संबंधों का अंकन इस उपन्यास में यथार्थ शैली में हुआ है। इस उपन्यास की भाषा साधारण बोलचाल की भाषा है। उसमें कवित्व, भावुकता और चित्रात्मकता भी है। पूरा उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में रचित है जिसमें वर्तमान जीवन की असंगतियों, आधुनिक संदर्भों को खुले रूप में कहने का विशेष गुण है।

'अंतराल' में राकेशजी ने दाम्पत्य संबंधों को एक और ही स्तर पर परखा है। इसमें पति–पत्नी के एक–दूसरे को झेलते जाने का यथार्थ और बहुत ही स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। इस उपन्यास की नायिका है श्यामा जो विधवा है। डेढ़ वर्ष के वैवाहिक जीवन में जो उसने चाहा वह उसे नहीं मिला। अपने पति देव के साथ उसे कभी निकटता का अनुभव नहीं हुआ। वह दर्शनशास्त्र में एम.ए. करना चाहती है। प्रो. मल्होत्रा उसका परिचय प्रो. कुमार से कराते हैं वह उनसे पढ़ना शुरू करती है धीरे–धीरे श्यामा व कुमार का परिचय बढ़ता है, यह परिचय आत्मीयता तक बदल कर रह जाता है, प्रेम रूप में परिवर्तित नहीं होता। श्यामा अपने विषय में अपने पूर्व वैवाहिक जीवन के विषय में बातें करती हैं। वह सबकुछ अपने विषय में कुमार को बता देना चाहती है व उसके विषय में सबकुछ जानना चाहती है। उसे कुमार ही एक ऐसा व्यक्ति लगता है जिससे सब बातें की जा सकती हैं। स्त्री–पुरूषों के संबंधों के साथ–साथ एक विधवा स्त्री का अपनी सास–ननद के संबंध पर भी प्रकाश डाला है। अकेलेपन से ऊबकर वह सास–ननद के साथ रहने के लिए बम्बई आ जाती है और सांझे में फ्लैट खरीदती है। बम्बई आकर उसे अपने निर्णय पर खेद होता है वह उन लोगों के साथ समझौता नहीं कर पाती तथा कुमार द्वारा शारीरिक संबंध स्थापित करने की कोशिश उसे वापिस मंडल लौटने का निर्णय लेने में सहायता देती है। श्यामा व कुमार के मध्य अनेक बार शारीरिक संबंध स्थापित करने के अवसर आते हैं किन्तु श्यामा का विरोध स्वयं की इच्छा को दबाना व नकारना सूचीत करता है।

'अंतराल' में राकेशजी ने आधुनिक बोध के आयामों को अनेकानेक रूपों में प्रस्तुत किया है। समाज के बदलते मूल्य, नए पुराने मूल्यों का टकराव, स्त्री–पुरूष के संबंधों का नवीनीकरण, आर्थिक पीठिका पर टिके संबंधों का सफल चित्रण इस उपन्यास में है। आधुनिक समाज में जनरेशन गेप एक विशद समस्या बनी हुई है। प्राचीन व नवीन नैतिक मूल्यों में अंतराल पैदा हो गया है। प्राचीन लोग अपनी बात मनवाना चाहते हैं नई पीढ़ी

उसका विद्रोह करती है । मानव के व्यवहार आचरण और नैतिकता में परिवर्तन आता जा रहा है । उपन्यासकार राकेशजी ने सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा प्राचीन व नवीन नैतिक मूल्यों में टकराव को चित्रित किया है । 'अंतराल' की एक पात्र सीमा आधुनिक स्वच्छंद प्रकृति की 'सोसायटी गर्ल' है । प्राचीन समय का नाम वेश्या था, जिसके पास अनेक पुरुष आते थे । सीमा के भी अनेक बोय फ्रेन्ड हैं । सीमा आत्म निर्भर व बोय फ्रेन्ड रखने पर गर्विता रखनेवाली स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है । वह धर्म का बंधन न मानने वाले तथा शराब और नशीली चीजों का सेवन करने वाले वर्ग का प्रतीक है । उपन्यास की नायिका श्यामा का चरित्र समाज के नैतिक मूल्यों को विकास की ओर ले गया है । वह विधवा है किन्तु आत्म निर्भर है । प्राचीन समय में विधवा को धृणित द्दष्टि से देखा जाता था यदि वह विवाह करना चाहे भी, तो समाज उसके रास्ते में अड़चने ही पैदा करता किन्तु आधुनिक युग में मान्यताएँ बदली है यदि श्यामा कुमार से विवाह भी कर लेती तो समाज की ओर से कोई रुकावट उत्पन्न नहीं होती, वरन् उसका कदम सराहनीय ही माना जाता । नारी की स्वतंत्रता को हामी भरने वाली एक पात्र और है – कुमार की पत्नी । कुमार से न पटने के कारण अपने घर लौट जाती है । प्राचीन समय की नारी किसी भी परिस्थिति में इच्छा व अनिच्छा से अपने पति के साथ रहने हेतु बाध्य रहती । अब नारी अपने अधिकार के प्रति सचेत है । आज समाज प्रगति पथ पर है । नैतिकता के विषय में मूल्य बदल रहे हैं । यौन समस्या आज जनसाधारण की समस्या बन गई है । पहले विवाह व्यवस्था के साथ नारी एक पुरुष से संबंध रखती थी किन्तु आज सेक्समोरेलिटी का उल्लंघन हो रहा है । यौन संबंधों में रुढ़ि नहीं रही । अविवाहित लड़किया बिना विवाह किए यौन संबंधों में स्वतंत्र रहती हैं । 'अंतराल' में यौन संबंधी समस्त आधुनिक विचारधाराओं को स्पष्ट कर दिया गया है । उपन्यास में यत्र–तत्र यौन–चेष्टाएँ देखने को मिलती है ।

आज मनुष्य समाज एवम् परिवार से कट गया है । संबंध रह गया है तो केवल पैसे का । राकेशजी एक सजग सर्जक थे, उन्होंने आर्थिक आधार पर टिके संबंधों का वर्णन बड़े सुंदर तरीके से उपन्यास में किया है । श्यामा और देव के परिवार का संबंध पैंसों पर टिका है । श्यामा सहायता करने हेतु या कहिए अपना फर्ज पूरा करने हेतु प्रतिमास अपनी सास–ननद को पैसे भेजती है किन्तु वे दोनों उसका पैसा तो चाहती हैं परंतु श्यामा से उन्हें कोई लगाव नहीं । इसी प्रकार सीमा का भी अपनी माँ से संबंध पैसों पर टिका है – वह

स्वयं कहती है – "जरूरत पड़ने पर मैं यहाँ से छोड़कर गर्ल्ज होस्टल में जा सकती हूँ। लेकिन सवाल ममी का है। न तो तुम अकेली उन्हें सपोर्ट कर सकती हो, न मैं ही। इसीलिए बेहतरी सब के साथ रहने में हैं।"[७]

'अंतराल' उपन्यास में यौन समस्या, नैतिकता, अलगाव की समस्या को ईमानदारी से उठाया गया है। यह समसामयिक युग का स्वच्छ दर्पण है। यह स्त्री–पुरूष के संबंधों का बोधक उपन्यास है। संबंधों की यह भूमिका (श्यामा और कुमार का नामहीन संबंध) अस्तित्ववादी चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में भी सही उतरती है। अंतराल को अस्तित्ववादी चेतना का सशक्त उपन्यास भी कह सकते हैं। इसमें सामाजिक अस्तित्व को प्रश्रय दिया गया है तथा धार्मिक रूढियों पर आधात है। अस्तित्ववाद में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। उनके अनुसार मानव चेतना के ठोस धरातल पर सोचता है। इसमें व्यक्ति का अस्तित्व ही सब कुछ है। सीमा का रूप अति व्यक्तिवादी है वह अधिक स्वतंत्र है तथा इसी के कारण विडम्बना का शिकार होती है। उपन्यास के सभी पात्र एक दूसरे से कटे है। वस्तुतः यह ऊब भरे जीवन का उपन्यास है। प्रत्येक पात्र नीरस जिंदगी व्यतीत कर रहा है, एकाकीपन का बोझ ढो रहा है। इस उपन्यास में प्राचीन पीढ़ी, (बीजी) मध्य पीढ़ी (श्यामा) और नई पीढ़ी (सीमा) इन पीढ़ियों का चित्रण है। इसमें प्राचीन पीढ़ी की कुंढन, मध्य पीढ़ी की सहिष्णुता और नई पीढ़ी का विद्रोह विश्लेषित किया गया है। राकेशजी ने इस उपन्यास में व्यक्ति के परिवेश को अस्तित्ववादी विचारों की परिधि में सजीव रूप से अंकित किया है। इसका केन्द्र कुमार और श्यामा का नामहीन संबंध है साथ ही 'अंतराल' में यथार्थवाद व आदर्शवाद का भी समावेश है। इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक व सामाजिक यथार्थ चित्रित हुआ है। लता का विवाह से पूर्व कुमार के पास आना व उसे शारीरिक संबंध स्थापित करने हेतु निमंत्रित करना, श्यामा का मंडी से कुमार को पत्र लिखकर बुलाना, बम्बई में रहने का निर्णय, बान्द्रा में कुमार से मिलना, श्यामा का कुमार को कृष्ण चन्दर की 'जी तो' कहानी सुनाना आदि मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से चित्रित है। श्यामा के मन के रहस्यों का विश्लेषण है।

मनोवैज्ञानिक यथार्थ के साथ साथ सामाजिक यथार्थ का चित्रण है जिसका केन्द्र मार्क्सवादी विचारधारा है। जो अर्थ को मानव क्रिया–कलापों का आधार मानते हैं। सामाजिक यथार्थ यन्त्र–व्यवस्था को महत्त्व देता है और आज का मनुष्य उसका दास है। श्यामा देव की अर्धांगनी नहीं बनी उसका व्यक्तित्व श्यामा पर पूर्णतः नहीं छाया वह उसके

होते हुए भी पर पुरुष की कल्पना भी करती है । देव के न रहने पर कुमार के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने का निश्चय करती है इस सामाजिक यथार्थ का चित्रण लेखक ने बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है । राकेशजी समाज के मध्यम वर्ग के पहलुओं पर विचार–विमर्श करने से नहीं चूके । अशिक्षित नारी की क्या गति होती है यह मि.मल्होत्रा की पत्नी के रूप में दृष्टिगोचर होती है । मिसेज मल्होत्रा एक गुलाम की जिंदगी बिताने को बाध्य है, नारी स्वतंत्रता की कल्पना उससे अछूती है वह चाहे तो भी नहीं सोच सकती । राकेशजी के इस उपन्यास में खोखले तथा आध्यात्मिक आदर्शों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है । यौन लिप्सा इसकी प्रमुख समस्या रही है । श्यामा, कुमार, लता, मल्होत्रा, गोपालजी इसके प्रमुख प्रतीक है । इस उपन्यास में आधुनिक मानदण्डों तथा युग–आदर्शों को स्पष्ट व्यक्त किया गया है । वस्तुतः यथार्थ और आदर्श दोनों ही एक तत्व के दो पहलू हैं जो आदर्श है वह यथार्थ भी है तथा यथार्थ को लेकर आदर्श निश्चित किया जाता है ।

यथार्थतः समकालीन जीवन के विविध आयामों की अभिव्यक्ति 'अंतराल' में सशक्त भाषा द्वारा हुई है । स्थिति परिस्थिति व पात्रों के अनुरूप भाषा का रूप परिवर्तित होता रहा है । कहीं बोलचाल की भाषा है कहीं प्रतीकात्मक तथा कहीं परिष्कृत हो गई है । इसकी शैली अस्तित्ववादी मनोविश्लेषणात्मक शैली है । आज मनुष्य अस्तित्ववादी हो गया है समाज में व्यक्तिवाद प्रमुख हो गया है मनुष्य समाज की इकाई होते हुए भी उससे बहुत दूर होता जा रहा है । यह आधुनिक व्यवहार की गाम्भीर्य पूर्ण भाषा में लिखा गया उपन्यास है । राकेशजी मूलतः नाटककार है अतएव संवाद लिखने में उन्हें कमाल हासिल था वही संवादों के लेखन का प्रयोग उन्होंने अपने उपन्यास 'अंतराल' में किया है । उनके संवाद सदैव पात्र व परिस्थिति के अनुकूल रहे है । संक्षिप्तता और उपयुक्तता दोनों ही गुणों से युक्त संवाद परिलक्षित होते हैं ।

राकेशजी के उपन्यासों की भाषा का रूप सीधा, सपाट, सरल एवम् व्यावहारिक है । उनके उपन्यासों में प्रारंभ, मध्य और अंत में संवेदना और संवाद के निरूपण में, विचार और व्यंग्य में सर्वत्र सीधी सादी बोलचाल की भाषा विद्यमान है । उनकी ऐसी भाषा के प्रयोग से सामान्य पाठक या श्रोता भी सहजता से रचना के अर्थ को समज जाता है जैसे – "कभी कभी रात की खामोशी में एक आवाज कोठरी की घुटन को कुछ कम कर देती थी । घर की ऊपरी मंजिल पर बुढ़ा इबादत अली कभी कभी आधी रात को सितार बजाने लगता था ।

इबादत अली उस घर का मालिक था, मगर वह वहाँ किरायेदारों से बदत्तर हालत में रहता था ।"[८] "तुम भी जानते हो कि जिन्दगी तुम्हें रास नहीं आती... उसी तरह जैसे मुझे नहीं आती । तुम जिस तरह की जिन्दगी के आदि रहे हो, तुम्हें फिर वही जिन्दगी जीने को मिल जाएगी, बिलकुल अकेलेपन की ... कम से कम कुछ दिनों के लिए मैं भी वहाँ रहकर देख लूगी कि मुझे कौन सी जिन्दगी बेहतर लगती है ।"[९] इस प्रकार उपन्यासों के वस्तु–विन्यास, चरित्र या स्थिति वर्णन में भी व्यावहारिक भाषा का प्रयोग है । भाषा का इतना सहज सपाट रूप कथ्य और संप्रेषण में भी सार्थक है । कहानियों और उपन्यासों में भाषा के कारण कथ्य और प्रयोजन में कहीं रूकावट नहीं, क्लिष्टता नहीं, जल सिंचाई के जलधारा के समान एक आह्लादक गति है – जिसे भाषा की प्रवाहशीलता भी कहा जा सकता है । राकेशजी का भाषा पर सशक्त अधिकार देखा गया है ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राकेशजी के उपन्यासों के शिल्प में नवीनता और निपुणता दोनों परिलक्षित हैं । प्रेमचंदीय और आधुनिक शैली के बीच की कड़ी के रूप में राकेशजी के उपन्यासो में शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है ।

(ब) उपन्यासों में संवेदना :

राकेशजी के 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास के कथ्य में हरबंस और नीलिमा के वैवाहिक जीवन का अंतर्द्वन्द्व प्रमुख है । राकेशजी ने अन्य पात्रों के द्वारा जीवन की विविध स्थितियों एवम् संवेदनाओं को उजागर किया है । शुक्ला, सुरजीत, जीवन, भार्गव, शिवमोहन, सुषमा, ठकुराइन, इबादत अली, मधुसूदन आदि पात्र जीवन की संवेदनाओं की कौंध देकर कुछ क्षण के लिए उपन्यास से भले ही ओझल हो गये हो लेकिन हरबंस और नीलिमा आरंभ से अंत तक बने रहते हैं । तनाव और अंतर्द्वन्द्व की छाया किसी न किसी रूप में मंडराती रहती है । हरबंस और नीलिमा के बीच जो टकराहट है वह परस्पर पति–पत्नी की टकराहट ही नहीं, अपितु पुराने और नये मूल्यों की टकराहट है । हरबंस शिक्षित है, कोलेज का अध्यापक है पर वह चाहता था कि नीलिमा उसके इर्दगिर्द चक्कर काटे और उसकी मुस्कराहटें और खुलापन उसकी संगति में हो । जब कि नीलिमा आधुनिक महानगरीय जीवन मूल्य को खुलेपन से स्वीकार करके चलती है । वह तसवीरें खींचती है, सिगरेट पीती है, हरबंस के मित्र मधुसूदन से खुलेपन से संवाद करती है, नृत्य कला में पारंगत है, दिल्ली

कलानिकेतन के माध्यम से कला प्रदर्शन द्वारा प्रसिद्ध नर्तकी शैल और मीना की तरह नाम कमाना चाहती है । उसकी महत्त्वाकांक्षा नयी दिल्ली के तथाकथित कला–प्रिय फैशनेबुल समाज में ललितकला के माध्यम से अपना नाम उजागर करने की है । इसलिए वह नृत्य कला में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से मैसूर, लंदन, पेरिस जाकर पर पुरुषों के साथ नृत्य करती है । प्रोफेसर हरबंस को अपनी पत्नी का आधुनिक परिवेश एवम् आधुनिक बोध बिलकुल पसंद नहीं । हरबंस कला का प्रर्दशन करना नहीं चाहता, वह तो कला को जीवन से जोडकर दाम्पत्य जीवन में आनंद ढूँढ़ना चाहता है लेकिन नीलिमा के हठाग्रह के सामने वह विवश है । वस्तुतः दोनों मानसिक तनाव एवम् संघर्ष के दौर से गुजरते रहते है । वह नीलिमा के कला–प्रदर्शन के कार्यक्रम को भूलने शराब से भरा गिलास खाली करता है । उपन्यास के अंत में तो वह अर्धविक्षिप्त हो जाता है । नीलिमा संबंध–विच्छेद का निर्णय करके बीजी के पास चली गई थी लेकिन हरबंस के पागलपन का समाचार पाते ही लौट आती है । उपन्यास में नये–पुराने मूल्यों का संघर्ष हरबंस–नीलिमा के दाम्पत्य जीवन के माध्यम से उभर कर आया है । नीलिमा नये मूल्य की तलाश में आगे कदम बढ़ाती है ।

राकेशजी ने इस उपन्यास में पत्रकार सुषमा के चरित्र से पुराने मूल्यों की निःसारता प्रकट कर मानवीय संवेदना को उजागर करने का सफल प्रयास किया है । उसका मूल्य के बारे में यह प्रश्न आधुनिक समाज की युवा पीढ़ी का मानो प्रश्न है, "क्या तुम समझते हो कि जीवन में कोई ऐसा मूल्य भी है जिस पर आदमी अपने मन को स्थिर रख सके ।"[१०] सुषमा आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करके पुरुष के बराबर होड करती हुई भी टूट रही है और अंततः छोटे से घर में अपना सुख ढूँढ़ना चाहती है । विडंबना यह है कि नीलिमा घर पाकर और सुषमा घर न पाकर आधुनिक परिवेश में संघर्ष और तनाव की स्थितियों से दोनों गुजरती हैं । सुषमा के शब्द है – "मैं अपने लिए सुख चाहती हूँ, सुख जो एक छोटे घर में ही मिल सकता है ।"[११] 'अंधेरे बंद कमरे' में स्त्री–पुरुष संबंध के कई रूप मिलते हैं किन्तु मुख्यतः हरबंस और नीलिमा पर ही ध्यान केन्द्रीत होता है । हरबंस और नीलिमा के अंतर्द्वन्द्व की आत्मकहानी है यह 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास । वस्तुतः यह उपन्यास हरबंस और नीलिमा के मानसिक तनावों और संवेदनाओं की व्याख्या करता है ।

दिल्ली के किसी कोलेज के इतिहास के प्रोफेसर साहित्य से लेकर राजनीति तक और नृत्य से लेकर विदेशी मिशनरियों तक न जाने कितने विषयों पर बहुत ही अधिकारपूर्ण

ढंग से वक्तव्य देता हरबंस दाम्पत्य जीवन में स्वीकार करता है, कि "जिस घर में रहता हूँ, वह मेरा घर नहीं है और जिसे मैं अपनी पत्नी समझता हूँ वह मेरी पत्नी नहीं है ।"[१२] स्वभाव और रूचियों में वैषम्य होने से दोनों एक दूसरे से चिढ़ते रहते है । स्त्री–पुरूष संबंध और पारिवारिक जीवन की हास्यास्पदता इस उपन्यास में राकेशजी ने प्रस्तुत किया है । हरबंस और नीलिमा जिस तरह की जिंदगी जी रहे हैं वह आज के व्यक्ति की नियति बन गई है, बस छटपटाकर रह जाना, उबर न सकना । संपूर्ण जीवन में तनाव बस गया है ।

इस तनाव को बढ़ाने में महानगरों का योगदान विशेष है । स्वतंत्रता के उपरांत भौतिकवादी दृष्टिकोण ने लोगों को शहर की ओर बढ़ने को मजबूर कर दिया । जिसका संकेत हमें प्रेमचंदजी की 'गोदान' में भी देखने को मिलता है । 'गोदान' का गोबर गाँव छोड़कर शहर की ओर आता है और उन शहरों की स्थिति यह है कि शहर बेतरतीब बढ़ रहे हैं । किन्तु उन शहर वालों के दिल उतने ही संकीर्ण हो रहे हैं । जिसमें मनुष्य आत्मीयता को पा ही नहीं सकता । महानगरों के साथ जुड़ी यह समस्या उसे अकेला बना देती है । आज हरबंस को तलाश है निजीपन की, अपनत्व की और मधुसूदन चाहता है कि वह कसाबपूरा लौट जाए ।

'न आने वाला कल' उपन्यास मानवीय संवेदनाओं की गंगोत्री समान लगता है । क्योंकि इस उपन्यास के सभी पात्र स्कूल के दमघोटूं वातावरण से उबरने के लिए प्रयत्न करते हैं । नई जिंदगी और आने वाले कल की अनिश्चितता में वह सभी अपने आपको अनिश्चित स्थिति में पाते है । साथ ही साथ दाम्पत्य जीवन में कटाव को भी राकेशजी ने भलीभाँति चित्रित किया है । उपन्यास का नायक मनोज विधवा शोभा से विवाह करता है । शोभा मनोज के व्यक्तित्व को बदल देने का प्रयत्न करती है लेकिन मनोज के बारे में वह करती है – "इस आदमी के नुक्स उतने बाहर के नहीं थे कि उन्हें आसानी से ठीक किया जा सकता । इसके ज्यादा नुक्स अंदर के थे जिन्हें लेकर शायद कुछ भी नहीं किया जा सकता था ।"[१३] वस्तुतः दोनों एक घर में रहते पति–पत्नी न होकर धर्मशाला में टिके महेमानों की तरह जिंदगी व्यतित करते थे । दोनों के बीच अजनबीपन और तनाव बढ़ता जाता हैं । अंततः शोभा अपने पहले ससुराल खुरजा चली जाती है । शोभा अपने पहले पति और उसके परिवार से इतनी भावात्मकता कायम कर चूकी थी कि वह मनोज में भी अपने पहले पति को तलाश करती ।

मनोज शोभा से उत्पन्न अभाव की पूर्ति के लिए बानी और काशनी से संबंधहीनता और मूल्यहीनता के स्तर पर संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है । लेकिन इससे पति–पत्नी के संबंधों की दूरी, खालीपन भरता नहीं बल्कि तनाव की स्थिति और भी तीव्रतर होती है । यहाँ स्त्री के बिना पुरूष की जो हालत होती है और उसकी पूर्ति के लिए वह किस हद तक जा सकता है इसका मर्मस्पर्शी चित्रण राकेशजी ने किया है । इस उपन्यास में राकेशजी ने स्कूल के हेड, उसकी पत्नी, जिमी और रोज, मिसेज पार्कर और मिस्टर पार्कर, शारदा और कोहली, चेरी और उसकी पत्नी लारा आदि के चरित्रों के द्वारा मूल्य, संघर्ष, मूल्यहीनता, ऊब एवम् तनाव की स्थिति के साथ मानवीय संवेदनाओं को रूपायित करने का प्रयास किया है । इन समस्त संबंधों में शारदा और कोहली का संबंध अपेक्षाकृत अधिक तनावमय है किन्तु शोभा और मनोज से कम; क्योंकि कोहली शारदा को मारपीट कर आक्रमक होकर अपने मन की घुटन को निकाल देता है जब कि मनोज अपने अकेलेपन की घुटन अंदर ही अंदर पीता रहता है, बाहर नहीं निकालता जिससे बाहर और भीतर दोनों ही असह्य हो जाता है । मनोज और शोभा पति–पत्नी है, किन्तु दोनों के संबंध का बोध एक दूसरे के प्रति नहीं कर पाते हैं । दोनों ही पति–पत्नी की जिंदगी नहीं पाते । एक ओर तो मनोज अपने अकेलेपन की यंत्रणा को समाप्त करना चाहता है और शोभा से शादी कर लेता है, किन्तु यह अकेलापन शोभा से शादी करने के पश्चात भी समाप्त नहीं होता लेकिन वह बढ़ जाता है क्योंकि शोभा का उससे पुनर्विवाह है । शोभा और मनोज के इस अलगाव में अलक्षित तीसरा पुरूष है जो शोभा से जुड़कर उपन्यास में उपस्थित न होते हुए भी हुआ है । शोभा आधुनिक नारी है । वह पूर्व वैवाहिक जीवन के सात साल किसी के साथ व्यतीत कर चुकी है । उस पुरूष की मृत्यु के बाद मनोज को स्वीकार करती है । वह मनोज के साथ विवाह करके नई जिंदगी की शुरूआत करती है । वह मनोज के साथ जुड़कर अपने अतीत से छुटकारा पाना चाहती है – "बातचीत के दौरान मेरे मूँह से कभी उसके पहले पति का नाम निकल आता तो उसे लगता है जैसे जानबुझकर उसे छीलने की कोशिश की गई है ।"[१४] मनोज का यह मत था कि "उसकी नजर में मैं अब अकेला आदमी था जिसका घर उसे संभालना पड़ रहा था, जब कि मेरे लिए वह किसी दूसरे की पत्नी थी जिसके घर में मैं एक बेतुके मेहमान की तरह टिका था ।"[१५] मनोज निजी कमजोरियों के आवेश में आकर शोभा से शादी करता है, लेकिन शोभा के अतीत पुरूष को अलग नही कर पाता । शोभा को देखता था तब उन्हें उसके पहले पति को भी देखता था । शादी के बाद उसका

अकेलापन और गहरा होता गया। दोनों अलग भी हो जाते है फिर भी एकाकीपन से नहीं उबर पाते। शोभा खुरजा चली जाती है, लेकिन मनोज का पत्र न पाकर एकाकीपन की छटपटाहट से विक्षिप्त होती है और पत्र लिखने को विवश होती है, "कितना बड़ा व्यंग्य है कि ऐसे आदमी से अपने को अलग कर सुखी होने की जगह में रात–दिन तक छटपटाहट महसूस करती हूँ।"[७६] जिमी तथा उसकी पत्नी रोज साथ–साथ रहकर भी एक–दूसरे से अलग रहते हैं। रोज की जिंदगी वहाँ के लोगों से इतनी कट चुकी थी, कि रोज का लोगों से वार्तालाप 'अर्धाक्षरी' शब्दों में हुआ करता था। मिस्टर टोनी व्हिसलर और उसकी पत्नी एक दूसरे की उपस्थिति में भी एकाकीपन और अजनबीपन का अनुभव करते है। यहाँ राकेशजी ने दाम्पत्य जीवन की संवेदनाओं को यथार्थ रूप में स्पष्ट किया है।

मनोज, रोज, लारा, बानी, शोभा ऐसे पात्र है, जो जिंदगी की खोज करते है और बाधक परिस्थितियों का विरोध करते हैं। मनोज अनुभव करता है कि उसके चारों ओर कुछ गलत है, कुछ क्या सबकुछ गलत है। गलत होने का लगातार बोध उसे बाहर भीतर से खाली करता जाता था। एक तरफ वैवाहिक जीवन की ऊब है तो दूसरी ओर बर्टन स्कूल के हेड मास्टर की व्यवस्था से खीझ और ऊब है। मनोज स्वयं पर और यहाँ तक कि दूसरों पर पाबंदी लगाना स्वीकार नहीं करता था। ये शब्द उसकी मानवीय संवेदना की पुष्टि करते है। "अपने अंदर से यह मानकर चलना ओर बात थी कि मजबूरी में दूसरे की शर्तों पर जी रहा हूँ। उन शर्तो पर जीने के लिए मजबूर किया जाना बिलकूल दूसरी बात थी।"[७७] मनोज स्कूल के प्रिन्सिपाल की तानाशाही हकूमत के अंदर अपने आप को मात्र गुलाम समझता था। फलतः वह त्यागपत्र देकर सबको स्तंभित कर देता है। उसका त्यागपत्र सारी व्यवस्था के प्रति विद्रोह था। अपनी स्वतंत्रता की चुनौती थी। मनोज इस्तीफा देने के उपरांत उस पहाडी स्कूल के क्वार्टर को छोड़ने के कुछ समय पूर्व अपने चारों तरफ के बंधन से मुक्त होकर चपरासी फकीरा की बीवी काशनी से सहवास का असफल प्रयास करता है। मि. व्हिसलर व्यवस्था के अंदर गड़बड़ी पैदा करनेवालों को हमेशा के लिए स्कूल से निकाल देता था। वह मनोज को स्पष्ट शब्दों में कहता है कि उसकी ओर से कोई टिप्पणी सुनना नहीं चाहता। वस्तुतः मनोज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ता है और मि. व्हिसलर के अस्तित्व को चुनौती देता है – "मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि आपको मुझसे इस तरह बात करने का कोई हक नहीं।"[७८] उपन्यास में बानी में स्वातंत्र्य बोध की

तीव्र संवेदना साफ झलकती है । वह बिलकुल व्यक्ति चेतना के स्तर पर जीती है । वह किसी भी पुरूष का अपने उपर किसी भी प्रकार का अधिकार सहन नहीं कर सकती थी । उसे अपने मन की स्थिति की पूरी पहचान है, “मेरा मन जो इतना भटकता है, उसका वास्तविक कारण मेरा अकेलापन है ।”[७९] बानी आधुनिकता की सजीव पात्र बनकर आधुनिकता को स्वीकार करती है । बानी में व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना प्रखर है और उसके आधार पर ही अपना अस्तित्व बनाये रखती है । रोज और जिमी दोनों मानसिक तौर पर तैयार न होते हुए भी सिर्फ कर्तव्य को निभाने के लिए स्कूल में सांस्कृतिक कार्यक्रम में हिस्सेदारी करते है । नादुरस्त तबीयत होने पर रोज अपने आपको इस परिवेश से कहीं दूर जाने की बात करती है । लेकिन दोनों को आने वाले कल की चिंता सताती है ।

इस प्रकार राकेशजी ने इस उपन्यास में तकरीबन सभी पात्रों के माध्यम से मानवीय संवेदना के साथ साथ दाम्पत्य जीवन की संवेदनाओं और समस्याओं को प्रस्तुत किया है ।

राकेशजी ने ‘अंतराल’ उपन्यास में बहुत ईमानदारी के साथ मानवीय संवेदनाओं को प्रमाणिक रूप से प्रस्तुत किया है । आंतरिक संघर्ष का चित्रण पात्रों को आत्मकेन्द्रीत बना देता है । कुमार वैयक्तिक चेतना के धरातल पर जिंदगी की तलाश में भटक रहा है । जिसे उसका आंतरिक बोध जकड लेता है । श्यामा अकेलेपन से ऊबी हुई नायिका है । श्यामा नितांत अकेली है । अकेलेपन की स्थिति उसके जीवन को बिखेर देती है । इसीलिए वह अपने में टूटन महसूस करती है, बिखरती है और कटु यथार्थ के रूप में अलग पड़ जाती है । श्यामा उपन्यास में राजीव, प्रिन्सिपल गोपालजी, देव, प्रो.मल्होत्रा, कुमार आदि से थोड़े बहुत समय जुड़े रहने पर भी जीवन में नितांत अकेलेपन का शिकार रहती है । श्यामा के अंदर तरह–तरह के विकल्प जन्म लेते है, उसके अंदर भाव बनते थे मानो बिखरने के लिए ही । देव की मृत्यु के पश्चात अपने अकेलेपन के बोध से टूटती है ।

‘अंतराल’ उपन्यास में श्यामा सुशिक्षित और आधुनिक विचार की स्त्री है, वह पति की मृत्यु के बाद भी बिन्दी, लिपस्टिक का प्रयोग करती है । वह देव से उबर कर कुमार से जुड़ जाने के अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त है । वह अपनी जिम्मेदारियों के समक्ष कुछ निर्णय नहीं ढूँढ़ पाती है । लेकिन कुमार से मानसिक धरातल पर शुरू से अंत तक जूड़ी रहती है । श्यामा चारों तरफ से पुरूष तन से घिरे पाकर भी अपने अस्तित्व को मानसिक स्तर पर विभाजित

रखती है। श्यामा को अपने जीजा की निकटता में एक तरह की वितृष्णा ही थी। कामुक मगरमच्छों की निकटता पाकर उसे ऊब होती थी। वह जानती है कि "केवल छोटी–बड़ी मछलियाँ जो आड़ी–तिरछी लकीरों की तरह पानी को काटती हुई उन जबड़ों के अंदर खिच जाती है। वह उन मछलियों में से एक नहीं है। वह उनसे हटकर है।"[२०] वह मात्र मानसिक स्तर पर कुमार की निकटता चाहती थी। उसकी भावना उसका साथ नहीं देती। श्यामा की ननद सीमा जो स्वतंत्र होकर जीने के लिए अभिशप्त है, उनका निर्णय अपना निर्णय होता है।

इस उपन्यास में हमें प्राचीन और नवीन नैतिक मूल्यों का टकराव मिलता है। राकेशजी ने सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा इन मूल्यों के टकराव को चित्रित किया है। प्रो. मल्होत्रा और उसकी पत्नी तथा कुमार और श्यामा के द्वारा एवम् सीमा के चरित्र के माध्यम से मूल्य–संघर्ष संकेतित होता है। प्रो.मल्होत्रा की पत्नी कहीं भी पार्टी में या घूमने के लिए उनके साथ नहीं जाती। घर में पति–पत्नी के बीच उष्मा नहीं, तनाव है। श्यामा भी अपने पति देव के साथ मानसिक रूप से जुड़ नहीं पायी तो कुमार से जुड़ने के लिए प्रयत्नशील है। कुमार भी विवाह के छः महिने के बाद अलग होने को विवश हो जाता है और विधवा श्यामा से अपने अभाव की पूर्ति करने के लिए प्रयासरत रहता है। सीमा के कई 'बोय फ्रेन्ड' है, जो केवल मनोरंजन मात्र के लिए है। राकेशजी समाज में यह नया नाम लिए आये है। सीमा उन स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो आत्म–निर्भर है और बोय फ्रेन्ड रखना गर्व मानती हैं। इस बात की पुष्टि करते हुए स्वयं सीमा का यह कथन है जो माँ के बारे में कहती है – "पहले वे बड़बड़ाया करती थी, अब समझ गई है कि मुझे ज्यादा तंग करेगी तो मैं उनके साथ नहीं रहूँगी। यही चीज है, जिससे वह डरती है। मैं रात–ब–रात देर–सबेर जब भी आऊँ, जिसके साथ भी आऊँ, अब उनकी नींद नहीं टूटती।"[२१] सीमा अख्तर नामक बोय फ्रेन्ड से जुड़ी है, लेकिन अपनी माँ बीजी की दकियानूसी के कारण उन्हें घर नहीं ला सकती फलस्वरूप तनाव की स्थिति से गुजरती रहती है। सीमा के चरित्र में राकेशजी ने संवेदन हीनता को प्रदर्शित किया है। उपन्यास की विशेषता यह है कि पति–पत्नी के संबंधों में नैतिक मूल्य ह्रास को रूमानी वर्णनों और शैली में चित्रित किया है। यौन, नैतिकता के मूल्य अब खोखले हो गये हैं यौन संबंधों में आधुनिकता का प्रवेश हुआ है।

इस उपन्यास में प्रेम की कल्पना मानव ही सहज मांसल प्रेम की लालसा और अतिसहज आत्मीयता के अन्वेषण की विवशता दर्शाते हुए एक नामहीन वायवी प्रेम संबंध के विकल्प की खोज तक फैली हुई है। उपन्यास का नायक कुमार लता के साथ शादी करके घर बसाना चाहता था, लेकिन लता की माँ के भय से यह नहीं हो पाता। लता कुमार के जीवन में काम मूलक कुण्ठा के बीज बो देती है। बाद में कुमार एक अन्य स्त्री से विवाह भी कर लेता है लेकिन "मुझे उससे सिवाय शरीर के कुछ नही मिला।"[२२] यह कुमार की स्वीकारोक्ति हैं। फलतः पति–पत्नी में दरार उत्पन्न होती है। ऐसी परिस्थिति में विवाहित स्त्री से अलग होने की उसकी सफाई सराहनीय है, "और जो था, वह था केवल एक डर, ! बात अपने तक रहे, किसी को पता न चले। जितना सड़ना है, अंदर ही अंदर सड़ो.. उसी संडांध और जहर से बच्चें पैदा करो और उन्हें भी उसी ढंग से जीने की शिक्षा दो। ... जिनसे निभता है, निभ जाता है, मुझसे नहीं निभ सका।"[२३] कुमार अब अपनी रिक्तता को विधवा श्यामा से भरना चाहता है। श्यामा देव के पूर्व राजनीतिक कार्यकर्ता राजीव से जुड़ना चाहती थी लेकिन यह हो नहीं पाया तो देव से शादी करती है लेकिन संबंध का बोध केवल शारीरिक स्तर पर ही कर पाती है। फलतः श्यामा के अंदर देव के साथ रहकर अंतराल का नासूर बढ़ता चलता है। देव की मृत्यु के बाद कुमार से अपनी रिक्तता भरने का प्रयास करती है लेकिन कुमार को उपले स्तर पर पाती है, जिससे उसके मन में गहरी वितृष्णा होती है। प्रेम विमुखता उनके जीवन को सन्यास का दाम्पत्य जीवन बना देती है। उपन्यास में स्त्री–पुरुष संबंध सामाजिक संदर्भ में कम, मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष के आधार पर अधिक दिखाया गया है। फिर भी प्रेम और विवाह के नाम पर स्त्री–पुरुष के संबंधों में आज जो अंतराल है उसकी व्यंजना संवेदनात्मक ढ़ंग से स्पष्ट है।

संदर्भ सूची

१.	हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. गिरधरप्रसाद शर्मा	५७
२.	हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ गिरधर प्रसाद शर्मा	२०६
३.	हिन्दी उपन्यास	डॉ. सुरेश सिन्हा	३५२
४.	हिन्दी उपन्यास	डॉ. सुरेश सिन्हा	३५१
५.	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	१२१
६.	न आनेवाला कल	मोहन राकेश	१६१
७.	अंतराल	मोहन राकेश	१७५
८.	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२१
९.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१९
१०.	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३८४
११.	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३८३
१२.	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	८६
१३.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१७
१४.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१५
१५.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१६
१६.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१५
१७.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	९
१८.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	६९
१९.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१६२
२०.	अंतराल	मोहन राकेश	९९
२१.	अंतराल	मोहन राकेश	१७५
२२.	अंतराल	मोहन राकेश	२०१
२३.	अंतराल	मोहन राकेश	३०

अध्याय :- ५

मोहन राकेश के उपन्यासों का तात्त्विक विवेचन

(कथानक, कथ्य, चरित्र-चित्रण, देश-काल-वातावरण, भाषाशैली, कथोपकथन, उद्‌देश्य, शीर्षक, प्रारंभ-मध्य-अंत)

५.१	राकेशजी के उपन्यासों का कथानक	१७८
५.१.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का कथानक	१७८
५.१.२	'न आने वाला कल' उपन्यास का कथानक	१८४
५.१.३	'अंतराल' उपन्यास का कथानक	१८९
५.२	राकेशजी के उपन्यासों का कथ्य	१९५
५.२.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का कथ्य	१९६
५.२.२	'न आने वाला कल' उपन्यास का कथ्य	२०१
५.२.३	'अंतराल' उपन्यास का कथ्य	२०५
५.३	राकेशजी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण	२१०
५.३.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास में चरित्र-चित्रण	२११
५.३.२	'न आने वाला कल' उपन्यास में चरित्र-चित्रण	२३५
५.३.३	'अंतराल' उपन्यास में चरित्र-चित्रण	२५५
५.४	देशकाल और वातावरण	२७०
५.५	राकेशजी के उपन्यास की भाषा-शैली	२७७
५.५.१	'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास की भाषा-शैली	२७९
५.५.२	'न आने वाला कल' उपन्यास की भाषा-शैली	२८३
५.५.३	'अंतराल' उपन्यास की भाषा-शैली	२८७
५.६	कथोपकथन	२९५
५.७	उद्‌देश्य	३०१
५.८	शीर्षक	३०४
५.९	प्रारंभ-मध्य-अंत	३०७
	संदर्भ सूची	३१२

सन् १९४०-५० का युग राजनैतिक उथल-पुथल का युग था। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका को मनुष्य ने सहा, देखा और अनुभव किया। बयालीस की क्रान्ति, बंगाल का अकाल, स्वतंत्रता प्राप्ति और सबसे विदारक घटना यानी देश का बँटवारा। जीवित रहने के लिए संघर्ष का अविरत तांता, अस्तित्व का संघर्ष मनुष्य को आदिम बनने के लिए मजबूर करने लगा। विभाजन से घर, मुहल्ले, शहर ही ध्वंस नहीं हुए, मनुष्यता के मापदंड भी हिल गये। जीवन की विद्रुपता, खंडित होते मूल्य, जीवन का बाहरी - भीतरी संघर्ष, तनाव अनेक विसंगतियों का चित्रण उपन्यासों के प्राण बने। इस संदर्भ में डॉ. पुढषोत्तम दूबे का कहना समीचीन है - "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का नया पथ मानववाद, व्यक्तिवाद और अस्तित्ववाद की त्रिभुजाकार घाटी से होकर गुजरता है।"[१] इस पार्श्वभूमि पर उभरते उपन्यास, जिसके संदर्भ में लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं - "आज के उपन्यास साहित्य में जीवन की विद्रुपता, खंडित होते हुए मूल्यों और नवविकसित या अर्धविकसित जीवन-मूल्यों की अच्छी झाँकी मिल जाती है - कथानक , कथोपकथन आदि पर अधिक बल न देकर वह मानव मन की रहस्यमयी और अंधकारपूर्ण गुफाओं में अधिक प्रवेश करता है। दाम्पत्य जीवन में यो उसके बाहर स्त्री-पुरुष संबंधों पर उपन्यासकार द्दष्टिपात कर नारी को नये सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में चित्रित करते हुए सेक्स पर आवश्यकता से अधिक बल दे बैठता है।"[२]

५.१ राकेशजी के उपन्यासों का कथानक :

राकेशजी के उपन्यासों में स्वतंत्र भारत की सामाजिक समस्याएँ जैसे - चोर बाजारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, चारित्रिक एवम् नैतिक पतन, क्षुद्र स्वार्थ और संकीर्णता, मँहगाई, बेकारी, जीवन की यांत्रिकता और ऊब, अजनबीपन, झूठे मुखौटों, दिशाहीनता, जीवन का तनाव, बाहरी भीतरी संघर्ष, भीड़ में व्यक्ति का खोया हुआ लगना आदि कुढपताओं और विसंगतियों का चित्रण किया गया है। इन सभी समस्याओं को लेकर राकेशजी के उपन्यासों का कथानक चला है।

५.१.१ 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का कथानक :

'अंधेरे बंद कमरे' कालक्रम की द्रष्टि से राकेशजी का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास की संपूर्ण कथा चार शीर्षक-हीन खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड का प्रारंभ उपन्यास के वाचक 'मैं' - जो कि कथा का सूत्रधार तथा जिसका नाम मधुसूदन है - की

इस सूचना के होता है कि वह नौ साल बाद लखनऊ से दिल्ली लौटा है और अपने मित्र हरबंस के साथ कनॉट – प्लेस के काफी हाउस में काफी पीता हुआ पूर्व–दीप्ति पद्धति द्वारा उस काल–खंड को प्रस्तुत करता है, जब नौ साल पहले वह बंबई में रहता था और उस महानगर के ऊब भरे जीवन को छोड़कर कहीं चला जाना चाहता था। कथा के अन्य प्रमुख पात्र और मधुसूदन के मित्र हरबंस से उसका परिचय बंबई में ही हुआ था। बंबई से मधुसूदन दिल्ली चला गया था और कस्साबपुरा में ठकुराइन के यहाँ अपने एक अन्य मित्र अरविंद के साथ रहता हुआ 'इरावती' पत्रिका में १६०/– रु. मासिक की नौकरी करने लगा था। बीच–बीच में कस्साबपुरा के निम्न वर्गीय जीवन के आँचलिक प्रसंग, सितारवादक बुढ्ढे इबादत अली और उसकी लड़की खुरशीद का कथांश, कनॉट–प्लेस के रेस्तराओं में व्यतीत होते हरबंस, नीलिमा, शुक्ला, जीवन भार्गव, शिवमोहन, सुरजीत आदि के आधुनिक बौद्धिक जीवन के कथाचित्र, 'इरावती' नामक पत्रिका के मालिक–सम्पादक के शोषक व्यवहार का वर्णन, हरबंस और नीलिमा के दाम्पत्य – जीवन में वैचारिक असंगति से उत्पन्न तनाव के फलस्वरूप हरबंस को शोध करने के बहाने लंदन चले जाना, वहाँ से पत्र लिखकर नीलिमा को बुलाना किन्तु नीलिमा का भरतनाट्यम् सीखने के लिए मैसूर जाने का संकल्प आदि, कथा–प्रसंगों के वर्णन के अतिरिक्त वाचक मधुसूदन के द्वारा 'इरावती' की नौकरी से त्यागपत्र देकर लखनऊ चले जाने की कथा का क्रमानुकूल प्रस्तुतीकरण किया गया है। उपन्यास का प्रथम खंड यहीं समाप्त हो जाता है।

लेखक ने दूसरे खंड की कथा को फिर उसी बिंदु से उठाया है, जहाँ उसने प्रथम खंड के आरंभ में उसे स्थगित कर पूर्व–दीप्ति के द्वारा नौ साल पहले की दिल्ली की उपर्युक्त कथा को प्रस्तुत किया था। अर्थात् वही स्थिति कि मधुसूदन अपने मित्र हरबंस के साथ काफी हाउस में कोफी पी रहा है। नौ साल पहले दिल्ली से लखनऊ जाकर वह छः महीने गाँव में रहा, फिर चार साल एक प्रकाशक के यहाँ तथा सवा चार साल एक अंग्रेजी दैनिक पत्र में सहायक संपादक की नौकरी करके अब दिल्ली के 'न्यू हैरल्ड' में नगर संवाददाता होकर आ गया है। इस खंड के आरंभ तथा बीच में लेखक पत्रकारों के व्यक्तिक तथा सामाजिक जीवन की थोडे विस्तार के साथ चर्चा करते हए फिर मुख्य कथा को विकास देते है। मधुसूदन के एकाध बार पूछने पर हरबंस अपने लंदन–प्रवास के जीवन का सविस्तार वर्णन करता है, कि किस प्रकार एक वर्ष बाद भरतनाट्यम् का प्रशिक्षण लेकर नीलिमा भी लंदन पहुँच गई। लंदन में नीलिमा का उमादत के ग्रुप के साथ युरोप का दौरा करना, ग्रुप के एक बर्मी कलाकार ऊबानू के साथ

नीलिमा का विशिष्ट आसक्ति–प्रसंग, हरबंस और अमृतबाला चावला का भी ऐसा ही प्रसंग, दौरे से लौटकर हरबंस और नीलिमा के बीच भेद और तनाव का और अधिक बढ़ जाना, फिर दोनों का दिल्ली लौट आना, इधर सुरजीत का शुक्ला से शादी कर लेना, हरबंस और नीलिमा दोनों का ही बेहद मानसिक तनाव में दिन व्यतीत करना, एक बार नीलिमा द्वारा भी मधुसूदन को अपनी लंदन–प्रवास के कुछ प्रसंग सुनाना आदि वर्णनों के साथ यह खंड हरबंस और नीलिमा को असंगति, तनाव और विवाद भरे वातावरण में ही छोड़ता हुआ समाप्त हो जाता है।

तीसरे खंड में कथा के विकास और विस्तार की द्रष्टि से दिल्ली के महानगरीय जीवन के वर्णनों के साथ हरबंस–नीलिमा की तनाव भरी गृहस्थ जिन्दगी का वर्णन, उनके बार–बार के विवाद–झगडे, दिल्ली का कला जगत ; काफी हाउसों में चित्र, संगीत, नाटक, राजनीति, कूटनीति तथा आधुनिक जीवन पर होती बौद्धिक बहसें; विदेशी दूतावास, उनके अभिजात्य समारोह; बीच में थोडा–सा कस्साबपुरा, ठकुराइन और उसकी जवान हो गयी बेटी निम्मा का चित्रण, मधुसूदन की निजी नौकरी का विस्तृत वर्णन आदि विभिन्न प्रसंगों को प्रस्तुत करते हुए यह कथा–खंड भी दूसरे कथा–खंड की तरह हरबंस और नीलिमा के नित्य–निमित्त विवाद के साथ समाप्त होता है।

चौथा खंड उपन्यास का अंतिम कथांश है, जिसके आरंभ में रचना के शुरु से चला आया हरबंस और नीलिमा के दाम्पत्य तनाव का सूत्र विद्यमान हैं। नीलिमा 'कला –निकेतन' की ओर से अपने नृत्य का एक सार्वजनिक प्रदर्शन करना चाहती है। हरबंस ऊपरी तौर पर उसे सहयोग करता हुआ भी नहीं चाहता कि नीलिमा अपनी 'स्थापना' हेतु इस प्रकार के तुच्छ व्यावसायिक प्रयत्न करे ; बीच में दुतावास की एक कर्मचारी सुषमा श्रीवास्तव और मधुसूदन का प्रणय–प्रसंग आता है जो दोनों के विवाह की स्थिति तक जाकर इसलिए टूट जाता है, कि सुषमा किसी विदेशी सरकार की एजेंट है। कथा–प्रसंगों के अन्य ब्योरों के साथ ठकुराइन तथा शुक्ला की भी चर्चा है। ठकुराइन अपनी बेटी निम्मा का मधुसूदन से विवाह करना चाहती है, जिसे मधुसूदन अस्वीकार कर देता है और स्वयं भीतर–ही–भीतर एक टीस का अनुभव करता है कि शुक्ला से शादी नहीं कर पाया; नीलिमा के नृत्य–प्रर्दशन की सफलता के बाद उसका और हरबंस का विवाद और उग्र रूप धारण कर लेता है और नीलिमा हरबंस का घर छोड़कर चली जाती है। अंततः एक सुबह अचानक स्वयं लौट आती है और इधर मधुसूदन मानो

चारों ओर से मुक्त होकर अचानक कस्साबपुरा चलने के लिए टैक्सी-ड्राइवर से कहता है और इस तरह एक अचानक-सी स्थिति में उपन्यास समाप्त हो जाता है।

'अंधेरे बंद कमरे' राकेशजी का एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें कथातत्त्व नगण्य-सा है। कृति का जैसा आकार है, उसकी तुलना में कहानी को उतनी प्रमुखता प्राप्त नही हुई है। उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक एक ऐसा परिद्रश्य प्रस्तुत करता है जिसमें महानगरीय जिन्दगी के नैतिक, सांस्कृतिक और कलाजगत के अधिकांश प्रतिमान स्पष्ट हो जाते हैं। उपन्यास में प्रमुख कथा हरबंस और नीलिमा की है - एक सीमित परिवार की है। राकेशजी का ध्यान इस दंपत्ति के जीवन में घटित होनेवाले अनेक प्रसंगों पर केन्द्रित है। प्रत्यक्षतः तो हरबंस और नीलिमा का अन्यद्वन्द्व ही उपन्यास का केन्द्रबिंदु है और उसी के चारों ओर अन्य घटनाएँ घूमती दिखायी देती हैं, किन्तु अप्रत्यक्षतः इन दोनों प्रमुख पात्रों के माध्यम से मध्यवर्गीय वैवाहिक जीवन की संगतियों-असंगतियों और संभावित कठिनाइयों को भी चित्रित किया गया है। सारे उपन्यास का महल जिन कथा-सूत्रों में निर्मित हुआ है, उसमें हरबंस और नीलिमा की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। शेष संबद्ध-असंबद्ध घटना-प्रसंगों में न तो उतनी गहराई है न विस्तार।

आधुनिक बोध की भूमिका पर लिखे गये उपन्यासों का कथानक जिन दो तत्त्वों से जीवंत बनता है वे हैं - द्वन्द्व, अन्तर्द्वन्द्व और चित्रांकन। इस उपन्यास में द्वन्द्व का प्रारंभ तो है, किन्तु उसका विकास नहीं। हरबंस और नीलिमा के मन में अन्तर्द्वन्द्व के जो स्तर हैं, वह सतही, प्रारंभिक और बार-बार आवृति होने के कारण प्रभाव की श्रृंखला में कोई कड़ी नहीं जोड़ते। यदि राकेशजी ने दंपत्ति के अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण प्रसंगों को मौलिकता और विस्तार दिया होता तो कथानक प्रभावक और सघन होता। उसका प्रारंभ जिस परिवेश में और जिस पद्धति पर हुआ है, वह प्रारंभ में जैसी है वैसी अंत तक नहीं रही है। उपन्यास के आरंभ में जैसी सजीवता और प्रभाव है वैसी न तो मध्य में है, न अंत में। मध्य तो कथानक के प्रारंभ की संभावनाओं से अलग भी प्रतीत होता है। साथ ही अंत में नीलिमा, हरबंस और मधुसूदन का जो समायोजन है, वह राकेशजी के मानस से स्वतः स्फूर्त प्रतीत नहीं होता। ऐसा लगता है कि राकेशजी ने मधुसूदन की उपस्थिति में नीलिमा को पुनः हरबंस की रसोई में प्रवेश कराकर आधुनिक जीवन में व्याप्त यंत्रणा बोध से किनारे कर लिया है जो एक स्वयं चेता कलाकार की अंतश्चेतना के विपरीत है।

उपन्यास की प्रमुख कथा के साथ साथ जो अन्य प्रासंगिक कथाएँ उपन्यास के कथानक में मौजुद हैं वे हैं : मधुसूदन, सुषमा श्रीवास्तव, ठकुराइन, शुक्ला, सुरजीत एवम् इबादत अली आदि की कथाएँ। इन कथाओं में सर्वाधिक रोचक प्रसंग ठकुराइन का है। वह कस्साबपुरा की सीलन और बद्बूदार गलियों में भी अपनी जीवंत चेतना को लिए जी रही है। वह उपन्यास की जीवंत पात्र होकर भी प्रमुख कथा-प्रसंग से असंबद्ध है। मधुसूदन एक लंबे अंतराल के बाद दिल्ली लौटा है। प्रथम स्थिति में वह गरीबी, बीमारी, गंदगी और कस्बाई जिन्दगी के प्रति अपना आकर्षण दिखाता है। वहाँ रहकर उसी वर्ग के लोगों के साथ अपने मन की करुणा और सहानुभूति बिखेरता रहता है। न जाने उसका मानस कैसा है कि वह जिन्दगी में रहना भी चाहता है और नहीं भी रहना चाहता। इस कारण वह नगरीय इलाकों की ओर दौड़ता है। उसका वह स्वभाव उसकी स्थिति उपन्यास की कथा को विभक्त कर देती है। यह विभाजन इतना स्पष्ट है कि कस्बाई और नगरीय जिन्दगी में कोई तालमेल कथा के संदर्भ से राकेशजी नहीं बिठा पाये। मधुसूदन उपन्यास की कथा का नेरेटर है। उपन्यास के अधिकांश प्रसंग मधुसूदन द्वारा विश्लेषित हुए हैं। ऐसा लगता है कि उपन्यास में जो परिवेश मूर्तिमान है उन सब का ज्ञान मधुसूदन को है। इसी से वह सब बिंदु पर अपनी उपस्थिति बताता है, किन्तु कहीं भी किसी भी प्रसंग से उसका संसृष्ट नहीं है। वह जैसे सारे घटना-चक्रों से उपर उठकर सब कुछ को देखता हुआ एक कोने में खडा होकर तटस्थ मुद्रा में जीता रहता है। इस प्रकार हरबंस और नीलिमा की कथा का मध्यबिंदु होते हुए भी वह उसका प्राणबिंदु नहीं बन सका। सुषमा श्रीवास्तव एक आधुनिक नारी है, तो अपनी स्वतंत्र चेता संवेदनाओं के कारण अपने ढंग से जीना चाहती है। उसकी यही स्वतंत्र भावना उपन्यास के कथा आयामों में अपने स्वातंत्र्य का उद्घोष करती जान पडती है। शुक्ला और सुरजीत का प्रसंग समसामयिक जीवन की विकृतियों में स्वीकृति की तलाश है। शुक्ला नीलिमा की छोटी बहन होने के कारण हरबंस से जुड़ी हुई है। वह वक्त - बेवक्त विशेषकर मानसिक शिथिलता और चुटीले क्षणों में हरबंस की देखभाल भी करती है। फिर भी हरबंस और नीलिमा की कहानी के बीच उसकी स्थिति अनामंत्रित व्यक्ति जैसी ही है। हरबंस भले ही उसे लंदन बुलाने को उत्सुक रहा हो और शुक्ला की द्रष्टि में भी हरबंस पूर्ण एवम् आदर्श पुरुष हो, किन्तु कहानी की माँग इसके विपरीत है। ऐसी स्थिति में शुक्ला और सुरजीत का संदर्भ कथा के बीच में आकर ठहर गया है। उसने कथा को न गति दी है न कोई ठोस आधार ही प्रस्तुत किया है।

उक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है, कि ठकुराइन, मधुसूदन, सुषमा श्रीवास्तव, शुक्ला और सुरजीत की कथाएँ उपन्यास में अपना स्वतंत्र महत्त्व रखती हैं। उनका समायोजन मूल कथा के साथ नहीं बैठता। हाँ, इतना अवश्य है कि इन कथा प्रसंगों से कथा को रोचकता प्राप्त हुई है और उपन्यास के रोमानी वातावरण में इनसे कुछ अधिक वृद्धि हुई है। सामान्यतः राकेशजी का प्रयास यह रहा है, कि वह इन कथाओं से मूल कथा को गहरा रंग दे सके। वह ऐसा करने में सफल भी हो सकते थे, यदि उसने इन सभी प्रसंगों को किसी-न-किसी स्तर पर हरबंस और नीलिमा की कथाओं से जोड़ दिया होता। अतः कथानक में इन कथाओं की उपस्थिति केवल इतना संकेत करके रह जाती है, कि राकेशजी हमें मध्यवर्गीय पात्रों की कुछेक सार्थक-असार्थक स्थितियों का ब्यौरा दे सके। वैसे यदि दिल्ली जैसे महानगर का परिद्रश्य उभारना ही राकेशजी का लक्ष्य रहा हो, तो भी उसे इसमें अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। यह काम इन कथा – प्रसंगों की अवतारणा किये बिना भी संभव था। यह बिलकुल ठीक है कि इस उपन्यास की कथा का केन्द्रबिंदु हरबंस और नीलिमा की जिन्दगी का बंद कमरा ही है। राकेशजी चाहते तो इसी कमरे की खिडकियों से दिल्ली के रेखाचित्र को और मध्यवर्गीय जिन्दगी को देख सकते थे, पर संभवतः विस्तारप्रियता का लोभ रचनाकार को पूरे कमरे के साथ खुले मैदान में जाने को विवश कर देता है। श्रीकांत वर्मा ने यही बात प्रकारांतर से कहीं है : "मोहन राकेश के मौलिक, साहसिक और फोटोग्राफिक उपन्यास का ड्राइंगरुम कुछ दूर चलकर एक सडक में परिणत हो जाता है, जो दिल्ली की दरिद्र, भयावह और अंधेरी बस्तियों से होकर जब दूतावासों के गंध में डूबी हुई अपने गंतव्य तक पहुँचती है तब पाठक को सारा-का-सारा ड्राइंगरुम भी सडक नजर आने लगता है।"[३] डॉ. राही मासूम रजा ने कथानक की विशेषता बताते हुए लिखा है : " इस उपन्यास की एक खास विशेषता यह है कि इसमें आयी समस्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ रात को ही घटित होती है। यदि कहीं दिन है भी तो 'लावो हीम' में जहाँ मेज की बत्ती बुझाकर रात कर ली जाती है।"[४]

उपन्यास की कथा में जिस अन्विति का अभाव है, उसका दायित्व उपन्यास में आये बेशुमार वर्णनों और विवरणों को हैं। कहीं-कहीं तो ये इतने अधिक लंबे और अनावश्यक हो गये है कि पाठक के हाथ से मूल कथा के सूत्र ही छूटने लगते हैं। वह सोचने लगता है कि वास्तव में यह उपन्यास है या कुछ अलग अलग कहानियों की जिल्दबंदी। उपन्यास के कथानक में इसी कारण बिखराव आ गया है। वह उपन्यास कम, बहुत से संबद्ध-असंबद्ध संदर्भों एवम् घटना-प्रसंगो का विवरण मात्र अधिक प्रतीत

होता है । यह कहना आवश्यक होगा कि इन वर्णनों एवम् विवरणों में औपन्यासिक रोचकता और आकर्षक अवश्य है ।

४.१.२ 'न आने वाला कल' उपन्यास का कथानक :

'अंधेरे बदं कमरे' के ठीक सात साल बाद राकेशजी जब बंद कमरों की कैद से बाहर आये तो उन्हें एक नयी तलाश का प्रश्न आंदोलित करने लगा और वह था, 'न आने वाला कल' का प्रश्न । प्रस्तुतीकरण की अद्वितीयता राकेशजी के इस दूसरे उपन्यास में विद्यमान है । उन्होंने इसे 'एक कथा प्रयोग : एक निर्णय की अनेक प्रतिक्रियाएँ' कहा है । उपन्यास की मूल कथा में नायक मनोज सक्सेना जो कि फादर बर्टन स्कूल में जूनियर हिन्दी शिक्षक है, कुछ वैयक्तिक कारणों से अपनी नौकरी से त्यागपत्र देना चाहता है – दे देता है और उसके इस निर्णायक कृत्य पर होनेवाली उसके साथी–सहयोगियों की विभिन्न प्रतिक्रियाएँ तथा उन पर मनोज की वैचारिक प्रतिक्रियाएँ अंकित की गई हैं ।

संपूर्ण उपन्यास सात छोटे–छोटे कथा अध्यायों में विभाजित है ।

पहले कथांश 'त्यागपत्र' में वाचक मनोज, जूनियर हिन्दी शिक्षक, फादर बर्दन स्कूल में अपनी पत्नी शोभा के साथ स्कूल के ही क्वार्टर में रहता है । निःसंतान शोभा की मनोज से यह दूसरी शादी है । मनोज और शोभा दोनों ही आपस में वैचारिक संगति नहीं बैठा पा रहे और उनका दाम्पत्य जीवन एक नीरस ऊब से भरा हुआ है । मनोज अपनी नौकरी से भी संतुष्ट नहीं है । शोभा ऊबकर अपनी पहली ससुराल खुरजा चली जाती है । वहाँ से पत्र लिखकर कुछ दिनों के लिए मनोज को बुलाती है । अकेला रहकर मनोज इस कथांश में शोभा के पत्र का उत्तर लिखना चाहता है और अपनी नौकरी से त्यागपत्र भी देना चाहता है ; लेकिन दिमागी कश्मकश में कुछ भी नहीं कर पाता और कथांश के अंत में मानो उस कश्मकश से मुक्ति पाकर त्यागपत्र लिखने बैठ जाता है ।

उपन्यास के दूसरे कथांश 'डर' में मनोज के त्यागपत्र पर बर्सर बुधवानी, हेड क्लर्क पार्कर, गिरधारीलाल, बॉनी हॉल, कोहली, जेम्स, मिसेज पार्कर आदि स्कूल के विभिन्न शिक्षकों, कर्मचारियों के विचार, मनोज से उसकी बातचीत वर्णित की गई है । स्कूल के अत्यंत रुक्ष अनुशासन और हेड मास्टर टोनी व्हिसलर के बेहद सख्त स्वभाव

के कारण उक्त सभी लोग मनोज से उसके त्यागपत्र के संबंध में बात करते डरते हैं और दूसरा एक हल्का डर मनोज को भी है कि नौकरी छूट जाने के बाद क्या होगा ? फिर भी इस अध्याय का शीर्षक 'डर' अपेक्षित पूर्णता और स्पष्टता के साथ चरितार्थ नहीं हो पाया है ।

तीसरा अध्याय है 'कुर्सी'। कुर्सी वस्तुतः हेड मास्टर की प्रतीक है । इस कथांश में मनोज के त्यागपत्र पर विभिन्न लोगों की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की गई हैं । आरंभ में मनोज और हेड मास्टर की इसी संबंध में बातचीत है । मनोज जो कि अपनी आंतरिक ऊब, परिवेशगत जड़ता से मुक्ति पाने के लिए या महज एक परिवर्तन के लिए या जीवन के किसी एक नये अनुभव के लिए त्यागपत्र देता है ; जबकि टोनी व्हिसलर समझता है कि मनोज की नियुक्ति डी.पी.आई. की ओर से हुई है इसलिए वह शायद उसे आतंकित करने के लिए त्यागपत्र दे रहा है और इस तरह स्कूल के बाहर टोनी व्हिसलर के खिलाफ जो एक षड्यंत्र है, मनोज भी उसमें शामिल है । जेम्स समझता है कि मनोज सीनियर ग्रेड पाने के लिए यह त्यागपत्र अथवा धमकी दे रहा है । यह कथांश यही समाप्त हो जाता है ।

चौथे कथांश 'सहयोगी' में स्टिवर्ड चार्ल्टन के आमंत्रण पर मनोज शाम को उसके यहाँ ड्रिंक पार्टी में पहुँचता है । पार्टी एक अन्य सहयोगी चैरी के क्वार्टर पर आयोजित होती है । पार्टी का उद्देश्य मनोज के त्यागपत्र से उत्पन्न नयी स्थिति पर विचार करना है । लेकिन वहाँ इस संबंध में बातचीत न होकर चैरी और लेरी दोनों अपने-अपने स्वार्थों और अहम् को लेकर विवाद की स्थिति में बने रहते हैं । मनोज इन लोगों के साथ रहते हुए बुरी तरह ऊबता है । उसका जी मचलने लगता है और पार्टी की समाप्ति पर वह चैरी के क्वार्टर से बाहर आकर लेरी के जाते ही सडक पर के कर देता है और अपनी छाती के कसाव को ढीला हुआ अनुभव करता है ।

पाँचवें कथा-खंड 'नाटक' में स्कूल में प्रतिवर्ष होने वाले सत्रांत के नाटक का वर्णन है । मनोज छुट्टियाँ होने तक स्कूल में ही समय व्यतीत करने के लिए विवश है । विभिन्न कथा-स्थितियों और पात्रों की संगति में इसी समयावधि का वर्णन करते हुए लेखक सूचित करता है, कि मनोज स्कूल के काम के साथ-साथ किसी के पत्र-शायद शोभा के पत्र की प्रतीक्षा भी करता है । जसवंत को जब सिनीयर मास्टर जिमी ब्राइट बेंतों की सजा देता है, तो नितांत यांत्रिक रूप से मनोज उसकी साक्षी दे देता है । रात को स्कूल के हॉल में वह नाटक देखने जाता है । जहाँ नौकर फकीरे की स्त्री काशनी से

उसका हल्का यौनोत्तेजक संस्पर्श होता है। यही संस्पर्श उसे नाटक के बाद डिनर लेते समय बॉनी हॉल के द्वारा मिलता है। मनोज को लगता है कि यह स्कूल, यहाँ के सारे लोग और सभी गतिविधियाँ एक नाटक ही हैं।

छठे कथांश 'सडक' मनोज के चरित्र की उस गति अर्थात् किसी से न जुड़ने की प्रतीक है, जिसके चलते वह अपनी पत्नी, अपने परिवेश, अपनी आजीविका, अपने स्नेही-साथियों और स्वयं तक से कटा हुआ अकेला रहता है। इस अध्याय में वाचक मनोज स्कूल में अपने आखिरी दिन की गतिविधियों का वर्णन करता है। शोभा के एक और पत्र के आ जाने से उसकी चिंता शोभा की ओर मुड़ जाती है। बॉनी हॉल, जसवंत आदि के बारे में सोचता हुआ मनोज स्कूल में अपनी अंतिम 'ड्युटी' आज का डिनर भी पूरा करता है। फिर बाहर आकर मिसेज दारुवाला से थोडी बातचीत करता हुआ पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार बॉनी हॉल के साथ घूमने के लिए माल रोड की तरफ रवाना हो जाता है। मनोज बॉनी के साथ देर तक त्रिसूली रोड पर घुमता रहता है लेकिन दोनों ही अपने विशिष्ट और आत्मलीन स्वभाव के कारण अपेक्षित और संभावित यौन-सुख उपलब्ध न कर ऊबे हुए अपने - अपने क्वार्टर लौट आते हैं। इस अध्याय में मनोज लगातार चलता रहता है। अपने घर से स्कूल, स्कूल से माल, त्रिसूली और हवाघर और फिर लौटकर अपने घर तक; बीच-बीच में उसे कई लोग मिलते हैं, सबसे ज्यादा बॉनी उसके साथ रहती है ; लेकिन मनोज किसी के साथ नहीं रहता। वह लगातार चलता ही जाता है और उसका यह लगातार चलते जाना ही दरअसल 'सडक' है।

'दरवाजे' प्रस्तुत उपन्यास का अंतिम कथा-खंड है। इसमें मनोज स्कूल से जाने की अंतिम तैयारी करते हुए सामान छांटता है कि क्या साथ ले जाना है, क्या गिरधारीलाल के यहाँ छोड़ जाना है और क्या यों ही बाँट देना है ? मकान के दूसरी ओर रहते कोहली और उसकी पत्नी शारदा के वर्णन के समय पाठक यह भी जान लेता है कि शारदा भी कोहली को छोड़कर जा रही है, क्योंकि कोहली 'आदमी' नहीं है। मनोज का स्कूल से अपने शेष वेतन का चैक प्राप्त करना, फालतू सामान लेने आयी काशनी से उसका अधूरा यौन-संसर्ग और परिवेश की ऊब से मुक्ति के एक हडबड़ाहट भरे एहसास के साथ मनोज का बस स्टैन्ड पहुँचना, किन्तु वहाँ जाकर देखना कि अभी तो उसकी गाडी ही नहीं आयी है। कथाक्रम तो यहीं समाप्त हो गया है। लेकिन मनोज अभी भी उस देशकाल से बाहर नहीं हो सका है जिसके लिए वह कथारंभ से ही

प्रयत्नशील है, उसकी गाडी अभी भी नहीं आयी। 'दरवाजे' या 'दरवाजा' जो मनोज के 'बाहर' जा सकने का माध्यम है मानो अभी नहीं खुला।

आलोच्य उपन्यास मिशनरी स्कूल के अध्यापक मनोज की कथा को प्रस्तुत करता है। मनोज अस्तित्व रक्षा के प्रयत्न निरंतर दुःखद अनुभवों से गुजरता है। उसका अकेलापन उसको खाये जा रहा है। परिणामतः वह एक साथ दो छोरों पर लडता है। एक ओर तो वह अपने अकेलेपन से पीड़ित होकर स्कूल से त्यागपत्र देता है और दूसरी ओर अपनी पत्नी शोभा का सहयात्री न बन पाने के कारण पीड़ा बोध की श्रृंखला में नित नई कडियाँ जोड़ता जाता है। मनोज और शोभा का व्यक्तित्व कुछ इस ढंग का है, कि उनमें से कोई भी किसी से समायोजन नहीं कर पाता है या कहें कि वैसा करना नहीं चाहता है। शोभा से विवाह करने से पहले मनोज की जो 'इमेज' दूसरों ने अपने मन में बना रखी थी वह बड़ी धृणित थी। स्वयं शोभा के पिता ने कहा था कि "मैं उस आदमी को शादी के काबिल बिलकुल नहीं समजता ... क्योंकि वह बेहद शराब पीता है और हर सातवें – आठवें दिन एक नई लड़की के साथ रात गुजारता है।" खैर शादी हो गई किन्तु दोनों एक – दूसरें के साथ सहयोग नहीं कर पाये।

'न आने वाला कल' उपन्यास की कथा बहुत सूक्ष्म है। इसमें कथानक स्थूलता के लिए हुए न होकर सूक्ष्मता लिए हुए है। उपन्यास एक मिशनरी स्कूल के हिन्दी अध्यापक की कथा से संबंधित है। अतः प्रमुख घटना स्कूल से मनोज का त्यागपत्र है। मनोज का त्यागपत्र न केवल उससे बल्कि सभी से संबंधित है। उससे उत्पन्न परिस्थिति के सहभोक्ता स्कूल के सभी अध्यापक हैं। इतना ही क्यों मनोज का त्यागपत्र स्कूल के हैड से लेकर चपरासी तक को प्रभावित करता है। राकेशजी ने एक त्यागपत्र की घटना को सारे स्कूल से जोड़ दिया है। लगता है स्कूल और उसका परिवेश भी उपन्यास का सशक्त पात्र बन गया है। यों इस उपन्यास में घटनाएँ नहीं है। बस एक प्रमुख घटना है – त्यागपत्र। शेष सभी उसकी प्रतिक्रियाएँ हैं। ये प्रतिक्रियाएँ और उनसे जुड़े हुए संदर्भ इतने सशक्त है कि कथाहीनता में भी एक कथाभास बराबर बना रहता है। स्कूल का परिवेश, स्कूल के अध्यापक और चपरासी सभी उस पर विचार–विनिमय करते हैं और अपने–अपने ढंग से निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि मनोज के त्यागपत्र की घटना नितांत वैयक्तिक समस्या है; किन्तु राकेशजी ने उसका प्रस्तुतीकरण किया ही इस तरह है, कि वह निजता के घेरे को तोड़कर सामाजिक हो गई है। अतः कथा की द्रष्टि से आलोच्य उपन्यास उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि पात्रों की अस्तित्व रक्षा तथा

अकेलेपन की समस्या से उसका संबंध है। फिर भी समग्र उपन्यास में एक प्रवाह है, एक गति है और उसे बनाये रखने के लिए प्रतिक्रियात्मक संदर्भों का आयोजन करने में राकेशजी सफल रहे हैं ।

प्रमुख कथा मनोज और शोभा की है। प्रासंगिक कथाओं के रूप में शारदा और कोहली, काशनी और फकीरे, टोनी व्हिसलर तथा जेन व्हिसलर आदि की कथाओं को लिया जा सकता है। आधिकारिक तथा प्रासंगिक सभी कथाओं में स्त्री-पुरुष के संबंधों का विश्लेषण हुआ है। इस विश्लेषण में दाम्पत्य संबंधों की विद्रूपताओं एवम् विसंगतियों के बिम्ब बड़े सघन रूप में आये हुए हैं। कथा की विशेषता उसकी प्रवाही गति और रोचकता में निहित है। त्यागपत्र की घटना से जो प्रतिक्रियाएँ एवम् विचारधाराएँ जन्म लेती हैं वे संभाव्य हैं, आरोपित नहीं। इसीसे उनके बीच एक गहरा संबंध-सूत्र दिखाई देता है। कोई भी प्रसंग, परिस्थिति या प्रतिक्रिया ऐसी नहीं है जो असंबद्ध हो। आदि से अंत तक उपन्यास को निरंतर पढ़ा जा सकता है। मनोज का त्यागपत्र जिस अव्याख्येय भय को जन्म देता है, वह सभी के मन में व्याप्त है। चपरासी, बैरा, अध्यापक और ऑफिस कर्मचारी सभी के मन में एक ही प्रश्न है; किन्तु उत्तर सभी के अलग-अलग हैं। एक समस्या पर एक ही परिवेश में अलग-अलग ढंग से विचार-विनिमय और अलग अलग निष्कर्षों की अवतारणा ने कथा को न केवल जिज्ञासायुक्त, रोचक और आकर्षक बना दिया है, अपितु मौलिक भी बना दिया है। अतः इस उपन्यास का कथानक संभाव्यता, रोचकता, जिज्ञासा, मौलिकता, निरंतरता तथा प्रवाहीगुण के कारण अपनी सूक्ष्मता में भी विशिष्ट हो गया है। प्रारंभ से अंत तक मनोज की अस्थिर चित्तता और पात्रों की अस्तित्ववादी चिंतना के आलोक में भी उपन्यास कहीं भी शिथिलता का शिकार नहीं हुआ है। जहाँ हरबंस और नीलिमा के माध्यम से राकेशजी ने देशव्यापी परिवेश को उठाया था वहीं मनोज और शोभा तथा स्कूली जीवन के सहारे एक मिशनरी परिवेश को प्रतिबिंबित किया गया है। "इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष, समाज और देश के विभिन्न संदर्भों के बीच व्यक्ति संबंधों को उभारा गया है।"[५] इसकी कथा व्यक्ति के संबंधों के बीच आयी तनावपूर्ण स्थितियों के सहारे जिस गति से आगे बढी है, उससे तो यही लगता है कि 'न आने वाला कल' की कहानी भावी की प्रतीक्षा-कथा है। स्पष्टतः भावी की यह प्रतीक्षा यहाँ संकेतित है, प्रत्यक्षतः प्रस्तुत नहीं ही गई है। कारण सभी पात्र साथ-साथ जीते हुए भी अकेले हैं और उनका यह अकेलापन सीमित होकर रह गया है। अतः उपन्यास की कथा और अपनी-अपनी सीमाओं में बंद कथा के पात्रों की तलाश का बिंदु एक ही है – ' आने

वाला कल ' । आने वाले इस कल की रूपरेखा किसी के सामने स्पष्ट न होने के कारण कथा में जिज्ञासा तत्त्व बखूबी उभरा है ।

'न आने वाला कल ' उपन्यास एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो एक ओर तो एक नारी का वरण करता है और दूसरी ओर स्कूली परिवेश से संत्रस्त है । उसकी घुटन भरी जिन्दगी अकेलेपन का बोझ ढ़ोते हुए एक ऐसे बिंदु पर आकर रुक जाती है जहाँ से न तो निकलने का उसे सही रास्ता मिलता है और न कोई निश्चित आधार । परिणामतः वह नौकरी से त्यागपत्र दे देता है । यह व्यक्ति है पहले का नरुला और वर्तमान का मनोज सक्सेना । उसके समक्ष सब से बड़ी समस्या है अस्तित्व रक्षण की ।

५.१.३ 'अंतराल ' उपन्यास का कथानक :

'अंतराल ' १९७२ ई. में प्रकाशित राकेशजी का तीसरा उपन्यास है । 'अंतराल ' कथा–शिल्प की द्रष्टि से प्रयोगशील उपन्यास है । बहुत कुछ 'अँधेरे बंद कमरे ' की तर्ज पर कही हुई 'अंतराल ' की कहानी 'अंतराल ' शीर्षक के तीन मुख्य खंडों में विभाजित है । अंतराल – १, अंतराल – २ और अंतराल – ३ के मध्य कई छोटे–छोटे कथांश हैं । जिनमें कहीं क्रमिक गति से, कहीं पूर्व–दीप्ति पद्धति से, कहीं चेतना प्रवाह और कहीं विवरण तथा कहीं डायरी शैली से कथा का प्रस्तुतीकरण हुआ है ।

कथा का सार संक्षेप में इस प्रकार है : अंतराल – १ संप्रति नायक कुमार बंबई के किसी विज्ञान–प्रतिष्ठान में कार्य करता है । उसे आज शाम साढे पाँच बजे टी–सेन्टर पर श्यामा से मिलने जाना है ; उसका फोन आया था । कुमार दफ्तर से निकलता है, बंबई के भीड भरे रास्तों, रास्ते में मिलते लोगों के वर्णन के साथ जब वह टी–सेन्टर पहुँचता है तो श्यामा उसे वहाँ नहीं मिलती । पौने घंटे ब्यौरों के साथ कहानी अतीत की ओर घूम जाती है । कुमार किसी कस्बे में प्राध्यापक है । वहीं एक पार्टी में उसके सहकर्मी प्रोफेसर मल्होत्रा उससे अपनी साली श्यामा का परिचय कराते हैं, कि वह मंडी के एक स्कूल में प्रधान अध्यापिका है और दर्शनशास्त्र में एम.ए. करने के लिए छुट्टी लेकर आई है; और यह भी कि कुमार उसे गाइड कर दे । दूसरे दिन से श्यामा कुमार के घर पढ़ने आने लगती है । श्यामा की पढ़ाई के दौरान दोनों में जो अन्य बहुत–सी बातें होती हैं, उनसे कई कथा–सूत्र भी जन्म लेते जाते हैं । श्यामा विधवा है । शादी के दो साल बाद उसका पति(देव) एक बच्ची छोड़कर मर गया । कुमार का इससे पूर्व लता नाम की लड़की से प्रेम व्यवहार था जिसे समाप्त हुए दो साल बीत गये और कुमार को इस जगह

से कहीं ओर चले जाने की सोचते–सोचते भी दो साल बीत गये । एक बरसाती शाम श्यामा कुमार के साथ खेतों की ओर घूमने जाती है । रास्ते में श्यामा बताती है कि जीजाजी उसके प्रति दूषित यौन–भाव रखते हैं और अब शायद वह जल्दी ही मंडी लौट जाये । कथा–सूत्र यहाँ से फिर पीछे को मुड़कर कुमार के चर्च–गेट से फास्ट ट्रेन में वापस लौटने के बिंदु से जाकर जुड़ जाता है । कुमार बांद्रा पर उतरता है और घर के लिए बस में सवार होता है और कथा फिर वहीं कस्बे के परिवेश में पहुँच जाती है । कुछ देर तक खेत पर रुककर कुमार और श्यामा लौट पडते हैं । लौटने में श्यामा कुमार के आलिंगन के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करती है । फिर दो दिन तक श्यामा कुमार के यहाँ नहीं आती । तीसरे दिन जब वह आती है और उस आलिंगन–प्रकरण पर जब दोनों में बातें होती हैं तो जाहिर होता है कि श्यामा अभी भी अपने स्वर्गीय पति के प्रभाव से मुक्त नहीं है । कुमार श्यामा को अगले स्टेशन पर बिदा करने पहुँचता है और कुमार के घर वापस लौटने के वर्णन के साथ प्रथम कथा–खंड समाप्त हो जाता है ।

अंतराल–२ का कथानक राकेशजी ने अंतराल – १ के टी–सेन्टर वाले उस आरंभिक बिंदु से जोड़ा है जहाँ कुमार श्यामा से बिना मिले अपने घर लौट जाता है । इस खंड की कथा बंबई के उक्त स्थल–प्रसंग से श्यामा के शब्दों से शुरु होती है । टी–सेन्टर पहुँचने में विलंबित हो जाने के कारण वह कुमार से नहीं मिल पाती और लौट आती है । श्यामा की वापसी के रास्ते और समुद्र–तट के लेखकीय दार्शनिक वर्णन के साथ कथा मंडी में श्यामा के घर की ओर मुड़ जाती है । अकेली रहती मानसिक रूप से अशांत क्षुब्ध श्यामा सोचती रहती है ; उस बस्ती के अगले स्टेशन से कुमार की विदाई की याद आती है । अकेलेपन की पीडा से मुक्ति के लिए एक मुद्दत बाद श्यामा ने अब फिर से डायरी लिखना शुरु किया है । डायरी में वह आत्म, प्रेम–भाव, देव, गृहस्थ–जीवन तथा कुमार आदि के बारे में अपने विचार–भाव व्यक्त करती है । अपने विद्यालय की रंजु नामक एक अध्यापिका को शादी के लिए देखने के बहाने वह कुमार को पत्र लिखकर बुलाती है । यहाँ से कथा फिर बंबई के उसी कथा–क्रम से जुड़ जाती है जहाँ से श्यामा टी–सेन्टर से घर वापस लौट रही थी । नरीमान पोइंट, मेरिन–ड्राइव, चर्चगेट स्टेशन तथा अंधेरी आदि के रास्ते से ट्रेन का सफर करने के बाद श्यामा घर पहुँचती है । घर पर बीजी (माँ), सीमा (छोटी बहन) तथा बेबी (पुत्री) के संबंध में आत्मीय–अनात्मीय विचार करती हुई वह थककर सो जाती है तो कथा फिर मंडी के उसी छूटे हुए सूत्र से जुड़ जाती है जहाँ वह कुमार के आने की प्रतीक्षा कर रही है । आज शनिवार है और कुमार को आना है । दिनोंदिन के कार्यों के दौरान श्यामा अपने

अंतर में लगातार कुमार के आ पहुँचने को चरितार्थ करती रहती है। पठानकोट से आने वाली दो बसों के खाली निकल जाने पर आखिरी बस की प्रतीक्षा के दौरान कुमार के आने से पहले ही वह कुमार के आ जाने और उसके बाद के सारे व्यवहार की कल्पना में जी लेती है। लेकिन कुमार आखिरी बस से भी नहीं आता।

अब फिर कथा बंबई–अंधेरी में तब से शुरु होती है जब श्यामा टी–सेन्दर से घर आकर सो गयी है। बेबी को लेकर श्यामा और बीजी में विवाद हो जाता है। श्यामा और बीजी के बीच पत्र–व्यवहार से तय हुआ था कि पूना का घर बेचकर यदि बंबई में रहा जाय तो वह भी मंडी छोड़कर उनके साथ रह सकती है और इसी हेतु श्यामा लंबी छुट्टी लेकर इस समय बंबई आयी है ; लेकिन यहाँ आकर वह पाती है बीजी और सीमा से समायोजन करना बहुत कठिन है। वह चिंतित रहती है। देव को याद करती है कि शादी के तुरंत बाद से ही देव ने उसे कभी भी आत्मीय स्तर पर ग्रहण नहीं किया। ... एक दिन देर रात को जब सीमा शराब पीकर लौटती है तो श्यामा से उसका विवाद हो जाता है। बेबी भी यहाँ आकर उससे कट गयी है। सीमा, बीजी और श्यामा में तनाव बढ़ता ही जाता है।

अंतराल – ३ की कथा बंबई में कुमार के दफतर से शुरु होती है , जहाँ एक दिन अचानक ही श्यामा पहुँच जाती है। दोनों दफतर से बाहर आते हैं, टी–सेन्टर में चाय पीकर चर्च–गेट स्टेशन से दोनों गाडी पकडते हैं। बांद्रा पर उतरकर श्यामा अपने ही आग्रह से कुमार के घर जाती है। कुमार का अस्त–व्यस्त और गंदा कमरा। वहाँ चाय पर दोनों में आत्मीय वार्तालाप होता है, जिससे श्यामा को जानकारी मिलती है कि इस बीच कुमार ने विवाह किया था, लेकिन छः माह से अधिक संबंध न रह सके। काफी देर तक बातें करने के बाद जब श्यामा चलने को कहती है तो कुमार उसे बल से प्राप्त करने का प्रयत्न करता है लेकिन श्यामा अपने आप को बचा लेती है।

अगली सुबह जब कुमार सोकर उठता है तो उसकी पूर्व–स्मृति में कथा वहाँ से आगे बढ़ती है जब श्यामा उसे धकेलकर चली गयी थी। पूर्व–कथा–संदर्भ में कुमार आत्म–ग्लानि से डूब जाता है और फिर स्टेशन तक छोड़ आने के लिए श्यामा से कहता है। श्यामा इनकार कर देती है। और कल की घटना की कुल दार्शनिक–सी व्याख्या कर कुमार को ऊपरी क्षमा और सांत्वना देकर चली जाती है। कुमार चाय बनाने में व्यस्त हो जाता है और कथा अंततः समाप्त हो जाती है।

'अंतराल' एक भ्रमित, संशयग्रस्त आधुनिक नारी की कथा है । श्यामा के विवाह के डेढ वर्ष पश्चात् ही उसके पति देव की टाइफाइड से मृत्यु हो जाती है । वह डेढ वर्ष भी उनका जीवन औपचारिकताओ में ही बीता है । उस समय श्यामा ने जो कुछ उससे चाहा उसे नहीं मिला । देव के साथ कभी भी बहुत निकटता का अनुभव उसे नहीं हुआ । देव ने सदैव उसके साथ एक तटस्थ भाव अपनाये रखा । फिर भी श्यामा के वैवाहिक जीवन का अध्याय देव की मृत्यु के साथ समाप्त नहीं हुआ । वह कभी भी अपनी जिन्दगी का खाता देव के साथ बंद नहीं कर पायी । वह अपनी सारी शिकायतें उसी पर लादकर जीना चाहती है क्योंकि और किसी तरह से जीना उसे संभव ही नहीं प्रतीत होता है । श्यामा के अनुसार "वह डेढ साल भी मेरे साथ जिया नहीं था, सिर्फ मुझे झेलता रहा था । तुम ऐसे आदमी के लिए क्या कहोगे जो कभी खुश दिखायी न दे, फिर भी कभी डाँटे नहीं, कभी शिकायत मुँह पर न लाये ? वह इतना चुप रहता था कि कभी मुझे देख भी लेता किसी के साथ कुछ करते, तो शायद दूसरी तरफ मुँह कर लेता । और मैं इस उदासीनता के लिए न तब क्षमा कर सकती थी, न अब कर सकती हूँ ।"[६] देव यदि जिंदा होता तो वह उसके साथ लड-झगड सकती थी । तब भी यदि देव की चुप्पी बनी ही रहती तो वह उसे छोड़ भी सकती थी । लेकिन अब देव के साथ उसका संबंध उसी जगह रुक गया है जहाँ वह देव की मौत का दिन था । देव और श्यामा के संबंधों का विश्लेषण श्यामा द्वारा ही कराया गया है । श्यामा का द्रष्टिकोण एकपक्षीय है । उसके द्वारा पूरी स्थिति का वास्तविक परिचय मिलना संभव नहीं है । श्यामा के कुमार के साथ वार्तालाप में ही हमें उसके वैवाहिक जीवन की झाँकी भी मिलती है । यह झाँकी एक 'द्रश्य विशेष को ही प्रस्तुत कर सकती है पूरे परिद्रश्य को नहीं उभार सकती । इस संदर्भ में महेन्द्र भल्ला के इस कथन में वजन प्रतीत होता है कि "उपन्यास में बिखरी अनेक गहरी अंतद्रष्टियाँ मात्र सोच या वार्तालाप के टूकडों के रूप में लायी जाने की अपेक्षा यदि स्थितियों से उभारी गयी होती हो उपन्यास में ज्यादा जान होती । उपन्यास यह जरुर दर्शाता है कि मूलतः प्रेमचंदीय संवेदना से लिखना शुरु करके राकेश 'अंतराल' तक पहुँचते - पहुँचते कितना बदल गये थे ।"[७]

श्यामा एवम् कुमार के संपर्क द्वारा राकेशजी ने मानव की स्वाभाविक संबंध के लिए छटपटाहट को व्यक्त किया है । श्यामा मंडी के एक हाईस्कूल में अध्यापिका के पद पर कार्य करती है । वह अपनी बहन के यहाँ कुछ दिन के लिए चली जाती है । वह दर्शनशास्त्र में एम.ए. करना चाहती है । उसके जीजा प्रोफेसर मल्होत्रा उसका परिचय प्रोफेसर कुमार से कराते हैं । वह प्रोफेसर कुमार से श्यामा को पढ़ाई में सहायता करने

के लिए कहते हैं। इस प्रथम परिचय में श्यामा एवम् कुमार एक–दूसरे में कोई रुचि नहीं लेते। उनकी तटस्थता ही उनका परिचय है। लगता है दोनों ही अपने परिचय का दायरा छोटा, और छोटा करते–करते इतना छोटा कर लेना चाहते हैं कि वह एक बिंदु मात्र रह जाये।

श्यामा और कुमार का परिचय बढने लगता है और फिर यह परिचय आत्मीयता में बदल जाता है। यह परिचय कभी भी प्रेम में नहीं बदल पाता। श्यामा स्वयं को पूरी तरह खोलकर कुमार के सामने रखने का प्रयत्न करती है। वह अपने पूर्व जीवन की सभी घटनाओं का लेखा–जोखा कुमार को दे देती है तथा कुमार के विषय में भी सब कुछ जानने की लालसा रखती है। कुमार अपने प्रणय–प्रसंगों की चर्चा इस प्रकार कर लेता है कि जैसे किसी दूसरे की बात कर रहा हो। श्यामा कुमार से पढ़ाई के बारे में कम और अपने बारे में अधिक बात करती है क्योंकि उसे लगता है कि कुमार ही एक ऐसा व्यक्ति है जिससे बात की जा सकती है। वर्षा के एक दिन वह कुमार को खेतों की ओर घुमने ले जाती है। वहाँ वे वर्षा में भीग जाते हैं। ऐसे में लौटते समय कुमार अचानक उसे अपनी बाहों के वृत में कस लेता है और अपने होठों से उसके होठों को ढक लेता है, कुमार का यह व्यवहार अस्वाभाविक नहीं है तथा श्यामा भी इस स्थिति के लिए उतनी ही उत्तरदायी है जितना कुमार। श्यामा अपने चरित्र का विश्लेषण करने का असफल प्रयत्न करती हुई वहाँ से चली जाती है। वह कुछ समय बाद कुमार को बुलाने के लिए मंडी से एक पत्र लिखती है जो उसे नहीं मिलता।

स्त्री–पुरुष संबंधों के साथ ही इस उपन्यास में एक विधवा स्त्री से उसकी सास–ननद के संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है। श्यामा अपनी सास को प्रतिमाह कुछ रुपया भेजती है इसीलिए उनके लिए उसका अस्तित्व बना रहता है अन्यथा उन्हें उसकी कोई जरुरत नहीं है। अपने अकेलेपन से ऊबकर वह अपनी सास–ननद के साथ बंबई में रहने का निर्णय कर साँझा फ्लेट ले लेती है। बंबई में आने पर उसे अपने निर्णय पर खेद होता है; क्योंकि न उसका बीजी और सीमा के साथ समायोजन होता है और न कुमार के साथ उसका संबंध कोई निश्चित दिशा ग्रहण कर पाता है। कुमार के घर पर कुमार का उससे शारीरिक संबंध स्थापित करने की कोशिश उसे वापस मंडी लौटने का निर्णय लेने में सहायता करती है। श्यामा और कुमार के मध्य अनेक बार स्वाभाविक संबंध स्थापित होने के अवसर आते हैं, किन्तु श्यामा का उससे बचना और

विरोध करना इस बात को सूचीत करता है, कि वह अपनी इच्छा को दबाती ही नहीं रहती किन्तु इस इच्छा को नकारती भी जाती है ।

'अंतराल' की मुख्य कथा श्यामा की कथा है । इस कथा में जो अन्य प्रसंग आये हैं वे श्यामा की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने के लिए ही लाये गये है । श्यामा की अधिकांश कथा उसी के द्वारा कही गयी है, अपनी मनोवृति का वह अक्सर विश्लेषण करती रहती है, किन्तु इससे उसका चरित्र और अधिक उलझा हुआ प्रतीत होता है ।

उपन्यास पूर्व-दीप्ति शैली में लिखा गया है । इसका एक परिच्छेद वर्तमान की कथा को लेकर चलता है और दूसरे में विगत की घटनाओं का वर्णन है । यह क्रम प्रारंभ से लेकर अंत तक दोहराया गया है । यह शैली इस उपन्यास का सब से कमजोर पक्ष है । इससे कथा में ठहराव आ गया है और पाठक की रसमग्नता बाधित हो गयी हो ऐसा प्रतीत होता है । जैसे ही पाठक का एक स्थिति के साथ तादात्मय स्थापित होता है, लय टूट जाता है । "औपन्यासिक लय का अभाव मोहन राकेश के सभी उपन्यासों में खटकता है । वास्तव में मोहन राकेश अपनी कहानी कला तथा नाट्य कला की कुशलता उपन्यास कला में आजमाते हैं । इस लिए उपन्यास में कथात्मकता तथा नाट्यात्मक अंश तो सशक्त हो जाते हैं, लेकिन उपन्यास की लय को इनसे ठेस पहुँचती है ।"[८] उपन्यास में स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक संबंध के लिए छटपटाहट का चित्रण बहुत प्रभावी है ।

उपन्यास में अनेक नाटकीय स्थितियों का चित्रण भी है । श्यामा का कुमार से टयुशन करना, पढ़ते-पढ़ते अन्य बातें करना, वर्षा में खेतों में घुमना, कुमार का श्यामा को बाहों में कस लेना, कुमार का श्यामा से अगले स्टेशन मिलना, श्यामा का बंबई में कुमार के घर जाना एवम् वहाँ कुमार का उससे शारीरिक संबंध स्थापित करने का प्रयास करना आदि । महेन्द्र भल्ला की द्रष्टि में 'ऐसा भी नहीं है कि इन स्थितियों से कोई नयी सच्चाई या नई सूक्ष्मताओं को उघाड़ा गया हो ।"[९] इस कथा में सत्य का अंश बहुत कम है । ये स्थितियाँ बहुत स्वाभाविक हैं और स्त्री-पुरुष के संबंध के लिए अनिवार्य न सही, स्वाभाविक तो हैं ही । यहाँ स्वाभाविक संबंधों की छटपटाहट से जो आकर्षण और पैनापन आ गया है, वही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

यह वह उपन्यास है, जिसका प्रथम आलेख कई वर्ष पहले 'धर्मयुग' में 'नीली रोशनी की बाहें' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था । वर्तमान युग में नारी पुरुष के संबंधों में

निरंतर जो जटिलता आती जा रही है और जो एक नामहीन रिश्ता विकसित होता जा रहा है उसे ही आलोच्य उपन्यास का विषय बनाया गया है। सचमुच कुछ संबंध ऐसे भी होते हैं जिन्हें कोई नाम नहीं दिया जा सकता; किन्तु ये नामहीन संबंध कई बार अन्य संबंधों की तुलना में अधिक गहरे और सूक्ष्म होते हैं।

राकेशजी के तीनों उपन्यास आधुनिक मानव के अन्तर्द्वन्द्व, निर्णय की दुविधा, अकेलेपन की यंत्रणा आदि के साथ-साथ, भीतरी-बाहरी कई प्रकार की अनवरत उलझनों को स्पष्ट करते हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' में व्यक्ति - व्यक्ति के संबंधों की टकराहट, अन्तर्द्वन्द्व और तनाव को अभिव्यक्ति प्रदान की है तो 'न आने वाला कल' में अस्तित्व की चिंता में घुलते जाते पात्रों का विशद् अंकन किया गया है। तीसरे उपन्यास 'अन्तराल' में राकेशजी ने दाम्पत्य संबंधों को एक ओर ही स्तर पर परखा है। अतः कहा जा सकता है कि राकेशजी के उपन्यास आधुनिक जीवन की असंगतियों और विडंबनाओं का विशाल शब्द-चित्र है।

७.२ राकेशजी के उपन्यासों का कथ्य :

राकेशजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी उपन्यास की मूल संवेदना को आधुनिकता से सम्पन्न किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में आज के मनुष्य के पारस्परिक संबंधों की वास्तविकता को अत्यंत सूक्ष्मता एवम् कलात्मकता के साथ उजागर किया। बदलते हुए सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में मानवीय संबंधों के शुक्ल-कृष्ण पक्षों की वस्तुगत पडताल उनके कथा लेखन की अपनी विशेषता है। उनके तीन उपन्यास प्रकाशित है - 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अन्तराल'।

राकेशजी के उपन्यासों का कथ्य विवाह और मुक्ति, बंधन और स्वातंत्र्य तथा स्वीकार और अस्वीकार के संघर्ष की भूमिका पर प्रस्तुत हुआ है। 'न आने वाला कल' अस्तित्व के संकट का प्रतिबोधक है। उसमें जिन स्थितियों का आलेखन है, जिन संदर्भों की पहचान है, वह अलगाव, अजबनीपन और आत्म-निर्वासन के आसपास है।

वस्तुतः राकेशजी का औपन्यासिक मानस एक ऐसा दर्पण है, जिसमें स्वातंत्र्योत्तर समाज की विभिन्न छवियों, प्रतिछवियों के रंग दिखाई देते है। जिसमें मध्यवर्गीय समाज की जो तस्वीर राकेशजी के उपन्यासों में है, उसकी रूपरुखा की एक पहचान उनकी कहानियों के माध्यम से भी की जा सकती है। राकेशजी का कहानी साहित्य त्रिपक्षीय है। उसमें एक ओर आजादी, देश के विभाजन और स्वतंत्र भारत की कतिपय

समस्याओं का चित्रांकन है, तो दूसरी ओर उनकी कुछेक कहानियों में राजनैतिक और नैतिक संदर्भ भी मिले हुए हैं । कतिपय कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें व्यक्ति और उससे संबंधित समस्याओं को भी उभारा गया है । उपन्यासों की स्थिति कहानियों से एकदम भिन्न तो नहीं है, किन्तु संवेदना और धारणा के धरातल पर वे भी काफी सशक्त और काफी आधुनिक हैं । उनके तीनों उपन्यासों में मानव–जीवन के जीवंत पहलु, स्त्री–पुरुष के संबंधों और उससे उत्पन्न द्वन्द्व–प्रतिद्वन्द्व और आंतरिक द्वन्द्व को भी उभारा गया है । "मोहन राकेश के तीनों उपन्यास आधुनिक मानव के अन्तर्द्वन्द्व, निर्णय की दुविधा, अकेलेपन की यंत्रणा आदि के साथ–साथ भीतरी–बाहरी कई प्रकार की अनवरत उलझनों को स्पष्ट करते हैं ।"[१०]

४.२.१ 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का कथ्य :

यह राकेशजी का पहला बृहत् उपन्यास है । इसका प्रकाशन १९६१ ई. में हुआ था । राकेशजी ने महानगरीय जीवन को स्वयं भोगा था । वे घुटती, तडपती आत्माओं की दारुण स्थिति के प्रत्यक्ष साक्षी रहे । प्रस्तुत उपन्यास में उसी परिवेश में प्राप्त जीवन के गहरे सत्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास उन्होंने किया है । इसकी सृष्टि में लेखक ने जिस प्रामाणिकता, साहसिकता और मौलिकता का परिचय दिया है वह सराहनीय है । यह राकेशजी का मौलिक, साहसिक और फोटोग्राफिक उपन्यास है ।

'अंधेरे बंद कमरे' दिल्ली के अभिजात्य वर्ग के जीवन और शिक्षित पति–पत्नी की समस्याओं तथा सम–विषम मानसिक दशाओं के वैचारिक स्तर पर आधारित उपन्यास है । "इसमें प्रेम की असली स्थिति की खोज, परिप्रेक्ष्य के अपरिजात्य बोझ से उत्पन्न अधूरे नैराश्य का गवेषण एवम् भटके, उखडे और परंपरागत सूक्ष्म संस्कार भावों के जकड़े व्यक्तियों की दर्दनात्मक अन्तर्कथा का संवेदनामूलक अध्ययन है ।"[११] इसकी राग संवेदना प्रेम की अंतर्धारा के आसपास बिखरी पडी है । वास्तव में यह उपन्यास आधुनिक मानव–जीवन की विसंगतियों को आधारभूमि बनाकर अपने में कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तिगत एवम् सामाजिक समस्याओं को समेटे हुए हैं । " 'अंधेरे बंद कमरे' में ऊँचा उठने की महत्त्वाकांक्षा और जीवन की विषम परिस्थितियों की टकराहट के परिणामस्वरूप जिन्दगी की स्वस्थ राह से भटककर पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन के टूटने की कथा के माध्यम से वर्तमान जीवन के विविध क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं और स्थितियों तथा जीवन मूल्यों के विघटन तथा नव संस्कार का चित्रण है ।"[१२] इस उक्ति का सार तो

यही निकलता है, कि उपन्यास में अन्ततः परिवेश का एक प्रकार से विक्षोभमूलक किन्तु संतुलित अध्ययन है। पति–पत्नी के रति भाव की समस्या अवश्य केन्द्रस्थ प्रतीत होती है, किन्तु यह उसकी परिधि नहीं हो सकती।

आलोचक डॉ. इन्द्रदान मदान के अनुसार – "यह अकेलेपन के साहित्यिक रूपायन का उपन्यास है। मुझे लगा है कि मोहन राकेश किसी तरह महानगरी में अकेलेपन की उस बाहरी अनुभूति को अभिव्यक्ति देना चाहते हैं जिसके मूल में स्नेहहीनता है, मानवीय संबंधों की अर्थहीनता है।"[२३]

उपन्यास में अकेलेपन को आँकने का प्रयास परिस्थिति में नहीं, स्थिति में किया गया है। अर्थात् इस आंतरिक समस्या का संबंध, बाहर से बढ़कर व्यक्ति के भीतर से है। हरबंस या नीलिमा के इस भीतरी मन को खण्डित भी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह खण्डित होने की पीड़ा से अभिभूत है। इसमें अतृप्त प्रेम की छटपटाहट है। नामहीन मधुर संबंधों की सार्थकता की कल्पना ये नहीं करते। वास्तव में अच्छे संबंध नामहीन होते हैं, क्योंकि वहाँ कोई भी नाम परिपूर्ण नहीं होता। प्रेमिका या पत्नी केवल वही रही तो वह अधूरा नाम है। उसे समय और माँग के अनुरूप मित्र, पथ–प्रदर्शिका, माँ और नटखट बहन भी बनना पड़ता है और पुरुष वैसे ही अपने विभिन्न आयाम दिखाता है। तभी से संबंध नामहीन होते हैं और सुंदर होते है। ये असल में भाव परिवर्तन की दिशाएँ हैं। ये पति–पत्नी का संबंध आनंददायक नहीं बन सकता। हरबंस ने पहले नीलिमा के लिए आजादी के सारे रास्ते खोल रखे थे। पर विवाह के ठीक पश्चात् उसने अपनी इस उदारता पर खेद प्रकट करना शुरु किया, पर उन दरवाजों को बंद भी नहीं कर पाता, इसलिए वह एक परिस्थिति न होकर स्थिति बन गई, कुढ़न बन गई और बाकी जीवन पर हावी हो गई। एक द्रष्टि से यह प्रेम के व्यापार में प्रदान किये गये झूठे आश्वासन का ही परिणाम है, जिसे देकर हरबंस दुःखी है और नीलिमा को पाकर भी सुखी नहीं है। उसने एक तनाव को जन्म दिया है, जो प्रेम है, प्रेम की कमी से उत्पन्न है।

इस उपन्यास में प्रेम एवम् मनः तृष्टि की खोज है, खोज की विफलता है, विफलता की टीस है, तनाव है और तनाव में दर्द है। अकेलेपन से उबरने का एकमात्र पथ है – प्रेम। बिखरे मनुष्य को वही फिर से बाँध सकता है, उखड़े व्यक्ति को शांति और राहत दे सकता है। प्रेम कुछ परिवर्तन चाहता है, परिवेश का या उत्थान पतन का। पुराने जमाने में शायद मायके जाने की कथा में यह अपने आप सम्पन्न होता

था। दूरी प्रेम को फिर पनपाती है। यों हरबंस और नीलिमा में भाव की एकरसता के कारण भी ऊब के क्षण आते होंगे। हरबंस जब विदेश चला जाता है तो यह सुस्पष्ट है नीलिमा के शब्दों में – "प्रेम एक तरह की मान्यता है जो हम एक दूसरे को देते हैं।"[९४]

परंतु हरबंस के लिए प्रेम एक सामान्य मान्यता से कुछ अधिक महत्त्व की वस्तु है। मान्यता को वह आरंभ मात्र मानता है। उसका आशय है – " प्रेम दो आत्माओं को, एक दूसरे को समृद्ध बनाने के अनवरत संघर्ष का नाम है, कभी न रुकनेवाले संघर्ष का, दो आत्माओं के सहयोग में ही उसकी पूर्ति नहीं हैं, उस स्थिति में एक जड़ता आ सकती है, एक सडांध पैदा हो सकती है। उसमें तो दोनों का निरंतर विकास आवश्यक है जिसके लिए उनके सामने एक ही 'विजन' होना चाहिए।"[९५] एक ही विजन का मतलब उस विचार साम्य एवम् समान द्रष्टिकोण। यही तो इन दोनों में सम्पन्न नहीं हो सकता। हरबंस महत्त्वाकांक्षी है और नीलिमा भी। हरबंस नीलिमा को शाब्दिक प्रोत्साहन तो दे पाता है, परंतु उसकी आकांक्षा पत्नी को बाँधकर रखना चाहती है।

प्रेम के क्षेत्र में हरबंस यह प्रकट नहीं कर पाता कि असल में वह क्या चाहता है ? उसकी सारी कोशिश इतनी ही है कि वह क्या नहीं चाहता ? वह उल्टी अभिव्यक्ति भावलोक में कुछ और सनसनी पैदा कर गुजरती है। उसकी वाणी, उसके प्रेमपत्र, उसका विदेश प्रस्थान, उपन्यास लिखने की असफल कोशिश, मित्र के सम्मुख दिल खोलने का प्रयास सब उस वांछित वस्तु की खोज की प्रक्रिया मात्र है। सही मानो में प्रेम की परिभाषा देने के प्रयास में हरबंस और नीलिमा अपने मनोगत भावों को रुपायित करने का ही प्रयास करते हैं। नीलिमा उस लंबे अंतराल की सुदीर्घ पत्र परंपरा से इतना जान पाई कि हरबंस जो चाहता है, वह उसके पास नहीं है। उसने स्पष्ट कह दिया – "तुम्हें मेरे अंदर वह स्त्री नहीं मिल सकी जिसे तुम मन से प्यार कर सको। इसलिए तुम्हारा मन भटकता है। चाहे तुम किसी और को नहीं चाहते हो, मगर कुछ और जरुर चाहते हो, वह कुछ जो तुम्हें मेरे अंदर नहीं मिलता।"[९६] एक कटु सत्य यह भी है कि हरबंस केवल पाना चाहता है, देना नहीं, आत्मसमर्पण चाहता है, लेकिन स्वयं समर्पित नहीं हो सकता। यह आधुनिक बुद्धिजीवियों के जीवन की विडम्बना है।

पाने की भूख उसमें अधिक है, पर वह पत्नी के लिए मित्रों से मिलने तक की आजादी मन से नहीं दे पाता। वह नीलिमा के अहम् का आदर नहीं कर सकता, किन्तु अपने अहम् का आदर चाहता है। अन्य पुरुषों से पत्नी का खुला बर्ताव देखकर वेश्यावृति तक के शब्द उसके मुँह से हठात् निकल पडते हैं। उसका कुढ़ना आत्महत्या

के बारे में सोचने के लिए उसे मजबूर करता है – "मैं वर्षों से अपने अंदर तिल तिल करके गल रहा हूँ। मुझे कई बार लगता है कि मेरे लिए एक ही उपाय है कि अपने जीवन का अंत कर दूँ।"[७७] उसकी रिक्तता कभी भरती नहीं है। भर जाने की संभावना भी नहीं दिख पडती। "वह दस साल पहले जो कुछ मुझे दे सकती थी, वह आज भी नहीं दे सकती, और दस साल गुजर जाते तो भी न दे पाती।"[७८] इस कारण वह सदा के लिए उससे नाता तोड़ना चाहता है।

हरबंस समझौता नहीं कर सकता। समझौता मानो उसके लिए मृत्यु से बदतर है। दूसरा मार्ग है – सहना। पर वह यह भी जानता है कि एक–दूसरे को सहते जाना जीवन नहीं है। वह सहने का प्रयास नहीं करता। वह जीवन की पूर्णता की खोज करता है और जिस पथ में वह है, वहाँ पूर्णता एक दिवा–स्वप्न मात्र है। इसका कारण नीलिमा का चरित्र नहीं, अपने अंदर की द्विधात्मक वृत्ति है। हरबंस में आधुनिक चेतना को स्वीकारने की इच्छा तो है, पर वह मध्ययुगीन सामंती सभ्यता से बूरी तरह ग्रसित है। अतः इस नये परिवेश में उसका यह व्यक्तित्व आरोपित–सा लगता है। उसकी आधुनिकता अपने तक ही सीमित लगती है। "उसकी अन्तहीन झल्लाहट, खींच, निराशा, कुण्ठा और वितृष्णा, आरोपित, असंतुलित और रुग्ण लगती है या बेचकानी सतही।"[७९]

हरबंस के सामने प्रेम के आत्म समर्पण रूप का एक उदाहरण शुक्ला के रूप में विद्यमान है जो उसके चप्पलों तक का ख्याल रखती है। अप्राप्य के प्रति गहरी संवेदना और आदर भाव तथा रागात्मक आकर्षण उत्पन्न होना सर्वथा स्वाभाविक है। फिर वह आकर्षण सामने है तो प्राप्त गंभीर नारी के प्रति विकर्षण होना न्यायसंगत न होने पर भी काम मनोविज्ञान के संदर्भ में असंगत नहीं है। उसने आरंभ में यह झल्लाहट भी प्रकट की है कि लोग उसके घर में उससे मिलने नहीं आते, अपितु उसके बहाने उसकी साली से मिलने आते है। यह कौटुम्बिक शांति की बात मात्र नहीं हो सकती। इसके पीछे एक अज्ञात शक्ति भी काम करती है। अतः हरबंस की यह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति विचित्र होते हुए भी यथार्थ है।

घर और बाहर का अस्तित्व यहाँ भी एक विशेष परिप्रेक्ष्य में ढूँढ़ा जा सकता है। नीलिमा के गंभीर व्यक्तित्व की तुलना वह शुक्ला की शालीनता एवम् सेवा–भाव से करता नजर आता है। शुक्ला के प्रति उसके मन में प्रेम का भाव अंकुरित है। "चेतन मन उसे भले ही बेटी समान समझे, किन्तु भार्गव, सुरजीत और सूदन से ईर्ष्या करना

उसकी शुक्ला के प्रति सैक्स भावना को ही दर्शाता है।"[२०] वह नीलिमा के जन्मदिन को भूलता है, पर शुक्ला को उसके जन्मदिन पर बिना भूले शुभकामनाएँ भेजता है।

हरबंस और मधुसूदन दोनों हृदय से सिक्त है। उनके अकेलेपन की टीस है, एक अभाव है। यह अभाव अभीसिप्त प्रेम का है। किन्तु यही अर्थवत्ता में दोनों प्रेम करने में असमर्थ हैं। ये महानगर के तथाकथित बुद्धिजीवी समाज की उत्पति है, जो ओढ़ी हुई सभ्यता के कारण प्रेम के लायक खुले वातावरण का निर्माण नहीं कर सकते। राकेशजी ने इस प्रेम के क्षेत्र में भी युगबोध का प्रमाण दिया है।

उधर नीलिमा के प्रेम में झुकने और आत्मसमर्पण करने में इन्कार नहीं है। किन्तु व्यक्तिहीन समर्पण को भी वह स्वीकार नहीं करती। विदेश में ऊबानू के आत्मसमर्पण और हर बात में हाँ में हाँ मिलाने की प्रकृत्ति को भी वह पसंद नहीं कर पाती। वहाँ वह जो चाहे कर सकती थी। पर यौन परिभोग के अवसरों से वह अपने को बचाती है। वह प्रेम का वर्तमान जी नहीं पाती। उसके पास उसका अपना भूत मात्र है। वह उन्मुक्ता पति पर आरोप लगाती है – "मैं जानती हूँ हरबंस मेरे बिना नहीं रह सकता ... पर उसी तरह जैसे वह दोनों वक्त खाना खाएँ बिना नहीं रह सकता, उसके लिए यह सिर्फ भूख का सवाल है और कुछ नहीं। पर मैं सिर्फ उसकी भूख का सामान बनकर नहीं रहना चाहती।"[२१] ऐसे निर्णय वे दोनों कई बार लेते हैं। संबंध-विच्छेद की बात भी सोचा करते हैं। पर एक असहाय परिस्थिति में उनका सैक्स संबंध बना रहता है। वे प्रेम की खोज उसी गृह में करते रहते हैं, पर एक दूसरे से विमुख होकर। उस अर्थहीन खोज का कारण संस्कार है। संस्कार से अभिभूत होकर वे सैक्स से कुछ अधिक की खोज करते हैं, जो असंभव न होते हुए भी उनके अपने निजी प्रसंग में एक असंगत प्रयास है। उनके रिश्तों में पहले से ही कहीं कुछ दोष रह गया जिसे अब संभालना, सुधारना प्रायः असंभव है। अंत में असहाय समझौता होता है, किन्तु बड़ी देर से।

मधुसूदन का प्रेम पत्रकार सुष्मा के प्रति जगा हुआ था। पर उसे लगा कि वह मधुसूदन को इस्तेमाल करना चाहती है। एक द्रष्टि से उसने दूर के अनुभवों से लाभ उठाया। वह कस्साबपुर की ठकुराइन की बेटी निम्मा की ओर उन्मुख हुआ। उसने अनुभव से जान लिया कि इन बुद्धिवादी महिलाओं से भाव-सम्पन्न, अशिक्षित और साधारण जवान लड़की कई गुना अच्छी है।

इस उपन्यास में सर्वत्र सच्चे प्रेम का अभाव दिखाई पड़ता है और हर कोई उसकी खोज में संलग्न है। परंतु प्रेम का कोई विकल्प प्रस्तुत नहीं है। निम्मा की ओर मधुसूदन का उन्मुख होना विकल्प कहना समीचीन नहीं लगता। अतः वहाँ विकल्प की खोज मात्र है।

७.२.२ 'न आने वाला कल' उपन्यास का कथ्य :

राकेशजी का दूसरा उपन्यास 'न आने वाला कल' दुर्बल अतीत और अनिश्चित भविष्य का वर्तमानकालिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। असल में भूत और भविष्य चिन्तन के माध्यम से वर्तमान की ही वैचारिक आलोचना प्रस्तुत करता है। मन की रिक्तता एवम् उद्देश्यहीन जीवन यात्रा के कारणों को खोजने की एक उदासीनतापूर्ण कोशिश भी इसमें दिखाई पड़ती है। अपने परिवेश के कारण स्वतंत्रता इच्छुक व्यक्ति किन-किन भावात्मक एवम् क्रियात्मक स्तरों से गुजरता है, उन अनिर्दिष्ट आयामों को भी प्रस्तुत कृति दर्शाने का प्रयास करती है। ऐसा प्रतीत होता है, कि शीर्षक का 'कल' शब्द अपने चारों और शब्दकोशीय अर्थ को प्रतिपादित करता है - बीता कल, आने वाला कल, यंत्र और सुख शांति। बीते हुए दिन 'दुबारा नहीं आएँगे' अभीष्ट आनंदमय दिन के आने की संभावना भी नहीं और यांत्रिकता में पिसे जाने वाले के कारण सुख-शांति कभी नहीं मिलेगी। पर गंभीरता से सोचने पर यह सब व्यर्थ का बौद्धिक प्रयास मालूम पडता है। वास्तव में यह अनिर्दिष्ट की ओर ही संकेत करता है।

'न आने वाला कल' के कथा नायक की दो समस्याएँ हैं - नौकरी छोड़ने की और पत्नी छोड़ने की। दोनों का संबंध एक ही से है, वह है बंधनों से मुक्ति। यह मुक्ति की कामना मात्र एक भ्रम बनकर रह जाती है। मुक्ति की आकांक्षा होते हुए भी उसकी परिवेश प्रसूत नियति इन दोनों को छोड़ने की निरर्थकता को साबित करती है और उसे एक अनिश्चित जिन्दगी ढोने के लिए मजबूर करती है। पर वह नौकरी और पत्नी को छोड़ने के लिए आंतरिक घुटन के दबाव के कारण विवश है। यह विवशता और समस्या दोनों राकेशजी के वैयक्तिक जीवन से गहरा संबंध रखती है। प्रस्तुत उपन्यास में बात नौकरी और पत्नी बदलने की है, जिसमें पत्नी बदलने की बात अधूरी रह जाती है और नौकरी बदली नहीं जाती, बल्कि छोड़ दी जाती है। पत्नी से छुटकारा पाने के इरादे से वह नौकरी छोड़ने के लिए प्रेरित हो जाता है, परंतु नौकरी वह तभी छोड़ सकता है, जब वह पत्नी से पूर्णतः छुटकारा पा ले। अन्यथा यह रक्षण के दायित्व

से मुक्त नहीं हो सकता था। अतः वह पत्नी को मायके जाने देकर पत्नी को छोड़ने का आधा काम खतम होने के एहसास के लिए नौकरी छोड़ने में समर्थ हो जाता है।

मनोज ने अपने आंतरिक द्वन्द्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है – "दोनों चीजें सामने थी। स्कूल के जूनियर हिन्दी मास्टर के रूप में जिन्दगी मेरी अपनी जिन्दगी नहीं थी। मुझे इसे लेकर कुछ करना था। लेकिन क्या ? स्कूल से त्यागपत्र देने से शोभा के साथ अपने संबंध की स्थिति हल नहीं हो सकती थी। शोभा को अपने से काट लेने से स्कूल की यंत्रणा से नहीं बचा जा सकता था, तो क्या आवश्यक नहीं कि – दोनों कदम साथ–साथ उठाए जाए ? लेकिन क्या यह संभव था ? और क्या सचमुच इसमें कुछ हासिल हो सकता था।"[२२] अंततः मनोज ने दोनों को संभव तो बनाया, पर हासिल कुछ भी नहीं हो सकता। जो कुछ हुआ था, वह न होने के बराबर था। रिक्तता दूर नहीं हुई, बल्कि कुछ नए स्वरुप के साथ घेर लेती है। इस रिक्तता में भी वह किसी बंधन का अनुभव करने लगा। दरअसल बात यह है कि प्रेम को आवश्यकता और मुक्ति की अभिलाषा, ये समान्तर चल नहीं सकती। इस प्रयास के दौरान एक घुटनमय अंतराल मात्र उपस्थित हो सकता है। यह अधूरापन मनोज की हर क्रिया में दिखाई पड़ता है। उसके पत्र भी हर बार 'प्रिय शोभा' में ही खत्म हो जाते थे क्योंकि उनमें प्रारंभिक शब्द 'प्रिय' असल में उतना प्रिय नहीं था। वह शब्द अपने आप में एक मजबूरी थी। उसे ढोकर वह आगे चल नहीं पाता। आखिर शोभा में क्या कमी थी ? शोभा को नया कुछ सीखना नहीं था। जो कुछ सीखना था वह मनोज को ही सीखना था। अतः मनोज एक अधूरे मोहभंग का भी अनुभव करता है। अधूरा फिर इसलिए कि वह पूर्णतः संबंध–विच्छेद भी कर नहीं पाता। बासी फल खाते अनिश्चित दिशा में जाना शायद यही संकेत देता है।

मनोज कहीं भी चैन नहीं पाता। उसको लगता है चारों ओर कुछ गलत है। कुछ नहीं, सब कुछ गलत है। स्कूल के रसमय प्रसंगों में भी उसका मन नहीं रमता। भीतरी रिक्तता के कारण बाहरी ठाट–बाट को स्वीकार करने में एक ओर ढकोसले का एहसास पाता है। उसी उघेड़बुन में वह अपने जीवन के बनाए दायरे को तोड़कर बाहर आ जाता है, किन्तु फिर भी उसे चैन नहीं पड़ता। कहीं कुछ खोट दिख पड़ती है। शोभा विधवा थी, युवती थी, फिर भी किसी कल की कल्पना में या आशा में उसने उससे शादी कर ली। वह भी उसे एक गलती ही लगने लगी। पर एक दर्दनाक नियति यह हो जाती है कि पत्नी छोड़ना भी उसे एक ओर गलती के सिवाय और कुछ नहीं लगता।

असल में मनोज, न आने वाले कल की चिंता में वर्तमान को भी जी नहीं पाता। जो वर्तमान को अपना नहीं सकता, सुंदर भविष्य की कल्पना उसके लिए मात्र मृगमरीचिका बनकर रह जायेगी क्योंकि मनुष्य बाहरी गलतियों से छुटकारा पा सकता है। किन्तु अपने अंतर में उद्भूत अपराधबोध से उबर नहीं पाता। अतः अंतर को सुधारना वर्तमान को जीना होता है और मनोज अपनी व्यक्त कुण्ठाओं के कारण ऐसा करने में असमर्थ है। इस कारण उसकी कहानी विवशताओं की कभी न खत्म होने वाली, दारुण कथा बन गई है।

मनोज की उखड़ी और भगोड़ी मनोवृति से उद्भूत दुविधाग्रस्त विकट स्थिति के लिए कम उत्तरदायी नहीं है। दाम्पत्य जीवन और प्रेम की उष्मा का अनुभव उसके लिए कोई नया अनुभव नहीं था, बल्कि सात साल पुराना था। एक अनुभवी महिला मनोज से कुछ और ठोस चाहती थी। अपने पिछले अनुभव का हलका-सा अहम् भी उसमें विद्यमान था। एक प्रकार का संस्कारजन्य अपराधबोध भी शोभा में उत्पन्न हुआ ये कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु उपन्यास में कोई ऐसा स्पष्ट संकेत नहीं मिलता, केवल ऊब के आधार पर से कल्पना की जा सकती है। बात केवल आपसी समायोजन की कमी की है। यह परंपरागत प्रेम के अस्तित्व में ही आ सकती है।

प्रस्तुत उपन्यास में शोभा के आत्मसमर्पण का कोई प्रमाण नहीं मिलता। शोभा जो खाली हृदय लाई थी, उससे मनोज का दिल भर नहीं सकी। वह शारीरिक तृप्ति का साधन मात्र बनकर रह गई थी। वह विमुख करवट में सोती है। कभी भूल से हाथ छू जाने पर सोरी से भ्रम दूर किया जाता था। वे दोनों निर्लिप्त भोग के लिए बँधे है। उससे अधिक कुछ है, तो संस्कार की जंजीरों का बंधन निभाने के लिए और शरीर एक दूसरे के लिए मात्र बंधे हुए हैं। "साथ रह सकना लगभग असंभव था, पर संबंध विच्छेद की बात दोनों अपने अपने कारणों से जुबान पर नहीं लाते थे।"[२३] खाना पकाने और महीने में चार दिन के यौन आवेग के निष्कासन के लिए मनोज को शोभा की आवश्यकता है। शोभा अपनी पुरानी जिन्दगी को पूर्णतः भूला नहीं पाती। इस कारण मनोज के साथ उसकी जिन्दगी शहीदाना जिन्दगी थी। "उस दूसरे का नाम जबान पर नहीं लाती थी। अपने सारे व्यवहार से यही प्रकट करने का प्रयत्न करती थी कि यह उसकी पहली शादी है – फिर भी अपने मन से यह जो थी, वह खोई हुई जिन्दगी में थी।"[२४]

मनोज में क्षणवादी और पलायनवादी मनोवृति भी है। वह संबंध पूर्णतः तोड़ नहीं सका। मनोज ऋणी भी था और ऋणदाता भी। इसलिए एहसान पाना और दिखाना दोनों प्रकार की विरोधी प्रवृत्तियों के कारण वह अपने भीतर संघर्ष को जन्म देता है। ये दोनों पात्र हरबंस और नीलिमा – अँधेरे बंद कमरे के निकट पडते है। अपने आंतरिक संघर्ष के कारण मनोज बाह्य जगत से कट जाता है। एक दीवार का निर्माण अपने आप हो जाता है। इस आत्मसंप्रेसणता के कारण शोभा के बाद बोनी और काशनी के यौनाश्रित प्रेम को भी वह स्वीकार नहीं कर पाता। आंतरिक घुटन और अलगाव की पराकाष्ठा 'अँधेरे बंद कमरे' से अधिक इस उपन्यास में उभरकर आयी है। मनोज और शोभा के संघर्ष को शीतयुद्ध का नाम देने में अतिश्योक्ति नहीं होगी। अपनी घोर असंप्रेषणीयता और विकृत अनासक्तता के कारण प्रेम का श्रीगणेश भी नए तौर पर हो सकता था, उसकी इतिश्री में परिणत हो गया। एक अपराध बोध के भीतर कल्पित भय से कानूनी विच्छेद भी संभव नहीं हो पाया। अतः अपनी भीतरी मनोवैज्ञानिकता के कारण से छूटकर भी बंधे रहे या रहने की आंतरिक पीड़ा सहते रहे।

इस उपन्यास में प्रेम और वासना तृप्ति की समस्या उठाई गई है। एक विफलता के बाद दूसरे प्रेम की शुरुआत की बात असंभव तो नहीं है। प्रेम में या तो बाधाएँ चाहिए या फिर सुविधाएँ। मनोज और शोभा के लिए दोनों नहीं थी। शोभा ने नई शुरुआत की कोशिश की थी। यह नई शुरुआत केवल उसके लिए थी। मनोज को तो यही लगता था कि – "उस शुरुआत में मुझे उसके लिए वही होना चाहिए था जो वह दूसरा था जिसकी वह सात साल आदी रही।"[२७] दोनों की स्थिति यहाँ एक नहीं थी, परिस्थिति और मनःस्थिति भी एक नहीं थी। मनोज के लिए बात सेकेन्ड हेन्ड की नहीं थी, अपने टूटे परिवेश की थी। इस यंत्रणा को वह प्रेमहीन होकर झेलता है। दमघोटुं वातावरण को साफ करने का प्रयास तो वह करता है। काशनी के शरीर संबंध के प्रति उसका शरीर सिरहकर रह जाता है। एक ही झटके में स्कूल से और आसपास की सभी चीजों से एक तरह का प्रतिशोध लेने का सुख प्राप्त कर सकता था, पर वह भी कर नहीं सका। अतः यही कहना संगत होगा कि मनोज के लिए यह जीवन संभव नहीं था। उसके प्रेम का अन्वेषण एक 'न आने वाला कल' बनकर रह गया।

प्रस्तुत उपन्यास आनुषंगिक रूप से आम तौर पर शैक्षणिक संस्थाओं की कमजोरियों, रेसिडेन्सियल स्कूल के परिवेश की विसंगतियों तथा वहाँ के लोगों की स्वार्थपरता के घिनौने रूपों पर प्रकाश डालता है। यह लेखक की परिवेश सजगता,

व्यापक अनुभव और संश्लिष्ट द्रष्टिकोण का परिचय देता है। साथ में ऐसी औपन्यासिक संरचना की मूल चेतना की पृष्ठभूमि को भी स्थापित करता है।

प्रगतिशील मान्यता एवम् सुधारवादी द्रष्टि के विद्रोहों की परिणति की ओर भी यहाँ पाठक का ध्यान खींचा गया है। जब तक परिवेश में सुधार नहीं हो पाता, तब तक ये विद्रोह असफल ही रहेंगे। अन्तर्जातीय विवाह, विजातीय विवाह तथा विधवा विवाह जैसी सामाजिक क्रान्तियाँ सामाजिक परिवेश की पुष्टि के बिना निष्फल रह जाएगी। इतना ही नहीं ये नई समस्याओं को जन्म देंगी। इसके लिए व्यक्ति की मनोवैज्ञानिकता भी कारण हो सकती है। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि यह मनोवैज्ञानिक असंतुलन सामाजिक परिपेक्ष्य से ही उद्‌भूत है। इस दीवार को तोड़ने के लिए व्यक्ति में बड़ी ताकत चाहिए। मनोज और शोभा में उसे तोड़ने की ताकत तो आई, पर निभाने की शक्ति नहीं रह पाई थी। यही यथार्थ परक व्यक्तिगत एवम् समष्टिगत जीवन की विडम्बना है। राकेशजी ने इसे गहरी अर्थवत्ता के साथ अंकित किया है।

उपन्यास के अंत में यह सत्य सामने आता है कि आधुनिक बनना अच्छा है अवश्य, पर यह भी सच है कि व्यक्ति की आधुनिकता परिवेश की सडांध पुरातनता के बीच यंत्रणा ही अपना सकेगी। यह मनहूस है अवश्य, किन्तु नग्न यर्थाथ भी है।

४.२.३ 'अंतराल' उपन्यास का कथ्य :

'अंतराल' राकेशजी की तीसरी प्रतिष्ठित औपन्यासिक कृति है। यह उपन्यास प्रेम की घोर माँसलता एवम् यौन चेतना के परे एक भावात्मक तीव्रता के आयाम को प्रस्तुत करता है। 'अँधेरे बंद कमरे' और 'न आने वाला कल' की परंपरा में लिखा गया यह उपन्यास स्त्री–पुरुष के बीच बने रहने वाले अंतराल और अनेक समस्याओं में उलझकर रह जाने की आंतरिक कहानी भी है। मूलतः यह मानव संबंधों की विवेचना का उपन्यास है। सामाजिक प्राणियों के बीच कई सार्थक, निरर्थक, सच्चे–झूठे संबंध हुआ करते है। दो सिरेवाली जिन्दगी में सदा एक अंतराल पाया जाता है। सोने और जागने के बीच, अँधेरे और उजाले के बीच, यर्थाथ और कल्पना के बीच, चाह और संभवनीयता के बीच, जीवन और मरण के बीच। इस बीच मानव अपनी घड़कनों के साथी ढूँढ़ने और राग संबंध जोड़ने के लिए व्याकुल है। विरक्ति और सैक्स के बीच भी एक मानवीय प्रेम का अंतराल हो सकता है। इसी सत्य की खोज प्रस्तुत उपन्यास की

सार्थकता है । टूटकर भी टूटन को न स्वीकार करने वाले आज के जीवन-रंग के अभिनेता के मन की अकुलाहट एवम् संपूर्णतया नया संबंध स्थापित करने की चाह में सामाजिक मान्यताओं के अभाव में तड़पनेवालों, सिकुड़नेवाले हृदयों की वस्तु-स्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है ।

उपन्यास का प्रारंभ काफी रुचिकर एवम् कौतूहलवर्धक है । कुमार अपने कार्यक्रम के अनुसार शाम को श्यामा से मिलने टी-सेन्टर की ओर चल पडता है । "आज कल उसकी जिन्दगी में अनुभव के सीमान्त पर समय के दो नाम रह गये थे – दिन और रात और दो ही रूप –केबिन टयूब की रोशनी और सडक के दंडों की रोशनी । दोनों के बीच अंतराल एक ऐसा झुटपुटा था जो सिर्फ उन्हें आपस में जोड़ता था । घर और दफ्तर के बीच इलेकट्रिक ट्रेन के सफर की तरह ।"[२६] आज वह तीन साल बाद श्यामा से मिलने टी-सेन्टर गया है, पर श्यामा नहीं आयी । ऐसी मानसिक स्थिति में दोनों की मुलाकात दूसरी बार हुई । श्यामा सीधे उसके दफ्तर पर गई थी और वहाँ से उसके घर । श्यामा अपने युवा शरीर में उड़ती हुई अनंत भावनाओं को दबाकर एक शहीदाना जिन्दगी बिता रही थी । कुमार की एकमात्र छाया में वह थोड़ा अपनापन महसूस करती थी, उसके सानिध्य में हर प्रकार की खुशियाँ प्राप्त कर सकती थी । एक प्रसंग ऐसा आया जो उसके भविष्य का निर्णायक क्षण बन गया । "कुमार का शरीर उसके बहुत निकट आया था, बस उसी क्षण उसको सब कुछ निश्चय कर लेना था । कुमार का एक हाथ पीठ से सरकता हुआ बहुत नीचे आ गया था, उसके मुँह पर पता नहीं कितनी जगह दाँतों के निशान बन गये थे । बस यही वह क्षण था, यही उसने अपनी घटती साँस को किसी तरह अंदर खींचा और घिर आये शरीर को पूरी शक्ति के साथ परे धकेल दिया ।"[२७] श्यामा यह सब नहीं चाहती थी । वह कुमार के साथ एक आत्मिक संबंध चाहती थी । वह कुमार से अब भी प्यार करती थी । उसने अंत में यही निश्चय कर लिया कि वह अपनी पुरानी मण्डी चली जायेगी । अंत में चलते चलते उसने कुमार से यही कहा था – "हो सकता है फिर भी कभी तुम्हें आने के लिए लिखूँ । पर आओ तो कोई ऐसी-वैसी बात सोचकर मत आना ।"[२८] इस विलक्षण किन्तु प्रेमपूर्ण विदाई के साथ उपन्यास का अंत होता है । ये दोनों पास रहते हुए भी अकेले हैं । एक अनाम संबंध बनाए रखते हुए भी उनकी जिन्दगी अग्रसर होती है । ऐसा संकेत अंत में मिलता है । वह एक परिवेश था जिसने मन को मरोड़ दिया था और आशा आकांक्षाओं को कुचल दिया था । वह एक ऐसा मन था जो परिवेश से अप्रभावित रह सकना संभव

न था । यथार्थ स्वीकृति की अनिवार्य नियति की कहानी 'अंतराल' है, जिसमें नामहीन संबंधों की खोज है ।

प्रस्तुत उपन्यास मुख्यतया स्त्री–पुरुष के आपसी संबंधों की कहानी है । ऐसे संबंध जिन्हें नाम नहीं दे सकते और परिभाषित नहीं कर सकते । स्त्री–पुरुष के बीच शारीरिक संबंधों के अतिरिक्त कुछ और की खोज इसमें है । स्त्री–पुरुष के बीच ऐसे वायवी प्रेम को संभवनीय बताया गया है जो संस्कार की विजय है । लंबे उपक्रम, अनिर्णायत्मक स्थिति को लंबी यात्रा और काफी कश्मकश के बाद भी कुमार श्यामा का शरीर पाने में असमर्थ होता है । क्योंकि श्यामा यही चाहती थी कि उनके बीच एक वायवी एवम् आत्मिक संबंध मात्र बना रहे । श्यामा के मतानुसार मात्र शारीरिक संबंध कुछ नहीं है । उससे भी परे कुछ संबंध है । उन्हीं की खोज पूरे उपन्यास में है ।

अकेलेपन का अहसास इस कृति में भी दिखाई पड़ता है । श्यामा विधवा होने के कारण और कुमार प्रेम में असफल होने के कारण अकेलेपन को झेलते हैं । दोनों अपने जीवन की रिक्तता को भरना चाहते हैं । इसी कारण दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं । दोनों एक दूसरे को चाहने लगते हैं । उनमें एक भावात्मक संबंध स्थापित होता है । कुमार भी यह अनुभव करता है कि शारीरिक आकर्षण से हटकर एक और आकर्षण होता है । व्यक्तित्व का आकर्षण जो शारीरिक आकर्षण से कहीं अधिक मन को खींचता है । श्यामा भी ठीक यही सोचती है कि अगर शरीर ही सब कुछ है तो इतनी सुंदर हँसमुख लेडी डॉक्टर बत्राने आत्महत्या क्यों की ? इस प्रश्न का उत्तर देने में सारी बुद्धि और तर्क पीछे रह जाते हैं । अन्तर्मन बार–बार पुकार उठता है कि इस स्थूल शारीरिक संबंध के अतिरिक्त कुछ और है । उस 'कुछ' को पाने के लिए श्यामा और कुमार दोनों बेनाम संबंध के प्रेम और शांति की खोज करते हैं । इस प्रकार के प्रेम के वायवी स्तर बनाए रखते हैं ।

श्यामा का देव के साथ वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रहा । कुमार असफल पति और असफल प्रेमी दोनों था । लता के शरीर–दान की बात से भी वह तृप्त हीं था । इनकी मनोदशाओं को देखते हुए लगता है उनको एक उन्मुक्त और सूक्ष्म प्रेम की खोट है, जिसमें वासना की वृत्ति एक अनिवार्य शर्त नहीं है । फिर भी कुमार की लालसा श्यामा के शरीर को पाने की रहती है जो उसके मना करने पर खण्डित हो जाती है । इतना स्वीकार किया जा सकता है कि श्यामा ने ही अपनी ओर से वायवी स्तर पर संबंध

निभाने की मांग रखी थी जिसे कुमार के संदर्भ में 'इन्टेलेक्चुअल' या ' सब्लिमेशन' का नाम देना अधिक समीचीन लगता है ।

'अंतराल' में प्रेम का अन्वेषण है, उसकी सार्थकता की खोज है और शारीरिकता को गौण मानने का एहसास है । रिक्तता को भरने का एकमात्र साधन प्रेम ही है । अपने वैयक्तिक अनुभवों के आधार पर श्यामा जान चुकी है कि प्रेम के नाम पर किए गये सारे कार्य-व्यापार मन को वितृष्णा से भर देते है । वह प्यास को बुझाने के बजाय उसे अवांछित ठहराने की कोशिश करती है । श्यामा कुमार के साथ जीवन बिताना चाहती है और उपलब्धि के क्षण पाना चाहती है । वह दुसरी मनःस्थिति से ग्रस्त है । वह कुमार से वासना-तृप्ति के साथ उसके परे की वस्तु भी पा लेना चाहती है ।

राकेशजी ने 'अंधेरे बंद कमरे' में पति-पत्नी के बीच के संबंधों में तनाव और एकरसता दिखाई, 'न आने वाला कल' में झेलने की असहाय स्थिति से मुक्ति पाने की कामना दिखाई तो प्रेम की नई शुरुआत की अधूरी दिशा निर्देशित की 'अंतराल' में । 'अंतराल' उपन्यास के पात्र प्रेम संबंधी सामाजिक, नैतिक मूल्यों को बेधडक वर्णन करते हुए भी अपने अंदर की एक नैतिकता स्थापित कर लेते हैं । सामाजिक बंधन, मजबूरन थोपी गई नैतिकता और संस्कार व्यक्ति में कुण्ठा और ग्रंथियों का निर्माण कर सकते हैं, किन्तु फिर भी उन सबको वर्जित नहीं किया जा सकता । स्वयं निर्मित नैतिकता व्यक्ति की द्रष्टि से स्वास्थ्यप्रद सिद्ध हो सकती है । लेकिन सामाजिक मान्यता के अभाव में उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता । इस प्रस्तुत उपन्यास में परिवेश और व्यक्ति के अटूट और अन्योन्याश्रित संबंध सूत्रों की जटिलता एवम् उनमें उद्भूत समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व्यक्ति के माध्यम से किया गया है । प्रेम की नैतिकता को स्वीकारना लघु प्रयास नहीं कहा जा सकता , यह चिन्तन एवम् मनन का परिणाम कहा जा सकता है । 'अंतराल' में राकेशजी का यह प्रयास पूरी अर्थवत्ता को लिए हुए है ।

व्यक्ति अकेला कभी पूर्ण नहीं होता । यदि वह अपने आप में पूर्ण है तो वह सामाजिक या गृहस्थ नही हो सकता । समाज में व्यक्ति का किसी-न-किसी से आत्मीय संबंध होना आवश्यक सिद्ध होता है । इस कर्म को दो प्रकार से पूरा किया जा सकता है - पति-पत्नी भाव में रति भाव के साथ आत्मीयता बरती जानी चाहिए या विशुद्ध वायवी प्रेम प्राप्त किया जाये । यदि हम गहरी द्रष्टि डाले तो ये भाभी, मित्र, स्त्री-मित्र, पुरुष-मित्र आदि जो हैं, वायवी प्रेम के दाता लगते हैं । विवाह यदि आर्थिक सुरक्षा एवम् मैथुन की सामाजिक मान्यता मात्र बनकर रह जाए तो जीवन एक अभिशाप

है । प्रस्तुत उपन्यास में श्यामा और कुमार इसी तरह के अभिशप्त व्यक्ति हैं । अतः इन्होंने आत्मीयता के बेनाम संबंध को निभाने का प्रयास किया तो किसी के भृकुटी कटाक्ष की कोई आवश्यकता मानवीय द्रष्टि से महसूस नहीं होती । फिर भी परिवेश का आतंक और समाज का दखल होता ही है । अतः कुमार का यह सोचना स्वाभाविक है कि – "दो आदमी जिस आसानी से जिन्दगीभर के रिश्ते में अपने को बाँध सकते हैं, उसी आसानी से मुक्त नहीं हो सकते ? इसलिए कि बंधनों में उन्हें समाज का समर्थन प्राप्त था और मुक्त होने में अपने को अकेले महसूस करते हैं ।"[२९] इन पंक्तियों में आधुनिक मानव की गहरी पीड़ा अभिव्यक्त हुई है जो वैयक्तिक सुख भी चाहता है, और सामाजिक हित भी, पर ऐसा कर नहीं पाता । राकेशजी के पात्र ज्यादातर ऐसे ही संबंध में घिरे हुए हैं, जो अनिर्णयात्मक वलय के केन्द्र में एक आधार बिंदु की खोज करते हैं ।

इस प्रकार का संबंध, संबंध नहीं होता – "यह सच है आदमी किसी भी संबंध में कोरा नहीं होता, फिर भी कुछ संबंधों को संबंध मानने से डरता जरुर है ।"[३०] इस डर के कारण ही एक दूसरे को सहने की दर्दनाक स्थिति सामने आई है ।

'अंतराल' के पात्र दूसरे पात्रों से कटे नहीं रह सकते । उनके संबंध में इतना ही जान लेना पर्याप्त हो जाता है कि – "संबंधों के लिए दिया गया हर नाम केवल सुविधा के लिए है .. वास्तविक संबंध तो इतने सूक्ष्म होते हैं और व्यक्ति व्यक्ति के साथ इतने अलग कि नाम दिए ही नहीं जा सकते ।"[३१] नाम की निरर्थकता से नामहीनता ही भली है । राकेशजी के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन करते हुइ सुरेश सिन्हा का वक्तव्य यह है कि – "राकेश के पात्रों का चयन जीवन के यर्थाथ से हुआ है ।"[३२] दाम्पत्य जीवन में आत्मीय संबंधों की बड़ी आवश्यकता है । राकेशजी के तीनों उपन्यासों में इन्हीं संबंधों का अन्वेषण है । 'अंतराल' में राकेशजी ने इस आवश्यकता के संदर्भ में एक अस्पष्ट विकल्प भी प्रस्तुत किया है ।

निःसंदेह हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि आज का युग अनिश्चय, अव्यवस्था एवम् जटिलता का युग है । परिणामतः व्यक्ति के भीतर अनेक बहुमुखी व्यक्तित्व उभर आए हैं जिसके कारण उनमें अनवरत संघर्ष चल रहा है । उसमें विज्ञान, दर्शन, शिक्षा जैसे अनेक तत्त्वों का योगदान रहा है । राकेशजी के उपन्यासों की विशेषता है यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति संबंधों की जटिलता एवम् आधुनिक जीवन की पहचान । राकेशजी ने आधुनिक जीवन की जटिलताओं को अपने विस्तृत कलेवर में समेट लिया है । परंपरा का निषेध करने वाले, वर्तमान के साथ सक्रिय संग्राम करने

वाले तथा भविष्य के प्रति शंकाकुल मानसिकता रखने वाले त्रस्त व्यक्ति मन के रेशें-रेशें उतार रखने में राकेशजी सफल हुए हैं।

४.३ राकेशजी के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण :

युग की आवाज और समाज की माँग को साहित्य में परिलक्षित करने का दायित्व एक साहित्यकार के कंधों पर ही होता है। इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए राकेशजी ने अपने तत्कालीन समाज एवम् संस्कृति से संबद्ध विषय, पात्र, भाषा एवम् परिवेश के माध्यम से किसी-न-किसी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि समस्या का उद्घाटन करने की ओर प्रवृत्त हुए है। एक सफल साहित्यकार वही होता है जो कि खुद अपने पात्रों की आत्मा बन जाता है और उन्हें जीते-जागते यथार्थ चरित्र बनाकर अपने साहित्य द्वारा समाज की सहायता करता है। निश्चय ही उपन्यास में पात्रों का चयन, उनका रूप, उनके कार्यकलाप अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं; क्योंकि उपन्यास लेखक बहुधा यथार्थ के धरातल पर चरित्रों की जीवनरेखा प्रस्तुत करता है। तत्पश्चात उन्हें अपनी कल्पना के बहुरंगी आकाश में कभी कभी विचरने का अवसर प्रदान करके कथा-सूत्र को विस्तृत आयाम देता है।

उपन्यास अपने युग की समस्याओं, विविधताओं, विचित्रताओं आदि का अध्ययन बहुत गहन एवम् गंभीर रूप में कर सकने की शक्ति रखता है। एक ओर वह विस्तृत पटल पर अनेक सामाजिक जीवन को ग्रहण करता है, तो दूसरी ओर अपनी सूक्ष्मता एवम् तीव्रता द्वारा प्रत्येक छोटी-सी-छोटी घटना का अन्वेषण करने में सक्षम होता है। सूक्ष्म भावनाओं और जटिल समस्याओं का अंकन उपन्यास के वैविध्य को विस्तार प्रदान करता है। राकेशजी के उपन्यासों में एक ओर सहज यथार्थ का सीधा चुभता हुआ अंकन है, तो दूसरी ओर गहन मनोवैज्ञानिकता सूक्ष्म संबंधों को परिभाषित करती है। बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य और अंतर्बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न नए जीवन मूल्य और नवीन मानदंड उनके उपन्यास साहित्य में उभर कर आये हैं। उसी के अनुकूल पात्रों का चयन एवम् निर्माण राकेशजी ने किया है।

४.३.१ 'अँधेरे बंद कमरे' उपन्यास में चरित्र-चित्रण :-

'अँधेरे बंद कमरे' वस्तु-विधान की द्रष्टि से जितना विशृंखलित और ठहरा हुआ उपन्यास है ; चरित्रांकन की द्रष्टि से उतना ही शृंखलित और जीवंत है। एक

व्यक्तिवादी उपन्यास होने के नाते इसके पात्र अपना रास्ता स्वयं बनाते हैं। उनमें अपने ढंग से जीने की कामना है। उन सबका अपना अलग–अलग दायरा है, जिसे तोड़कर कोई भी दूसरों के हिसाब से जीना नहीं चाहता। आधुनिक बोध की माँग यही है कि प्रत्येक पात्र अपने में पूर्ण स्वतंत्र, ईमानदार और जिम्मेदार हो। एक प्रकार से देखें तो प्रत्येक पुरुष पात्र के साथ एक नारी पात्र है। यह बात दूसरी है कि वह किस सीमा तक अपने साथी पात्र को छूट दे सकता है और उसके संबंध का स्तर और वृत कैसा और कितना गहरा है ? पात्रों के व्यक्तित्व के विकास के अवसर उपन्यास में बहुत कम हैं; क्योंकि सभी पात्र अपनी अपनी भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की बैसाखियों का सहारा लेकर जहाँ तक चल पाते हैं वहीं बंद कमरों में बहुत जल्द कैद हो जाते हैं। हरबंस और नीलिमा जिस कमरे में कैद हैं उससे बाहर जाने का रास्ता उन्हें मालूम नहीं। इसलिए बाहर जाने के लिए उन्हें छलांग लगानी पड़ती है। ईर्ष्या, खीझ और हीन ग्रंथि का शिकार बनता हुआ हरबंस अपनी कमजोरी छिपाने का प्रयत्न करता हुआ लंदन चला जाता है। उधर नीलिमा अपनी महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति के द्वार खोजती हुई कला संसार में खो जाना चाहती है। मधुसूदन कस्साबपूरे की सीलन और बद्बूदार गलियों में ठकुराइन की कैद में रहता हुआ भी कनोट प्लेस की चमक–दमक, चहल–पहल एवम् महानगर की फैशनेबल एवम् आभिजात्य संस्कृति में खो जाना चाहता है। उसका यायावर स्वभाव न जाने कितने बंद कमरों की रिपोर्टिंग लेता हुआ एक तटस्थ दर्शक की हैसियत से अपने मन को राहत पहुँचाना चाहता है। सुषमा श्रीवास्तव आधुनिक नारी जगत की एक ऐसी बेमिसाल स्त्री है, जिसका पारखी शायद उसे नहीं मिला और जो स्वयं दूसरों की परख करती फिरती है। वह मधुसूदन को माध्यम बनाकर अपनी अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहती है। शुक्ला और सुरजीत दम्पति होकर भी अलग अलग वृत्तियों के भोक्ता है। सुरजीत का बातूनी स्वभाव एवम् प्रवंचनापूर्ण व्यवहार शुक्ला जैसी सहनशीलता, शालीन एवम् कर्तव्य परायणता को सांस्कृतिक कक्ष से निकालकर अपने किये गये निर्णय पर पुनर्विचार करने को बाध्य कर देता है। इस प्रकार उपन्यास का प्रत्येक पात्र अपने ढंग का अकेला है। प्रत्येक पात्र की अपनी सीमाएँ हैं, अपने दायरे हैं और यही वह बिंदु है जहाँ उपन्यास का शीर्षक सार्थकता को प्राप्त करता दिखाई देता है। राकेशजी का प्रयास यह रहा है कि वह बंद कमरों का रहस्य पाठकों तक संप्रेषित कर दे। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी इस धारणा की संप्रेषणा में राकेशजी का उपन्यास सफल है।

'अंधेरे बंद कमरे' में जो पात्र हैं तीन प्रकार के हैं – निम्न मध्यवर्गीय, मध्यवर्गीय और आभिजात्यवर्गीय । इनके प्रतीक स्वरूप क्रमशः ठकुराइन, इबादतअली और खुरशीद का एक दायरा है । हरबंस, मधुसूदन, नीलिमा और सुषमा का दूसरा है । तीसरे दायरे में वे पात्र हैं जो दूतावास से सम्बद्ध हैं । राकेशजी ने इन तीनों वर्गों में विभक्त पात्रों को अपनी संवेदना प्रदान की है, पर उसकी सर्वाधिक सहानुभूति या तो नीलिमा, हरबंस के साथ है क्योंकि वे नायक–नायिका हैं अथवा सुषमा श्रीवास्तव के साथ । हरबंस और नीलिमा दोनों ही मध्यवर्गीय परिवार के ऐसे दम्पति हैं जो संभावनाओं में जिन्दगी जीते हैं । वे सोचते हैं कि शायद कभी कुछ अनुकूल घटित हो जाये । मध्यवर्गीय शिक्षित वर्ग की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि वे पुस्तकीय ज्ञान के सहारे नये प्रयोगों की ओर उन्मुख होते हैं, बुद्धिवादी बनने का प्रयास करते रहते हैं किन्तु संस्कारों से मूलतः आबद्ध होने के कारण अपनी कमजोरियों तथा मार्ग की बाधाओं को जानकर भी पीछा न छुड़ा पाने की दयनीय स्थिति इस युगल (हरबंस – नीलिमा) के जीवन का अभिशाप है । असल में "हौसले इनमें बहुत हैं और इन्हीं के सपने देखते हुए प्रारंभ में एक–दूसरे के प्रति आकृष्ट होकर निकट आते हैं, पर इन हौंसलों को पुरा करने का सामर्थ्य उनमें है या नहीं इसे वे नहीं समझ पाते और इसी कारण उनके जीवन में तनाव, संघर्ष और संदेह के बादल घिरे रहते हैं और सारी शक्ति, सारा विश्वास यही सोचने में ढहता रहता है कि वे एक दूसरे के लिए उपयोगी है या नहीं ।"[३३] प्रारंभ में ऐसा लगता है कि रचनाकार ठकुराइन को भी अपनी सहानुभूति देना चाहता है, किन्तु जब मधुसूदन कस्बाई संस्कृति को छोड़कर नगरीय सभ्यता की ओर झुकता चला जाता है तब राकेशजी की सहानुभूति का धरातल परिवर्तित हो जाता है । समग्रतः इसके पात्र व्यक्तिगत हैं ।

उपन्यास में चरित्र–चित्रण की अनेक प्रणालियाँ हो सकती हैं, कभी तो उपन्यासकार स्वयं पात्रों के व्यक्तिगत का विश्लेषण करता है और कभी पात्र एक–दूसरे का । कभी कभी किसी निश्चित कथा–प्रसंग में कोई पात्र अपने संपर्क में आने वाले पात्रों का विशेष संदर्भ में विश्लेषण करता है । सबसे अच्छी प्रणाली वह है, जिसमें पात्र प्रसंग की माँग पर, परिस्थिति की अनिवार्यता पर उपन्यास के पृष्ठों में उतरते चलते हैं और स्वतः ही उनका चरित्र विश्लेषित और व्याख्यायित होता चलता है । 'अंधेरे बंद कमरे' में जो पात्र हैं उनमें नायक और नायिका को छोड़कर शेष पात्र परिस्थिति की अनिवार्यता पर लेखक द्वारा जान–बूझकर प्रस्तुत किये गये हैं । इसका परिणाम यह हुआ कि पात्रों की लंबी कतार खडी हो गई है जो अनावश्यक प्रतीत होती है । उदाहरण

के लिए शुक्ला और सुरजीत इसमें न भी आये होते तो भी उपन्यास के कथा–बंध और उद्‌देश्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार कला–गोष्ठियों में संमिलित होने वाले पात्रों को अनावश्यक रंग दिया गया है। हो सकता है लेखक के मन में छिपे दुहरे लोभ दाम्पत्य जीवन की असंगतियों का चित्रण और महानगर की सभ्यता के नशे में डूबी हुई मध्यवर्गीय जिन्दगी का रेखाचित्र प्रस्तुत करने के कारण ऐसा हुआ हो। ऐसा लोभ कलाकार के लिए वांछनीय नहीं है। यह तो हो सकता है कि कोई भी व्यक्ति एक बार एक तरह की जिन्दगी जीये और दूसरी बार दूसरी तरह की, किन्तु एक साथ दो तरह की जिन्दगियाँ नहीं जी सकता। यदि हठधर्मितावश वह ऐसा करने का दुःसाहस करे भी तो उसका पैर फिसल सकता है। उसके कर्तव्य बोध के दायरे में से कुछ महत्त्वपूर्ण छूट सकता है। कुछ करणीय – अकरणीय बन सकता है और अकरणीय – करणीय हो सकता है। राकेशजी के साथ भी यही हुआ है।

राकेशजी के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' के चरित्रों में मनोवैज्ञानिक जटिलता अधिक दिखाई देती है। इस जटिलता का कारण उनकी विशुद्ध वैयक्तिक जरुरतों एवम् माँगों की जटिलता है। " 'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र जहाँ एक ओर समाज में रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर अपनी व्यक्तिगत कुंठाओं तथा भावनाओं के दबाव से पीडित तथा परेशान रहते हुए, जीवन की प्रगति एवम् प्रवाह पर आलोचनात्मक द्रष्टि डालते है।"[३४] ऐसा लगता है मानो आलोच्य उपन्यास के चरित्रों की नीजि मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ हैं। प्रायः सभी प्रमुख पात्र संवेदनशील हैं। वे अपनी संवेदनशीलता के कारण दूसरे मनुष्यों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। प्रतिक्रिया की यह प्रक्रिया जिस मनोवैज्ञानिक भूमिका पर घटित होती है उससे उपन्यास पर्याप्त सूक्ष्म व रोचक बन गया है।

इस उपन्यास के विभिन्न पात्रों की मनःस्थिति का आधुनिक परिवेश में आधुनिक समस्याओं से जुड़कर अंकन किया गया है। हरबंस और नीलिमा के बीच पति–पत्नी होने की पूर्णता का अभाव रहता है। समझौता दोनों ही नहीं कर पाते। मधुसूदन और हरबंस दोनों ही महानगर के तथाकथित बुद्धिजीवी समाज की उत्पति हैं, जो ओढ़ी हुई सभ्यता के कारण प्रेम के लिए उपयुक्त भूमि का ही निर्माण कर पाते। इस उपन्यास में सर्वत्र सच्चे प्रेम का अभाव दिखाई पडता है और हर पात्र उसकी खोज में संलग्न है। इसके साथ ही इस उपन्यास में राकेशजी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जन–मानस की सांस्कृतिक हलचल का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। इस बात पर भी विचार कर लिया जाये, कि 'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र स्वतंत्र व्यक्तित्व के स्वामी हैं या लेखकीय

भावों–विचारों के वाहक । कहने की आवश्यकता संभवतः नहीं कि चरित्र की निजी व्यक्तित्व संपन्नता और व्यक्तिहीनता का यह प्रश्न इस प्रश्न से जुड़ा है कि वे सहज हैं अथवा आरोपित ।

'अंधेरे बंद कमरे' के प्रमुख चरित्र – मधुसूदन, हरबंस और नीलिमा का वास्तविक जीवन और प्रकट जीवन अर्थात् लेखक द्वारा अंकित जीवन और उसका दर्शन बे–मेल है । वे एक असहज और कृत्रिम जीवन जीते हैं । उनके आचार–विचार उनकी जागतिक परिस्थितियों से केवल मेल ही नहीं खाते बल्कि उनसे विपरीत बैठते हैं । जिस सामाजिक और आर्थिक वर्ग के प्राणी वे हैं – मध्यवर्ग के – उसकी जागतिक परिस्थितियाँ सामान्यतः अनुमति नहीं देती कि हरबंस और नीलिमा अपने समय का अधिकांश समय पारस्परिक बौद्धिक बहसों या विवादों में, घूमने, कॉफी या शराब पीने में ही व्यतीत कर दें और निजी जीविकोपार्जन या किसी सामाजिक कार्य के लिए नाम मात्र का समय दें । ये दोनों दरअसल उपन्यासकार की मानस संतति हैं जो उसकी भावनाओं, विचारों, धारणाओं, आकांक्षाओं और स्वप्नों को प्रकट या स्थापित करने में ही अपने अस्तित्व की सिद्धि मानती है । "वह हरबंस और नीलिमा को संश्लिष्ट गहन व्यक्तित्व देने के स्थान पर चेतना की ऊपरी पर्तों पर जमीं आकांक्षाओं और वासनाओं को ही पकडने में रह गया है । लगता नहीं कि ये दोनों पात्र अपने परिवेश की वास्तविकता से जूड़े हुए प्रौढ़ चिंतन या प्रौढ़ अनुभव या गहन संक्रांत चेतना से गुजर रहे है ।"[३५] संपूर्ण कथा का वाचक मधुसूदन तो स्पष्टतः और पूर्णतः एक व्यक्तित्वहीन कठपुतली मात्र है । वह सदा ही वही करता और बोलता है जो उसका सूत्रधार उपन्यासकार करवाता और बुलवाता है । हरबंस और नीलिमा की व्यक्तित्वहीनता के बारे में इलाचंद्र जोशी का यह कथन सर्वथा संगत है कि "दोनों में से एक का भी व्यक्त्वि सुस्पष्ट, सजीव और मूर्त रूप में पाठक के आगे प्रस्फुटित नहीं हो पाता । दोनों जैसे पुआल से बने स्प्रिंगदार पुतले हों जिन्हें ऊपर से मनमाने ढंग से सजाकर लेखक इच्छानुसार नचाता चलता है ।"[३६] हरबंस और नीलिमा के सत्वहीन व्यक्तित्व के संबंध में व्यक्त किये गये उपर्युक्त मत के अंतिम अंश में, जो अनजाने ही 'लेखक' कह दिया गया है, वह मधुसूदन के व्यक्तित्व को पूरी तरह उजागर कर देता है । मधुसूदन वस्तुतः लेखक की ही प्रतिच्छाया है । कुल मिलाकर 'अंधेरे बंद कमरे' के ये तीनों प्रमुख चरित्र ही अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व से हीन लेखकीय भावों–विचारों के संवाहक 'माध्यम चरित्र' ही हैं ।

जबकि ठकुराइन, सुषमा, शुक्ला, ऊबानू , इबादत अली, खुरशीद आदि अप्रमुख छोटे–छोटे पात्र अपने चरित्रों में पूरे सहज और स्पष्ट हैं तथा अच्छे और बुरे जैसे भी हैं – अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के स्वामी हैं । इनके नीजि जीवन और परिवेश में किसी किस्म की असंगति नहीं है । अपने देशकाल के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हुए ये गौण चरित्र जीवन के प्रति एक सुस्पष्ट और सुनिश्चित रुख अपनाये रहते हैं । इस प्रसंग में एक बात विशेषतः गौर करने वाली है ; और वह यह कि 'अँधेरे बंद कमरे' के कथा–क्रम में जो पात्र जितना अधिक गौण है वह उतना ही अधिक सहज, जीवंत और प्रभावी तथा लेखकीय प्रभाव से मुक्त है । कनोट – प्लेस से कस्साबपुरा लौटते हुए काठबाजार में मधुसूदन से टकरानेवाला वेश्याओं का दलाल पहलवान पूरे उपन्यास में मात्र एक बार कुछ क्षणों के लिए ही उपस्थित होकर अपने सर्वथा मुक्त और सहज व्यवहार से वह प्रभाव डालता है, कि पाठक उसके व्यक्तित्व को भुलाये नहीं भुलता ।

चरित्रों की परिवेश से अनुकूलता और प्रतिकूलता की द्रष्टि से रचना में चित्रित परिवेश में मधुसूदन हर कहीं विद्यमान होता हुआ भी हर जगह से अनुपस्थित है । मधुसूदन का चरित्र अपनी आंतरिक विशेषताओं के कारण कुछ ऐसा बन पडा है कि कस्साबपुरा हो या कनोट–प्लेस, हरबंस का निजी कमरा हो या किसी सांस्कृतिक–प्रदर्शन का सार्वजनिक मंच, 'न्यू हैरल्ड' के संपादक का दफ्तर हो या पोलिटिकल सेक्रेटरी के घर होती पार्टी, ठकुराइन का घर हो या सुषमा श्रीवास्तव का निजी कमरा – वह हर जगह उपस्थित है – रहता है ; लेकिन इस लगातार अहसास के साथ कि जैसे वह वहाँ नहीं है, नहीं होना चाहिए, नहीं रहेगा । प्रस्तुत परिवेश से असंलग्नता मधुसूदन के चरित्र की उल्लेखनीय विशेषता है । मधुसूदन राकेशजी द्वारा अंकित आधुनिक महानगरीय व्यक्ति–मानस का प्रतिनिधि चरित्र है, एक असंगत चरित्र । परिस्थितियाँ उसे जहाँ कहीं होने–रहने को विवश करती हैं, उसकी निजी प्रवृत्तियाँ और बाह्य स्थितियाँ पुनः विवश कर देती हैं, कि वह वहाँ होते हुए भी अनुपस्थित रहे । समूचे उपन्यास में कहीं भी परिवेश के प्रति उसकी संलग्नता पूरे तौर पर रेखांकित नहीं की जा सकती । मधुसूदन दरअसल परिवेश से असंलग्नता का चरित्र है ; जो कि उसे अंकित परिवेश के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता । कथा–क्रम में ठकुराइन, हरबंस, नीलिमा, सुषमा आदि से संबद्ध होता मधुसूदन साथ–साथ अलग भी होता जाता है और अंततः अकेला रह जाता है ।

मधुसूदन के चरित्र की यही असहमति प्रकारांतर से हरबंस के चरित्र में भी विद्यमान है। वह भी अपने माहौल से जुड़ नहीं पाता। वह जहाँ भी रहता है, लगातार ऊबता रहता है। यद्यपि इस ऊब के पीछे हरबंस के अपने तर्क हैं, कि जिनके दबाव में वह दिल्ली से भागकर लंदन जाता है लेकिन पूरे तौर पर वह वहाँ भी उससे झगड़ता है। वह नृत्य आदि के कार्यक्रम में न चाहते हुए भी नीलिमा का साथ देता है। जबकि चाहते हुए भी शुक्ला के प्रति अपने कोमल हार्दिक भाव चरितार्थ नहीं कर पाता। परिवेश से असंलग्नता, मधुसूदन की भाँति, हरबंस के चरित्र में भी है। मधुसूदन, हरबंस, नीलिमा भी राकेशजी द्वारा अंकित वे महानगरीय जीवन जीते आधुनिक बौद्धिक चरित्र हैं, जो अपनी प्रखर चेतना के कारण जीवन-जगत की वास्तविकताओं से संगति नहीं बिठा पाते। जीवन की खुरदुरी वास्तविकताएँ उनके अनुकूल हो नहीं सकती और वे अपनी तीक्ष्ण मेधा से चलते उन वास्तविकताओं से संगति बिठा नहीं पाते। परिवेश से अनुकूलता मधुसूदन, हरबंस और नीलिमा ही नहीं, आज के हर संवेदनशील बौद्धिक व्यक्ति के जीवन की त्रासदी है। नीलिमा हरबंस के साथ लंदन नहीं जाती ; लेकिन फिर उसके पत्र पाकर वहाँ पहुँचती है किन्तु वहाँ भी साथ नहीं रह पाती। वह जितने समय हरबंस के साथ रहती है, उससे झगडती रहती है और अंत में उसका घर छोड़कर चली जाती है लेकिन फिर स्वतः लौट भी आती है। इन पात्रों की ये अटपटी हरकतें ही तो इनके चरित्र की विशिष्ट चेतना-सरणियाँ हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' के ये प्रमुख चरित्र वस्तुतः अपने परिवेश में जीते हुए वे चरित्र हैं जो उसमें हार्दिक स्तर पर जुड़ नहीं पाते। इनका दरअसल अपने अनुकूल पर्यावरण की खोज का जीवन है।

जबकि ठकुराइन, शुक्ला, सुरजीत, सुषमा, खुरशीद, इबादत अली, ऊबानू, पोलिटिकल सेक्रेटरी आदि सभी अप्रमुख और प्रासंगिक चरित्रों ने स्वयं को अपने परिवेश के अनुकूल ढाल लिया है। ये जहाँ-जैसे हैं पूरी संलग्नता और सक्रियता के साथ हैं। यह तो स्वतः स्पष्ट है कि परिस्थितियाँ पूरे तौर पर जीवन व्यतीत करने की अनिवार्यता को स्वीकार कर लेती है। इस तरह यह स्पष्ट है कि 'अंधेरे बंद कमरे' के प्रमुख चरित्र परिवेश के प्रतिकूल तथा गौण चरित्र उसके अनुकूल है।

❖ 'अंधेरे बंद कमरे' के प्रमुख चरित्र :

यह एक वातावरण प्रधान उपन्यास है। राकेशजी ने इस उपन्यास में भारत की राजधानी दिल्ली का सजीव चित्रण खींचा है। निःसंदेह रूप से यह कहा जा सकता है

कि स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक हलचलों तथा आंदोलनों के भीतरी खोखलेपन का राकेशजी ने यथार्थ चित्रण किया है। "चरित्र-चित्रण की द्रष्टि से भी यह उपन्यास इसलिए महत्त्वपूर्ण है, कि इसके अधिकांश पात्र प्रबुद्ध वर्ग के हैं, सभ्य नागरिक हैं, जो समय की नब्ज को पहचानते हैं तथा बदलती परिस्थितियों में मूल्यों के बदलाव के बीच मूल्यहीन होकर भटकते फिरते हैं।"[३७] यह एक पात्र प्रधान उपन्यास है। यद्यपि इस उपन्यास में पात्रों की भरमार है पर कुछ पात्रों के अलावा अन्य केवल धारा की लहरें मात्र है।

राकेशजी ने आलोच्य उपन्यास के माध्यम से जिन असंगतियों की ओर संकेत करना चाहा है उसके सही गवाह हरबंस और नीलिमा है। मधुसूदन इन दोनों के मध्य खड़ा है। वह क्रियाशील पात्र नहीं है। ठकुराइन अधिक क्रियाशील पात्र हो सकती थी लेकिन राकेशजी की सहानुभूति नहीं पा सकी है। राकेशजी के इस उपन्यास में कुछ तो जबरदस्ती घूँस गये है और शेष वे हैं, जिनका औचित्य प्रमाणित है, उनके व्यक्तित्व के विकास का अवसर उपन्यास में नहीं। उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र-विश्लेषण इस प्रकार है।

हरबंस :

हरबंस उपन्यास का प्रमुख पात्र है। कथानायक भी वही है। वह इतिहास का अध्यापक है, किन्तु उसका मन साहित्यिक चर्चाओं में अधिक लगता है। यह उसकी साहित्यिक अभिरुचि का ही प्रमाण है, कि वह एक उपन्यास लिखना प्रारंभ करता है किन्तु किसी भी भाषा पर अधिकार न होने से पूरा नहीं कर पाता। उसकी साहित्यिक प्रतिभा का प्रमाण यूरोप से नीलिमा के लिखे गये पत्रों में भी देखा जा सकता है। ये पत्र जहाँ एक ओर हरबंस की साहित्यिक अभिरुचि को प्रमाणित करते हैं, वही दूसरी ओर उसके भावुक एवम् रोमानी व्यक्तित्व को। हरबंस प्रेम के दायरे में स्थित होकर भी एक स्तर पर अभिशप्त जीवन बिता रहा है। उसकी पत्नी नीलिमा जाने-अनजाने जो भी करती है उसमें हरबंस की प्रेरणा है। एक ओर तो वह अपनी पत्नी नीलिमा को आगे बढ़ाना चाहता है और जब वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के दौर से गुजर रही होती है, तब उसके मन में ईर्ष्या नामक मनोवृति का उदय होने लगता है। वह खीझ से भर उठता है। विक्षोभ उसकी नसों में तनाव पैदा कर देता है। यही वह स्तर है जो हरबंस के दाम्पत्य जीवन को अभिशापग्रस्त बना देता है। हरबंस का अभिशप्त जीवन केवल नीलिमा को लेकर नहीं है, उसके लिए उसके मानसिक प्रत्यय भी उतरदायी हैं।

हरबंस में जो छटपटाहट है उसका कारण केवल कला-जगत के अभाव और सीमित द्रष्टिकोण नहीं है, अपितु उसके पीछे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, समस्याएँ हैं । "इनकी ओर उपन्यासकार ने स्पष्ट संकेत न भी किया हो तो भी समूचे परिद्रश्य के पीछे वे झांकते प्रतीत होते हैं : गलत निर्णय, अनचाहे संबंध, दूसरों के प्रति नुक्ता-चीनी का भाव और एक-दूसरे की स्वतंत्रता पर कभी अपने अधिकार की और कभी भावना की मुहर लगाने की प्रवृत्ति आदि कुछ ऐसे प्रश्निल संदर्भ है, कि हरबंस का व्यक्तित्व अभिशापित स्थितियों से गुजरता दिखाई देता है ।"[३८] इसका एक कारण यह भी है कि वह नीलिमा को आगे बढ़ाना चाहता भी है और नहीं भी चाहता ।

हरबंस का व्यक्तित्व सामान्यतः जिन तंतुओं से बना है उनमें कायरता, कमजोरी, अनिश्चय और दब्बूपन तो प्रमुख हैं ही नीलिमा का अधिकाधिक सामाजिक होते जाना भी उसके स्नायुतंत्र में हीन-ग्रंथि ओर मिला देता है । इस प्रकार वह अपने को छोटा और व्यर्थ महसूस करता हुआ पलायन वृत्ति का शिकार हो जाता है । हरबंस बाहर से जितना प्रगतिशील दिखावे का ढोंग करता है, उतना ही उसका संस्कार-बोध मध्यकालीन जड़ीकरण से ग्रस्त है । वह प्रत्यक्ष तो नीलिमा की सामाजिक प्रगतिशीलता का पक्षधर है, किन्तु उसके व्यक्तित्व के भीतरी स्तर पर कहीं यह भाव भी कम गहरा नहीं है कि वह इस तरह उसके सामने छोटा होता जा रहा है । इसी क्रम में वह निरंतर न केवल छोटा होता जा रहा है, बल्कि कमजोर और कायर भी होता चला गया है । अपनी कमजोरी के कारण ही वह नीलिमा पर शासन करना चाहता है । अधिकारी और अधिकृत की भावना उसमें भरपूर है । उसके हिसाब से नीलिमा को वहीं सब करना चाहिए जो वह चाहता है । एक क्षण के लिए यदि वह नीलिमा को कलागोष्ठियों में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करता है – नृत्य और पेंटिंग की ओर प्रवृत्त करना चाहता है तो उसे वैसा हो जाना चाहिए, किन्तु दूसरे ही क्षण यदि वह यह सब नहीं चाहे तो नीलिमा को अनुकूल आचरण करना चाहिए । यह स्थिति सही नहीं है और हरबंस के मन में एक द्विधा जन्म लेती है ।

वस्तुतः हरबंस एक अधूरा और अतृप्त व्यक्तित्व है । वह अपने अधूरेपन को नीलिमा का सबकुछ पाकर भरना चाहता है । यह अलग बात है कि वह अपना मनचाहा कर नहीं पाता है । वह सबकुछ पाना चाहता है, किन्तु देना नहीं चाहता है । उसकी द्रष्टि में उसके अनुसार नीलिमा को सोचना-समझना चाहिए, किन्तु नीलिमा का कोई भी 'अनुसार' उसे पसंद नहीं है । यह उसके पुरुषोचित अहंकार से उत्पन्न वृत्ति

है । उसके व्यक्तित्व में अहम् चरमसीमा पर है, किन्तु फिर भी बाहर से वह मूल्यों की बात करता है । यही तो उसका अधूरापन है जिसके कारण वह निरंतर टूटता-बिखरता हुआ कहीं का भी नहीं रहता है ।

हरबंस एक ओर सहजीवन की यंत्रणा से अभिशप्त है तो दूसरी ओर उसके जीवन में व्याप्त शून्यता उसे खाये जा रही है । इसलिए वह अपनी पत्नी के साथ रहता हुआ भी अकेला और अजनबी महसूस करता है । अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार सह-अस्तित्व ही नरक है, "और इसी नरक को हरबंस और नीलिमा भोग रहे हैं । जब यह स्थिति बोझ बनने लगती है,तो दोनों अकेलेपन में पूर्णता प्राप्त करना चाहते हैं ।"[३९] स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है, कि नीलिमा खुले रूप में यह स्वीकार करती है कि "जैसे हम पति-पत्नी न होकर एक-दूसरे के दुश्मन हैं और साथ रहकर एक-दूसरे से अजनबी है ।"[४०] हरबंस के जीवन में जो अभाव और अकेलापन है उसका सारा दायित्व वह नीलिमा पर थोपना चाहता है । कतिपय स्थितियों में हर पात्र का अपना मन एवम् अकेलापन है जो उसका नेपथ्य है, "हरबंस और नीलिमा इसी नेपथ्य में छटपटाती, झुंझलाती, खीजती आकृतियाँ हैं, एक-दूसरे के लिए अर्थहीन हैं । इस अर्थहीनता और विफलता को इतनी विविध भंगिमाओं में प्रतिष्ठित करने का 'अंधेरे बंद कमरे' में पहला प्रयास है और कोई कारण नहीं कि इस द्रष्टि से इसे एक असामान्य उपन्यास न माना जाये ।"[४१]

हरबंस का दाम्पत्य जीवन विवशता का परिणाम है । इस विवशता के कारण उसमें जिस भाव का उदय होता है, वह एक ओर खीझ और अकुलाहट से संबद्ध है और दूसरी ओर उसकी पराश्रयी चेतना से । हरबंस ने अपनी विवशता को स्पष्टतः स्वीकार किया है : "कितने वर्षों से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि न वह मुझे कुछ दे सकती है और न मैं उसे कुछ दे सकता हूँ । इसलिए उसने अलग रहने का निश्चय कर लिया है । वह अच्छा ही है नहीं तो यह चखचख जिन्दगीभर बनी रहती है । वह दस साल पहले जो कुछ मुझे नहीं दे सकती थी, वह आज भी नहीं दे सकती है और दस और भी गुजर जाते तो भी नहीं दे सकती थी ।"[४२]

हरबंस एक 'ट्रेजिक करैक्टर' है । उसकी विडंबना ही यह है कि वह जो भी बनना या होना चाहता है वह नहीं हो पाता । उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ तो बड़ी हैं किन्तु उसकी पूर्ति के लिए अपनाये गये साधन अधूरे हैं । फलतः वह भी एक अधूरा चरित्र है । उसके चरित्र की सबसे बड़ी विसंगति यह है, कि नीलिमा को आगे बढ़ाना तो चाहता है

किन्तु अपनी तरह से अपने ढंग से । वैसे देखा जाये तो उसका कोई ढंग नहीं है । सदैव दो दरवाजों के बीच दिखाई देता है । हरबंस के चरित्र में जो पीड़ा का गहरा बोध है उसके पीछे उसकी घुटन, ऊब, अकेलापन और अजनबीपन है । पति–पत्नी के बीच प्रेम नहीं है और प्रेमहीन रति से बड़ा नरक कोई दूसरा नहीं हो सकता है । स्वयं नीलिमा की यह स्वीकारोक्ति है, जो दोनों के बीच पनपती पीड़ा को रेखांकित करती है : "विवाहित जीवन में दो व्यक्तियों का शारीरिक संबंध ही सब–कुछ नहीं होता, और मैं जानती हूँ कि मैं उसके लिए एक शारीरिक साधन से ज्यादा कुछ नहीं हूँ ।"[४३] हरबंस के चरित्र में द्विधा है, विकल्प है और है अनेक ऐसी स्थितियाँ जो उसे अकेला रहने के लिए बाध्य करती है । कभी कभी वही अकेलापन उसकी पीड़ा का कारण भी बन जाता है । उसके चरित्र की यह कैसी विडंबना है कि वह एक ओर वही अकेलापन जब उसे काटने लगता है तो वह फिर नीलिमा के लिए आतुर हो उठता है । मेरी द्रष्टि में इस विसंगत और विरोधी स्थिति के लिए उसके द्वारा लिए गये गलत निर्णय, अधूरे फैसले और अपूर्ण चुनाव है ।

वस्तुतः हरबंस में सही चुनाव करने की क्षमता नहीं है । एक ओर तो वह लंदन से नीलिमा को लिखता है : "मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं जिस तरह अकेला रहना चाहता था उसी तरह इस समय हूँ और नहीं चाहता कि कोई चीज मेरे इस अकेलेपन में बाधा डाले ।"[४४] दूसरी ओर जिस मुक्ति और अकेलेपन के लिए वह बैचेन था उसे पाकर वह बहुत जल्दी ऊब भी जाता है । परिणामतः अपने तीसरे चौथे पत्र में ही वह नीलिमा को लिखता है : "मैं इन थोड़े से दिनों में ही अपने अकेलेपन से बूरी तरह ऊब गया हूँ । लगता है कि मैं दो–चार साल तो क्या इस तरह लंदन में एक महीना भी तो नहीं काट सकूगाँ । .... तुम आ जाओगी तो सारी व्यवस्था ठीक हो जायेगी और हम यह भूल जायेंगे कि हम कभी दिल्ली में भी रहते थे और हमारी जिन्दगी में कभी किसी तरह का तनाव भी था । "[४५]

हरबंस के मन में जगी अकेलेपन की कामना मुक्त होकर जीने की भावना और कुछ ही समय बाद नीलिमा के साथ रहने की व्याकुलता उसके अधूरेपन का तथा गलत निर्णय का प्रमाण तो है ही, साथ–साथ यह भी स्पष्ट कर देती है कि वह अस्थिर चित्त है और द्रढ़ता उसमें नहीं है । वह न सही विश्लेषक है, न सही निर्णायक और न सही विचारक है । तभी तो उसने कहा कि, "तुम्हारे साथ और तुम्हारे बिना, दोनों ही तरह जिन्दगी मुझे असंभव प्रतीत होती है ।"[४६] यह असंतुलन, यह मनःस्थिति और अंतर्मंथन

की प्रक्रिया उसके असमंजसपूर्ण व्यवहार की पोषिका है। वह कुछ थोड़े से समय तक भी एक जैसी स्थिति में नहीं रह सकता जल्दी ही ऊब जाता है। हरबंस के चरित्र में जितना असंतुलन है, उतनी ही अव्यवहारिकता भी है। वह व्यवहारू नहीं है, जबकि नीलिमा व्यवहारू है। हरबंस ने स्वयं स्वीकार किया है, "मेरे साथ यही तो दिक्कत है कि मैं हर चीज को 'प्रेक्टिकल' ढंग से नहीं सोचता। अगर मैं ऐसा कर सकता तो हमारी जिन्दगी का रूप बिलकुल दूसरा नहीं होता।"[४७] अंत में हरबंस और नीलिमा का साथ–साथ रहना, फिर अलग होना और फिर मिलना स्त्री–पुरुष की पारस्परिक निर्भरता और संबंधों को निभाते जाने की निर्भरतापूर्ण स्थिति को ही व्यक्त करता है। यह स्थिति हरबंस और नीलिमा दोनों की है। दोनों की जिन्दगी संघर्षो को झेलने की तैयारी और उसका असफल सामना करने में ही बीत जाती है। फलतः अनुभूति का ताप बिखर जाता है और मनोगत ऊष्मा शीतल हो जाती है। इतने पर भी वे संस्कारशीलता और अकेलेपन के बोझ को न ढो पाने की विवशता के कारण एक–दूसरे की कमियों को दिखाते हुए परस्पर आबद्ध रहते हैं। हरबंस का व्यक्तित्व दुहरा है। उसके व्यक्त्वि के निर्माण में एकात्मकता से काम नहीं लिया गया। यही कारण है कि वह कभी नीलिमा के प्रति द्रवित और समर्पित है तो कभी उससे अलग रहकर उसकी उपेक्षा करता है। वह उसके साथ रहना भी चाहता है और नहीं भी रहना चाहता। वस्तुतः हरबंस उपन्यास का एक ऐसा अभिशप्त, व्यथानुकूल, विवश, अधूरा और सहअस्तित्व की पीड़ा से ग्रस्त पात्र है, जो अपनी छटपटाहट और कुंठाओं के कारण अर्थहीन और शून्य जिन्दगी का भार ढ़ोता फिरता है। उसका हर कदम एक नये निर्णय का परिणाम है, किन्तु वह कितना गलत और कितना व्यर्थताबोध लिए हुए है, यह सहज अनुमान्य है। मध्ययुगीन सामाजिक बोध से ग्रस्त हरबंस प्रगति और अप्रगति तथा द्वन्द्व और गलत निर्णयों के बीच का आदमी है। इसी से वह जो है, वह नहीं दिखता और जो दिखता है वह नहीं है। उसकी सारी समस्या अधूरेपन और अलगाव की है।

नीलिमा :

'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास के दूसरे प्रमुख पात्र के रूप में 'नीलिमा' को लिया जा सकता है। वह उपन्यास की नायिका है। उपन्यास में आये नारी पात्रों में नीलिमा का व्यक्तित्व एक ऐसी नारी का व्यक्तित्व है जो आधुनिक सभ्यता में पली–ढली है। उसके संस्कारों में विदेशीपन है। एक ओर वह 'फेशनेबल' एवम् शौकीन नारी के रूप में सामने आती है तो दूसरी ओर उसकी पति–निर्भरता भी स्पष्ट है। एक ओर उसमें

जीवन को अपने ढंग से जीवन जीने की महत्त्वाकांक्षा और अभिलाषा है तो दूसरी ओर वह हरबंस के कदमों से बने निशानों पर पैर रखती हुई जीना चाहती है। कैसी विडंबना है कि वह हरबंस के साथ रहना भी चाहती है और नहीं भी रहना चाहती। नीलिमा को हर नया संदर्भ एक नई आधुनिकता से जोड़ जाता है। अपने पति के साथ रहती हुई यदि वह उससे ऊब जाती है, तो अपने भीतर छिपी नारी के संकेतों पर वह उससे अलग रहकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहती है। यह अलग बात है कि अपने व्यक्तित्व निर्माण में उसे किस प्रकार की और कौन–सी परिस्थितियों से गुजरना पड़ेगा वह स्वयं जानती नहीं थी। स्वयं हरबंस चाहता है कि वह अपना विकास करे, अपने निर्माण को अपने ढंग से करे और उसके लिए स्वयं जिम्मेदार हो। वह ऐसा करती भी है, किन्तु वैसा करने में नीलिमा का व्यक्तित्व बनता कम बिगड़ता अधिक है। वह ज्यों–ज्यों हरबंस से अलग रहकर समय काटना चाहती है, त्यों–त्यों अपने पति के और निकट आती चली जाती है। उसकी पति–निर्भरता और दाम्पत्य संबंधों को निभाते जाने की विवशता अधिक गाढ़ी होती जाती है। "राकेश ने नीलिमा के बहाने उस नारी को प्रस्तुत किया है जो मध्यवर्गीय जीवन की धारा में ऊभ–जूभ करती हुई कभी इस किनारे जा खड़ी होती है तो कभी उस किनारे। 'ट्रेजेडी' यह है कि उसके खड़े होने के इन दोनों किनारों के बीच कोई भी ऐसा सेतु नहीं है, जो उसे इस ओर से उस ओर जाने में मदद करता हो। आश्चर्य तो तब होता है जब वह इन दोनों किनारों पर फिर भी आती–जाती दिखाई गई है, किन्तु छलांग लगाकर।"[४८]

उपन्यास में नीलिमा को एक तेज–तर्रार और फेशनेबल युवती के रूप में चित्रित किया गया है। वह आधुनिका है। अतः एकाध चुस्की मदिरा की भी ले लेती है। हाँ सिगरेट तो वह प्रायः पीती ही है। उसमें जो आधुनिकता है वह बाहरी तौर पर अधिक है, किन्तु अपने आधुनिक रूप में भी वह ऐसी नारी नहीं है जिसे कुटिल और जटिल चरित्रवती कहा जाये। सामान्यतः उसका स्वभाव स्पष्ट है और वह अपने व्यवहार में काफी खुली हुई है। उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों में ही वह मधुसूदन से बात करते समय काफी खुली दिखाई देती है। उसे न किसी बात का संकोच है और न कोई दुराव–छिपाव। यही कारण है कि वह 'आप' की अपेक्षा 'तुम' संबोधन को उचित समझती है। उसके चेहरे पर हँसी खेलती रहती है। उसकी हँसी लड़कियों की तरह न होकर लड़कों की तरह है। हँसते समय उसका मुँह पुरा खुल जाता है। उसकी हँसी, बातचीत का ढंग और व्यवहार काफी उन्मुक्तता लिए हुए है। नीलिमा अपने खुले व्यवहार के कारण मधुसूदन तक को प्रभावित कर लेती है। उसके चरित्र में उसका

सर्वोपरि गुण ही उसका खुलापन है । इस संबंध में नीलिमा की स्वीकारोक्ति भी है : “खामखाह तकल्लुफ की बातें करना मेरी आदत नहीं है । मुझे सचमुच खुली और साफ बात करना पसंद है ।”[४९] ध्यान से देखें तो नीलिमा के इस कथन और व्यवहार में कोई अंतर नहीं है । नीलिमा का व्यक्तित्व बहिर्मुखी है । इसी कारण चाहे मधुसूदन हो, चाहे हरबंस, चाहे जीवन भार्गव और चाहे उसके साथी कलाकार हों वह अपने व्यवहार में काफी खुली हुई है । यह भी उसकी स्वच्छंद मनोवृत्ति का ही परिणाम है कि वह ऊबानू के साथ रहती है, अपने ढंग से जीना सीखती है और अपने कलाकार मित्रों के बीच भी वह निःसंकोच तथा उन्मुक्त है ।

नीलिमा महत्त्वाकांक्षी नारी है । एक महत्त्वाकांक्षी स्त्री के रूप में उसका चरित्र उपन्यास में चित्रित हुआ है । उसे नृत्य का बेहद शौक है । वह साधना करती है । दक्षिण जाकर नृत्य का अभ्यास करती है – भरतनाट्यम् की साधना करती है । विलायत में जाकर अपने पति का साथ छोड़कर नीलिमा उमादत के ग्रुप के साथ घूमती फिरती है । अपने नृत्य की महत्त्वाकांक्षा को पूरी करने के लिए ही वह भारत लौटने पर अपने नृत्य-प्रदर्शन का आयोजन करती है । स्वयं हरबंस उसके नृत्य-प्रदर्शन के टिकट बेचता है और पत्रकार मधुसूदन भी इस योजना में सहायता करता है, किन्तु इतना सब होने पर भी नृत्य-प्रदर्शन का आयोजन असफल हो जाता है । नीलिमा की महत्त्वाकांक्षा पूरी होते-होते रह जाती है । महत्त्वाकांक्षा के अतिरेक में आकर उसे सत्य-असत्य का ज्ञान भी नहीं रहता । फलतः अपनी इस असफलता के लिए वह हरबंस को उत्तरदायी मानती है । यह वह स्थान है जो दाम्पत्य संबंधों में तनाव को ला खड़ा करता है । उसकी महत्त्वाकांक्षी वृत्ति के एक अंग के रूप में उसकी चित्रकला भी आती है । वह हरबंस के कहने पर पेंटिग्स का अभ्यास करती है । यद्यपि यह ठीक है कि चित्रकला की अपेक्षा उसकी रुचि नृत्य में अधिक है; किन्तु फिर भी चित्रकला के क्षेत्र में सफलता पाने के लिए की गई कोशिश उसकी महत्त्वाकांक्षा का ही एक रूप है । यह भी ठीक है कि वह हरबंस के कहने पर चित्र बनाना प्रारंभ करती है किन्तु कहीं भीतर की छिपी उसकी महत्त्वाकांक्षी वृत्ति उसे इसके लिए प्रेरित करती है । वह सोचती है कि उसके अकेलेपन से उबरने और आकांक्षाओं की पूर्ति के मार्ग शायद इसी चित्रकला में मिल जाये । वैसे उसकी चित्रकला में कोई रुचि नहीं है । उसने स्पष्ट कहा है : “मगर मैं खाली भी तो नहीं रह सकती । जो मैं चाहती हूँ वह हरबंस करने नहीं देता, इसलिए मैं ‘पेंट’ करके ही मन बहलाने की कोशिश करती हूँ ।”[५०] स्पष्ट है कि नीलिमा का व्यक्तित्व महत्त्वाकांक्षी है । उसकी महत्त्वाकांक्षा नई दिल्ली के तथाकथित लोकप्रिय ‘फेशनेबल’

समाज में किसी एक ललीत कला के माध्यम से अपना नाम उजागर करना है । नीलिमा इस संसार में आकर यों ही मर जाना नहीं चाहती है । वह चाहती है कि वह अपनी आकांक्षाओं को पूरी करती हुई मरे और उसके मरने के बाद लोग या कला-समाज एक अभाव का अनुभव करे । इसी भावना के कारण वह यहाँ तक कह देती है कि "मुझे यह सोचकर डर लगता है कि मैं ऐसे ही बूढ़ी होकर मर जाऊँगी और लोग जानेंगे भी नहीं कि मैं भी कभी थी ।"[७१] वह महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति का माध्यम मानकर ही चित्रकारी की ओर उन्मुख होती है । नीलिमा की महत्त्वाकांक्षा को लेकर श्रीमति मीना पिंपलापुरेने लिखा है : "महत्त्वाकांक्षाएँ कई बार हमें निमर्म, निष्करुण बना देती है, पर मोहन राकेश इस विषय में सजग है कि कहीं ऐसा न हो कि महत्त्वाकांक्षाओं में नीलिमा का व्यक्तित्व अमानवीय हो जाये ।"[७२]

नीलिमा का खुलापन, उसकी महत्त्वाकांक्षा और उसकी पूर्ति के लिए किए गये सारे प्रयत्न उसे एक स्वतंत्र एवम् स्वच्छंद नारी के रूप में प्रस्तुत करते हैं । उसकी स्वच्छंद वृत्ति नृत्यकला के दौरान कुछ खुलकर सामने आती है, किन्तु जैसा कि कहा गया है कि वह ऊपर से आधुनिक है । उसका आंतरिक व्यक्तित्व वैसा या उसी स्तर पर आधुनिक नहीं है । आधुनिक नारी की यही विडंबना है, यही उसका अंतर्विरोधी व्यक्तित्व है कि वह आज एक ओर तो स्वातंत्र्य का वरण करने को उत्सुक है और दूसरी ओर उसके संस्कार उसके मार्ग में बाधक है । नीलिमा भी इसका अपवाद नहीं है । अपने स्वच्छंद रूप के कारण वह ऊबानू के साथ तीन दिन रहती है । अपने पति के साथ होते हुए भी विलायत में उमादत्त के ग्रुप के साथ घूमती रहती है । नृत्यकला के प्रदर्शन का आयोजन करती है, सिगरेट व शराब पीती है और एक बार ऊबानू की भावुकता का लाभ उठाने की कोशिश भी करती है । वह उसमें रस लेने लगती है, किन्तु हर स्तर पर उसकी स्वच्छंद मनोवृत्ति के मार्ग में उसके संस्कार की भावना आ जाती है । संस्कारों की प्राचीनता और उनका स्वीकार नीलिमा में पहले से ही है । उसने मधुसूदन से कहा भी है : "हम लोग कितने ही रंग में रंग जायें किन्तु हमारे संस्कार तो वही है ।"[७३] उसकी संस्कारशीलता ही उस अनेक विरोधों के बावजूद हरबंस से जोड़े रहती है । वह हरबंस के पास रहकर उससे दूर रहने का अभिनय करती है और दूर होने पर उसके पास आने के लिए ललकती है । उसकी यह पति-निर्भरता और बार-बार अलग होकर फिर पास आने की प्रवृत्ति उसे आंतरिक स्तर पर एक आधुनिक नारी ही प्रमाणित करती है । सारी आधुनिकता के बावजूद नारी की वास्तविकता आज भी वही है जो नीलिमा की है । वह मुक्ति के लिए छटपटाती है, बैचेनी का अनुभव करती है और उसे

पाने के प्रयास में सफेदपोश पुरुष की पाशविकता उसे मर्माहत कर देती है। फलस्वरूप वह आधुनिकता के सारे सोपानों को पार करती हुई भी अंतिम सीढ़ी पर न चढ़कर वापस लौट आती है। नीलिमा ने अपनी स्वच्छंदता को कायम रखने के लिए क्या नहीं किया ? वही सब जो एक मुक्तमना को करना चाहिए किन्तु आखिर में उसकी सारी आधुनिकता तथा स्वच्छंदता वृत्ति हरबंस के बाहुपाश में आकर सिमट गयी।

नीलिमा में भावुकता है। भावुकता के कारण ही वह अनेक महत्त्वाकांक्षाएँ पालती है। 'स्टेज आर्टिस्ट' बनने के सपने देखती है। स्नेह के नये सूत्रों की खोज करती है और स्वतंत्र तथा आवेशी–वृत्ति के कारण कला–जगत में नाम कमाना भी चाहती है किन्तु अंततः वह महानगर की भीड़ तथा अपार प्रसंशकों से घिरकर भी जीवन में एक रिक्तता का अनुभव करती है। उसके जैसी भावुक नारी के लिए यह स्थिति पर्याप्त भयावह है। एक ओर उसकी अपनी इच्छाएँ है, सपने हैं और दूसरी ओर मानवीय संबंधों की शून्यता और स्नेहशीलता का अभाव है जिनमें बराबर टकराहट होती रहती है। नीलिमा की भावुकता ही उसे एक पीड़ा–बोध से भर देती है। फलतः उसके चरित्र में अंतर्द्वन्द्व जन्म लेता है। राकेशजी ने नितांत व्यक्ति के धरातल पर नीलिमा और हरबंस के अंतर्द्वन्द्व को अस्तित्ववादी रेखाओं के सहारे प्रस्तुत किया है। नीलिमा की भावुकता जब सर उठाती है, तो वह हरबंस की बात मानती है। उसी में अपना सुख खोजना चाहती है और अपने सपनों का संसार बुनने लगती है; किन्तु जैसे ही उसकी मुक्तकामी भावना ऊपर आती है, वैसे ही वह अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए व्याकुल हो उठती है। अतः अपनी स्वतंत्रता के लिए वह हरबंस से लड़ती झगड़ती है। वस्तुतः नीलिमा स्वतंत्रता चाहती है और हरबंस अपना अधिकार। अतः दोनों पति–पत्नी का संघर्ष स्वातंत्र्य बोध और अधिकार के भावों के बीच घटित होता है। नीलिमा की सारी कोशिश को वह कभी भावुकता और संवेदना के सहारे पूरी करना चाहती है और कभी अपने सपनों को साकार करने के बहाने। विडंबना यह है कि वह कुछ भी नहीं कर पाती या कहें कि आधुनिक समाज उसे कुछ भी नहीं करने देता है। फलतः अनेक किनारों से टकराती हुई नीलिमा जहाँ की तहाँ रह जाती है। बर्मी कलाकार के साथ बिताये गये क्षणों में भी वह काफी भावुक प्रतीत होती है किन्तु उस समय भी उसका विवेक जागृत होता रहता है। जैसे ही उसे लगता है कि ऊबानू उसकी भावुकता का लाभ उठाना चाहता है वैसे ही वह उससे दूर हट जाती है। नीलिमा अपने मन की भावुकता में आकर ऊबानू के साथ जगह–जगह घूमती रहती है। उसका हाथ पकड़कर जहाँ–तहाँ फिरती है, किन्तु फिर भी नीलिमा ऊबानू को कोई छूट नहीं देना चाहती है।

"देखो मैं जब तक तुम्हें इजाजत न दूँ, तब तक तुम मेरे साथ कोई ज्यादती नहीं करोगे।"[५४] इससे स्पष्ट है कि नीलिमा की भावुकता हर किसी के लिए नहीं है। वह भावुक है, संवेदनशील है किन्तु केवल हरबंस के संदर्भ से। इसके अतिरिक्त उसकी भावुकता केवल अपने मन की भीतरी शून्यता को भरने के लिए है, न कि किसी कुटिलता के कारण।

नीलिमा का दाम्पत्य जीवन तनाव से भरा है। उसका कारण ही यह है कि नीलिमा स्वच्छंद मनोवृत्ति से युक्त महत्त्वाकांक्षिणी है और हरबंस उस पर अपना पूरा अधिकार जताता है। इसी कारण दोनों एक–दूसरे को कोसते रहते हैं, लड़ते–झगड़ते रहते हैं; किन्तु विचित्र संयोग ही है कि वे दोनों तनावों के बीच रहते हुए भी एक–दूसरे के बिना अधूरे और अपूर्ण हैं। नीलिमा जानती है कि वह हरबंस के बिना नहीं रह सकती है। इसीसे तो अलग होने का उसका हर प्रयत्न वापस उसे हरबंस के पास ले आता है। असल में वह समर्पित है, भीतर से वह हरबंस के लिए ही है। भले ही वह इन सबसे इन्कार करे और अपनी विवशता दिखाये किन्तु वह हरबंस की जिन्दगी की छाया है। यह कारण है कि जब हरबंस उसे लंदन बुलाता है तो वह मैसूर के अपने कार्यक्रम को रद् करने को तैयार हो जाती है। ऊबानू के साथ रहकर भी वह हरबंस की बनी रहती है। वस्तुतः वह अपने जीवन में तनाव कितना ही सह ले, विरोध कितना ही कर ले किन्तु अंततः वह हरबंस के प्रति ईमानदार ही रहती है। बर्मी कलाकार के पास से आकर वह स्वयं कहती है : "बस मैं तुम्हें छोड़कर अलग नहीं रह सकती। ... मैं तुमसे अलग रहना चाहती तो यहाँ इतनी दूर आती ?"[५५]

नीलिमा हरबंस के प्रति न केवल ईमानदार है, बल्कि पूरी सच्चाई से उसका साथ देना चाहती है किन्तु तब तक जब तक की हरबंस उसे अपने मार्ग की बाधा नहीं समझता। उसे हरबंस की चिंता है। वह उसे न तो उदास देख सकती है और न चिंतित ही। कारण यह है कि उदास रहना या किसी को हर समय उदास देखना उसके स्वभाव के विपरीत है। वह मुक्तमन होकर जीना चाहती है और चाहती है कि हरबंस को भी मुक्त कर दे। इसी कामना की पूर्ति के लिए नीलिमा हरबंस की जिन्दगी से अलग जाकर नये संदर्भ सूत्र खोजती है किन्तु वह हरबंस के लिए है। अतः वह सारी भाग–दौड़ करके भी वह यही स्वीकार करती है : "मैंने चाहा था कि मैं अपने मन से तुम से मुक्त हो सकूँ जिससे अपने को तुमसे अलग करने का मुझे एक कारण मिल जाये। मगर मैं ऐसा नहीं कर सकी। चाहकर भी नहीं कर सकी।"[५६] स्पष्ट ही यह

नीलिमा के दाम्पत्य संबंधों की ईमानदारी है कि वह हर जटिल से जटिल स्थिति में भी साफ बनी रहती है । बीच-बीच में जो प्रयोग वह करती है या जिन्दगी जीने के लिए जो मार्ग अपनाना चाहती है वहाँ भी वह न केवल अपने प्रति वरन् हरबंस के प्रति ईमानदार बनी रहती है । वह यह कोशिश तो करती है कि कोई-न-कोई ऐसा उपाय तलाशे जिससे उसे किसी भी रूप में हरबंस पर निर्भर न रहना पड़े – न धन के लिए, न आश्रय के लिए और न ही भावना के लिए; किन्तु उसकी सारी कोशिशें केवल कोशिशें बनी रहती हैं । यदि नीलिमा सचमुच हरबंस और अपने प्रति ईमानदार और सच्ची न होती तो वह कोई भी मार्ग अपना सकती थी । उसके पास रूप था, वक्तृत्व कला थी, उसका हृदय कलाकार का हृदय था और उसे सभी साधन भी प्राप्त थे किन्तु वह प्रयत्न करके भी कुछ नहीं करना चाहती । इसका कारण यही है कि वह जो भी करती है वह या तो हरबंस को मुक्तमन से जीने की प्रेरणा के लिए या फिर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए । ऐसा कहीं नहीं लगता कि नीलिमा कहीं भी अपने स्तर से गिरी हुई है । हरबंस से दस पौंड मंगाने के पीछे भले ही उसके मनमें यह भावना रही हो कि हरबंस को उसकी कितनी जरुरत है और वह उसके लिए कितना कष्ट सह सका है, किन्तु जब पेरिस से लंदन के लिए हवाई जहाज में बैठ जाती है तो यही अनुभव करती है कि वह हरबंस को छोड़कर नहीं रह सकती है । स्पष्ट है कि नीलिमा अपने दाम्पत्य संबंधों में ईमानदार, समर्पित और भावुक नारी है । नीलिमा का सारा प्रयास हरबंस के लिए है – उसे पाने, साथ रहने और हर स्थिति में उसकी छाया बनी रहने के लिए है । उपन्यास में स्थान-स्थान पर ऐसे वाक्य आये हैं जहाँ नीलिमा की इस मनःस्थिति को देखा जा सकता है ।

नीलिमा अपनी स्वच्छंद मनोवृत्ति के कारण ही स्पष्टवादिनी भी है । उसमें साफ और खुलासा करने का गुण है । उसका स्वीकार बोध गहरा है । यही कारण है कि वह अपने हर संदर्भ को बिना राई-रत्ती छिपाये हरबंस के सामने रख देती है । जो नारी मुक्तमन से यह स्वीकार करती है, कि 'मैंने चाहा था कि तुम्हें एक बार धोखा दे सकूँ' उसकी स्पष्टवादिता में संदेह नहीं किया जा सकता । वह लंदन जाकर हरबंस से यहा तक कह देती है कि "मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मैं किस तरह की जिन्दगी में पैर रख रही हूँ ... अगर तुम मुझे जबरदस्ती रोकोगे, तो मैं तुमसे कहे देती हूँ कि मैं वैसे ही चली जाऊँगी और कभी तुम्हारे पास लौटकर नहीं आऊँगी ।"[५७]

इससे जहाँ उसकी स्पष्टवादिता व्यक्त होती है वहीं उसका स्वाभिमान भी स्पष्ट होता है। नीलिमा अपने अस्तित्व के प्रति जागरुक है। वह अपनी कला-साधना पर या अपने व्यक्तित्व निर्माण के पक्ष पर किसी की कोई नुक्तेचीन बरदाश्त नहीं करती। जब-जब हरबंस उसके स्वाभिमान को आहत करने की कोशिश करता है, वह आवेश में आ जाती है और दो टूक बात करने से नहीं चूकती। एक ओर इतना स्वाभिमान, इतनी महत्त्वाकांक्षा और इतनी स्पष्टवादिता और दूसरी ओर यह स्वीकारबोध, दोनों ही उसके व्यक्तित्व के अनिवार्य अंग है। उसकी स्पष्टवादिता तथा तेजतर्रार प्रवृत्ति की द्योतक ये पंक्तियाँ हैं, "हाँ मैं ही तो तुम्हारे लिए सिर-दर्द पैदा कर रही हूँ। एक तो तुम्हारे लिए कमाकर लाती हूँ, दूसरे घर में नौकरानी का सारा काम करती हूँ, उस पर भी तुम्हें यह कहने का हौंसला पड़ता है, कि मैं ही तुम्हारे लिए सिर-दर्द पैदा कर रही हूँ।"[५८] दूसरी और वह कथन जिसमें वह एक घर की इच्छुक, प्यार की प्यासी नजर आती है। उसका यह स्वीकार बोध न केवल उसकी ईमानदारी को रेखांकित करता है, बल्कि उसकी सुख की इच्छा को भी संकेतित करता है : "वह केवल उससे सुरक्षा ही नहीं चाहती, उसका घर और प्यार भी चाहती है। वह पेरिस में तीन दिन अकेली रही जरूर मगर उसने जरा भी विश्वासघात नहीं किया। वह इस थोड़े से समय में ही यह जान चुकी है कि वह उससे अलग रहकर भी उससे मुक्त नहीं हो सकती है।"[५९] हरबंस के प्रति इतनी बँधकर भी वह घरेलू किस्म की जिन्दगी नहीं जी सकती है। वह ऐसी जिन्दगी को ही सब कुछ नहीं मानती। उसकी अपनी जरुरतें और महत्त्वाकांक्षाएँ हैं। नीलिमा की महत्त्वाकांक्षाओं के मार्ग में जो भी आता है वह उसी पर बरसती है। वह हरबंस को यह भी कह देती है कि "तुम मुझे अपने लिए इस्तेमाल कर रहे हो – कुछ लोगों के साथ अपना संपर्क और परिचय बढ़ाने के लिए उनसे अपने छोटे-छोटे काम निकलवाने के लिए, आज तक तुम किसे आगे करते आये हो ? अपने विदेशी मित्रों में क्यों बार-बार मेरी चर्चा किया करते हो ?"[६०] जाहिर है कि नीलिमा स्वाभिमानिनी है, आत्मसम्मान की भावना उसमें है और वह अपने अस्तित्व को हर कीमत पर बनाये रखना चाहती है।

अतः राकेशजी की नीलिमा 'फेशनेबल' नारी होकर भी पति के प्रति ईमानदार है, भावुक होकर भी विवेक शून्य नहीं है। "स्वाभिमान अस्तित्व की सुरक्षा, स्पष्टवादिता, समर्पण, महत्त्वाकांक्षा और तार्किकता उसके चरित्र के प्रमुख गुण हैं।"[६१] वह अपने व्यवहार में मुक्त है; किन्तु भीतर से केवल हरबंस के लिए ही है। अनेक जटिल स्थितियों और संगत-असंगत विडंबनाओं को झेलते भी नीलिमा का चरित्र उलझा हुआ नहीं है। यद्यपि कई बार ऐसा लगता है कि राकेशजी उसे निरंतर रहस्यमय

बनाने के प्रयत्न में लगे रहे हैं किन्तु उपन्यास में धीरे-धीरे वह परत-दर परत खुलता गया है। नीलिमा हरबंस की परछाई थी और परछाई ही बनी रहती है। यों कभी कभी स्वाभिमान, महत्त्वाकांक्षा और अस्तित्व के प्रति सतर्क होने के कारण वह आरोप-प्रत्यारोपों की भाषा भी अपनाती है, किन्तु इतने पर भी उसका चरित्र एक मध्यवर्गीय समर्पित किन्तु महत्त्वाकांक्षाओं की बैसाखियों के सहारे चलने वाली नारी का चरित्र है। उसमें जटिलता तथा उलझाव कहीं नहीं है।

मधुसूदन :

उपन्यास का सारा कथानक पत्रकार मधुसूदन के इर्द-गिर्द घूमता है। एक तरह से कहा जाएँ तो कहानी के बिखरे हिस्सों, विभिन्न पात्रों एवम् दस वर्ष के अन्तराल को जोड़नेवाला पात्र मधुसूदन ही है। राकेशजी स्वयं उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं – "तय नहीं कर पा रहा हुँ इसे क्या कहूँ। आज की दिल्ली का रेखाचित्र ? पत्रकार मधुसूदन की आत्मकथा ? या हरबंस और नीलिमा के अन्तर्द्वन्द्व की कहानी ?"[६२] सर्वप्रथम हमारा परिचय मधुसूदन से तब होता है जब वह नौ वर्ष बाद पुनः दिल्ली आता है तथा उसकी मुलाकात हरबंस से होती है। वह लखनऊ की नौकरी छोड़ आया है और दिल्ली के 'न्यु हैरेल्ड' दैनिक पत्र में काम कर रहा है। मधुसूदन का प्रथम परिचय बंबई में हुआ और यह परिचय एक मित्र प्रेम लूथरा ने कराया था। हरबंस दिल्ली के किसी कोलेज में इतिहास का प्राध्यापक था और वह मधुसूदन की कुछ कविताएँ पढ़ चुका था।

मधुसूदन अपने एक मित्र अरविन्द के साथ कस्साबपुरा के एक कमरे में ठकुराइन का 'पेइंग-गेस्ट' बनकर ठहरा था। वह उस समय नौकरी की खोज में था तथा उसके वे दिन काफी परेशानी भरे थे। क्रमशः कुछ दिन गुजरने के बाद मधुसूदन को एक दैनिक पत्र में काम मिल गया। जिस घर में ठकुराइन रहती थी उसी में इबादतअली नामक एक बूढ़ा सितारवादक तथा उसकी लड़की खुर्शीद रहती थी , जिनके प्रति मधुसूदन की काफी सहानुभूति थी। कालान्तर में उसने इस विषय पर एक फीचर भी लिखा था, जिसकी काफी प्रशंसा की गई थी।

मधुसूदन इस उपन्यास का एक विशिष्ट पात्र है। मधुसूदन इस उपन्यास का 'नेरेटर' है। उसका अपना एक प्रभावशाली व्यक्तित्व भी है। श्रीकांत वर्मा के शब्दों में "मधुसूदन एक ईमानदार, परिश्रमी एवम् आस्थावान व्यक्ति है। उसकी आस्था सचमुच

ही सराहनीय है। मगर जीवन और तमाम वस्तुओं के प्रति वह स्थूल ढंग से विचार करता है।"[६३] वह प्रतिष्ठित पत्रकार, सच्चा मित्र, एक निष्फल प्रेमी और आस्थावान व्यक्ति है। पत्रकारत्व के नाते कला, संस्कृति, सामाजिक प्रदर्शन आदि के संपर्क में रहता है। सभी जगह बनावटीपन और खोखली स्थिति को देखकर वह घुटन का अनुभव करता है।

मित्र के रूप में मधुसूदन निष्ठावान मित्र है। नौ वर्ष बाद दिल्ली आता है, परिचित हरबंस के साथ मुलाकात होती है। यह मुलाकात उपन्यास के अंत तक बनी रहती है। हरबंस के तनावपूर्ण दाम्पत्य जीवन के प्रति उसके दिल में सहानुभूति थी। हरबंस के विदेश चले जाने पर वह सूनेपन का अनुभव करता है। अपने मित्र हरबंस के ग्यारह पत्रों को पढ़कर नीलिमा को विदेश जाने की राय देता है। विदेश से लौटने के बाद हरबंस और नीलिमा के संपर्क में लगातार रहता है और दोनों की ही घुटन, यंत्रणा और यातनामय दाम्पत्य जीवन की बातों को सुनकर उसके मन को हल्का करता है। इसीलिए वह उनकी यूरोप यात्रा के कटु अनुभवों को चुपचाप सुनता है। नीलिमा के भरतनाट्यम् शो की सफलता के लिए वह भी अपनी ओर से प्रयत्न करता है। नीलिमा जब हताश होकर अपने माता-पिता के घर चली जाती है तब भी वह हरबंस और नीलिमा दोनों को सद्भाव से समझाने का सतत प्रयत्न करता है।

पत्रकार के रूप में मधुसूदन एक सफल पत्रकार है। 'न्यू हैरेल्ड' समाचार पत्र में उसके सफल पत्रकारित्व के कारण ही उसे राजनीति से सांस्कृतिक पत्रकारित्व सौंपी जाती है। 'न्यू हैरेल्ड' में उसने दिल्ली के जिस फीचर को दिखाया वह उसकी उपलब्धि सिद्ध हुई। उस फीचर के प्रभाव के कारण कस्साबपुरा क्षेत्र कमेटीवालों से उपेक्षित न रहा। पत्रकार के रूप में पोलिटिकल सेक्रेटरी तथा विदेशी दूतावासों की गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण उसके पास है। नीलिमा के भरतनाट्यम् शो पर भी पत्रकार के रूप में यह अपनी तटस्थ टिप्पणी देने का प्रयत्न करता है।

शुक्ला के मोहक व्यक्तित्व को वह जीवन में कभी नहीं भूल पाया। उसे प्राप्त न कर पाने की हताशा और निराशा उसके मन में बनी रहती है। अंत में वह पत्रकार सुषमा श्रीवास्तव के संपर्क में आता है। उसके व्यक्तित्व से वह प्रभावित है। उससे पत्रकार क्लब और कोफी हाउस में मुलाकात होती रहती है। यद्यपि जीवन के प्रति सुषमा का व्यक्तित्ववादी द्रष्टिकोण उसे जरा भी पसंद नहीं आया। तब भी दोनों जीवन में बंध जाने को उत्कंठित है। दोनों के विचारों में जमीन आसमान का अंतर है। ऊपर

से सुंदर रूप और खोखले व्यक्तित्व के नीचे नैतिक मूल्यों का पतन और सड़ाँध देखकर वह अंत में निम्मो की ओर जाना चाहता है। डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार "वह सजग तथा सचेत है, वह जिन्दगी से टूटा हुआ है ... वह जीवन में संगति खोजना चाहता है, उसे जिन्दगी के टूकड़े मिलते हैं, हर टूकड़ा कहीं से टूटा हुआ है या जंग खाया हुआ है, ... वह जीवन के खंड़ित रूप स्वीकार नहीं करता तटस्थ नहीं हो पाता, इसीलिए वह लगातार भटकता और छटपटाता है ... उपन्यास में कहीं भी इसकी परिणति नहीं हो पाती और वह एक औसत दर्जे का आदमी बन पाया है।"[६४]

हरबंस और नीलिमा की कहानी को लेकर चलनेवाला उपन्यास मधुसूदन की उपस्थिति से कमजोर ही हुआ है : "वह उपन्यास में ऐसा पात्र बनकर रह गया है जिसने न केवल गौण पात्रों को वरन् प्रमुख पात्रों तक के जीवन की स्थितियों को अपनी मुट्ठियों में बंद कर रखा है। उन पात्रों का आकार और प्रकार उसकी मुट्ठियों में कुछ इस तरह बंद हो गया है कि जब कभी उन्हें खोलता है तभी हरबंस और नीलिमा का व्यक्तित्व सामने आता है। हरबंस और नीलिमा की जिन्दगी बंद कमरा है वहाँ तक तो वह फिर भी ठीक है लेकिन उसका मधुसूदन की मुट्ठियों में आकर कैद हो जाना सारी चरित्र-विश्लेषण प्रणाली को सदोषता प्रदान करता है।"[६५] पत्रकार मधुसूदन संसारभर की घटनाओं से घिरा घटनाओं के चक्र में चक्कर काटता लाखों की भीड़ में खोया हुआ एक ऐसा मनुष्य है जो अपनी निजता की खोज में अपने आपको खोता हुआ चला गया है।

सुषमा श्रीवास्तव :

नारी पात्रों में सुषमा श्रीवास्तव एक आधुनिक नारी है। वह एक ऐसी नारी है जिसे भलीभाँति पता है कि अपने मनोभावों तथा सपनों की पूर्ति के लिए कब किस तरह के साधनों को अपनाया जाना उचित है। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहनेवाली नारी है। इसके लिए वह चरित्र, मर्यादा या पवित्रता-किसी की भी बलि दे सकती है। मधुसूदन को बहुत समय तक अपने में बाँधे रहती है। सुषमा उपन्यास की जीवंत पात्र है। उसका व्यक्तित्व आकर्षक है। इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में "सुषमा इस उपन्यास का सबसे लुभावना व्यक्तित्व है। घटनाओं और स्थितियों की आवृत्ति और पुनरावृत्ति के बीच एक सर्वथा नया प्रसंग है। सुषमा से अच्छा प्रतीक और क्या हो सकता है ! आधुनिकता की चमक-दमक, आत्मकेन्द्रता और

अकेलापन सब उसमें मौजूद है।"[६६] उसके संपर्क में आने पर उससे अप्रभावित रहना और असंपृक्त बने रहना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। आधुनिकता की चमक-दमक, आत्मकेन्द्रता, विलास और अकेलापन सभी कुछ उसके चरित्र में है। सुषमा के जीवन का इतिहास और उसमें आये पात्रों के संदर्भ तरह-तरह से उपन्यास के अन्य पात्रों द्वारा विश्लेषित किये गये हैं। यह निश्चित है कि सुषमा का व्यवहार खुला-खुला है। वह मुक्त और स्वच्छंद विचारों की नारी है। उसके मनमें न कोई कुंठा है और न उलझन। इसी से वह अपने मित्रों के संबंध में बातचीत करते हुए किन्तु परंतु से काम नहीं लेती।

सुषमा एक शौकीन नारी है। उसे खाने-पहनने का शौक है। घूमने का शौक है और अच्छा संगीत सुनने का शौक है। उसने अपने इन शौकों के संबंध में कहा है कि, "ये शौक पूरे होते हैं, तो मुझे अपने जीवन का अर्थ नजर आता है।"[६७] अपने मन की जिन्दगी जीने की शौकीन सुषमा में कहीं भी दुहरापन नहीं है। वह जैसी बाहर है, वैसी ही भीतर भी है। वह न तो गलतफहमियों व धोखों को लेकर जीना चाहती है और न अपने सिद्धांतों तथा व्यवहार के बीच कोई विभाजन रेखा ही बनाये रखना चाहती है। वास्तव में उसके अपने निश्चित विचार हैं। जीवन के संबंध में उसकी द्रष्टि बहुत ही व्यक्तिवादी है। वह जीवन को ठीक से जीना चाहती है। उसने मधुसूदन से कहा भी है : "मैं इन्सान हूँ तो ठीक से जीऊँ तो क्यों नहीं ? हम सब जानते हैं कि जीने की अपनी शर्तें हैं। हमें जीना है तो उन शर्तों का पालन करना ही चाहिए।"[६८] वह न तो इतिहास बनकर जीना चाहती है और न घटना या परिस्थिति बनकर, क्योंकि इस तरह जीने में आदमी का अपना जीना कहाँ होता है ? जीवन को अपने ढंग से जीने के लिए ही वह कई आदमियों को आजमाती है। अपने आकर्षण के प्रभाव से उसने कई खेल खेलें हैं, किन्तु खतरनाक हदों तक वह कभी नहीं गयी है। उसकी यह स्वीकारोक्ति उल्लेखनीय है : "मैं कई बार यह देखना चाहती थी कि कौन आदमी जो ऊपर से बहुत बनता है, वास्तव में कितने डगमग कदमों से चल रहा है।"[६९]

स्पष्ट है कि सुषमा श्रीवास्तव ने जीवन में अनेक प्रयोग किये हैं, किन्तु किसी विकृत भावनावश नहीं बल्कि जीवन का मर्म समझने के लिए। ऐसी सुषमा मधुसूदन पर आसक्त है। उसकी आसक्ति और अनुराग भावना का उल्लेख उपन्यास में अनेक स्थानों पर हुआ है। आधुनिक नारी के रूप में उसके व्यक्तित्व का निरूपण सुंदर ढंग से हुआ है।

अन्य पात्र :

ठकुराइन उपन्यास की एक जीवंत, सप्राण और जिंदादिल नारी पात्र है। उसका व्यक्तित्व एक ऐसी नारी का व्यक्तित्व है जो जीवन के सारे संघर्षों की चोट सहकर भी जीवित है। उसमें सहृदयता, भावुकता, जिंदादिली और विवेक है। उसका चेहरा परिस्थितियों की मार से भले ही झुर्रियों से बदल गया हो किन्तु उसका मन वहीं है। वह अपने मकान को सरकार द्वारा गिराये जाने की योजना से बौखला भले ही जाती हो किन्तु पूरे संयम और धैर्य से जीवित रहती है। उसके पास कुछ नहीं बचा है सिर्फ संघर्ष, पीड़ा और बोझ का उत्तरदायित्व है, फिर भी वह इन सबसे बिना घबराये पूरे साहस और जिंदादिली के साथ जीने की कसम खाये हुई है। वह हारकर भी कभी अपनी हार स्वीकार नहीं करती। उसकी जिजीविषा बड़ी जीवंत है। यदि राकेशजी ने इस नारी पात्र को अपनी कथा में कुछ जगह ओर दी होती तो उसका व्यक्तित्व और निखर सकता था। किन्तु फिर भी संतोष है कि उसे उपन्यास में जितनी जगह प्राप्त है उसी में वह इतनी प्रभावी बन गयी है, कि उसके व्यक्तित्व की सप्रमाणता के समक्ष शेष पात्र निष्प्रभाव प्रतीत होते हैं।

शुक्ला, सुरजीत और जीवन भार्गव उपन्यास के गौण पात्र हैं। इनमें भी यदि किसी का चरित्र थोड़ा-सा विकसित और स्पष्ट है तो वह शुक्ला ही है। प्रमुख पात्र 'हरबंस' और 'नीलिमा' की तरह इन गौण पात्रों का चरित्र भी एकाध स्थान को छोड़कर कहीं भी विकसित नहीं है। इलाचंद्र जोशी ने इनके संबंध में ठीक ही लिखा है कि "उपन्यास के ये पात्र प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के आमने-सामने आकर नहीं टकरातें हैं। उनके संबंध में अधिकांशतः नेरेटर ही अप्रत्यक्ष परिचय पाठक को एक संवाद-पत्र के रिपोर्टर की तरह देता है।"[७०]

शुक्ला हरबंस की साली और नीलिमा की बहन है। वह जीवन भार्गव से जुड़ी हुई है किन्तु उसकी परिणति सुरजीत से विवाह करने में है। वह मुक्त विचारों की नारी है। उसका रूप और व्यक्तित्व असाधारण तथा मोहक है। उसके प्रभाव में हरबंस भी है और स्वयं पत्रकार मधुसूदन भी है। यद्यपि मधुसूदन अभावुक प्राणी है किन्तु इस सारी स्थिति के बावजूद वह शुक्ला के अदभूत रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर कराह उठता है। उसका व्यक्तित्व एक समर्पिता और गृहस्थिनि का व्यक्तित्व है। वह हरबंस से बिना पूछे सुरजीत से विवाह भले ही कर ले किन्तु उसके कुर्तो के बटन और टूटे चप्पलों

की मरम्मत का जिम्मा उसी का है। वह संयत, गंभीर और वैवाहिक जीवन बिताकर तो और भी सुलझ गई है। उसका स्वभाव और व्यक्तित्व नीलिमा से एकदम अलग है। शुक्ला नीलिमा से हर बार यही शिकायत करती है कि दीदी तुम भापाजी का ध्यान न करके उनके साथ ज्यादती करती हो। सचमुच शुक्ला को हरबंस की प्रत्येक तकलीफ का ध्यान रहता है। इसके कारण ही नीलिमा तो यह भी सोचती है कि "हरबंस का विवाह मुझसे न होकर इस लड़की से ही होना चाहिए।"[७१] शुक्ला विवाहिता होकर भी हरबंस के प्रति न केवल सहृदय है, बल्कि उस पर अपना अधिकार समझती है। यही अधिकार बोध जिसे स्नेहाधिकार कहना ज्यादा ठीक है, उसके मन में यह भावना पैदा कर देता है कि जो कुछ हरबंस का है, उस पर न तो किसी का अधिकार है और न कोई उसे इस्तेमाल ही कर सकता है। नीलिमा ने उसके इस वैयक्तिक गुण को यह कहकर स्पष्ट किया है : "यह लड़की उसकी छोटी-से-छोटी तकलीफ भी बरदाश्त नहीं कर सकती है और काम करने के लिए पागल हुई रहती है।"[७२] इतने पर भी यह स्पष्ट है कि शुक्ला घरेलू किस्म की लड़की है। वह सुरजीत की पत्नी है और अपने में पूरी ईमानदारी भी है, किन्तु हरबंस को बीमारी की हालत में अकेले छोड़ना उसके बस की बात नहीं है। उसकी दवा-दारू, नींद और रहन-सहन आदि सभी की पूरी देखभाल करती हुई अंत में वह अपने पति में खो जाती है। निश्चय ही वह मुक्तमना, स्वच्छंद, व्यवहारकुशल, असाधारण रूपवती और मानवीय संवेदना से युक्त नारी है। उसका चरित्र उपन्यास में जितना खुला है वह भी केवल हरबंस और नीलिमा के संदर्भ में। शुक्ला और सुरजीत के जीवन को कुछ अधिक खोलकर लेखक ने नहीं रखा है। उनकी पारिवारिक और सामाजिक गतिविधियाँ अँधेरे में ही रह जाती है।

सुरजीत और जीवन भार्गव का व्यक्तित्व उपन्यास में सांकेतिक है। इनके व्यक्तित्व के संबंध में जितने भी संकेत उपलब्ध हैं वे भी दूसरों की राय मात्र है। इन पात्रों का कोई भी क्रियात्मक पक्ष उपन्यास में संकेतित नहीं है। सुरजीत आवारा है। अपनी दो पत्नीयों को छोड़ चुका है और अंततः वह शुक्ला के साथ रहता है। हरबंस की द्रष्टि में वह धृणास्पद, नीच और बदमाश है। जीवन भार्गव एक भावुक व्यक्ति है। किन्तु उसकी भावुकता ही उसकी पराजय और उसके अविकसित व्यक्तित्व का कारण है। कुछ अन्य पात्रों में बर्मी कलाकार ऊबानू और ठकुराइन की लड़की निम्मा है। ऊबानू का व्यक्तित्व भी विकसित नहीं हो पाया है। वह जैसा चाहती है वैसे ही वह कुत्ते की तरह दूम हिलाता नजर आता है। 'निम्मा' एक अल्हड लड़की है। अभावों में पलते और जिन्दगी से संघर्ष करते रहनेवाले निम्नमध्यवर्गीय पात्रों में ही इबादतअली

की तस्वीर भी उभरती है । उसके घर पर लटकी उसके नाम की तख्ती की तरह ही उसका व्यक्तित्व भी है । जैसे तख्ती अक्षरों के मिट जाने पर भी दीवार पर टेढ़ी होकर लटक गयी है वैसे ही इबादतअली भी ।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि 'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र पूर्णतः विकसित और प्रस्फुटित होकर हमारे सामने नहीं आते । उनके व्यक्तित्व अपूर्ण, अधूरे और अविकसित है । उनमें प्रत्यक्ष बोध का अभाव है । वे घुटे, पिसे और जटिल हैं । उनकी अपनी-अपनी जरुरतें हैं और अपनी-अपनी माँग है । जरुरतों और अपनी अपनी माँगों का बोझ ढोते हुए उपन्यास के पात्र समाज में रहते हुए भी अपनी-अपनी कुंठाओं के शिकार हैं । अतः उनमें संवेदनशीलता तो है पर जीवन के चौराहे पर आकर सही निर्णय करने की क्षमता का अभाव है । हाँ, अपनी पूरी जिंदादिली और सप्रमाणता के कारण 'ठकुराइन' और सुषमा श्रीवास्तव का व्यक्तित्व अवश्य अपवाद की राह से गुजरता है किन्तु एक तो ये प्रमुख चरित्र नहीं है और दूसरे अपवाद है ।

४.३.२ 'न आने वाला कल' उपन्यास में चरित्र चित्रण :

राकेशजी के अन्य दो उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है, यद्यपि उनमें से अधिकतर पात्रों का इस उपन्यास में केवल नाम मात्र का ही अस्तित्व है । उपन्यास शिमला की एक स्कूल की घटनाओं को लेकर लिखा गया है, अतः लेखक का उद्देश्य स्कूल के समग्र वातावरण को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना रहा है - जिसमें वे सफल भी हुए हैं । अतः यह एक वातावरण प्रधान उपन्यास है जिसमें स्कूल का हेड मास्टर, वहाँ के अध्यापक, चपरासी एवम् उनके परिवार के लोग ही हैं । राकेशजी ने पात्रों की एक बड़ी संख्या गिनाई है, यदा - मनोज सक्सेना, शोभा, बुधवानी, पार्कर, गिरधारीलाल, शारदा, मिसेज पार्कर, टोनी एवम् जेन व्हिसलर, रुथे, मेनिका, माली क्राउन, डायना, मिसेज एटकिन्स, चेरी, रोज, जिमी, मिसेज ज्याफ्रे, मिस होल, पादरी बेन्सन, फकीरा, काशनी आदि । पर राकेशजी ने इतने सारे पात्रों के बीच, सारे कथानक को स्कूल के वातावरण के बीच इस प्रकार उभारा है, कि वहाँ के चरित्र एवम् घटनाएँ - सब कुछ सजीव हो उठते हैं । पर पात्रों की इस भीड़ में केवल कुछ ही ऐसे पात्र हैं जिनमें जीवन की कुछ रेखाएँ स्पष्ट हो पाती हैं - बाकी पात्र तो घटनाओं के ताने-बाने मात्र होने का ही संबंध रखते हैं । उनकी उपस्थिति अनिवार्य होकर भी महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

पात्र विधान की द्रष्टि से 'न आने वाला कल' उपन्यास सफल प्रतीत होता है । इसके प्रमुख पात्र मनोज, शोभा, कोहली, शारदा, मिस बोनी होल, टोनी व्हिसलर, मिसेज पार्कर, गिरधारीलाल, बुधवानी, मिसेज दारुवाला, मिसेज ज्याफ्रे, चेरी और लेरी हैं । इनके अतिरिक्त काशनी, रोज और जिमी के साथ साथ फकीरे का व्यक्तित्व भी है, किन्तु गौण । वैसे तो सारे अध्यापक ही इसके पात्र हैं किन्तु प्रमुखतः मनोज, शोभा, कोहली, शारदा, बोनी, व्हिसलर और गिरधारीलाल का महत्त्व सर्वाधिक है । ये वे पात्र हैं जो परिस्थिति तथा प्रसंग से सीधे टकराते हैं । इनका स्वतंत्र अस्तित्व कभी कभी पाठक के मन को छूता दिखाई देता है । शेष पात्रों में कहीं-न-कहीं ऐसा जरुर है, जो उनके बाहर-भीतर को एकमेल नहीं रख पाता है । वे बाहर से जागरुक किन्तु भीतर से पराश्रित दिखाई देते हैं । आलोच्य उपन्यास के पात्रों की प्रमुख विशेषता जो सभी में मिलती हैं, कि वे सभी बोस के अत्याचारों व उसके अहंवादी व्यवहार से दुःखी हैं । सभी के मन में बोस के प्रति खीज है, धृणा है और सभी उसके न रहने में रुचि रखते हैं । भीतर-ही-भीतर सभी में हेड के प्रति आक्रोश है । स्पष्टीकरण के लिए केवल ये पंक्तियाँ काफी होगी : "कोई पूछे उस बंदर की औलाद से कि खाना यहाँ हेडमास्टर लगने से पहले इसने कभी खाया भी था ? वहाँ मद्रास में मिलता क्या था इसे । डंठल चूसते यहाँ आकर हड्डियाँ चूसने को मिल गई तो बड़ा जानकार हो गया वह खाने का । .... जिन दिनों कलकते के 'ग्रेंड होटल' में मुझे सात सौ तनख्वाह मिलती थी, उन दिनों तीन सौ भी नहीं जुटते होंगे मास्टरी के ।"[७३] स्वयं हेड की पत्नी 'जेन व्हिसलर' उसके प्रति अच्छी धारणा नहीं रखती है । 'जेन' के अनुसार " 'टोनी' स्टेनलेस स्टील का पुर्जा है जो बिना घिसे चौबीसों घंटे काम कर सकता है ... उसके स्वभाव को देखते हुए लगता है कि उसे हेडमास्टर न होकर स्टील प्लांट में हेड फोरमेन होना चाहिए ।"[७४]

उपन्यास के सभी पात्रों में जहाँ यह समानता है, वहाँ वे सब-के-सब क्षुब्ध, अकेले और ऊबे हुए पात्र हैं । सबके मन में कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई वीक पोईन्ट अवश्य है, जिसे जरा-सा छेड़ देने पर वह खुल पडता है और अपने मन की भड़ास निकाल देता है । चपरासी फकीरे, काशनी, डाइनिंग हॉल के बैरे सब-के-सब मनोज के त्यागपत्र से दुःखी, आशंकित और अपने अपने ढंग से चिंतित है । कहने की आवश्यकता नहीं की इन सबकी चिंता के मूल में - आशंका एवम् क्षोभ के नेपथ्य में हेड का व्यवहार है । चेरी और लेरी तो इस योजना में लगे हैं, कि सब मिलकर इस हेड के खिलाफ आवाज उठायें तो सब ठीक हो सकता है । चेरी को विश्वास है "यह तो यहाँ हर आदमी जानता है कि अगले साल तक यहाँ हेडमास्टर नहीं रहेगा । सवाल सिर्फ इतना है कि इसे

हटाने में कामयाब कौन रहता है।"[७५] लेरी तो डी.पी.आई. से मिलकर हेड को हटवाने की योजना बना ही रहा है : "तुम इस एक में बिलकुल नहीं हो कि कल हम तीनों और अगर मिसेज दारुवाला भी चलने को तैयार हो तो चारों आकर डी.पी.आई. से मिल लें ? तुम्हें नौकरी छोड़नी ही है, तो इससे तुम्हारा कुछ बिगड़ नहीं जायेगा। मगर दूसरों का, जो यहाँ रहना चाहते हैं, इससे थोड़ा भला अवश्य हो सकता है।"[७६]

स्पष्ट है कि 'न आने वाला कल' के पात्र टूटे हुए और ऊबे हुए पात्र हैं। उनका व्यक्तित्व निराशा व सहने की चरम सीमा का स्पर्श कर चुका है। क्षोभ, पीड़ा तथा अपमान के आघात सहते हुए भी सब-के-सब पात्र भीतर से बेचैन हैं। उसका हृदय एक अनिवार्य खीझ, झुंझलाहट, आक्रोश और ऊब से भरा हुआ है। ये पात्र संत्रस्त हैं, अभिसप्त हैं और अपने अकेलेपन के बोझ को ढोने वाले निष्क्रिय और चेतनाहीन पात्र है। यहाँ एक और तथ्य उल्लेखनीय हो सकता है कि 'अँधेरे बंद कमरे' की भाँति ही इस उपन्यास का भी जो चरित्र जितना प्रमुख है, वह उतना ही असहज और आरोपित है तथा जो जितना नगण्य, वह उतना ही सहज-स्वाभाविक।

'न आने वाला कल' के पात्रों की अस्मिता की पहचान करते समय यही चीज साफ तौर पर साबित होती है, कि रचना के प्रमुख पात्र अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व न रखते हुए प्रायः पूरी तौर से लेखकीय विचारों तथा भावों के वाहक हैं, जबकि नगण्य अर्थात् व्यक्तित्व संपन्न और लेखकीय दबाव से मुक्त हैं।

मनोज, जो 'न आने वाला कल' का नायक, वाचक और सूत्रधार है, वह माध्यम भी है जो अपने कथनों, वर्णनों, संवादों तथा गतिविधियों के द्वारा पाठक को उपन्यास के अन्य चरित्रों से परिचित कराता है ; और मनोज, लगभग पूरी तरह से एक ऐसा चरित्र है जो लेखक की मानस-कृति है। उसके स्वभाव में सहजता, गतिविधियों में वास्तविकता तथा बातचीत में सीधापन और सच्चाई अर्थात् उसके पूरे व्यक्तित्व में यथार्थ-जगत की विश्वसनीयता का अभाव-सा है। वह पूर्णतः लेखकीय विचारों तथा भावनाओं का संवहन करता हुआ कहीं भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रमाण नहीं देता और इसी क्रम में अर्थात् मनोज की ही संगति में जो चरित्र उसके जितने निकट है कथा में प्रमुख हैं वे उतने ही दूर अर्थात् अप्रमुख हैं, उतने ही लेखकीय विचार-भावों के दबाव से मुक्त हैं, जैसे बोनी होल, चेरी, जसवंत या काशनी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'न आने वाला कल' के कुछ चरित्र यदि लेखक के विचार-भावों के संवाहक हैं तो कुछ उनसे मुक्त और निजी स्वतंत्र व्यक्तित्व से संपन्न भी हैं। चरित्रों की व्यक्तित्वशीलता से ही जुड़ा दूसरा प्रश्न यह है कि वे मूल कथा प्रवाह से संयुक्त हैं या विलग ? उनके क्रिया-कलापों से कथा को कोई गति मिलती हैं या नहीं ? उपन्यास की कथा अत्यंत संक्षिप्त है और पात्र कहीं ज्यादा, तो उन पात्रों के चरित्रों की कथा के प्रवाह से संबद्धता या विलगता निश्चित करना काफी कठिन काम है; और एक द्रष्टि से काफी सरल भी। सरल यों कि त्यागपत्र देने की मूल क्रिया का कर्ता मनोज ही मूल कथा का स्त्रोत भी है, इसलिए प्रत्यक्षतः वही अकेला चरित्र है जो कथा से संयुक्त है और शेष सभी उससे अलग। उपन्यास में ऐसा कोई घटना-क्रम भी नहीं है जो कथा को आगे बढ़ाता और तद्नुसार उससे चरित्रों का उदय होता रहता या वे उससे अलग होते रहे। कथा की द्रष्टि से रचना के अत्यंत सीमित फलक ने वस्तुतः उसमें चरित्रों और उनकी गतिविधियों को भी अत्यंत सीमित कर दिया है। यानी मनोज के अतिरिक्त कोई दूसरा चरित्र ऐसा नहीं है, जो कथा में अपनी सीधी भागीदारी रखता हो। अत्यंत सीमित देशकाल की न के बराबर कथा में भला तीन दर्जन के लगभग चरित्रों की समाई संभव भी कैसे है ? फिर भी उससे अन्य चरित्रों की संबद्धता देखना यहाँ जरुरी ही है। पूरा उपन्यास तथा उसका कथाक्रम मनोज के घर और स्कूल के बीच में घूमता हुआ ही समाप्त हो जाता है और इस सीमित परिवेश की द्रष्टि से देखें तो यह भी स्पष्ट हो जाता है, कि कथा की आधिकारिक क्रिया मनोज के त्यागपत्र देने पर उसके सहकर्मियों की प्रतिक्रिया ही है। इसलिए शायद कोई चरित्र ऐसा भी नहीं है जो कथा से अलग हो। क्योंकि मनोज प्रथम पुरुष में स्वयं ही रचना की हर छोटी-बड़ी स्थिति का वर्णन करता जाता है। विभिन्न पात्रों का परिचय देता, उनका चरित्र-विश्लेषण करता जाता हैं अर्थात् कभी चरित्र उसके ही द्वारा उत्पन्न और समाप्त किये जाते हैं। अतः जब सभी चरित्र उसी से और उसी में है; तब उनके मूल कथा से अलग होने का प्रश्न ही कहाँ उत्पन्न होता है ? शब्दांतर से यह भी कहा जा सकता है कि इस उपन्यास का शिल्प ही कुछ इस तरह का है, कि कथा के मूल-प्रवाह से चरित्रों की संबद्धता या विलगता का प्रश्न लेखक के पूर्व उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' की भाँति विश्लेषणात्मक रीति से विवेचित नहीं किया जा सकता।

'न आने वाला कल' के चरित्रों की मूल कथा-प्रवाह से संबद्धता या विलगता की जो स्थिति है वही रचना के परिवेश के प्रति उनकी अनुकूलता या प्रतिकूलता की है। रचना का परिवेश, अत्यंत सीमित है। एक स्कूल-टीचर और कस्बे की दो-एक सडकें

और कुछ स्त्री–पुरुष । अंग्रेजी शिक्षा–पद्धति और जीवनप्रणाली के कड़े अनुशासन में बँधे फादर बर्टन स्कूल के अध्यापक और अध्यापिकाएँ तथा अन्य कर्मचारी संसार के अन्य तमाम नौकरी–पेशा लोगों की तरह बराबर असंतुष्ट रहते हुए भी किसी–न–किसी निजी विवशता के दबाव में लगातार नौकरी किये जा रहे हैं । हिन्दी–टीचर मनोज अचानक त्यागपत्र देकर इनके बँधे जल जैसे जीवन में एक हलचल की लहर–सी उत्पन्न कर देता है । हेडमास्टर टोनी व्हिसलर से लगाकर जसवंत तक मनोज की इस क्रिया के बारे में अपनी–अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हैं । इस संक्षिप्त कथानक वाले बँधे देशकाल में रहते सभी व्यक्ति अपने–अपने चरित्र के अनुसार इस देशकाल के अनुकूल भी हैं और प्रतिकूल भी । अनुकूल इस लिए कि एक मनोज के अतिरिक्त सभी वहाँ वर्षों से काम कर रहे हैं और अभी भी किसी ने उसे छोड़ने की पहल नहीं की है तथा प्रतिकूल इस लिए कि लगभग सभी प्रस्तुत परिवेश और उसकी परिस्थितियों से असंतुष्ट हैं । लेकिन उनका यह असंतोष खोखला है – क्रियाहीन ।

परिवेश से प्रतिकूलता और वह भी क्रियात्मक रूप में प्रकट करनेवाले चरित्रों में एकमात्र है मनोज की पत्नी शोभा; जो स्वयं को मनोज के साथ असंगत देख–मानकर केवल बातें करके ही नहीं रह जाती बल्कि घोषणापूर्वक मनोज और उसके देशकाल को छोड़कर चली जाती है । दूसरे क्रम पर आता है रचना का नायक–सूत्रधार मनोज जो प्रस्तुत वातावरण के खिलाफ विद्रोह करता हुआ अपनी प्रतिकूलता का क्रियात्मक रूप देता हुआ त्यागपत्र दे देता है । यद्यपि उनके त्यागपत्र देने का कोई यथार्थ कारण नहीं है और फिर तो बोनी होल, चेरी, मिसेज पार्कर, मिसेज दारुवाला, रोज, जिमी आदि अनेक चरित्र हैं, जो प्रसंगोचित अपना–अपना असंतोष प्रकट करते हुए परिवेश के प्रति अपनी प्रतिकूलता जाहिर करते रहते हैं; लेकिन उनकी इस प्रतिकूलता का कोई वास्तविक रूप नहीं उभरता । फिर भी, यदि तनिक भी ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि 'न आने वाला कल' के चरित्रों की परिवेश के प्रति प्रकट की गई यह प्रतिकूलता वस्तुतः किसी–न–किसी कारण से उनका वैयक्तिक असंतोष ही है । यानी उन कारणों का निराकरण कर दिया जाय तो यही परिवेश उनके अनुकूल हो जायेगा ।

❖ 'न आने वाला कल' के प्रमुख चरित्र :

राकेशजी के अन्य दो उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है, यद्यपि उनमें से अधिकांश पात्रों का इस उपन्यास में केवल नाम मात्र का ही

अस्तित्व है । उपन्यास शिमला की एक स्कूल की घटनाओं को लेकर लिखा गया है, अतः राकेशजी का उद्देश्य स्कूल के समग्र वातावरण को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना रहा है – जिसमें वे सफल भी हुए हैं । अतः यह एक वातावरण प्रधान उपन्यास है जिसमें स्कूल का हेड मास्टर, वहाँ के अध्यापक, चपरासी एवम् उनके परिवार के संबद्ध लोग ही हैं । राकेशजी ने पात्रों की एक बड़ी संख्या गिनाई हैं, जैसे – मनोज सकसेना, शोभा, बुधवानी, पार्कर, गिरधारीलाल, शारदा, मिसेज पार्कर, टोनी एवम् जेन व्हिसलर, रोज, जिमी, चेरी, मिसेज दारूवाला, कोहली, मिसेज ज्याफ्रे, लेरी, मिस बोनी, पादरी बेन्सन, फकीरा एवम् काशनी आदि । यो तो सारे अध्यापक ही इसके पात्र हैं किन्तु मनोज, शोभा, कोहली, शारदा, बोनी, व्हिसलर और गिरधारीलाल का महत्त्व सर्वाधिक हैं । ये वे पात्र हैं जो परिस्थिति और प्रसंग से सीधे टकराते हैं । पर लेखक ने इतने सारे पात्रों के बीच सारे कथानक को स्कूल के वातावरण के बीच इस प्रकार उभारा है कि वहाँ के पात्र एवम् घटनाएँ – सब सजीव हो उठते हैं । पर पात्रों की इस भीड़ में केवल कुछ ही पात्र ऐसे हैं जिनमें जीवन की कुछ रेखाएँ स्पष्ट हो पाती हैं – बाकी पात्र तो घटनाओं के ताने–बाने में मात्र होने का ही संबंध रखते हैं । उनकी उपस्थिति अनिवार्य होकर भी महत्त्वपूर्ण नहीं है । उपन्यास के महत्त्वपूर्ण चरित्र निम्नानुसार है ।

मनोज सकसेना :–

मनोज उपन्यास का नायक है । वह मिशनरी स्कूल का जागरूक अध्यापक है । उसका जीवन न केवल संघर्षमय और जटिल है अपितु वह ऐसा पात्र है जो यथार्थ के कोडों की मार सहते–सहते जर्जर हो गया है किन्तु अपने स्वाभिमान और अस्तित्व पर कभी आँच नहीं आने देता । वह जिस परिवेश में रहा है उसकी चारित्रिक स्पष्टता उपन्यास में जगह–जगह संकेतित है । वह सही अर्थ में एक अस्तित्ववादी पात्र है । उसकी प्रमुख चिंता जटिल परिस्थितियों में भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने की है । अस्तित्व रक्षा के इस प्रयास में मनोज नौकरी से त्याग–पत्र देता है, पत्नी शोभा से अलग रहना चाहता है और किसी के हाथ का खिलौना नहीं बनना चाहता । वह सदैव ही अपने अस्तित्व के प्रति चिंतित बना रहता है । अस्तित्व की इसी समस्या को शोभा के संदर्भ में मित्रों के संपर्क से और स्कूल परिवेश के संबंध से बखूबी समझा जा सकता है । कर्नल बत्रा के कहने पर कि – "तुम्हें बीमारी कुछ भी नहीं है । अगर है तो सिर्फ इतनी ही कि तुम अपने को बीमार माने रहना चाहते हो ।"[७७] मनोज को अपने अस्तित्व के प्रति चुनौती लगती है । उसे कर्नल पर गुस्सा आता है । स्कूल के परिवेश

में रहता हुआ भी वह अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है। उसके द्वारा दिया गया त्याग-पत्र भी अस्तित्व-रक्षा का ही एक सशक्त आयाम है। जब मिस बोनी होल उसके अनुसार आचरण करने के लिए तत्पर नहीं होती है तो मनोज का अहम् आहत होता है। वह बोनी को अपनी बाहों की परिधि में घेर लेना चाहता है और वह उससे सिर्फ बातें करते रहना चाहती है और वह भी तब जबकि बोनी के लिए शारीरिक नैतिकता का कोई अर्थ नहीं है। इस स्थिति में मनोज आहत होकर जो सोचता है वह उसके अस्तित्व-रक्षा के संदर्भ को ही पुष्ट करता है : "पल भर जब वह बाहों में थी, तो वह मेरे लिए सिर्फ एक शरीर रह गयी थी। उस शरीर की उठान को अपने में लेने की जगह दिख रहा था एक लंबा कोट, कोट पर रखा एक चेहरा और चेहरे में जड़ी दो आँखें जो एक चुनौति लिए मुझे देख रही थी।"[७८] इस स्थिति में मनोज का सचेत हो जाना तथा बोनी के व्यवहार से आहत होकर चुपचाप उसके साथ एक फासला बनाकर चलते जाना इस बात का संकेत है कि वह अपने अस्तित्व पर किया गया कोई भी प्रहार सहन नहीं कर सकता। अस्तित्व की यह समस्या मनोज की उसकी पत्नी के सामने भी सालती है। यही कारण है कि शोभा के सामने सिगरेट पीते हुए भी वह सहज नहीं रह पाता है। "उसे लगता है कि वह मुझे देख नहीं रही, मन-ही-मन उस दूसरे के साथ मेरी तुलना कर रही है, जिसके साथ विवाहित जीवन के सात साल उसने पहले बिताये थे।"[७९] मनोज शोभा की आँखों में चमकते शहीदाना भाव को कभी भी सहन नहीं कर पाया। इसके पीछे भी उसकी अस्तित्व रक्षा की भावना है। स्पष्ट है कि मनोज एक अस्तित्व की चिंता में घुला रहनेवाला पात्र है।

अस्तित्व की चिंता और स्वातंत्र्य कामना से युक्त मनोज एक स्थान पर यह कहना भी उसके इसी रूप की स्वीकृति है : "मन को आत्महत्या की पटरी पर नहीं चलने देना चाहता था। इसलिए कि उसका कुछ भी अर्थ नहीं था। मैं जानता था कि मैं किसी भी स्थिति में आत्महत्या नहीं कर सकता। मैं हर स्थिति के परिणाम को स्वयं देखना चाहता था। .... और जिसमें देखना न हो, उस परिणाम की कल्पना ही मुझे झूठ लगती थी।"[८०] अपने अस्तित्व के लिए चिंतित मनोज सारे मित्रों के बीच भी दिखाई देता है। जब उसके मित्र उसके त्याग-पत्र पर सहानुभूति प्रगट करना चाहते है और चेरी और लेरी जब उसे हेड के खिलाफ खड़ा होने को उकसाते हैं, तो वहाँ भी वह असुरक्षित अनुभव करता हुआ अपने अस्तित्व के प्रति चैतन्य बनाये रहता है। अस्तित्व-रक्षा का यह प्रयत्न तो उपन्यास में जगह-जगह संकेतिक है। एक स्थान पर मनोज अपने अनुभव को स्पष्ट करता हुआ कहता भी है : "मुझे अपनी साँस में एक

दबाव महसूस हो रहा था – जैसे अंदर की चटखनियाँ उस हवा के झटके के साथ लड़ रही थी। उसी तरह बैठे हुए अपनी साँस के आने–जाने को महसूस करते हुए एक क्षण आया जब मैं जैसे किसी चीज से डरकर सहसा उठ खड़ा हुआ। वह डर किस चीज का था ? उस खामोशी का ? अपने अकेलेपन का ? अपनी साँस में रुकाव आ जाने के खतरे का ? या की वहाँ होते हुए भी न होने, बीत चुकने के अहसास का ? खड़े होकर मैंने लंबी–लंबी साँसे खींची।"[८१] अस्तित्व की यह चिंता, मृत्यु का वह भय और अकेलेपन का यह अहसास उपन्यास में अन्य अनेक स्थानों पर भी संकेतित है जो कथानायक को निरंतर त्रस्त किये रहता है। इतने पर भी मनोज उपन्यास में पूरी शक्ति से यह कोशिश करता दिखाई देता है कि वह विभाजित न हो, उसका अस्तित्व खंडित न हो, भले ही वह कैसी भी पीड़ा से क्यों न गुजरे ?

मनोज स्कूल के अन्य अध्यापकों से भिन्न है। वह एक जागरुक पात्र है। वह किसी का दबाव, कोई बंधन और कोई बोझ बनकर जीना नहीं चाहता। यद्यपि सभी अध्यापक हेड से नाखुश हैं, खीझे हुए हैं और उसे बरदाश्त करने में पीड़ा का अनुभव करते हैं; किन्तु मनोज ही ऐसा जीवंत एवम् चैतन्य है कि व्यवस्था के प्रति विद्रोह करता हुआ अपनी जागरुक चेतना को त्याग–पत्र देकर व्यक्त करता है। वस्तुतः मनोज में गहरी जागरुकता है। तभी तो जिसे चुपचाप सभी बरदाश्त किये जा रहे हैं उसे मनोज नहीं कर पाता है। मनोज अपने अंधकारमय भविष्य से चिंतित है और आने वाले कल की अनिश्चितता उसे त्याग–पत्र देने के लिए विवश कर देती है। 'हेड' के सामने जाते समय भी मनोज के मन में कोई घबराहट नहीं है। वह अपने निर्णय पर अडिग है और अपने व्यवहार से पर्याप्त चैतन्य दिखाई देता है। वह सहयोगी मित्रों के मध्य हो, चाहे मिस बोनी होल के साथ हो या अपने क्वार्टर में हो और चाहे सड़क पर किसी के साथ चल रहा हो, उसकी जागरुक चेतना सदैव उसके साथ रही है।

जागरुकता की यह भावना ही मनोज को मुक्त बना देती है। स्वातंत्र्य बोध से भरकर मनोज बंधनों का एक साथ ही अस्वीकार कर देता है। वे जिन दुहरे बंधनों को झेल रहा था, वे जब उसकी हड्डियों तक को जकड़ने लगते हैं तो वह उनसे मुक्ति चाहने लगता है। उसकी यह मुक्ति की कामना उपन्यास में स्पष्ट रूप से संकेतित है। "मनोज मुक्तिकामी है, परंतु उसकी यह कामना किस मुक्ति से संबंधित है ? यह एक प्रश्न है : नौकरी से पत्नी से या किसी और चीज से? जिससे कि वह स्वयं भी अनवगत है।"[८२] वह कहता है कि "कुछ था जिससे मैं छुटकारा चाहता था। उस कुछ का

दबाव शोभा के आने से पहले भी था। शोभा के साथ रहते भी था, अब भी था। वह कुछ क्या था?"[८३] इसी कारण मनोज सोचता है, कि स्कूल मास्टर के रूप में जिन्दगी मेरी अपनी जिन्दगी नहीं है। अतः कुछ करना चाहिए। दूसरे ही पल सोचता है कि शोभा के पति के रूप में भी मेरी जिन्दगी अपनी जिन्दगी नहीं है। अतः उसे लेकर भी कुछ करना चाहिए। लेकिन क्या करे? स्कूल से त्यागपत्र दे देने से शोभा के साथ अपने संबंध की स्थिति हल नहीं हो सकती थी। शोभा से अपने को काट लेने से स्कूल की यंत्रणा से नहीं बचा जा सकता था। फिर क्या यही उचित नहीं था कि वह एक साथ ही इन दोनों से मुक्ति पा ले। इसी विचार एवम् प्रेरणा से मनोज दोनों कदम एक साथ उठाता है। वस्तुतः मुक्ति की कामना मनोज में गहरे तक व्याप्त है। मुक्ति या स्वातंत्र्य की यह खोज उपन्यास में जिस ढंग से संकेतित है उससे तो लगता है कि कथानायक किसी भी प्रकार के बंधन का स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। यद्यपि यह ठीक है कि मनोज मुक्ति – कामना की पूर्ति के लिए अनेक विकल्पों से गुजरता है। कभी कुछ सोचता है और कभी कुछ सोचता है। उसका मन एक अनिर्णय की स्थिति से गुजरता था।

विकल्पमना मनोज का यह स्वभाव उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों में ही देखा जा सकता है। यही पर एक यह प्रश्न भी उठता है, कि इन विकल्पों का हेतु क्या है? मैं समझता हूँ कि मनोज की मुक्ति–कामना को पूर्णता तक ले जाने के लिए ही उसमें विकल्प जन्म लेते हैं। वह एक विश्लेषक की हैसियत से अनेक प्रश्नों के तहत कार्य करता दिखाई देता है। उसका त्याग–पत्र मुक्ति पाने के लिए है और शोभा से अलगाव पाना भी इस भावना की एक कड़ी है। वह त्यागपत्र और शोभा से अलग होने का निर्णय लेकर भी यह सोचता है, कि "क्या यह संभव है? और क्या सचमुच इससे कुछ हासिल हो सकता है? पास में इतने साधन नहीं थे कि बिना नौकरी के चार महिने भी जिया जा सके। कभी रहे ही नहीं थे। आगे कभी रहेंगे, इसकी भी कोई संभावना नहीं थी। तो एक नौकरी छोड़कर दूसरी की तलाश – इसका अर्थ क्या यह नहीं था कि इस दूसरे की जिन्दगी न जीकर इस दूसरे की जी ली जाये? कुछ दिन बेकार रहने के बाद उस दूसरे की जिन्दगी ढोने की जगह इसी जिन्दगी को ढोते जाना क्या बुरा था?"[८४] इससे स्पष्ट है कि मनोज कोई भी निर्णय लेने से पूर्व विकल्पों की राह से गुजरता है। उसकी यह स्थिति प्रभावित करती है कि उसके मन में कहीं गहरे मुक्ति की कामना भी है और अपनी वास्तविक स्थिति का बोध भी है। मनोज जिस मनःस्थिति में है, उससे तो लगता है कि उसके जीवन में एक सीमाहीन शून्यता व्याप्त है। यह शून्यता बोध

उसके व्यक्तित्व को पीड़ित तो करता ही है, एक निरर्थकता से भी भर देता है। निरर्थकता, शून्यता और विवश मनःस्थिति के कारण ही मनोज अपने संकल्पी क्षणों में भी विकल्पी हो उठता है। रिक्तता एवम् असहाय मनःस्थिति ही मनोज को क्या से क्या सोचने पर विवश करती है ? वह किन–किन विकल्पों के साथ में सोचता है, इसका अनुमान उसके इन चार विकल्पों से लगाया जा सकता है, जो खाली कमरे में सोफे पर बैठकर उसके मानस में जन्म लेते हैं : "मैं उन सब विकल्पों पर विचार करने लगा जिनके सहारे अपने को उससे आगे सोचने से रोका जा सकता था। विकल्प एक ! उठकर कपड़े बदले जायें। खाना किसी होटल में खाया जायें। फिर रात का शो देखकर सोने के समय घर लौटा जायें। विकल्प दो ! ड्रेसिंग गाउन पहनकर एन.के. के यहाँ चला जायें। दो घंटे उसकी प्रेमिका अर्थात् होनेवाली पत्नी के पत्र सुने जायें। विकल्प तीन ! जेबों में हाथ डालकर लोअर माल का एक चक्कर लगा लिया जायें। एकाद डिब्बी सिगरेट खरीदकर फूँक डाली जायें। फिर इस तरह घर की तरफ लौटा जाये जैसे उतनी देर बाहर रहकर किसी से किसी चीज का कुछ तो बदला ले ही लिया हो। विकल्प चार ! मैं सोफा चेयर से उठ खड़ा हुआ। इनमें से कुछ भी करने में कोई तुक नहीं थी क्योंकि सब बातें पहले की आजमायी हुई थी।"[८५] कहने की आवश्यकता नहीं कि कथानायक मनोज अपने स्वातंत्र्य बोध के लिए अनेक बातें सोचता है। न जाने कितने ही विकल्पों से गुजरता है और न जाने कितनी ही स्थितियों को भोगता है किन्तु अंत में वह अनिर्णय का शिकार होकर यथावत रह जाता है। सीधी–सी चीजों को और उलझा लेता है। यह उसकी अस्थिर चित्तता और विकल्पमना होने की स्थिति का गवाह है। विकल्पमानस की ये स्थितियाँ है ही। मनोज के व्यक्तित्व में रिक्तता है। वह अपने भीतर की रिक्तता को अनेक प्रकार से भरना चाहता है। वह रिक्तता एक तो स्कूली परिवेश के कारण है और दूसरे शोभा के ससुराल चले जाने के कारण है। सभी सहयोगियों के मध्य रहता हुआ भी वह अकेला और खाली अनुभव करता है। "उसका खालीपन व्यवस्थाजनित भ्रमित स्थितियों के कारण है। स्कूली गुटबंदी और धर्मगत भेदभाव के कारण मनोज स्कूली जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है। फलतः वह शून्यता का लेखा ही बनकर रह जाता है।"[८६] सभी पात्र अपने में अकेले हैं, सबके साथ होकर भी अपने में केन्द्रिय हैं। मनोज की शून्यता का कारण दुहरा है : स्कूली और व्यक्तिगत शोभा से अलग होकर तो जैसे मनोज और भी खाली हो गया है। उसके खत का उत्तर तक नहीं दिया है किन्तु फिर भी वह पत्र की प्रतीक्षा करता रहता है। "इस तरह सुबह का खालीपन दोपहर की प्रतीक्षा में कट जाता था, दोपहर

का अगले दिन की प्रतीक्षा में।"[८७] स्कूल का परिवेश तो रुखा और असामंजस्यपूर्ण है ही, उसके कमरे का परिवेश तो और भी अधिक शून्यता को जन्म देता है। अतः स्कूल से लौटते समय यदि उसे कहीं रुकना पड़े तो वह राहत का अनुभव करता है। मनोज की द्रष्टि में इसका कारण है कि "इससे अपने को खाली कमरे में लौटकर जाने की जहमत से कुछ देर के लिए तो बचाया ही जा सकता था।"[८८] स्पष्ट है कि मनोज के हृदय में एक कभी न भरने वाली शून्यता है जिसे कभी किसी तरह तो कभी किसी तरह भरने की अथक कोशिश करता हुआ मनोज अपना समय बिताता है। वह खालीपन को भरने के अनेक तरीके अपनाता है – कभी कमरे में टहलकर या बरफ में घूमकर या कभी बिना वजह मूड़ खराब करे। शोभा का साथ यदि मनोज को खीझ के भरता रहा है तो उसकी अनुपस्थिति में वह निरंतर एक शून्यता का अनुभव करता रहा है। वह कहे कुछ भी, किन्तु बराबर उसे लगता यही है कि शोभा के बिना जिन्दगी फालतू हो गयी है। यदि ऐसा न होता तो वह यह क्यों सोचता : "सोचा अगर शोभा घर पर होती, तो अपने को इस समय के फालतूपन से बचाया जा सकता था। बाद में चाहे नींद न आती। पर एक वक्त का खाना खा सकने के लिए वहाँ मंडराते रहने की जरुरत से तो नजात पायी जा सकती थी। मैंने नये सिरे से शोभा के नाम लिखे जाने वाले पत्र का मजमून मन में बनाना शुरु किया।"[८९] शोभा के बिना मनोज जिस शून्यता के भार को ढोता है वह शोभा के दूसरे खत के आ जाने से और बढ़ जाता है। वह अपने आंतरिक शून्य को भरने के लिए शोभा को वापस बुलाना चाहता है किन्तु यही सोचकर रह जाता है – "जैसे शोभा यहाँ से जाकर भी न गयी हो।"

अन्तर्द्वन्द्व मनोज के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। अस्तित्व की रक्षा में प्रयत्नरत, मुक्तकामी और जागरुक मनोज यदि कतिपय स्थितियों में अंतर्द्वन्द्व से पीड़ित है तो यह सहज और स्वाभाविक ही है। अंतर्द्वन्द्व की यह स्थिति न केवल मनोज की आंतरिक घुटन एवम् व्याकुलता को व्यक्त करती है वरन् उसके अस्तित्ववादी रुप पर भी प्रकाश डालती है। इसी स्थिति में मनोज अनिर्णय, अपरिचय, अकेलेपन और ऊब से भी जुझता दिखाई देता है। त्यागपत्र देने और शोभा से अलग होने की स्थिति में मनोज जिस आंतरिक द्वन्द्वजनित पीड़ा एवम् छटपटाहट को झेलता है वह अस्तित्ववादी भूमिका पर तो प्रतिष्ठित है ही, मनोविश्लेषण की भूमिका पर भी स्थित है। जीये और न जीये जा सकने, शोभा को छोड़ने और न छोड़ने, उसे पत्र लिखने या न लिखने और त्यागपत्र देने या न देने की स्थितियों में अंतर्द्वन्द्व उभरा है। यह आंतरिक द्वन्द्व सटीक है। इसमें आरोपित कुछ नहीं है। कहीं कहीं अंतर्द्वन्द्व के क्षणों में मनोज

आत्मविश्लेषक भी हो गया है। ऐसे स्थानों पर उसने अंतर्द्वन्द्व को आत्मविश्लेषण से जोड़कर अपनी जागरुकता और स्वतंत्र चिंतन शक्ति का भी परिचय दिया है। "यह मैंने सोच लिया था कि जिस चीज को मैं अकेला रहकर नहीं सुलझा सका, वह शोभा के आ जाने से अपने आप सुलझ जायेगी ? यह क्या खुद को डूबने से बचाने के लिए दूसरे डूबते व्यक्ति का कंधा थामने की तरह नहीं था ? और जिस द्रष्टि से शोभा का सहारा ढूंढ़ा इसके लिए क्या मैं उसे दोष दे सकता था ?"[१०]

जैसा कि कहा गया है कि मनोज के चरित्र में अकेलेपन एवम् ऊब का बोध गहरा है। वह रिक्तता का अनुभव करनेवाला पात्र है। शोभा के खुर्जा चले जाने पर तो उसका यह अकेलापन और भी अधिक स्पष्ट हो गया है। परिणामतः अपने अकेलेपन को भरने के लिए जब मनोज बोनी के साथ प्रेम-व्यापार चलाता है, काशनी के साथ संभोग सुख पाना चाहता है तब लगता है कि वह स्वार्थी एवम् कामुक है। बोनी से मिलते समय उसे अपने बाहुपाश में कसना चाहता है तो यौन सुख के लिए लिटा भी लेता है। स्पष्ट ही इस प्रयत्न में मनोज की कामुकता और स्वार्थी वृत्ति ही स्पष्ट होती है। "मानवीय संबंधों की उष्मा के अभाव में भटकना उसकी नियति है। लेकिन अपने व्यक्तित्व की एवम् आत्मचेतना की अवगणना वह कदापि नहीं करता है।"[११] इस प्रकार आलोच्य उपन्यास का नायक मनोज एक अस्तित्ववादी पात्र है। वह जागरुक, मुक्तिकामी, स्वातंत्र्य बोध का समर्थक, अकेला, ऊबा हुआ, व्याकुल पात्र है। उसके ह्रदय की रिक्तता ही है जो उसे किसी आने वाले कल की सीमा का आभास करा देती है।

शोभा :

शोभा कथानायक मनोज की पत्नी है। शोभाने अपने पहले पति की मृत्यु के उपरांत मनोज से विवाह किया है। मनोज से विवाह करने में उसने जितनी तत्परता दिखायी उतनी ही तत्परता से वह मनोज से ऊब भी गयी। इसका एक ही कारण था – उसका स्वातंत्र्य बोध। अपने स्वतंत्र विचारों के कारण शोभा मनोज को पूरे मन से न तो स्वीकार ही कर सकी और न उसमें एक पति की तस्वीर ही देख पाई। मनोज में भी स्वातंत्र्य बोध है, किन्तु दोनों में से कोई भी किसी के सामने झुकना नहीं चाहता। शोभा अपने ढंग की स्त्री है। उसके जीने का अपना ढंग है। खान-पान, रहन-सहन,

वेश-भूषा, गृह-व्यवस्था और जीवन के सभी क्षेत्रों में वह अपने ढंग से जीना पसंद करती है। यह अपने ढंग से जीने की पद्धति उसकी अपनी उतनी नहीं है जितनी की उसकी पहली ससुराल और पहले पति की है। अपनी स्वतंत्र वृत्ति के कारण वह सब कुछ वैसा ही करना चाहती है जैसा कि उसके द्वारा अब तक किया जाता रहा है : "घर कैसा होना चाहिए, खाना कैसा बनना चाहिए, दोस्ती कैसे लोगों से रखनी चाहिए – इन सबसे उसके बने हुए मानदंड़ थे जिनसे अलग हटकर कुछ भी करना उसे बुनियादी तौर पर गलत जान पड़ता था।"[९२] अब विचारों एवम् मानदंड़ों में शोभा अपने को पूर्ण समझती है। न तो उसके विरुद्ध कुछ भी करना चाहती है और न उनमें तनिक भी संशोधन उसे प्रिय या वांछनीय है। स्पष्ट ही उसकी स्वातंत्र्य बोध वृत्ति असीमित है। वह अपने ढंग से न केवल खुद चलना चाहती है, अपितु दूसरों को भी उसी ढंग से चलाना चाहती है। इसी वृत्ति से प्रेरित होकर वह यह तक कह देती है कि "यहाँ के लोग, यहाँ के रंग-ढंग सभी बहुत अजीब हैं। मुझे तो लगता है कि मैं इसी तरह यहाँ रहती रही, तो जल्दी ही पागल हो जाऊँगी।"[९३]

अपनी स्वतंत्र-चेता प्रवृत्ति के कारण ही शोभा मनोज से सीधे प्रश्न करती है और खुर्जा जाने का एक तरफा निर्णय कर लेती है। असल में वह मनोज के पास से कहीं भी जाना चाहती है। इस जाने के पीछे शोभा की स्वातंत्र्य भावना के साथ वर्तमान परिवेश एवम् जीवन के प्रति असंतोष भावना भी है। अपनी इस असंतुष्ट मनःस्थिति को उसने स्पष्ट भी किया है। उसने कहा है : "तुम भी जानते हो कि यह जिन्दगी तुम्हें रास न आती – उसी तरह जैसे मुझे नहीं आती। तुम जिस तरह की जिन्दगी के आदी रहे हो, तुम्हें फिर से वही जिन्दगी जीने को मिल जायेगी, बिलकुल अकेलेपन की – कम-से-कम कुछ दिनों के लिए। मैं भी वहाँ रहकर देख लूँगी कि मुझे कौन-सी जिन्दगी बेहतर लगती है।"[९४] कहने की आवश्यकता नहीं कि शोभा के व्यक्तित्व में चुनाव की प्रक्रिया बड़ी तीव्र है। वह निर्णय को टालते रहने की आदी नहीं है। उसके निर्णय जहाँ उसकी स्वच्छंद मनोवृत्ति के प्रतीक हैं वही उसकी संकल्पी वृत्ति को भी पुष्ट एवम् प्रमाणित करते हैं। वस्तुतः शोभा विभिन्न स्तरों पर अपने अस्तित्व रक्षण के लिए व्यग्र दिखाई देती है। वह मृत्यु से भले ही भयग्रस्त हो किन्तु प्रत्येक मूल्य पर अपनी स्वतंत्र चेतना को सुरक्षित बनाये रखना चाहती है।

शोभा का चेतना बोध पर्याप्त विकसित है। इसी से वह आत्मविश्लेषण भी करती है और नये दाम्पत्य जीवन की अर्थहीनता को भी स्पष्ट कर देती है। उसमें साहस है,

निर्भीक शब्द बोलने की क्षमता है और घरेलू जिन्दगी जीने की अभिलाषा। घर की जिन्दगी के बिना उसे अपने आप अपूर्ण लगता है। शोभा अपने घर को जिस ढंग से चलाना चाहती है, उसमें एक व्यवस्था है, जीवन का सुख है और है वैवाहिक जीवन का रस। वह एक ऐसी नारी है जो वैवाहिक संस्था को बनाये रखना चाहती है जबकि मनोज उसे तोड़कर स्वतंत्र जिन्दगी जीना चाहता है। शोभा का यह कथन स्पष्ट करता है : "मुझे घर की जिन्दगी के बगैर अपना आप बहुत अधूरा लगता था। इसीलिए मैंने निश्चय के साथ वह कदम उठाया था। मगर तुम्हारे पास मुझे देने के लिए घर नहीं था। था सिर्फ अपना आप बिना घर-बार के, बिना घर-बार की कल्पना के।"[९५] असल में शोभा घर चाहती है और वैवाहिक जीवन का सुख चाहती है। तभी तो मनोज से अलग होकर भी सुखी होने के बजाय दुखी होती रहती है। मनोज का पत्र न आने पर पुनः पत्र लिखने को विवश हो जाती है। स्पष्ट है कि शोभा स्वतंत्र विचारों की अस्तित्ववान नारी है। वह नारी है और नारी बने रहना चाहती है। उपन्यास में वह जितने समय के लिए है, उतने समय में वह स्वातंत्र्य भावना से युक्त एक घरेलू नारी ही लगती है।

मिस बोनी होल :

राकेशजी के आलोच्य उपन्यास में बोनी के रूप में एक ऐसी युवती का चित्रण किया गया है कि जिसे एक बात का शौक है वह हर व्यक्ति से निकटता के साथ परिचित होना चाहती है। इसके लिए वह संपर्क में आने वाले प्रत्येक पुरुष को भीतर-बाहर से परखना चाहती है। शारीरिक नैतिकता के संबंध में तो उसके विचार स्पष्ट है ही। उन्हें लेकर उसके मन में न कोई उलझन है और न कुंठा ही है। बोनी होल स्टाफ की एकमात्र कुँआरी मैट्रन है। वह सदैव चहकती रहती है तथा कान खोले जैसे हर बात को दबोचने के लिए तैयार रहती है। हँसना-हँसाना उसके स्वभाव का अंग है। उसका व्यक्तित्व प्रभावी है : "आँखे उसकी पूरे कमरे में तफरीह कर रही थीं। यह बोनी होल की खासियत थी वह जिस किसी भी समुदाय में हो, उस समुदाय के हर व्यक्ति को अपनी तरफ देखती जान पडती थी। उसकी आँखें एक टिड्डे की तरह यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ फुदकती रहती थीं।"[९६] वस्तुतः मिस बोनी होल एक स्वच्छंद भावनाओं की नारी है। वह सबसे खुलकर बात करती है। उसका हँसमुख और चंचल स्वभाव जहाँ एक ओर उसकी विनोदी-वृत्ति को स्पष्ट करता है वहीं दूसरी ओर उसकी मुक्त-विचारणा, उसके स्वच्छंद व्यक्तित्व को भी स्पष्ट करता है। उसके लिए शारीरिक

नैतिकता अर्थहीन है । सत्रह वर्ष की आयु से ही उसके अनेकानेक पुरुष मित्र रहे हैं और वह उन्हें काफी निकटता से देख चुकी है । उसकी स्वीकारोक्ति भी है : "मैं तुम्हारे सामने यह भी स्वीकार कर सकती हूँ कि कई एक लोगों के साथ मेरा शारीरिक संबंध रहा ही है, हालाँकि हरएक के साथ एक-सा नहीं ।"[९७]

बोनी के व्यक्तित्व में भावात्मकता नहीं के बराबर है । वह भावुकता में कभी नहीं बही; क्योंकि भावुकता से मन कमजोर होता है और मन की कमजोरी से पराश्रित मनोवृत्ति का विकास होता है । अनेक पुरुषों का संपर्क पाकर भी बोनी कभी किसी एक की नहीं हो पायी है क्योंकि वह शोभा की तरह घरेलू किस्म की या घर बसाकर रहनेवाली नारी नहीं है । यह उसकी भावुकता विरोधी द्रष्टि ही है कि उसने किसी भी पुरुष को इतना अधिकार नहीं दिया है जिसके बिना उसका जीना दूभर हो जाये । अनेक पुरुषों से मित्रता स्थापित करके भी बोनी शरीर की हदों को पार करने की सीमा पर आकर एकदम बेरुखी हो जाती है । बोनी का ऐसा हो जाना इस बात का प्रमाण है, कि वह किसी भी प्रकार की भावुकता की कायल नहीं है । "उसे दो-एक बार ऐसी उलझन हुई भी है तो उसने कोशिश करके अपने को उससे मुक्त कर लिया है । मैं इसे एक विशेष परिस्थिति में रो पडने जैसी ही कमजोरी समझती हूँ जो कि मेरी सम्मान भावना को ठेस पहुँचाती है । ऐसी कमजोरी देखकर मैं अपने को बहुत छोटी महसूस करती हूँ । मैं नहीं चाहती कि किसी भी आदमी का मुझ पर इतना अधिकार हो कि मैं उसके बिना जी ही न सकूँ ।"[९८] भावुकता का कमजोरी में और प्रेम के कमजोर क्षणों का पर्यवसान समर्पण में होता ।

स्वच्छंद और अभावुक बोनी में तर्क शक्ति एवम् निर्भिकता पर्याप्त मात्रा में है । जब वह मनोज के क्वार्टर में जाना चाहती है तो पूरी निर्भीकता के साथ । मनोज के कहने पर कि गिरधारी तथा कोहली मेरे क्वार्टर के ही एक हिस्से में रहते हैं, वह कहती है कि "वे लोग अब तक सो गये होंगे । फिर बोली : और जागते भी हो तो मैं परवाह नहीं करती । उनमें से किसी का हौंसला नहीं होगा कि मेरे खिलाफ जाकर शिकायत कर सके ।"[९९] बोनी की निर्भीकता एवम् साहसी वृत्ति का ही परिणाम है कि वह सबसे खुलकर बात करती है । मुक्तमना बोनी भीतर-बाहर दोनों ओर से खुली है । पुरुष जाति के प्रति उसका मन प्रश्निल बना हुआ है । इसी प्रश्निलता के कारण वह गहरे अकेलेपन को भी भोगती है । एक ओर तो वह दूसरों में गहरी दिलचस्पी लेती है और दूसरी ओर उन्हीं का उपहास उड़ाने के लिए तत्पर रहती है । ऐसा प्रतीत होता है कि

बोनी अपने भीतर की छटपटाहट को भूलने के लिए दूसरों को छटपटाते देखना चाहती है। वैसे बोनी सूक्ष्म विश्लेषिका है। उसके पास आंतरिक द्रष्टि है जिसके कारण वह मनोज की मनोःस्थिति और परिस्थिति तक का सही मूल्यांकन कर देती है। 'सेवाय' में मिलने के बाद वह साथ-साथ घूमते हुए उससे यह कह देती है : "क्या तुम नहीं मानते कि कुछ चीजों का कोई हल नहीं होता है ? .... इसलिए कुछ चीजों को ज्यों को त्यों रहने देना भी उतना ही बुरा या अच्छा है जितना उससे छुटकारा पा लेना ? पर यहाँ से जा कहाँ रहे हो ? तुम्हारे रंग-ढंग से इतना तो झलकता ही है कि सीधे अपनी पत्नी के पास तुम जाओगे नहीं।" [१००]

बोनी बड़ी ही खुली, बेबाक, आधुनिक लड़की है, जो भावुकता से बचकर शारीरिक तृप्ति में विश्वास रखती है तथा इस संबंध में वह पाप-पुण्य और नैतिकता जैसी बातों से काफी निवृत्त हो चुकी है। उसकी यह आत्म-स्वीकृति सचमुच बड़े साहस की बात है। समग्र उपन्यास की यह एक ऐसी पात्र है जो अपने विचारों, विश्वासों एवम् बेबाकी के कारण बिलकुल यथार्थ लगती है तथा हमारे मन पर गहरी छाप छोड़ जाती है। फिर भी वह गहरी मानसिक यंत्रणाओं एवम् अकेलेपन से ग्रस्त है।

टोनी व्हिसलर :

टोनी व्हिसलर फादर बर्टन स्कूल का हेड मास्टर है। वह हर समय कसा-कसा रहनेवाला व्यक्ति है। उसके स्वभाव में गंभीरता चाहे न हो, पर नियंत्रण का गुण उसमें है। वह अथक परिश्रमी और अनुशासित व्यक्ति है। उसके व्यक्तित्व को उसकी पत्नी के इन शब्दों से समझा जा सकता है : "ओ ! टोनी ? वह तो स्टेनलेस स्टील का पुर्जा है जो बिना घिसे चौबीसों घंटे काम कर सकता है। उसे दुःख है तो यही कि दुनिया में और लोग भी उसकी तरह स्टेनलेस स्टील के पुर्जे क्यों नहीं हैं। वह इतना अच्छा फोटोग्राफर है कि उसे सिवाय फोटोग्राफी के कोई काम नहीं करना चाहिए, पर उसके स्वभाव को देखते हुए लगता है कि उस हेड मास्टर या फोटोग्राफर न होकर किसी स्टील प्लांट में हेड फोरमेन होना चाहिए।" [१०१]

वास्तव में टोनी व्हिसलर एक कठोर, नियंत्रित और अनुशासनप्रिय पात्र है। वह अपने आप में एक ऐसा चरित्र है जिसके सामने सभी लोग कम बोलते हैं, बोलते हैं तो संजीदगी से, खाते-पीते हैं तो संयम से। वह जहाँ भी होता है वहाँ का सारा वातावरण तनावपूर्ण हो जाता है, उसमें एक खामोशी छा जाती है। टोनी की द्रष्टि बड़ी तीव्र है।

उसका स्वभाव नियमों में आबद्ध है। वह हर हालत में अपने पर काबू पाना चाहता है। ऐसा करने में उसका चेहरा और मुखाकृति भी स्पष्ट ही उसके नियंत्रित व्यक्तित्व को ही परिभाषित करती जान पडती है : "अपने पर काबू रखने की चेष्टा में उसकी नुकीली ठोड़ी चोकोर चेहरे से इतनी जुदा लग रही थी जैसे कि अलग से तराशकर वहाँ चिपकाई गयी हो। गर्दन भी और दिनों से ज्यादा सुर्ख नजर आ रही थी – इतनी कि जैसे अभी अभी उसके अंदर से लहू फूट आना हो।"[१०२] टोनी एक कठोर व्यक्ति होने के साथ साथ कृत्रिम व्यक्तित्व का भी धनी है। वह मिलनसार नहीं है। हँसमुख रहना उसके लिए नामुमकिन है। उसके इस स्वभाव के कारण ही चेरी और लेरी उसके खिलाफ हैं। वस्तुतः टोनी उन व्यक्तियों में से है जो चाहते हैं कि उनकी हरेक गलत–सही या अच्छी–बूरी बात की प्रशंसा की जाये। टोनी अपनी सारी सहृदयता खो चुका है। अतः उससे कोई सद्भावना नहीं रखी जा सकती। "टोनी ने वस्तुतः अपने व्यक्तित्व पर गंभीरता की एक मोटी खाल चढा रखी है जिससे कि उसके भीतर प्रवेश कर कोई उसके असली रुप को न जान सके।"[१०३]

कहने की आवश्यकता नहीं कि टोनी व्हिसलर एक कठोर हृदय का अनुशासित व्यक्ति है। वह अपने ढंग से चलने का कायल है, भले ही लोग उसकी आलोचना करें। वह जिद्दी, कठोर, संयमित, अपने निर्णय पर अड़िग, परिश्रमी और एक सलीकेवाला आदमी है। जहाँ उसमें यह सब है वहाँ हल्की भावुकता और सुझ–बुझ भी है। उसकी धारणायें स्पष्ट और निर्विवाद हैं। जब वह मनोज को समझाता है तो उसकी सुझ–बुझ और स्पष्ट कथन प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। वह व्यक्ति के साथ–साथ संस्था को भी महत्त्व देता है किन्तु यह भी स्पष्ट जानता–समझता है कि " संस्थायें व्यक्तियों से चलती हुई भी व्यक्तियों पर निर्भर नहीं करती। अपनी जगह के लिए एक आदमी अनिवार्य अनुकूल हो सकता है। पर किसी भी जगह के लिए कोई आदमी अनिवार्य नहीं होता।"[१०४] टोनी का यह कथन जहाँ उसकी स्पष्ट कथन–वृत्ति को प्रमाणित करता है, वहीं गहरी सुझ–बुझ और व्यावहारिक द्रष्टि–चेतना को भी प्रमाणित करता है।

जेन व्हिसलर :

जेन व्हिसलर टोनी व्हिसलर की पत्नी है। यद्यपि वह टोनी के साथ जीवन के कई वर्ष काट चुकी है, किन्तु उसका स्वभाव उससे अप्रभावित ही दिखाई देता है। टोनी जितना कठोर, अनुशासित और अव्यावहारिक है, जेन उतनी ही सहृदय, मुक्तमना और

व्यावहारिक नारी पात्र है । मिलनसार उसके व्यक्तित्व का प्रमुख गुण है । वह हँसमुख और खुश-मिजाज नारी के रूप में चित्रित की गई है । उसे न तो अपने पति का गुमान है और न वह उसके पद के अनुसार सहयोगियों से एक दूरी बनाये रखना ही चाहती है । उसका लिबास सादा तथा उसी के अनुरूप सादा एवम् सरल व्यवहार भी करती दिखाई देती है । अपने व्यवहार तथा कर्म में जेन जितनी स्पष्ट और निर्भीक है, उतना न तो टोनी है और न नारी पात्रों में मिस बोनी होल को छोड़कर ही कोई ऐसा पात्र है । मनोज से त्यागपत्र की चर्चा करते समय जेन ने न केवल अपनी व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया है, वरन् अपनी मितभाषिता-वृत्ति से स्पष्ट कथन भी किया है । जेन का यह कहना है कि "हालाँकि आज तुम्हारी वजह से मुझे अफसोस भी है, पर सचमुच अपने पति की वजह से खुश भी हूँ । उसकी मानसिक तंदुरस्ती के लिए जरूरी था कि उसे इस तरह का कोई झटका लगे ।"[१०५] इस बात का प्रमाण है कि उसके पास सूक्ष्म और व्यावहारिक बुद्धि है । जेन की व्यावहारिकता और सहृदय वृत्तियों के कारण ही उसे विद्यार्थी तक पसंद करते हैं । कहने की आवश्यकता नही कि जेन व्हिसलर अपनी मुक्त मनःस्थिति से बेलाग नारी है । उसका व्यक्तित्व न केवल प्रभावी और लोकप्रिय है, वरन् अपने सभी सहयोगियों के बीच उसकी स्वभावगत कोमलता और वैचारिकता उसे जीवंत व्यक्तित्व प्रदान करती है ।

जिमी :

जिमी उपन्यास का एक ऐसा पात्र है जिसके चरित्र में अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ हैं । वह सबके प्रति सहृदय और व्यावहारिक दिखायी देता है । यद्यपि जिमी स्कूली परिवेश में सर्वाधिक मिलनसार व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है, किन्तु उसका अकेलापन उसे खाये जा रहा है । इतने पर भी वह समय का पाबंद और सारे दिन के कार्यक्रमों को घंटों-मिनटों के फीते में बाँधनेवाला व्यस्त पात्र है । उसकी व्यस्तता उसके चरित्र की नियामिका है । वह अपने सामनेवाले व्यक्ति से उतनी देर तक ही जुड़ पाता था जितनी देर तक वह व्यक्ति उसके सामने रहता था । वस्तुतः जिमी एक ऐसा चरित्र है जिसे अपनी व्यस्त, संयत, शीलन जिन्दगी में भी व्यवस्था से प्रेम है, कार्य के प्रति बरती गयी ईमानदारी से प्रेम है । वह स्पष्टतः एक आत्माभिमानी, शिष्ट, शालीन, परोपकारी एवम् सही समय पर सही कदम उठाने का कायल पात्र है । राकेशजी ने जिमी के संबंध में ठीक ही लिखा है कि – "जिमी का स्वभाव है कि बहुत-सी बातें एक साथ सोचता है । अपना सम्मान, स्कूल का सम्मान, रुपया-पैसा, योजनाएँ, सही कदम और

इन सबके बीच अभिनय । बल्कि इन सबको लेकर अभिनय । .... जिन्दगी का हर कदम सही वक्त पर और सही जगह पर । कभी अपना पार्ट भूलना नहीं, कभी गलत एंट्री नहीं लेना और विंग में खड़े होकर हर दूसरी क्यू का पूरा ध्यान रखना । हर चीज एकदम दुरस्त, ठीक वैसे जैसे कि होनी चाहिए । .... अपने पर लगाम लगाने की उसमें अदभूत शक्ति है ।"[१०६]

वास्तविकता यह है कि जिमी शालीन, परिष्कृत रुचिवाला, सही क्षण में उचित निर्णय कर लेना और अपने व्यक्तित्व पर नियंत्रण करनेवाला पात्र है । सही अर्थों में जिमी बहुत भला व्यक्ति है । उसके चरित्र का यदि कोई दोष है तो यही कि वह बहुत भला आदमी है । वह लोगों की बहुत चिंता करता है । कोई चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करे, जिमी का चिंता करना कोई नहीं छुड़ा सकता । जिमी स्वस्थ मनोवृत्ति का विनोदी, हँसमुख और मिलनसार पुरुष पात्र है । उसमें स्वाभिमान अवश्य है । उसमें निर्णय की अपार क्षमता है । वह जिन्दगी को मुक्त भाव से देखता है ।

बुधवानी :

बर्सर बुधवानी को सबसे पहले मनोज के त्यागपत्र के विषय में पता चला । बुधवानी वास्तव में टोनी का विशेष कृपापात्र था तथा स्टाफ में जो भी चर्चा होती उसे टोनी तक पहुँचाने का काम किया करता था । बुधवानी की सारी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ टोनी के मूड़ द्वारा परिचालित होती थी । उसका चेहरा ऐसा आईना था जिसमें हेड मास्टर के मन की प्रत्येक प्रतिक्रिया देखी जा सकती थी । जब हेड मास्टर खुश नजर आता था तो बुधवानी भी खुश नजर आता था । टोनी को अच्छा बुरा जो भी करना होता था, उसे मुँह से कहने की जिम्मेदारी बुधवानी पर ही होती थी । वह जिस आदमी से दिलचस्पी से बात करता, उसके बारे में निश्चित रूप से समझा जा सकता था कि टोनी उस पर खुश है, टोनी व्हिसलर जिस पर नाराज होता, उससे बुधवानी कटा-कटा रहता था । वह मनोज के त्यागपत्र को लेकर थोडा-सा परेशान है क्योंकि मनोज से उसे दिली सहानुभूति है । वह मनोज को सुझाव देता है कि वह हेड से मिलकर एक बार बात स्पष्ट कर ले - अर्थात् माफी मांग ले । पर मनोज अपनी बात पर अड़ा था । बुधवानी हेड के निकट होने के कारण कुछ लोगों के काम करा देता हैं यथा - छुट्टी दिलाना या टाइम टेबल सुविधानुसार करना आदि । बुधवानी वस्तुतः एक ऐसा व्यक्ति है जो व्यवस्था में शक्तिशाली के साथ रहने में विश्वास करता है जिससे कि उसे ज्यादा

सुविधाएँ एवम् अधिकार प्राप्त हो सके फिर उसके लिए उसे कितना भी नीचे गिरना पड़े – या अनचाहे समझौते करने पड़े , इसकी उसे चिन्ता नहीं थी ।

अन्य चरित्र :

इन प्रमुख पात्रों के अलावा इस उपन्यास में कुछ ऐसे पात्र हैं, जिनके जीवन की कुछ झलक मात्र हमें मिलती है । इनमें मिसेज पार्कर, रोज और शारदा उपन्यास के गौण पात्र हैं । मिसेज पार्कर एक डरपोक किस्म की अध्यापिका है जो कापियाँ जाँचते समय हंमेशा झुंझलाया करती है । उसके पति मि. पार्कर की ज्यादतियों से तंग आ चुकी है । वह अपने असली घर लंदन लौट जाना चाहती है । लंदन में रहती उसकी दादी ने उसे कई बार निमंत्रण भेजा पर उसके पति के कारण वह नहीं जा पायी । हालाँकि उसकी लड़की चली गई है । वह सोचती है कि यहाँ रहकर उसका भविष्य ही खराब हो रहा है और कुछ नहीं । मिसेज पार्कर मनोज के त्यागपत्र की घटना में रुचि दिखाकर उसके प्रति सहानुभूति जताती है तथा उसे किसी दिन चाय पर आने का निमंत्रण देती है पर वस्तुतः वह हेड मास्टर से काफी भयभीत है । मिसेज पार्कर एक साधारण अध्यापिका है जो हंमेशा यथास्थिति में असंतुष्ट रहकर भी कुछ कर पाने का साहस जुटाने में असमर्थ है ।

रोज जिमी की पत्नी है जो अनिच्छा से स्कूल से बंधी है । वह बड़े आकर्षक व्यक्तित्ववाली महिला है पर अपने पति जिमी के समझौता–परस्त स्वभाव के कारण स्कूल के स्टेज पर नाटक आदि खेलने को बाध्य है । वह अपने आपको होलीवूड की किसी अभिनेत्री से कम नहीं समझती । जिमी और रोज का स्कूल से कांटेक्ट है – जिसके अंतर्गत उन्हें वहाँ न चाहकर भी काम करना पड़ रहा है । रोज बड़ी स्वाभिमानी औरत है तथा अपने पति के दब्बू स्वभाव से बड़ी रुष्ट है । टोनी व्हिसलर द्वारा, उनके पसंद किये नाटक की आलोचना वह सहन नहीं कर पाती और बुरी तरह निराश हो जाती है तथा मौके की तलाश में रहती है कि कब इसका जवाब दिया जा सके । रोज एक सुंदर एवम् निर्भीक नारी है जो समय पर वार करना जानती है ।

मनोज का पडोसी है कोहली । कोहली की पत्नी है शारदा । कोहली अक्सर शारदा की पिटाई करता था । शारदा उसकी दूसरी पत्नी थी । रात को शारदा को बहुत डर लगता । शादी के समय कोहली ने शारदा के माता–पिता को उसकी बैंक की पास–बुक दिखाई थी जिसमें दस हजार रूपये जमा थे तथा नौकर रखने का वादा किया

था । पर बाद में उसने नौकर को निकाल दिया । नौकरी से निकाले जाने के बाद जब कभी वह नौकर को वहाँ मँडराते देख लेता, उस दिन शारदा की खूब पिटाई करता । शारदा बड़े साहस के साथ मनोज को निमंत्रण देना चाहती थी, पर मनोज का मन उसकी अस्वच्छता एवम् कोहली के कमीनेपन के कारण गहरे रूप से विरक्ति से भर गया था ।

उपन्यास 'न आने वाला कल' में पात्र बहुत हैं पर क्योंकि वे मात्र स्कूल की कुछ घटनाओं से संबद्ध हैं, वे यत्र-तत्र गर्मी के बादलों की तरह द्रष्टिगोचर होकर अद्रश्य हो जाते हैं । अतः उनके समग्र जीवन या जीवन के कुछ हिस्सों के विषय में कुछ भी स्पष्ट नहीं हो पाता ।

४.३.३ 'अंतराल' उपन्यास में चरित्र-चित्रण :-

चरित्रों की द्रष्टि से निश्चित ही 'अंतराल' एक अनूठा उपन्यास है । राकेशजी ने पात्रों के निजी जीवन की जिन सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को गहराई से अभिव्यक्त किया है, उसीसे उसकी समर्थता का बोध होता है । आधुनिक युग की नैतिकता और पुराने नैतिक मापदंडों के बिखराव और टूटन का, अपने पात्रों के माध्यम से राकेशजी ने जो चित्रण किया है, वह बेजोड़ है । यह उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति को प्रकट करता है ।

राकेशजी का 'अंतराल' उपन्यास एक चरित्रप्रधान उपन्यास है । इसके सभी चरित्र आज के जीते जागते व्यक्ति हैं । समकालीन जीवन की पीड़ा एवम् विसंगतियाँ उनमें साकार हो उठी हैं । वे अपने आप से लड़ते रहते हैं । वे पुरातन मान्यताओं से चिपके रहना भी नहीं चाहते और अपने से मुक्ति भी नहीं पा सकते । ये अपने अकेलेपन से ऊबे हुए लोग हैं । उनका अकेलापन समाज से कटकर रहने का अकेलापन नहीं किन्तु सबके बीच रहने का अकेलापन है । यहाँ अकेलेपन को दूर करने की हर कोशिश नाकाम हो जाती है ।

चरित्रों की द्रष्टि से जहाँ तक 'अंतराल' का प्रश्न है तो स्पष्ट है कि 'अँधेरे बंद कमरे' और 'न आने वाला कल' की भाँति इस रचना में चरित्रों की भीड़ नहीं है । यहाँ एक अपेक्षाकृत संश्लिष्ट कथा में अधिक सार्थक और सक्रिय, केवल आवश्यक पात्र ही प्रस्तुत किये गये हैं । जिनका चरित्र पूरे तौर पर उदधाटित और विश्लेषित किया जा सका है । प्रस्तुत उपन्यास में कुल अठारह-बीस पात्र हैं, जिनमें मात्र छह-सात ही हैं, जो

कथासूत्रों को धारण किये हुए अपनी सार्थकता सिद्ध करते हैं। शेष प्रसंगवशात आये हुए सहयोगी चरित्र ही हैं। उपन्यास का नायक या सूत्रधार कुमार बंबई के किसी विज्ञापन अभिकरण में काम करता है। इससे पहले वह एक कस्बे के कोलेज में दर्शनशास्त्र का प्राध्यापक था। कुमार, जो मध्यवर्ग का एक बौद्धिक व्यक्ति है, अपने वक्तव्यों में तो उच्च मानसिक स्तर का व्यक्ति लगता है, लेकिन बीच-बीच में उसकी यथार्थ क्रियाएँ उसे एक नितांत साधारण और सांसारिक व्यक्ति ही प्रमाणित करती हैं। कुमार का चरित्र दरअसल एक सामान्य व्यक्ति का चरित्र है। उपन्यास के अन्य चरित्र और विशेष तौर पर श्यामा की तुलना में तो वह निहायत हल्का और प्रभावशाली लगता है।

श्यामा – जो राकेशजी के तीसरे उपन्यास 'अंतराल' की नायिका है। श्यामा के चरित्र को देखते हुए यह कहना भी शायद अधिक नहीं होगा कि 'अंतराल' नायिका-प्रधान कृति है। समूचे उपन्यास में सबसे अधिक संगत, सक्रिय, प्रभावशाली, वजनदार, मानवीय, आकर्षक और सर्वाधिक प्रमुख चरित्र श्यामा का ही है, जो रचना के केन्द्र में स्थिर रहकर कथा के संपूर्ण सूत्र-क्रम को धारण किये रहता है। श्यामा एक विभाजित चरित्र की नारी है। जो बाह्य स्तर पर पूर्णतः सामाजिक और आंतरिक स्तर पर पूर्णतः व्यक्तिवादी चरित्र है और इस प्रकार वह सहज और असहज दोनों ही रूपों में अपना जीवन व्यतीत करती है।

'अंतराल' की कथा के सारे सूत्रों को धारण करनेवाले चरित्र कुमार और श्यामा ही हैं। शेष चरित्रों में से कुछ, जैसे देव, बीजी, सीमा, प्रो.मल्होत्रा आदि हैं जो कथा-क्रम में आकर अपनी भूमिका निबाहते हुए समयानुसार नेपथ्य में चले जाते हैं और शेष अन्य चरित्र भी हैं जिनके होने-न-होने से कोई विशेष अंतर नहीं पडता। 'अंतराल' में नायक कुमार और नायिका श्यामा के बाद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चरित्र किसी का है तो वह देव का ही है; और उसका यह महत्त्व इसलिए है कि उपन्यास के सर्वाधिक क्रियाशील, प्रभावशाली और केन्द्रीय पात्र श्यामा के चरित्र की रचना का मूलाधार वही है। स्वयं में एक अत्यंत अहंवादी, आत्मलीन, कुंठित और पूर्णतः असहज होते हुए भी देव का चरित्र इतना जबरदस्त है कि अपनी समाप्ति के बाद भी वह श्यामा को जीवनभर बूरी तरह आक्रान्त किये रहता है। प्रो. मल्होत्रा श्यामा के जीजा है। वे एक निहायत दुनियादारी किस्म के व्यक्ति है। लता, श्यामा से पूर्व की कुमार की प्रेमिका है। बीजी देव की माँ है। सीमा देव की बहन है और श्यामा की ननद है।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त 'अंतराल' उपन्यास में और भी अनेक पात्र हैं जिनके चरित्र स्वयं में स्वतंत्र और सहज हैं। कथा में प्रसंगवश आते-जाते ये चरित्र स्थिति के अनुकूल कथा को गति प्रदान करते हैं, उसे आकर्षक बनाते हैं तथा अन्य कतिपय चरित्रों को भी महत्त्व प्रदान करते हैं। लेकिन कथा के मूलतंत्र और प्रमुख चरित्रों पर कोई निर्णयात्मक प्रभाव नहीं छोड़ते। जो अपना सीमित लेकिन सहज और स्वाभाविक चरित्र जीते हैं।

'अंतराल' के चरित्र सहज हैं अथवा आरोपित – इस प्रश्न का विवेचन पूर्ण करते ही यह सवाल पैदा होता है कि ये चरित्र स्वतंत्र व्यक्तिशाली हैं या लेखक के भावों-विचारों के संवाहक ? श्यामा, कुमार और देव के चारित्रिक विश्लेषण में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि उनके अनेक व्यवहार यर्थाथ और सहजता के किसी भी स्तर से परे उनकी निजी जैविक, मानसिक स्थितियों से सर्वथा प्रतिकूल मात्र लेखक की निजी धारणाओं के कारण ही हैं। इन चरित्रों की अनेक मान्यताएँ इनके परिप्रेक्ष्य से संगत नहीं बैठती, लेकिन फिर भी जब वे उन्हें ओढ़े रहते हैं तो स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि उनका व्यक्तित्व पूर्णतः स्वतंत्र नहीं है – कम से कम आंतरिक व्यक्तित्व। वे अपने नहीं, अपितु लेखक की मानसिकता को बहुत कुछ धारणा किये हुए हैं। लेकिन जो चरित्र कथा में जितना ही गौण है वह उतने ही खुले व्यक्तित्व का स्वामी है। इस अर्थ में कि जो कहता है, सोचता है वैसा ही करता है। अपने परिवेश के अनुकूल, अपनी आंतरिक उच्चता वह एक स्वतंत्र व्यक्तित्व संपन्न व्यक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

चरित्रों की अपने परिवेश से अनुकूलता या प्रतिकूलता का प्रश्न, कथा से संबद्धता या विलगता के प्रश्न से ही जुड़ा है। फिर भी 'अंतराल' उपन्यास में कहीं-कहीं ऐसी स्थितियाँ हैं जो इस निष्कर्ष के विरुद्ध पड़ती है कि प्रधान पात्र कृत्रिम हैं गौण पात्र सहज और यथार्थ हैं। उदाहरण के लिए श्यामा। श्यामा 'अंतराल' की कथा का आधिकारिक पात्र है। उपन्यास की संपूर्ण कथा उसी से जन्म लेकर उसी में लय होती है; लेकिन हम देखते हैं कि एकाधिक स्थानों पर श्यामा का आचरण, उसका चरित्र परिवेश के प्रतिकूल खड़ा हो जाता है, उस परिवेश निर्माण के लिए वही पूरी तरह जिम्मेदार है। यथा-कस्बे में श्यामा जब कुमार के साथ खेतों की तरफ घूमने जाती है तो आपसी बातों से बनी हुई अंतर्बाह्य रोमांटिक परिस्थितियों में उसकी भी पूरी भागीदारी होती है, लेकिन कुमार के आगे बढ़ने पर वह हठात् ही वातावरण के प्रतिकूल आचरण करती है। यों श्यामा उपन्यास की मूल कथा से पूरी तरह जुड़ी है, कुछ जगह अकारण ही परिवेश के विरुद्ध

या बाहर स्वयं को कर लेती है । जैसे, कथा के अंत में वह स्वयं ही तो आग्रह करके कुमार के घर जाती है, वहाँ ठहरती है और पुरुष-सुलभ स्वभाव के वशीभूत कुमार जब उससे यौन-व्यवहार का प्रयत्न करता है तो विद्रोह करने लगती है । आशय यह कि 'अंतराल' में श्यामा का चरित्र एक ऐसा विचित्र और उलझा हुआ चरित्र है कि जो कथा से पूरी तरह संलग्न होते हुए भी कहीं कहीं परिवेश के प्रतिकूल खड़ा दिखाई देता है । इसके अतिरिक्त राकेशजी के औपन्यासिक चरित्रों में, परिवेश की द्रष्टि से, एक और विशेषता है कि उनके लगभग सभी प्रमुख पात्र जिस परिवेश में अपना जीवन व्यतीत करते हैं उससे ऊबे और असंतुष्ट रहते हैं । अर्थात् उसके प्रतिकूल रहते हैं । लेकिन यह प्रतिकूलता केवल आंतरिक स्तर पर ही होती है और वह उनके बुद्धिजीवी होने के कारण ।

राकेशजी के चरित्रों के समक्ष सबसे पहले अपना व्यक्ति और उसका जीवन और समाज है, इतर समाज उनके लिए या तो है ही नहीं, और यदि है भी तो उसी अपने व्यक्ति के ही संदर्भ में । लेकिन इस व्यक्तिपरकता के चलते ऐसा भी नहीं है कि वे चरित्र किन्हीं समाज-विरोधी गतिविधियों में संलग्न हों । हाँ, ऐसा हो सकता है कि अपनी व्यक्तिवादी जीवन-द्रष्टि के कारण वे समष्टिपरक जीवन-दर्शन को परोक्षतः असहयोग और व्यक्तिवादिता को समर्थन देते हैं । लेकिन ये बातें राकेशजी के केवल प्रमुख चरित्रों पर ही लागू होती हैं । उनके उपन्यासों में जितने छोटे-छोटे प्रासंगिक या गौण चरित्र हैं वे स्वयं में तो सहज और यथार्थ हैं ही पूरी तरह सहज और यथार्थ जीवन जीते हुए विशाल वास्तविक मानव-समाज का अंग भी प्रतीत होते हैं । ऐसे गौण चरित्र यथार्थ जगत के तमाम छोटे-बड़े, दुःख-सुखों को पूरी तरह झेलते-भोगते हुए अपनी यथार्थ सत्ता स्थापित करते हैं; जबकि प्रमुख और केन्द्रिय स्थिति वाले चरित्र जीवन-जगत के वास्तविक दुःख-सुखों से बहुत ऊपर व्यक्ति के मानसिक, वैचारिक, द्वन्द्व, आंतरिक तनाव, ऊब, अकेलेपन, योनेच्छाओं और निजी भावनाओं की तृप्ति के प्रयत्नों में ही लीन बने रहते हैं ।

यह सही है कि राकेशजी के अधिकांश चरित्र व्यक्तिवादी और मनोग्रंथियों से पूर्ण है; लेकिन इसका यह आशय कदापि नहीं है कि वे चरित्र स्वयं में सहज या प्रभावशाली नहीं है । लेकिन इन तमाम बातों के बावजूद इसमें दो मत नहीं कि राकेशजी ने अपने उपन्यासों में जैसे भी चरित्रों का अंकन किया है, पूरी निष्ठा और लगन के साथ किया है । उनके चरित्र चाहे स्वतंत्र व्यक्तित्व वाले सहज यथार्थ चरित्र हों या लेखक की

मानस–संतानों के रूप में, उसके विचारों और भावों को प्रस्तुत करने वाले, स्वयं में पूर्ण और प्रभावशाली है ।

❖ 'अंतराल' के प्रमुख चरित्र :

'अंतराल' एक चरित्र–प्रधान उपन्यास है । इसके सभी पात्र आज के जीते–जागते व्यक्ति हैं । समकालीन जीवन की पीड़ा एवम् विसंगतियाँ उनमें साकार हो उठी हैं । वे अपने आपसे लड़ते रहे हैं । वे पुरातन मान्यताओं से चिपके रहना भी नहीं चाहते और अपने से मुक्ति भी नहीं पा सकते हैं । ये अपने अकेलेपन से ऊबे हुए लोग हैं । उनका अकेलापन समाज से कटकर रहने का अकेलापन नहीं बल्कि सबके बीच बहने का अकेलापन है । यहाँ अकेलेपन को दुर करने की हर कोशिश नाकाम हो जाती है । चरित्रों की द्रष्टि से निश्चित ही 'अंतराल' एक अनूठा उपन्यास है । राकेशजी ने पात्रों के निजी जीवन की जिन सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को गहराई से अभिव्यक्त किया है, उसीसे उसकी समर्थता का बोध होता है । आधुनिक युग की नैतिकता और पूराने नैतिक मापदण्डों के बिखराव और टूटन का, अपने पात्रों के माध्यम से राकेशजी ने जो चित्रण किया है, वह बेजोड़ है । यह उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति को प्रकट करता है । 'अंतराल' उपन्यास के प्रमुख चरित्र निम्नलिखित है ।

श्यामा :

श्यामा एक ऐसी नारी है जो संस्कारों से इतनी जकड़ी हुई है कि परंपराओं को तोड़ने की भरसक कोशिश करके भी सफल नहीं हो पाती है । विवाह से पूर्व उसका किसी भी पुरुष के साथ स्वाभाविक संबंध नहीं हो पाया । आर्ट्स कॉलेज के प्रिन्सिपल गोपालजी के शब्दों को सुनते हुए उसके मन में स्फूर्ति का अनुभव होता था । उनके स्वर ने ही उसे सोलह साल की बच्ची से सोलह साल की नवयुवती में बदल दिया था । एक दिन एकांत में गोपालजी ने उसे बाहों में लेकर अपने होंठ उसके होठों पर रख दिये, तब वह किसी तरह वहाँ से भाग आयी और स्त्री–पुरुष का संबंध स्थापित नहीं हो सका ।

जब राजीव से उसके विवाह की चर्चा चली तो राजीव उसे बहुत अच्छा लगने लगा । उसे लगता राजीव बहुत ऊँचाई पर है तथा राजनीति के विषय में बहुत जानता है । राजीव के विवाह के लिए अस्वीकार करने पर उसके मन में उसके प्रति आदर बढ़

जाता है। वह राजीव के लिए कुछ भी करने को स्वयं तैयार पाती है, लेकिन राजीव का मंत्री की बेटी से विवाह उसे काठ बना देता है।

देव से उसका विवाह एक संयोग मात्र था। यह एक ऐसी दुर्घटना थी जिसके लिए किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। देव के साथ उसका प्रथम संपर्क बहुत कष्टदायक था। वह कभी भी उससे निकटता का अनुभव नहीं कर सकी। उसे कभी अपने इतना पास नहीं लगा कि वह स्वयं को उसमें खो सकती। श्यामा में देव को अपने पास ला सकने की बहुत लालसा थी। देव की मृत्यु के बाद भी वह सदैव उसका अनुभव करती रही। देव ने यद्यपि उससे कभी कड़वी बात नहीं कहीं तथापि उसके मन में श्यामा के लिए गहरी वितृष्णा थी। श्यामा को सदैव देव से यह शिकायत रही कि देव ने कभी उसके साथ अपने संबंध को नहीं समझा और कुछ वर्ष उसे सहते हुए काट दिये। लेकिन श्यामा का यह द्रष्टिकोण कुमार के साथ शारीरिक संबंध की संभावना को लेकर बदल जाता है। वह कुमार से कहती है : "यह वह नहीं था जिसने अपना सब कुछ मुझे नहीं दिया ... जिसने अपना बहुत कुछ अपने तक समेटकर रखे रखा, वह मैं थी। मैंने ही पहले दिन में खुलकर अपने आपको उसे नहीं दिया ... उसके साथ संबंध को सहने जैसा मानने की शुरुआत मेरी ओर से हुई थी। उसने एक खुला पन्ना मेरे सामने रखा था जिस पर मैं कभी ठीक से हस्ताक्षर नहीं कर पायी।"[१०७] इस स्वीकारोक्ति से स्पष्ट है कि श्यामा के नीरस वैवाहिक जीवन एवम् देव की उदासीनता के लिए वह स्वयं ही जिम्मेदार थी।

श्यामा सदैव दोहरी मनःस्थितियों में जीती रही। एक ओर तो वह देव के परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने की अपनी कोई नैतिक मजबूरी नहीं समझती। देव का लम्बी खामोशी में उसके साथ डेढ़ साल काट जाना उसे अपने आप में इतना अनैतिक लगता है कि उसके बदले में अपनी किसी भी स्वच्छंदता के लिए वह स्वयं को क्षमा कर सकती है। कुमार से वह कहती है – "भावना साथ दे तो मैं किसी भी तरह के आचरण को हीन नहीं समझती – उतने कट्टरपंथी संस्कार मेरे शुरु से नहीं रहे।"[१०८] लेकिन परिस्थितियाँ गवाह है कि उसके संस्कार कट्टरपंथी ही थे अन्यथा कुमार के द्वारा उसे आगोश में ले लेने अथवा बंबई में शारीरिक संबंध स्थापित करने पर उस पर इतनी तीव्र प्रतिक्रिया न होती क्योंकि कुमार के साथ उसका भावात्मक संबंध भी था। उसके बंबई आकर रहने के मूल में भी कुमार के वहाँ रहने का प्रलोभन ही था। वह अपने और कुमार के संबंधों को बिना कोई नाम दिये उसमें से सब कुछ पा लेना चाहती थी।

यह पा लेना क्या है – वह कहीं स्पष्ट नहीं हो पाता। श्यामा सदैव संबंधों का विश्लेषण करती दिखाई देती है। लगता है वह किसी भी चौखटे का निर्माण करने का प्रयास करती है, किन्तु जैसे ही वह तैयार होता है श्यामा का मानदंड बदल जाता है।

वस्तुतः श्यामा एक टूटी हुई, बिखरी हुई नारी है जो अनुकूलता की तलाश में और टूटती जाती है। स्वाभाविक संबंध के लिए उसके मन में छटपटाहट है किन्तु अवसर आने पर वह उन स्थितियों को जी नहीं पाती। वह स्वयं को तथा अपने मानदंडों को दूसरों की इच्छा के अनुकूल नहीं ढाल पाती, बल्कि आशा करती है कि वही उसके अनुसार चले।

श्यामा 'अंतराल' उपन्यास की एक व्यक्तित्व संपन्न नारी पात्र है। मंडी के अकेलेपन तथा सूनेपन से भरे जीवन को विवश होकर वहन करती है। विवाह से पूर्व मात्र बी.ए. थी। गहने बेचकर बी.टी. परीक्षा पास करती है और एम.ए. पास करने के बाद प्रोफेसर बनने की महत्त्वाकांक्षा रखती है। भरपूर यौवन को झेल रही है। एक पुत्री, सास और ननद के उत्तरदायित्व का निर्वाह कर रही है। पति के साथ केवल डेढ वर्ष के दाम्पत्य जीवन में उसके पास अधूरेपन की अनुभूतियाँ है। जो रिक्त कोष्ठ बनकर, एक अंतराल का रूप ले लेता है। देव के साथ उसका विवाह देव की माँ के इच्छानुसार हुआ था। वह पति से उदारता और कोमलता की अपेक्षा रखती है।

विवाह पूर्व उसे यौन–संबंधों का व्याघात किशोरावस्था में कॉलेज के प्रिन्सिपल गोपालजी की ओर उसका आकर्षण मुग्धा नायिका जैसा था। किशोरी श्यामा पर गोपालजी का टूट पडना और उसका पानी पीने के बहाने बच जाना – सुकोमल मन पर ऐसा आघात लगा, जिससे उसके मन में पुरुष के प्रति ग्रंथि बन गई। दूसरा आघात उसे तब लगा जब वह राजीव को पति के रूप में स्वीकार कर चुकी थी। लेकिन वहाँ भी झूठे आदर्शों की आड़ में स्वार्थ–भावना का शिकार बनी। देव के साथ वैवाहिक जीवन में मात्र शारीरिक संबंध था। आत्मीयता की ऊष्मा उसमें न थी। "यौन–कुंठा तथा मानसिक रुग्णता की श्यामा किसी भी नारी–पुरुष के सहज संबंध की आपूर्ति नहीं होने देती। उसमें उसका अहम् बाह्य रूप से कारण कहा जा सकता है, किन्तु आभ्यन्तर ग्रंथियाँ ही संभवतः इसका मूल कारण थीं।"[१०९]

श्यामा जब कुमार से मिलती है, पर देव उसकी जिन्दगी पर छाया हुआ रहता है। कुमार के साथ संबंध और संपर्क चाहती है, परंतु घर बसाने के लिए नहीं। वह

स्त्रीत्व के बजाय अपने व्यक्तित्व की स्वीकृति चाहती है । शरीर को साधन बनाकर संबंध उसे स्वीकार्य नहीं हैं । प्रोफेसर कुमार के पास पढ़ते समय श्यामा धीरे-धीरे आत्मीयता और निकटता का अनुभव करने लगती है । कुमार के साथ घूमने का प्रस्ताव रखना और वर्षा में भीगते हुए खेत से गुजरते हुए आवेग और ऊष्मा के क्षणों का अनुभव करती है । दोनों आंतरिक बातें करते हैं । लेकिन आवेग के क्षणों में श्यामा को कुमार बाहुपाश में ले लेता है, श्यामा उसके शरीर को पूरी शक्ति से धकेल देती है । तब वह कहती है, आत्मसमर्पण वह देव को भी नहीं कर पायी थी जबकि उसने एक खुला पन्ना मेरे सामने रखा था जिस पर मैं कभी ठीक से हस्ताक्षर नहीं कर पाई । उसे अपनी मानसिक ग्रंथियों का कारण भी मिल जाता है – "मैंने ही पहले दिन से खुलकर अपने आपको उसे नहीं दिया – उसके साथ संबंध को 'सहने' का संबंध मानने की शुरुआत मेरी ओर से ही हुई थी ।"[११०] श्यामा कुमार के पास से जाती है पर संबंध तोड़कर नहीं जाती । स्पष्ट भी करती है, आने के लिए पत्र लिखूँ तो ऐसी-वैसी बात सोचकर मत आना ।

श्यामा संवेदनशील नारी है । वह एक दीपशिखा की तरह प्रज्जवलित होकर भी स्नेह रिक्त बत्ती-सी सुलगने को विवश है । श्यामा यौवन से भरपुर आवेगों और संवेगों को झेलते हुए भी शारीरिक संबंधों के सामने शरणागति स्वीकार न कर आत्मीयता पूर्ण मानसिक संबंधों की वेदी पर जीवन को स्थिर करना चाहती है । जहाँ स्त्री-पुरुष का संबंध नामहीन संबंध रहेगा । "शारीरिक रूप से उसके प्रति समर्पित होकर भी वह उसकी नहीं हो पाती, दोनों के बीच एक गहरा अंतराल दोनों को दूर रहने को बाध्य करता है ।"[१११] दरअसल श्यामा एक ऐसी नारी है जिसके मन को अकेलेपन और अहम् के अन्तर्द्वन्द्व ने इस कदर खोखला कर दिया है, कि वह किसी भी वस्तु-स्थिति को उसके यथार्थ रूप में अस्वीकार करने में असमर्थ है । उसका जीवन बिखराव और टूटन का जीवन है – जो भीतर से बाहर की ओर प्रतिफलित होता द्रष्टिगत होता है ।

प्रोफेसर कुमार :

राकेशजी ने कुमार के रूप में समकालीन मानव और उसकी त्रासदी का चित्रण किया है । कुमार नित्यानंद कॉलेज में दर्शन विभाग का अध्यक्ष था । उसे अपने कस्बाती शहर की जिन्दगी इतनी एकतार लगती थी कि किसी नये व्यक्ति से परिचय भी एक घटना की तरह लगता था । कुमार का व्यक्तित्व साधारण न होते हुए भी

संतुलित है । वह किसी के जीवन में कभी अनाधिकार प्रवेश नहीं करता । प्रोफेसर मल्होत्रा ने उससे श्यामा को पढ़ाने के लिए कहा, उसने स्वीकार कर लिया । श्यामा के साथ उसकी घनिष्ठता में भी श्यामा का हाथ ही अधिक था । उसे लगता कि पढ़ना श्यामा के लिए एक बहाना है । जब श्यामा स्वयं को पूरी तरह खोलकर अपने आपको उसके सामने रख देती है तो वह पूरी सहानुभूति और सह्रदयता से उसे स्वीकार करता है । वह दो बार श्यामा को बाहों में भरता है । दोनों बार का कारण परिस्थिति ही थी कुमार की वासना नहीं । कुमार में स्त्री शरीर की भूख नहीं थी, यह प्रामाणिक तथ्य है । जब उसकी प्रेमिका लता का विवाह कहीं और निश्चित हो जाता है तथा वह बिना ब्याह के ही उससे शारीरिक संबंध की बात कहती है तो कुमार पर उसकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है और वह इतना ही कह पाता है, "देखो, मैंने तुमसे सिर्फ इतना नहीं चाहा था ।"[११२] या जब श्यामा उससे पूछती है कि बंबई में उसकी किसी से दोस्ती नहीं हुई तो वह कहता है, "वह दोस्ती यहाँ इतनी आसानी से हो जाती है और इतनी मामूली शर्तों पर कि मन उससे ऊब गया है ।"[११३] कुमार का वैवाहिक जीवन भी इसलिए चिरंजीवी नहीं हो सका कि उसके और उसकी पत्नी के बीच केवल शारीरिक संबंध थे । कुमार का कथन है, "मुझे उससे सिवाय शरीर के कुछ नहीं मिला । उसे भी मुझसे इतना ही मिला होगा । केवल इतने के भरोसे साथ-साथ जीवन वह शायद ढो सकती थी । मुझसे नहीं ढोया गया ।"[११४] इससे स्पष्ट है कि कुमार संबंधों को झेलने और सहते जाने में ही विश्वास नहीं रखता । उसकी जिन्दगी का जो हिस्सा गलने लगता, उसे वह तुरंत काटकर अलग कर देता । उसे स्वाभाविकता के साथ विश्वासघात करने की अपेक्षा आठ घंटे मशीन की तरह दफ्तर में काम करना और नींद आने तक किसी-न-किसी शोर में स्वयं को डुबा रखना अधिक अच्छा लगता था । इसलिए उसकी दोस्ती आस-पास की आवाजों के साथ ही होती है । समुद्र की आवाज, ट्रेफिक की आवाज, बच्चों के खेलने की आवाज और तरह-तरह की आवाजों से उसे लगता है कि जिन्दगी चल रही है ।

महानगर की यांत्रिकता और भायावहता का पूरा प्रभाव उस पर पड़ा है । वह जब ओफिस से उठता तो उसकी रीढ़ की हड्डी अकड़ जाती । ऐसा लगता जैसे सिर पर मोटे कागज का खोल चढ़ा हो । उसका शरीर एक जंग खायी मशीन की तरह हो गया था । वह इतना अस्थिर चित्त रहता था कि सड़क पार करते समय कई बार दुर्घटना से बाल-बाल बचता । सड़क की एक तिहाई और दो तिहाई के बीच तेज ट्रैफिक में अपने को घिरे पाकर इस तरह दौड़ना, ऐसा कई बार उसके साथ हो जाता था । जैसे कि दुर्घटना की तरफ बढ़ना और उससे भागना, ये दोनों चीजें एक साथ उसके व्यक्तित्व में

शामिल थी। "कुमार एक रिजर्व एवम् खोया-खोया व्यक्ति है जो कभी समझौता नहीं करता। समकालीन मानव की त्रासदी उसके व्यक्तित्व में साकार हो गयी है।"[११४]

कुमार की जिन्दगी अकेलेपन, अतृप्ति और असफलताओं से भरी है। कुमार न तो नियति से लडता है, न लडना चाहता है – वह स्वयं को इस गहरे प्रवाह में बहा देना चाहता है जिससे कि उसकी व्यक्तिगत सत्ता का कोई अस्तित्व न रह जाये। शायद इसी कारण वह छोटे से कस्बे की सुविधाजनक कॉलेज की नौकरी छोड़कर बंबई के जन समुद्र में आ मिलता है। वह यहाँ के कृत्रिम रिश्तों से भी ऊबा हुआ है। बंबई आकर कुमार ने अपने आपको दफ्तर की फाइलों में खो दिया, वह जान-बूझकर स्वयं को व्यस्त रखता कि अकेलापन कहीं उभरने न पाये। उसने विवाह भी किया पर उसे मनचाहा कुछ न मिला। कुमार ऐसे वैवाहिक संबंधों में विश्वास नहीं रखता जिसमें पति-पत्नी एक-दूसरे को मात्र ढोये जाने को बाध्य हो। कुमार अपने स्वभावानुकूल यह सब सहने का आदी नहीं कि आदमी बाहर से एक दिखावे की, एक आडंबर की जिन्दगी जीये, जबकि वास्तविकता कुछ और हो। कुमार एक ऐसा आधुनिक व्यक्ति है जो अपनी ही तृप्ति की खोज में मृगमरीचिका को ढूँढ़ता, अकेलेपन से ग्रस्त आगे बढ़ता जा रहा है। उसके लिए जिन्दगी के महान आदर्शों का कोई मूल्य नहीं, सिवा इसके कि ये आदमी के बाहरी खोल हैं, जिनके द्वारा वह अपना वास्तविक रूप छिपाये रहता है।

कुमार वैयक्तिक धरातल पर अपने आपको निस्संग पाता है। सहानुभूति, संवेदना और मानवीय संस्पर्श के अभाव में अकेलापन और सूनापन उसे अधिक अखरता है। श्यामा का संपर्क आत्मीयता जगाता है। दोनों के व्यक्तित्व परस्पर प्रभावित और रोमांचित होते जाते हैं। कुमार और श्यामा एक दिन पढ़ाई स्थगित रख, बरसाती खुशनुमा संध्या में घूमने निकलते हैं। श्यामा का सहज स्पर्श पाते ही कुमार ऊष्मा का अनुभव करता है। तार की बाड़ को पार कर वर्षा की फुहार में खेतों से गुजरते हुए और बीजली कौंधने पर श्यामा का सहकार एवम् निकटता पा, उसे बाहों में समेट लेता है। लेकिन दोहरी मानसिकता से वह मुक्त नहीं हो पाता। 'अंतराल' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र कुमार लता के व्यक्तित्व के चुम्बकीय आकर्षण से घिरे हुए मन के साथ श्यामा की आत्मीयता को ऊष्मा का स्पर्श पाकर रोमांचित होता है, परंतु अपने अंतराल की परिधि को स्वीकार कर मात्र आत्मीयता की तड़पन को लिए जीवन जीने को विवश है।

कुमार का चरित्र दरअसल एक सामान्य व्यक्ति का चरित्र है। उपन्यास के अन्य चरित्रों और विशेष तौर पर श्यामा की तुलना में तो वह हल्का और अप्रभावशाली लगता है। 'अंतराल' में कुमार का चरित्र सामान्य दुनियादार व्यक्ति का चरित्र है। जो जीवन में आती हुई परिस्थितियों के साथ थोड़े-बहुत मानसिक द्वन्द्व के बाद सामंजस्य बिठाता चलता है। वह अपनी क्षमता के मुताबिक हर स्थिति को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करता है, और यदि कभी असफल भी रहता है तो उसी का दुःख लेकर बैठे रहने की अपेक्षा आगे देखना शुरु कर देता है। यदि सामाजिक द्रष्टि से देखें तो कुमार का चरित्र सहज, सामान्य, सांसारिक पुरुष के चरित्र से जुड़ी ऐसी कोई घटना नहीं है जो उसकी 'दुर्घटना की ओर बढ़ना' प्रमाणित करती हो या उसे किसी भी स्तर पर असाधारण सिद्ध करती हो। दाम्पत्य जीवन के बारे में व्यक्त कुमार के विचार विवाह नाम की संस्था के प्रति उसके हृदय की अरुचि, वितृष्णा और क्षोभ को ही प्रकट करते हैं। कुमार के विचारों को देखते हुए यह लगता है कि वह विवाह किसी से करना ही नहीं चाहता।

कुमार एक अनिश्चयपूर्ण मन का व्यक्ति है। वह जहाँ भी रहता है, जो भी करता है उससे पूरी तरह अपने को जोड़ नहीं पाता। कस्बे से बंबई चले जाने पर वहाँ भी वह स्वयं को उखड़ा-उखड़ा महसूस करता है। इसी प्रकार वह किसी व्यक्ति से भी आंतरिक स्तर पर पूरी तरह जुड़ नहीं पाता। यद्यपि शुरु से अंत तक अनेक स्थितियाँ, अनेक स्त्री-पुरुष आते हैं, जिनसे कुमार का संबंध रहता है लेकिन हृदय से वह किसी का, कहीं भी नहीं हो पाता। वास्तविकता यह है कि कुमार भौतिक तथा वैचारिक स्तर पर पृथक-पृथक जीवन जीता है। वह सदैव ही आंतरिक और बाह्य के द्वन्द्व में पड़ा रहता है। वस्तुतः कुमार का चरित्र दोहरा चरित्र है। बाह्य स्तर पर वह एक साधारण भौतिक जरुरतों के लिए जीनेवाले आदमी का चरित्र व्यतीत करता है तो आंतरिक स्तर पर सदेव ही बाह्यांतर के वैचारिक और भावनात्मक द्वन्द्व में फँसा रहकर विचित्र और असामान्य धारणाएँ किया करता है। वैसे कुमार एक साथ ही सहज और असहज दोनों ही प्रकार के चरित्रों को धारण करता हैं।

अंततः कुमार एक ऐसा आधुनिक व्यक्ति है जो अपनी ही तृप्ति की खोज में मृगमरीचिका को ढूँढ़ना, अकेलेपन से ग्रस्त आगे बढ़ता जा रहा है। उसके लिए जिन्दगी के महत् आदर्शों का कोई मूल्य नहीं सिवा इसके कि ये आदमी के बाहरी खोल हैं, जिनके द्वारा वह अपना वास्तविक रूप छिपाये रहता है।

सीमा :

सीमा इस उपन्यास की महत्त्वपूर्ण पात्र न होते हुए भी प्रभावशाली एवम् आकर्षक व्यक्तित्व संपन्न लड़की है। सीमा श्यामा की ननद और देव की बहन है। वह बंबई में टेलिफोन ओपरेटर है तथा श्यामा की साझीदारी में लिए गये फ्लेट में रहती है। सीमा और बीजी के साथ ही श्यामा की पुत्री बेबी भी रहती है, जिसे इन दोनों ने अपने ही रंग में ढाल दिया है। यथार्थतः सीमा एक ऐसी लड़की है जो अपनी स्वच्छंदता को, अपने संबंधों एवम् अपनी निजी आवश्यकताओं को खुले रूप से नहीं जान पाती है, जब तक कि वह बंबई में उसके साथ नहीं रहने लगती है। दो ही कमरे होने के कारण वह श्यामा के साथ सोने को बाध्य है। सीमा का खुलापन इस हद तक बढ़ा है कि वह अपने अभिभावकों को कुछ नहीं समझती, माँ उस पर आश्रित है, अतः माँ कुछ भी नहीं कह पाती, भाभी श्यामा को वह केवल अजनबी ही मानती है। वह हर रात शराब पीकर, अपनी मर्जी से लौटती है – समय की पाबंदी या लौटने का कोई बंधन उसे स्वीकार नहीं।

सीमा को अपने शरीर सौष्ठव का गर्व था और वह इस शरीर को पूरी तरह से भोग लेना चाहती थी। खुलकर, निर्भीकता से उसे कल की या दूसरों की कोई चिंता नहीं थी। सीमा अपनी जिन्दगी अपने ढंग से जीने में विश्वास करती है – इसमें वह किसी दूसरे का दखल नहीं चाहती। जब देव जीवित था, तब भी वह अपनी इस इकलौती बहन को बहुत चाहता था। संभव है इस लाड़-प्यार ने उसे अधिक स्वच्छंद बना दिया हो। देव सोचता होगा कि पिता नहीं है तो वही अपनी बहन सीमा का अभिभावक है। एक बार देव ने कहा भी था कि लड़कियों को सीमा की तरह जीती-जागती होना चाहिए। देव के जीवनकाल में जो जीती-जागती सीमा थी, वह अपने भाई की मृत्यु के बाद अनंतर पूरी तरह खुल जाती है – स्वच्छंद, हर तरह से आजाद। राकेशजी ने सीमा का चित्रण एक बहिर्मुखी नारी के रूप में किया है और इस द्रष्टि से उसे श्यामा का विरोधी पात्र भी कहा जा सकता है। दोनों में जैसे कोई संगति नहीं है – एक बहिर्मृखी, दूसरी अन्तर्मुखी।

सीमा की जिन्दगी बंबई के फ्लेट में आकर-खुलती है और राकेशजी ने उसे कुण्ठारहित आधुनिका के रूप में चित्रित किया है। सीमा की अपनी जिन्दगी है जिसमें वह किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहती। वह देर रात घर लौटती है, वह भी पीकर। श्यामा

को सीमा के भरे हुए शरीर से ईर्ष्या तक होती है। "सीमा अपने आपको, अपने किसी भी रूप को छिपाकर रखने में विश्वास नहीं रखती थी। क्या उसकी वह धृष्टता ही जीने की सही द्रष्टि नहीं थी ? अपने आपको विश्वास के साथ झेल लेना, क्या इसी में जीने की सार्थकता नहीं थी ?"[९६] इस प्रकार श्यामा मन-ही-मन सीमा से अपनी तुलना भी करती है। पर वास्तव में यह तुलनात्मक द्रष्टि स्वयं राकेशजी की भी है जो श्यामा, सीमा को आमने-सामने रखकर प्रस्तुत करते हैं। राकेशजी सीमा के माध्यम से खुली, उन्मुक्त, आज की स्वच्छंद आधुनिका को चित्रित करना चाहते हैं।

सीमा की भूमिका 'अंतराल' उपन्यास में संक्षिप्त है, पर उसे गढ़ने के मूल में राकेशजी का निश्चित आशय प्रतीत होता है कि श्यामा जैसी अन्तर्मुखी नारी का विलोम प्रस्तुत किया जाय। इस भूमिका के लिए वे आजाद प्रकृति की सीमा को चुनते हैं और उसके कुछ खुले द्रश्य भी रखते हैं, जैसे उसका कपड़े बदलना। बंबई जैसे महानगर में सीमा को दिखाकर राकेशजी आधुनिक खुली जिन्दगी का संकेत करते हैं। सीमा दो एक 'बोय-फ्रेन्ड' की बात स्वीकार करती है, अर्थात् एक से अधिक। पर अख्तर को बीच में लाकर राकेशजी एक समाजशास्त्रीय प्रश्न भी खड़ा करते हैं। एक प्रकार से यह भारतीय संप्रदायवाद, जातिवाद, संकीर्णतावाद पर आक्रमण है। सीमा 'अंतराल' में कोई बड़ी भूमिका नहीं निभाती, जबकि श्यामा आदि से अंत तक उपन्यास में उपस्थित है। पर राकेशजी का कौशल यह कि सीमा अपनी स्वच्छंदता, बेबाकपन और खुली जिन्दगी में निडर होकर जीती है। और कथानायिका श्यामा को झकझोर कर रख देती है। सीमा का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। वह जीवन को पूर्णतः सकारात्मक रूप में जीने की आदि है – उसके लिए जीवन का अर्थ है भरपूर जीना। वस्तुतः राकेशजी ने एक ही उपन्यास में श्यामा और सीमा के रूप में दो विरोधी स्वभाव एवम् मनःस्थितियों की नारियों का चित्रण किया है। वह इस उपन्यास का एक ऐसा जीवंत पात्र है जो अपनी जिंदादिली से पाठक पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। उसके संपर्क में आनेवाली हर नारी का उसससे ईर्ष्या की भावना रखना अत्यंत स्वाभाविक है।

देव :

श्यामा का मृत पति है जो मर जाने के बावजूद श्यामा की कल्पना में जीता-जागता है। देव के साथ बीते डेढ़ वर्ष तथा उसकी मृत्यु के बाद अकेलेपन में बीते साढ़े तीन वर्ष में भी वह देव को समझ नहीं पाती और न देव को भुला पाती है। देव

श्यामा को एक संबंध के रूप में मात्र झेलता रहा वह उसके साथ जिया भी नहीं। श्यामा को लगता था कि देव एक ऐसा तटस्थ, उदासीन, निर्लिप्त व्यक्ति था, जिसके साथ जीवन व्यतीत करना श्यामा के बस की बात न थी। देव को बिखराव से चिढ़ थी। छोटी-सी चीजें भी यहाँ-वहाँ बिखरी देखकर उसकी भौहें तन जाती पर एक संस्कारवश वह कभी बेकाबू नहीं होता। वह स्वयं वस्तुएँ चुपचाप समेटने लगता, कभी-कभी तो श्यामा की बिखरी साड़ियों को भी खुद तहाने लगता। वह उस पर अधिकारजन्य क्रोध कभी प्रकट नहीं करता – क्रोध आता तो भी पी जाता। तब श्यामा को लगता – देव उसे अपना नहीं समझता। वरना वह जिस ढंग से बीजी और सीमा को डाँटता, फटकारता उस तरह से उसे कुछ भी नहीं कहता। इन सबसे श्यामा को ईर्ष्या होने लगती। देव का यह संबंध कैसा संबंध था, वह कभी जान नहीं पाती। संबंधों का ऐसा ठंडापन काफी अकुलानेवाला होता है। इसी तटस्थता के कारण देव का शारीरिक आवेग भी धीरे-धीरे ठंडा पड़ने लगा था।

देव पहले ही दिन से श्यामा से खिंचा-खिंचा रहता था। देव वास्तव में शादी करना ही नहीं चाहता था पर किसी तरह जोर डालकर उसकी माँ ने उसे राजी कर लिया था। देव कई विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय था। देव और श्यामा का परिचय हर रोज नई पहचान से शुरु होता था। आकस्मिक घनिष्ठता तक पहुँचकर परिचय एकाएक समाप्त हो जाता था। श्यामा देव के कल्पित बोझ को लेकर, एक अपराध भावना से ग्रस्त जीती रही। देव को अपने जीवन की इस गति का जिम्मेदार ठहराती रही। कुमार के साथ अंतिम अनुभव से उसे लगा कि उसके साथ नहीं, देव के साथ ही धोखा हुआ है। "आज तक सोचती थी सुख मुझे नहीं मिला ..... देव के कारण। पर इस समय लग रहा है, मुझसे कही अधिक वंचित व्यक्ति वह स्वयं था और कारण मैं थी।"[११७]

यथार्थतः देव उपन्यास में कहीं नहीं आता। वह उपन्यास की कथा प्रारंभ होने के पूर्व ही मर चुका है, पर भौतिक अस्तित्व समाप्त हो जाने के बावजूद वह श्यामा की कल्पना में एक भूत की तरह उसके इर्द-गिर्द मंडराता रहता है। देव एक अतृप्त व्यक्ति है। ऐसा व्यक्ति जो सबकुछ स्वयं झेलता हुआ, स्वयं दुःख उठाता हुआ चुपचाप चलने में विश्वास करता है। राकेशजी ने देव का चरित्र अप्रत्यक्ष रूप से चित्रित किया है। " 'अंतराल' उपन्यास में कुमार और श्यामा के बाद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चरित्र किसी का है तो वह देव का ही है ; और उसका यह महत्त्व इसलिए है कि उपन्यास के

सर्वाधिक क्रियाशील, प्रभविष्णु और केन्द्रिय पात्र श्यामा के चरित्र की रचना का मूलाधार वही है ।"[११८]

अन्य पात्र :

बीजी देव की माँ है । देव की मृत्यु के बाद श्यामा ने नौकरी करके इस पुत्रहीन माँ के सामने कोई भौतिक उलझन नहीं आने दी । देव की मृत्यु के बाद से ही, बीजी और सीमा का जीवन श्यामा की तनख्वाह से ही चलता है, इसलिए वे दोनों स्वयं को श्यामा से जोड़े रही हैं, वरना अपनी पुत्रवधू के रूप में बीजी ने श्यामा को कभी भी हृदय से स्वीकार नहीं किया । बीजी दरअसल एक दुनियादार किस्म की प्रौढ़ महिला है, जिसके अंदर भारतीय पारंपरिक सास का वह रुखा चरित्र जीवित है । जो पराये घर की लड़की को कभी मन से अपना नहीं पाती । बीजी का चरित्र बाह्य रूप से एक बहुत ही यथार्थ और सहज चरित्र है लेकिन आंतरिक पक्ष से देखने पर पाते ही नहीं ।

प्रो. मल्होत्रा श्यामा के जीजा है । वे एक निहायत दुनियादार किस्म के व्यक्ति है । अपने लाभ को केन्द्र में रखकर कॉलेज और विश्वविद्यालय की राजनीति में व्यस्त, बड़े मस्त और खुले स्वभाव के हैं । प्रो. मल्होत्रा आजकल प्रायः हर कॉलेज–युनिवर्सिटी में पाये जानेवाले सामान्य वरिष्ठ प्राध्यापकों के वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते है । वैसे प्रो. मल्होत्रा के चरित्र में उल्लेखनीय कुछ नहीं है लेकिन श्यामा के चरित्र पक्ष विशेष पर प्रभाव डालने के कारण वह भी महत्त्वपूर्ण हो उठा है । राकेशजी के अन्य औपन्यासिक पात्रों की भाँति प्रो. मल्होत्रा का दाम्पत्य जीवन भी सहज नहीं है ।

श्यामा से पूर्व लता कुमार की प्रेमिका रही है । उसी कस्बे में जहाँ कुमार अध्यापक है, लता उससे पढ़ती रही है तथा बाद में कुमार के प्रयत्नों से वह उसी के विभाग में प्राध्यापिका हो जाती है । कुमार से लता का नितांत सामान्य किस्म का सहज–स्वस्थ प्रेम संबंध है । विवाह की बात आने पर इस संबंध में एक गुत्थी पड़ जाती है कि लता की माँ उसकी शादी एक इंजीनियर से करना चाहती है, जबकि लता में इतना साहस नहीं कि वह अपनी माँ का विरोध कर सके और अंततः एक सामान्य किस्म की सांसारिक, दब्बू, भावुक लड़की की तरह कुमार से यह कहकर कि मुझे माफ कर दो, अलग हो जाती है ।

सहज, यथार्थ और स्वाभाविक चरित्रों में एक रंजू है जो श्यामा के स्कूल में ही अध्यापिका है। रंजू एक अविवाहित सामान्य सी लड़की है। लेडी डॉक्टर बत्रा मंडी में एक अविवाहित स्त्री डॉक्टर है जो अचानक एक दिन अपने कमरे में मरी पायी जाती है तथा जिसके बारे में आगे चलकर चर्चा उठती है कि उसने डॉ. दूबे से प्रेम-प्रकरण के संबंध में होनेवाली बदनामी के डर से आत्महत्या कर ली। मिसेज सोहनसिंह तथा रामेश्वरी आदि श्यामा की सहकर्मी अध्यापिकाएँ हैं। राजीव श्यामा का सहपाठी रहा है, जो श्यामा से प्रेम-प्रदर्शन करके बाद में एम.पी. की बहन से शादी कर लेता है। गोपालजी, श्यामा के कॉलेज के प्रिन्सिपल है। इन पात्रों के छोटे-छोटे प्रासंगिक चरित्रों के अतिरिक्त मिस रोहतगी, पी.एन.पंत, नीलकांत, रुबी, बाली, जगधर, उमेश, सुभाष, गिरिजा आदि अन्य पात्र भी हैं, जो अपना-अपना सीमित लेकिन सहज और स्वाभाविक चरित्र जीते हैं।

'अंतराल' उपन्यास में अनेक पात्र हैं जिनके चरित्र स्वयं में स्वतंत्र और सहज हैं। कथा में प्रसंगवश आते-जाते ये चरित्र स्थिति के अनुकूल कथा को गति प्रदान करते हैं, उसे आकर्षक बनाते हैं तथा अन्य कतिपय चरित्रों को भी महत्त्व प्रदान करते हैं। चरित्रों की द्रष्टि से जहाँ 'अंतराल' का प्रश्न है, इस रचना में चरित्रों की भीड़ नहीं है। यहाँ अपेक्षाकृत अधिक सार्थक और सक्रिय, केवल आवश्यक पात्र ही प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका चरित्र पूरे तौर पर उदधाटित एवम् विश्लेषित किया जा सका है।

५.४ देशकाल-वातावरण:-

देशकाल और वातावरण के अंतर्गत उपन्यास की कथा में कालीन परिस्थितियों को चित्रित किया जाता है। वर्णनात्मकता, सूक्ष्मता, विश्वसनीय कल्पनात्मकता तथा उपकरणात्मक संतुलन देशकाल अथवा वातावरण के मुख्य गुण हैं जिन पर उसकी सफलता निर्भर रहती है। देश काल के भेद करते हुए मुख्यतः सामाजिक, तिलिस्मी, जासूसी, प्राकृतिक, भौगोलिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक आदि भेद किये जाते है। देश काल और स्थानीय रंग का भी परस्पर संबंध होता है। प्रादेशिक अथवा आंचलिक विशेषताओं से युक्त उपन्यासों में इस प्रकार के तत्त्व समाविष्ट रहते है।

राकेशजी के तीन उपन्यासों में सबसे अधिक चर्चित उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' आर्थिक, सामाजिक राकनीतिक और सांस्कृतिक जीवन पर आधारित है। महानगरीय परिवेश की हलचलों का सामग्रिक चित्रण के साथ-साथ शिक्षित समुदाय की

चेतना के प्रति भी राकेशजी ने संकेत किया है । विभिन्न परिस्थितियों में निम्न मध्यवर्गीय जीवन के घात–प्रतिघात का सजीव वर्णन इस उपन्यास की विशेषता है । विवादित जीवन की समस्याओं और आधुनिक संदर्भ में उसकी सार्थकता पर राकेशजी ने कई बार प्रश्न उठाये हैं, इस उपन्यास में भी वही प्रश्न फिर से उठाये गये हैं । विशेष रूप में पति–पत्नी के पारस्परिक संबंध और अधिकारों का तनाव बड़े ही सूक्ष्म रूप से इस उपन्यास में चित्रित हुआ है । महानगरीय परिवेश में मानवीय संबंधों की अर्थहीनता और अजनबीपन के शिकार हरबंस और नीलिमा की गलतफहमी क्रमशः बढ़ती जाती है । साथ ही मधुसूदन, सुषमा, इबादत अली, ठकुराइन, शिवमोहन आदि उपन्यास के कई अन्य पात्र भी महानगरीय परिवेश के दबाव में बिखर जाते हैं और उस बिखराव में भी जीवित रहकर युग–जीवन की यंत्रणा झेलते पाये जाते हैं । "आधुनिक युग में शायद ही कोई उपन्यास मिले, जिसमें पुराने उपन्यासों की तरह कथा एक पंक्ति की सीध में विकसित हुई दिखलाई पडे ।"[११९] क्योंकि आधुनिक व्यक्ति के क्रियाकलाप और आंतरिक अनुभूतियों की एक सूत्रता नष्ट होती जा रही है । आधुनिकीकरण के संदर्भ में आदमी की मानसिक प्रक्रिया, रुचियाँ और जीवन जटिलता बढ़ती जा रही है । राकेशजी की रचनाओं में कहानी, उपन्यास और नाटक सभी में एक पूरे दौर को मानवीय संबंधों और उनके संकटों को पकड़ने का प्रयास किया गया है, विशेष कर बदलते हुए या टूटते हुए सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में व्यक्ति के नीजि संबंधों की, स्त्री–पुरुषों के रिश्तों की दरारों को उन्होंने बार–बार कई तरह से पहचानने की कोशिश की है । उल्लेखनीय विषय यह है कि ये संबंध या उनके विघटित हुए रूप आज के ही आदमी के अनुभव को परिभाषित करते है । उनकी रचनाओं में स्त्री अक्सर नौकरी करने वाली है । ऐसी नारियाँ हैं जो किसी रूप में अपने स्वतंत्र जीवन की तलाश करती है लेकिन बदलती हुई परिस्थितियों में प्राचीन सामंतवादी पुरुष की मानसिकता से जुझकर अकेली पड़ जाती है या उनमें टूट कर जूड़े रहने की छटपटाहट बनी रहती है ।

शिक्षित दंपति के व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास में आनेवाले अवरोधों का चित्रण इस 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास में राकेशजी ने प्रस्तुत किया है । पहले की भाँति किसी भी शिक्षित नारी को चारदीवारी के भीतर बंद रखना न तो संभव कहा जा सकता है और न आवश्यक । अब वह दासी नहीं रही, अपितु जीवन–यात्रा में भागीदार बनकर समाज में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की माँग कर रही है । नीलिमा अपने पति हरबंश से कहती है – "तुम सिर्फ इस भावना के शिकार हो कि लोग मुझे ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है, यह तुम्हारे विषय में न होकर मेरे विषय में होती है । तुम्हें यह बात खा जाती

है कि लोग तुम्हारी चर्चा नीलिमा के पति के रूप में करते हैं। तुम्हें डर लगता है कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ, तो लोग मुझे ओर ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा कहोगे वही चीज है जो तुम्हारे गले के नीचे नहीं उतरती और इसीलिए तुम चाहते हो कि किसी तरह वह आयोजन सफल न हो, जिससे तुम बाद में मेरा मजाक उड़ा सको और अपने पर गुमान कर सको।"[१२०]

राकेशजी के तीनों उपन्यासों में 'अंधेरे बंद कमरे' की विवेचना अधिक हुई है। डॉ.इन्द्रनाथ मदान के अनुसार राकेशजी का 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास "यदि कृति नहीं, तो अनुकृति भी नहीं है। उपलब्धि नहीं तो संभावना अवश्य है।"[१२१] वास्तव में यह उपन्यास अनेक संभावनाओं का कोष है। इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की महानगरीय परिवेश में सांस्कृतिक हलचलों आडम्बरपूर्ण आंदोलनों, पत्रकारों, कलाकारों, लम्बी-लम्बी बहसों, अखबारी रिपोर्टो के चित्रण के साथ-साथ इसमें बहुत बड़ा संकेत है – भारतीय नगर शिक्षित समुदाय की चेतना के प्रति। लेखकने जीवन की परतों को एक-एक करके विभिन्न परिस्थितियों के माध्यम से उभारा है और महानगरीय स्तर पर निम्नमध्यवर्गीय जीवन का सचित्र वर्णन दिलचस्पी के साथ किया है। उपन्यास के कथ्य में हरबंस और नीलिमा के वैवाहिक जीवन का अंतर्द्वन्द्व प्रमुख है।

हरबंस-नीलिमा, मधुसूदन-सुषमा के पात्रों में आस्था-अनास्था का बोध निरूपित होता है। हरबंस-नीलिमा के बीच नगर परिवेश में पति-पत्नी के एक दूसरे से दूर जाने और जुड़े रहने की प्रक्रिया मुख्य है, लेकिन भीतर ही भीतर कोई आस्था निहित है जो दोनों को जुड़े रखती है। उपन्यास के अंत में नीलिमा की वापसी आस्था का अहसास कराती है। मधुसूदन-सुषमा से चाहकर भी कभी न जुड़े रहने के लिए विवश हो जाता है। क्योंकि वह अपनी निराशा कुण्ठा से पीड़ित है लेकिन उसके अंदर कहीं न कहीं पुरानी आस्था की बात निहित है जिससे आधुनिकता की चुनौती का सामना हिंमत से नहीं कर पाता और उससे पलायन करता है। राकेशजी ने सरकारी दूतावास और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का पर्दाफाश करके सांस्कृतिक बोध की आस्था को चरमरा दिया है। उपन्यास में हरबंस आनेवाली बेरोजगारी के भय से जीवन में कुछ भी निर्णय ले पाने में असमर्थ रहता है। घर में पत्नी के बीच संघर्ष नाराजगी है उसको दूर करने के निश्चय के साथ इग्लैण्ड चला जाता है लेकिन तुरंत नीलिमा को अपने पास बुलाकर अनिश्चित स्थिति बोध का परिचय कराता है। अर्थाभाव के कारण मधुसूदन चाहकर भी सुषमा श्रीवास्तव से जुड़ नहीं पाता। यहाँ अनिर्णय अनिश्चय की स्थिति में सामाजिक

परिवेश तथा आर्थिक स्थिति मुख्य कारण है । हरबंस-नीलिमा वैवाहिक जीवन की निरर्थकता महसूस करते हुए एक दूसरे से चिपके रहते हैं । ऊब और उदासी से उबरने के लिए दोनों व्यर्थ प्रयत्न भी करते हैं । नीलिमा की स्वातंत्र्य चेतना प्रखर है । वैसे दोनों के संघर्ष और तनाव का कारण व्यक्ति-स्वातंत्र्य की चेतना और अपना अस्तित्व बोध ही है ।

राकेशजी ने महानगरीय संदर्भ में मानवीय संदर्भों को अकेलेपन की अनुभूति से उत्पन्न घुटन की अभिव्यक्ति इस उपन्यास के माध्यम से करनी चाही है । इस उपन्यास में हरबंस नीलिमा की रात दिन की चख-चख से तंग आ गया है और उनका बेटा निर्वासित होकर माता-पिता को छोड़कर शुक्ला मौसी के पास रहना अधिक पसंद करता है । दिल्ली के भागमभाग के वातावरण में सभी एक दूसरे से अपरिचित होते जा रहे हैं, जुड़े रहने की स्थितियाँ खत्म हो गई हैं । परिचय के अभाव में सभी पात्र 'अंधेरे बंद कमरे' में भटकते हुए एक दूसरे से अपहचान बनाये रखने के लिए विवश है । उपन्यास में राकेशजी ने अकेलेपन की स्थिति को बड़ी सूक्ष्मता और कला के साथ चित्रित किया है । उपन्यास का नायक हरबंस आनेवाली बेरोजगारी के भय से जीवन में कुछ भी निर्णय लेने में असमर्थ रहता है । वह नीलिमा और मित्रों के बीच रहकर भी खालीपन के बोध से पीड़ित था । वह निर्जीव कागज के टूकड़े से जुड़े रहना चाहता है । वह कहता है - "एक अजब बेबसी सी महसूस होती है मेरा मन जैसे शिकंजे में फँसा है जो मेरी किसी भी कोशिश से नहीं टूट पाता । यह भी समझ में नहीं आता कि मैं लिखना ही चाहता हूँ या कुछ और चाहता हूँ ।"[१२२] उसकी अनिर्णय की स्थिति उसे अपने आस-पास यहाँ तक स्वयं से अलग काटती जा रही है । उपन्यास का नायक हरबंस तो मानो अकेलेपन का प्रतीक बन गया है । "मेरे जीवन में आज कोई दर्शन है, तो वह एक निराशापूर्ण मानववाद का ही दर्शन है ।"[१२३] हरबंस कोलेज के प्रिन्सिपल से लेकर अपनी पत्नी तथा सारे घर के परिवेश से असम्पृक्त है । उसका मित्र मधुसूदन हरबंस के बारे में कहता है - "क्या दूनिया में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है ... जिसकी वह खुले दिल से प्रशंसा कर सके ।"[१२४] हरबंस अपने परंपरागत पुरुष स्वभाव के कारण पत्नी के सामीप्य एवम् दूरी में अकेलापन ही पाता है । अकेलापन उसकी नियति है । पत्रकार मधुसूदन भी मित्रों और सहकर्मियों के बीच दफ्तर में अभाव और एकाकीपन का अनुभव करता है । "दफ्तर के काम में भी मेरा मन नहीं लगता था ।"[१२५] इसी प्रकार सुषमा, इबादलअली, ठकुराइन, खुरशीद आदि इस स्थिति के बोध से गुजरते रहते है ।

हरबंस–नीलिमा वैवाहिक जीवन की निरर्थकता महसूस करते हुए एक दूसरे से चिपके रहते हैं। ऊब उदासी से उबरने के लिए दोनों व्यर्थ प्रयत्न भी करते है।

आर्थिक तंगी के कारण ही दिल्ली जैसे शहर में बुद्धिजीवी वर्ग भी गंदी नाली में कीड़े–मकोड़े की तरह जीने के लिए विवश है। अर्थ के अभाव में मधुसूदन जैसे पत्रकार को भी कस्साबपुरा में इबादतअली के मकान में न केवल घुटना पड़ रहा है बल्कि उसमें रहनेवाले लोग अपनी सीमा के अंदर टूट रहे हैं। जिन्हें अपने से बाहर झाँकने का भी सामर्थ्य नहीं है। मधुसूदन सुषमा श्रीवास्तव से जुड़ना चाहता है। सत्य भी है मध्य स्तर पर जीनेवाले लोग महानगरीय परिवेश में संभ्रान्त बनने का असफल प्रयत्न करते है जिसमें उन्हें घुटन ही मिलती है। कोलेज का यह प्रोफेसर हरबंस न कोलेज में किसी से जुड़ा है न घर में पत्नी नीलिमा से। पत्नी और मित्रों के बीच खालीपन के बोध से पीड़ित है। वह भीतर की घुटन से उबरने के लिए इग्लैण्ड जाता है किन्तु कोई फर्क नहीं पड़ता। हरबंस की जिन्दगी में अभाव और अनिश्चितता गहरे रूप में उभरकर आते हैं। लंदन में रोज किसी न किसी वजह से उनकी लडाई हो जाती थी। पति–पत्नी का अलगाव और तनाव दोनों को भीतर ही भीतर तोड़ रहा है। नीलिमा के दिल्ली के कलानिकेतन में कलाप्रदर्शन के बाद हरबंस भीतर से इतना जख्मी होता है कि नीलिमा के उस कृत्य को भूलने के लिए शराब से भरा गिलास खाली करता रहता है। नीलिमा घर छोड़कर चली गई थी लेकिन हरबंस की बेहोशी के समाचार पाने पर घर लौटने को विवश होती है। दोनों साथ–साथ अपनी अर्थवत्ता खोते है फिर भी दोनों साथ–साथ जीवनयापन करते है मानो टूटन और जिजीविषा जीवन से अभिन्न हो। मधुसूदन भी शहर के परिवेश दबाव से मुक्त नहीं। दिल्ली की प्रख्यात पत्रकार सुषमा भी अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए छटपटाती है और अंततः टूटती है। कस्साबपुरा की ठकुराइन अनेक अभिलाषाओं के बावजूद भी माँ की हालत ठीक न रहने के कारण ही अपनी बेटी निम्मा का हाथ अपने बनाये हुए देवर मधुसूदन को देने में संकोच नहीं करती। आर्थिक संकट जीवन में दिन–प्रतिदिन जटिल से जटिल होता जा रहा है और गाँव–शहर में मध्य वर्ग एवम् बुद्धिजीवी वर्ग को भीतर से कचोट रहा है जिसकी परिणति टूटन में ही दृष्टिगत होती है।

'न आने वाला कल' उपन्यास एक कथा प्रयोग माना गया है। उपन्यास का शिल्प अपने में एक अलग उपलब्धि है। एक निर्णय संबंधी लोगों के जीवन में अव्यक्त हलचल ले जाता है। "हेडमास्टर व्हिसलर से लेकर चपरासी के बीबी काशनी तक जो

इस पहाड़ी स्कूल में एक ही जिन्दगी के सहभागी होकर जी रहे थे। परंतु साथ–साथ जीते हुए भी वे सब इतने अकेले थे कि सिवा अपने और किसी के अकेलेपन को महसूस तक नहीं कर पाते थे। अपनी–अपनी चोहद्दी में बंद लोग अपनी–अपनी जगह एक ही चीज को खोज रहे थे अपने आनेवाले कल को।"[१२६] इस उपन्यास में अधिकांश पात्रों की स्थिति अनिर्णय और अनिश्चय की स्थिति है। उपन्यास का नायक मनोज मिशन स्कूल के वातावरण से दूर जाकर नई जिन्दगी की संभावना में जी रहा है। स्कूल के दमघोंटू वातावरण से उबरने के लिए स्कूल से त्यागपत्र तो देता है लेकिन नई जिन्दगी और कल के लिए उसके सामने कुछ निश्चित नहीं और स्वयं भी अनिश्चित स्थिति में है।

इस पहाड़ी स्थान में अभावग्रस्त जिन्दगी को झेल रहे लोगों की अपनी–अपनी कहानी है। वैवाहिक जीवन की घुटन और मिशन स्कूल का वातावरण सभी पात्रों को घुटन की रिक्तता का अनुभव कराते है। मनोज मुख्य पात्र है, उसे आने वाले कल की प्रतीक्षा थी जिसमें "यह जितनी भी घुटन है, इस घर को छोड़ देने तक ही है। इसके बाद एक नई और अनजानी जिन्दगी खोज अपने–आप हर चीज में एक गति ले आयेगी – एक ऐसी गति जो इस अवरोध के लिए अवसर ही नहीं रहने देगी।"[१२७] घुटन पूर्ण जिन्दगी का अपने आप में वह एक क्षण था जिसके धुएँ में ऊब–ऊब कर बेसब्री से साँस ले रहा था। यही कल्पना में कि 'आने वाले कल' एक नई जिन्दगी की शुरुआत होगी। मनोज अपने दमघोंटू वातावरण में ऊब कर 'न आने वाले कल' की चिंता में एक निर्णय के अनेक अनिश्चित निर्णयो की जिन्दगी की ओर कदम बढ़ाता है जिसमें टूटने की संभावना अधिक रहती है। स्कूल का प्रिन्सिपल मि. व्हिसलर उसकी पत्नी के शब्दों में, 'स्टेनलेश स्टील का पूर्जा', है जो भीतर के खालीपन को अधिकार बोध से भरना चाहता है। इस उपन्यास में सभी पात्र एक तरफ मिशन स्कूल की पाबंदियों में जीने के लिए अभिशप्त है। दूसरी तरफ घिसीपिटी जिन्दगी उनको नितांत अकेला बनाती है। सभी यंत्रणामूलक जिन्दगी जीते है। इस तरह उपन्यास के पात्र आने वाले कल की तलाश में जीवित हैं। एक ही प्रकार की जिन्दगी को जीते उपन्यास के पात्र परस्पर की उपस्थिति का बोध नहीं करते।

'अंधेरे बंद कमरे' और 'न आने वाला कल' के क्रम में लिखा गया 'अंतराल' उपन्यास अपनी संरचना, परिवेश और समस्याओं में दोनों उपन्यास से अलग है। 'अंतराल' में सिमटी हुई दुनियाँ की अपनी कहानी है, जिसमें कस्बाती–शहर का परिवेश

और सामाजिक जीवन से टकराकर जी रहे लोगों की अपनी समस्याएँ है। हर जगह ये समस्याएँ और स्थितियाँ नहीं मिल सकती। अंतराल के विशेष संदर्भ में विमला कुमारी के विचारों को हम देखे तो – "लेखिका अंतराल को आधुनिक शैली में लिखा सफल उपन्यास मानती है। दूसरी ओर वे स्वीकार करती है कि 'अंतराल' का कथानक जटिल है। मुख्यतः अंतराल में स्थान संबंधी जटिलता है।"[१२८] कुमार बंबई में रहता है। श्यामा के फोन के बाद टी सेंटर पर इन्तजार करने के बाद वह वापसी में बांद्रा की ट्रेन में बैठता है। वह अतीत में लौट जाता है। उसका अतीत कस्बाती शहर से जुड़ा हुआ है। कस्बाती शहर के वर्णन को पढ़ते समय पाठक यह भूल जाता है कि कुमार इस समय बंबई में है और यह घटना अतीत की है। श्यामा भी बंबई में बीजी के पास रहते हुए मंडी के वातावरण में खो जाती है। डॉ. विमलाकुमारी के अनुसार "इस उपन्यास में नगरबोध की भूमिका पर नारी–पुरुष संबंधों की जटिलता को यथार्थ शैली में अभिव्यक्ति दी गई है। अंतराल न केवल दो पात्रों के बीच का अंतराल है, अपितु आधुनिक संबंधों के मध्य का अंतराल भी है।"[१२९] जटिल कथानको का परिचय विशेषकर 'फ्लेश बेक' शैली में लिखे उपन्यासों में मिलता है।

कुमार और श्यामा के बीच अस्वीकार की स्थिति बनी रहती है। जिसकी वजह से कुमार की मनःस्थिति इतनी असंतुलित हो जाती है कि भीड़ में, अपने क्वार्टर में, हर परिचित स्थान में और लोगों के बीच वह अकेला अनुभव करता है। अपने आप एक डूबी नाव की तरह बेकार का अस्तित्व लिए जान पड़ता था – "उसका मन छटपटाता था अंधेरे से उबर कर किसी तरह सतह को पा लेने के लिए। लेकिन संघर्ष कर सकने की चेष्टा ही अपने आप में चुक गई प्रतीत होती थी।"[१३०] राकेशजी ने इस उपन्यास को ग्रामीण और शहरी दोनों परिवेशों में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। स्त्री–पुरुष के संबंधों, तनावों, समस्याओं और अनेक प्रश्नों से जूझते व्यक्ति के संघर्ष को उपन्यास में प्रमुखता दी गई है।

४.४ राकेशजी के उपन्यास की भाषा–शैली :

समाज में संप्रेषण एवम् परस्पर विचार विनिमय का साधन भाषा ही है। आरंभ से ही मानव ने अपनी सृजात्मकता एवम् कलात्मकता की अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम अपनाएँ। इनमें लिखित अभिव्यक्ति का सर्वाधिक मुखर रूप साहित्य है। समय–समय पर साहित्य ने दिग्भ्रमित समाज का सही दिशा–निर्देश भी किया है। साथ ही परिवर्तित

सामाजिक संस्थानों एवम् सत्ताओं के अनुरूप ही साहित्य भी अपना रूप बदलता रहा। साहित्य के परिवर्तित रूप के साथ भाषागत परिवर्तन अनिवार्य था। इस प्रकार एक ओर साहित्य में भाषा के विकास का क्रम उभरकर आता है, तो दूसरी ओर समाज और संस्कृति से गृहित प्रभावों का अंकन करके साहित्य सामाजिक विकास और सांस्कृतिक उन्नयन में योगदान देता है।

साहित्य का मूलाधार मानव है और मानव समाज का अभिन्न अंग है। समाज ही साहित्य का कथ्य बनता है। साहित्य तत्कालीन समाज का चित्रण करके लोगों में जागृति, चेतना और प्रगति का संचार करता है। रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों पर प्रहार करना, नवीन प्रगतिशील विचारों का उन्मेष करना, जड़ व्यवस्थाओं के अंत की घोषणा करना, सामान्य मानव की वाणी का उद्‌घोष करना इन सभी सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति द्वारा साहित्य समाज की वाणी का मुख्य माध्यम बन जाता है। इसकी पृष्ठभूमि के रूप में सजग सांस्कृतिक प्रेरणा कार्य करती है। व्यक्ति जब अपनी संस्कृति से संपृक्त रहता है, जब अपने मूल से जुड़ा रहता है, तभी वह साहित्यिक, सामाजिक लक्ष्यों के उचित निर्धारण में सफल हो पाता है।

साहित्य का अस्त्र है 'भाषा'। भाषा की अनेक शैलियाँ, विभिन्न रूप तथा विकास के विविध चरण साहित्य के विकास क्रम के साथ संबद्ध हैं। साहित्य की अनेक विधाएँ समाज एवम् संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण करके विकसित होती रही हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि विभिन्न साहित्यिक विधाएँ समाज के परिपेक्ष्य में ही स्वयं को परिभाषित करके पल्लवित हुई हैं। समाज और लोक का निकट से निरीक्षण करके अपने व्यापक कलेवर में उसका यथार्थ चित्रण करनेवाली विधा 'उपन्यास' है और दूसरी ओर उसका संबंध सीधे समाज से ही होता है। अतः उसकी भाषा भी सहज, सरल और तत्कालीन समाज में प्रचलित लोक से संबद्ध भाषा होती है।

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, अनुभूत के संप्रेषण का सशक्त माध्यम है, किन्तु उसका सर्वाधिक जटिल रूप हमें उपन्यास और काव्य में दिखाई देता है। आज साहित्यिक विधाओं में जो परिवर्तन हो रहे हैं, वे मूलतः भाषागत ही हैं। जहाँ कविता भाषा की समस्या को अधिक द्रुत परिवर्तनों में दिखाती है, वहाँ उपन्यास में परिवर्तन अपेक्षाकृत धीमे होते हैं और संभवतः इस धीमे होने के कारण ही उपन्यास में परिवर्तन के बावजूद भाषा का अधिक स्थायी रूप द्रष्टिगोचर होता है। उपन्यास में प्रयुक्त भाषा दोहरा महत्त्व रखती है, प्रथम तो वह उपन्यासकार के मन में कथा के वैचारिक स्वरूप

को व्यक्त करती है और दूसरा वह अपने उपन्यास में जिन पात्रों की रचना करता है, अपने-अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व में वे भी पृथक् सत्ता से युक्त होकर अपने हृदय की विविध अनुभूतियाँ और भावनाओं की प्रतीति कराते हैं। प्रत्येक उपन्यासकार की भाषा अपने ढंग की अलग होती है। उसके साथ न केवल पाठकों की मनःस्थिति जुड़ी रहती है बल्कि उपन्यासकार का निजीपन भी उसमें समाहित रहता है। आज के उपन्यासों के संदर्भ में जब भाषा की संवेदना की बात की जाती है तो उसका अभिप्राय यह है कि उसमें आत्मीयता और ऊष्मा का धरातल किस सीमा तक निर्मित हो पाया है, यही अभिव्यक्ति की समग्रता है।

आज हम जिस परिवेश में जी रहे हैं वह पुराने परिवेश से सर्वथा भिन्न है। ऐसी स्थिति में उपन्यास की भाषा का परिवेश भी बदला हुआ है। यदि कोई उपन्यासकार अपने परिवेश की उपेक्षा करता हुआ भाषा का प्रयोग करता है तो यही माना जा सकता है कि वह एक अविवेकपूर्ण दुराग्रह से गुजर रहा है। राकेशजी एक ऐसे ही उपन्यासकार हैं, जिन्होंने न केवल परिवेश के परिवर्तित रूप की आत्मा को पहचाना है, अपितु अनुकूल भाषा का प्रयोग भी किया है। परिवेश की जटिलता से आत्मसात करते हुए उसे वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास राकेशजी के औपन्यासिक भाषा की सफलता है। इसी कारण उनका औपन्यासिक कथ्य भाषा की अनुरूपता पाकर अधिकाधिक संप्रेषणीय बन गया है। आज हमारे सामने राकेशजी के जो उपन्यास हैं, उनमें भाषिक संरचना और उसकी युगानुरूप अभिव्यक्ति का प्रश्न सर्वाधिक मुखरित है। "जीवन संदर्भों की यथार्थता के संप्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग राकेश ने किया है वह यथार्थ भाषा है। यहाँ कथ्य की प्रामाणिकता ने भाषा को भी प्रामाणिक बना दिया है।"[१३१]

४.४.१ 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास की भाषा-शैलीः

'अंधेरे बंद कमरे' का कथ्य हमारे वर्तमान जीवन की जटिलता से उत्पन्न है। अतः वह जितना विश्वसनीय है, भाषा भी उतनी ही विश्वसनीय बन गई है। भाषा और कथ्य की यह मैत्री एवम् परिवेश और भाषा का यह संबंध राकेशजी की औपन्यासिक भाषा को आत्मीय स्तर पर प्रस्तुत कर देता है।

'अंधेरे बंद कमरे' की शब्द-योजना यथार्थ परिद्रश्यों की अभिव्यंजना के लिए उपयुक्त है। प्रायः सभी औपन्यासिक पात्र शिक्षित वर्ग के हैं, बौद्धिक वर्ग से संबंधित

हैं। अतः वे जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, वह न केवल प्रवाही एवम् प्रभावी है, वरन् एक तर्कयुक्त तथा विश्लेषणपरक शैली से संयुक्त होकर अधिक विश्वसनीय बन गई है। हरबंस, नीलिमा, शुक्ला–सुरजीत, मधुसूदन और सुषमा श्रीवास्तव की भाषा प्रबुद्ध वर्ग की भाषा है। ये उपन्यास के प्रमुख पात्रों में आते हैं। इसके विपरीत 'ठकुराइन' की भाषा में एक निम्नवर्गीय नारी की भाषागत सहजता और आत्मीयता दिखाई देती है। हरबंस और नीलिमा की भाषा में गंभीर तर्क, विचार और विश्लेषणात्मकता है। वह कदम–कदम पर यथार्थ के परिद्रश्यों से जुड़ती गई है। परिणामतः कहीं वह चित्रात्मक हो गई है, तो कहीं संवेदनाप्रधान और कहीं भावना प्रधान तथा कवित्वमय। भाषा जहाँ भावना प्रधान है वहाँ उसमें काव्यात्मकता भी स्वतः ही आती गई है। इस काव्यात्मकता को उपन्यास में स्थान–स्थान पर देखा जा सकता है। हरबंस के द्वारा नीलिमा को लिखे गये पत्रों की भाषा तो खासी काव्यात्मक है : "मेरे अंदर कहीं एक खालीपन है जो धीरे–धीरे इतना बढ़ता जा रहा है कि मेरे व्यक्तित्व के सब कोमल रेशे झड़ते जा रहे हैं। रोजमर्रा की जिन्दगी की माँगे बहुत बड़ी हैं और मेरे जैसा खाली आदमी भविष्य के सपने बुनकर नहीं जी सकता। शायद वह मेरे व्यक्तित्व का अकेलापन और खालीपन है जो तुम्हें भी मेरे साथ बाँटना पड़ रहा है। मगर तुम इसे मजबूरी में न बाँटकर उत्साह के साथ बाँट सको, तो सब कुछ बदल सकता है। ... मैं यही तो चाहता हूँ कि मेरे व्यक्तित्व के साथ किसी का अस्तित्व मिलकर दो परमाणुओं की तरह एकाकार हो जाये।"[१३२] इसी प्रकार हरबंस अपनी भावुक मनःस्थिति में जो आत्म–विश्लेषण करता है वहाँ भी भाषा काव्यात्मक और संवेदनाप्रधान हो गई है : "कुछ स्याह लकीरें हैं जो मेरे साथ जुड़ी हुई हैं और मैं अपने को उनसे अलग नहीं कर सकता। किसी महान ट्रेजेडी या बहुत बड़ी सफलता का श्रेय भी शायद मेरे भाग्य में नहीं है। मैं अपने आदर्शों के खंड़हर पर खडा शायद उनके और–और ढहते जाने की प्रतीक्षा कर सकता हूँ। .... मैं तुम्हारे अंदर सौंदर्य की चेतना देखना चाहता हूँ।... मैं चाहता हूँ कि मुझे जीवन में इस विश्वास का अनुभव हो कि मेरे अंदर का उफान अँधेरी गोल दीवारों से ही टकराकर नहीं लौट आयेगा।"[१३३]

सुषमा श्रीवास्तव और मधुसूदन के प्रसंग में भी राकेशजी ने काव्यात्मक और संवेदनाप्रधान भाषा का प्रयोग किया है। भाषा का यह रूप जहाँ लेखक की भावुकता को स्पष्ट करता है, वहीं पर वह संकेतित करता है कि राकेशजी की असली भाषा यही है। देखिये तो सही मधुसूदन सुषमा के संदर्भ से सोचता हुआ कितनी गहरी तहों तक चला गया है : "उसके चहेरे पर लालिमा की तहें गहरी होती जा रहीं थीं, जैसे साफ

पानी में बार-बार एक रंग आ मिलता हो। रंग के उस आक्रमण से थककर उसने पीछे टेक लगा ली।"[१३४] इसी प्रकार जब सुषमा मधुसूदन को अपना सबसे निकटतम मान लेती है तो मधुसूदन की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए राकेशजी कवित्वपूर्ण शब्दावली और वाक्यावली का प्रयोग करते है।

'अँधेरे बंद कमरे' उपन्यास की भाषा की दूसरी विशेषता उसकी चित्रात्मकता में निहित है। उपन्यास में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, अनेक ऐसे स्थल है जहाँ भाषा भावुकता के कदमों से चलती हुई परिवेश और पात्र की मनःस्थिति को प्रतिबिंबित करती हुई पाठक के सामने बिम्बों के रूप में दिखाई देती है। ऐसे स्थलों पर आये शब्द सस्वर हैं। वे अपने आप बोलते प्रतीत होते हैं। उनकी भंगिमा अपने आकर्षक रूप के कारण पाठक के मन में उतरती चली जाती है। नीलिमा के पेरिस से लौटने की प्रतीक्षा में व्यग्रता अनुभव करते हुए हरबंस को 'ट्रेन' जिस रूप में लगती है उसकी स्थिति का बिंब देखिए : "सहसा दहकती हुई सलाखें राख-सी हो जाती हैं। सिग्नल का रंग बदल गया है। एक उल्का की सी रोशनी पटरियों पर रेंगती आ रही है। उसका दिल जोर से धडकने लगता है। गाडी रुक जाती है।"[१३५] चित्रात्मक भाषा का प्रयोग सामान्यतः राकेशजी ने उन स्थलों पर किया है जहाँ या तो किसी स्थिति का वर्णन है या किसी स्थान विशेष का या किसी पात्र की मनःस्थिति का। ऐसे स्थलों पर भाषा में आये शब्द स्वयं बोलते दिखाई देते हैं और शैली में एक ऐसा सुगुँफन दिखाई देता है कि वर्णित-प्रसंग मूर्तित हो उठा है। यह मूर्तिमंतता कहीं अप्रस्तुत विधान से, कहीं प्रतीकों से और कहीं भाषा में शब्दों के सहारे प्रस्तुत किया गया है। ठकुराइन की कोठरी का यह वर्णन देखिए : "मैंने कोठरी में कदम रखा तो वह भी मुझे ठकुराइन के चेहरे की तरह ही बदली हुई लगी। उसका पलस्तर इतनी जगह से उतर चुका था कि जो दो-चार टुकड़े बचे थे वे बहुत अस्वाभाविक रूप से वहाँ चिपकाये गये से लगते थे। छत की कड़ियाँ स्याह पड चूकी थीं। दीवारों पर जगह-जगह स्वस्तिक बने थे।"[१३६] इसी प्रकार बस्ती हरफूलसिंह तथा काठ बाजार का वर्णन भी चित्रात्मक भाषा में किया गया है।

'अँधेरे बंद कमरे' की भाषा में प्रेषणीयता का गुण भी विद्यमान है। राकेशजी ने जब जैसे चाहा है अपने मंतव्य को पाठक तक भली-भाँति संप्रेषित कर दिया है। वस्तुतः प्रेषणीयता राकेशजी की भाषा का प्रमुख गुण है। यह गुण शब्द-चयन की क्षमता, वाक्य-गठन और शैली की प्रभावी अभिनवता पर निर्भर करता है। राकेशजी के शब्द अपने-आप में सक्षम हैं। वे उपन्यासकार के भावों का अर्थ वहन करने की शक्ति से

भरपूर तो हैं ही, अपने प्रतीकात्मक, लाक्षणिक और व्यंजक गुण के कारण भी प्रेषणीयता में साधक हुए है। मधुसूदन और सुषमा श्रीवास्तव के प्रणय-प्रसंग में आई ये पंक्तियाँ देखिये जिनमें राकेशजी की भाषा अपनी अर्थवत्ता और जीवंतता के कारण सांकेतिक शैली में सारे प्रसंग को प्रेषणीय बना रही है। यहाँ भाषागत प्रेषणीयता के लिए काव्यात्मक, लाक्षणिक, प्रतीकात्मक और सांकेतिक पद्धतियों का एक साथ सहारा लिया गया है : "जब मेरे होंठ उसके होंठों से हटे, तो मुझे लगा जैसे उनकी जड़ें वहीं रह गयी हों और मैंने केवल उन्हें ऊपर से तोड़कर अलग कर लिया है। . . . एक बहुत तेज साँस फिर मुझे अपने में लपेट लेने के लिए बहुत पास-पास आ रही थी। मैं उस साँस के पास खिंचता जा रहा था। . . . जड़ों से उखड़े फूल फिर अपनी जड़ों से जा मिले और बीच की तिपाई भी हमारे बीच से हट गयी। कबूतर के पंखों का एक नरम-नरम बोझ मेरे ऊपर लद गया और मैं उस बोझ के नीचे अपने को बिलकुल भूलने लगा। कुछ देर लगता रहा जैसे अँधेरे की जगह हम गहरे पानी में डूबे हों और वह पानी अपनी गहराई के हल्के बोझ से हमें सहलाता हुआ ऊपर से गुजरता जा रहा हो और पानी में तैरती हुई मछलियाँ शरीर से टकरा-टकरा जाती हों और साँसों की रस्सियाँ हाथ-पैरों को कसती जा रही हों।"[१३७]

राकेशजी की कलम ने वे शब्द ही अधिक उठाये हैं जिनमें जीवन का स्पंदन है, भावों की गहनता है और रोजमर्रा के शब्द हैं। लगता है उपन्यासकार का मानस ऐसे अर्थवान शब्दों का भंडार है तभी तो वह अपनी बात कहने के लिए मन चाहे शब्दों का चयन और वरण करता रहा है। एक उदाहरण तो देखिए : "अगर कुछ लोगों की जिन्दगी में इस तरह की खाई है, तो इसका यह मतलब तो नहीं कि इस तरह की खाई रखे बगैर जिया ही नहीं जा सकता। ... नहीं जिया जा सकता सूदन, बिलकुल नहीं जिया जा सकता," वह हठ के साथ बोली, "जो आदमी आज इस तरह जीने की कोशिश करेगा, उसे जिन्दगी दो दिन में बुहारकर रख देगी। तुम जिन्दगी में यह खतरनाक कोशिश करके देखो, तो तुम्हें खुद पता चल जायेगा।"[१३८]

उपन्यास में भाषा पात्रों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनःस्थितियों को व्यक्त करने में तथा भावों को रूपायित करने में लेखक की भाषा-सामर्थ्य एवम् कल्पना-प्रवणता द्रष्टिगत होती है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में "मानसिक स्थितियों को व्यक्त करने में राकेश ने भाषा की लय को नये मोड़ दिये हैं। शाही जीवन की घुटन को अभिव्यक्ति देने में शब्दजाल की खूब काट-छाँट की है। इसमें मानव-संबंधों की परतों को उघाड़ने

में लेखक ने आधुनिकता की चुनौती का सामना भी किया है और अपनी द्रष्टि से मानवीयता को निरुपित भी किया है।"[१३९]

'अंधेरे बंद कमरे' की भाषा में परिष्कृत शब्दावली की अपेक्षा तत्सम् शब्दावली, लोकभाषा शब्दावली, उर्दू–फारसी शब्दावली तथा अंग्रेजी शब्दावली विशेष रूप से द्रष्टिगत होती है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म अभिव्यक्ति एवम् जटिल से जटिल मनःस्थिति भी संवेदनात्मक भाषा का संस्पर्श पाकर जैसे पुलकित होती हुई चैतन्य हो गई है। नीलिमा और हरबंस के अन्तर्द्वंन्द्व की अभिव्यंजक भाषा ऐसी ही है। जहाँ कहीं नीलिमा कुछ सोचते–सोचते कुछ और सोचने लगती है, वहाँ भाषा का मिजाज वक्र है। उसका रंग गाढ़ा स्याह है। ठकुराइन ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह न केवल उसके व्यक्तित्व के अनुरूप है बल्कि वह निजता और आत्मीयता की प्रतिबोधक है। स्नेहार्द्र ह्रदय से निकली भाषा का यह रूप तो देखिए : "अब देखो कितनी बड़ी हो गयी है। लड़की और अनार का पेड़, इन्हें बढ़ने में देर नहीं लगती है ! ... घर में जवान लड़की तो भैया काँच की इमारत होती है।"[१४०] इसी प्रकार ये पंक्तियाँ देखिए : "अभी तुम तर माल के लायक कहाँ हो लाल ? जब खाने लायक हो जाओगे, तो माँगकर नहीं खाओगे। पतीली में से निकालकर खा जाया करोगे। जिस दिन इतनी हिम्मत आ जायेगी, उस दिन ठकुराइन को नहीं पूछोगे। जहाँ पतीली देखोगे, वहीं मुँह मारने लगोगे।"[१४१] राकेशजी ने ठकुराइन से जिस भाषा को बुलवाया है, उसमें मुहावरेदानी भी काफी है। अनेक सुक्तियाँ तथा मुहावरों के संयोग से औपन्यासिक भाषा अर्थवती हो गयी है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'अंधेरे बंद कमरे' की भाषा एक साथ ही कई स्तरों पर दिखाई देती है। कहीं वह काव्यात्मक एवम् भावात्मक है, कहीं संगीतात्मक और संवेदनाप्रधान है। इतना ही नहीं वह यथार्थ की वाहिका, जटिल मनःस्थितियों की सहज विश्लेषिका और उर्दू के मेल से नजाकत तथा लचक से भरी है। उसमें आये अंग्रेजी के शब्द उसे व्यावहारिकता प्रदान करते गये है। और वह कुछेक ग्रामीण और दैनिक परिवेश के शब्दों से सजकर अधिकाधिक ग्राह्य तथा प्रेषणीय बन गई है। भाषा में एक रवानी, एक प्रवाह, चित्रमयता, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता और व्यंजकता है। इस प्रकार कहीं तो वह मन के कागज पर भावना की तरंगों में बहती गई है तो कहीं यथार्थ के रूप से सिक्त होकर मस्तिस्क की शिराओं को झनझनाती गई है। कहीं उसमें खिंचाव है तो कहीं द्रुत गतिमयता है। हाँ इस उपन्यास की भाषा का सबसे बड़ा

दोष है शिथिल वाक्य-विन्यास, व्याकरणिक त्रुटियाँ और अस्त-व्यस्त वाक्यावली। कुछेक स्थानों पर तो भाषा में शब्द और वाक्य के वाक्य तक थोड़े से हेर-फेर के साथ ही आ गये हैं। मैं समझता हूँ इसका कारण पांडुलिपि को लापरवाही से देखना ही रहा होगा। वरना राकेशजी जैसे एक मौलिक कलाकार से ऐसी भूल की अपेक्षा तो नहीं की जा सकती। भाषा के साथ-साथ शैली की द्रष्टि से देखें तो स्पष्ट ही यह उपन्यास आत्मपरक शैली में लिखा गया है। वैसे इसमें प्रसंग व परिस्थिति के अनुरूप और भी शैलियाँ प्रयुक्त हुई है। यथा : पत्र शैली, नाटकीय शैली, पूर्वदीप्ति शैली, प्रतीक शैली, भावात्मक शैली और सूक्ष्म व्यंजनात्मक शैली। अंततः यही कह सकते हैं कि आलोच्य उपन्यास राकेशजी का सार्थक और प्रभावी उपन्यास है। आधुनिक जीवन की असंगतियों एवम् जटिलताओं को प्रस्तुत करनेवाला यह उपन्यास अपने समय का सही गवाह है।

४.४.२ 'न आने वाला कल' उपन्यास की भाषा-शैली :

शक्तिशाली, झकझोर कर रख देने की क्षमता रखने वाले उपन्यासकार की शक्ति का रहस्य उसकी भाषा में ही निहित होता है। यह भाषा अपने आवेग में बहाकर पाठक को एक ऐसे लोक में पहुँचा देती है, जहाँ से वह अपनी सभी समस्याओं और परेशानियों को पात्रों के साथ जोड़कर देखने लगता है। राकेशजी ने शब्द को बहुत महत्त्व दिया है और अपनी पूरी साहित्य-यात्रा में शब्द के अन्वेषण में ही संलग्न रहे। इसके साथ ही एक शब्द अपनें चारों ओर के शब्दों-संदर्भों को सार्थकता और प्राणवत्ता प्रदान करने में समर्थ होता है। शब्दों की इसी अदभूत शक्ति का उद्‌घाटन करने का प्रयत्न राकेशजी ने अपने उपन्यासों में किया है। राकेशजी के अनुसार "शब्दों का सृजनात्मक प्रयोग उन संदर्भों की लय में और नई-नई लय खोज सकता है। यह लय-नियोजन अपने से ही कई-कई बिम्बों तथा मिथकों के संसर्ग मन में जगाकर शब्दों के व्याकरण विश्लेषित अर्थ से परे बहुत-से अनिर्वचनीय तथा विश्लेषणातीत अर्थों की अनुगुँज मन में पैदा कर सकता है।"[१४२]

आधुनिक जीवन की जटिल अनुभूतियों को शब्दों में उतारने के लिए वैसी ही भाषा की अपेक्षा है जो समग्र परिवेश के साथ-साथ भावों को भी आत्मसात कर सकती हो। राकेशजी की मान्यतानुसार उस भाषा में जटिलता भी नहीं होनी चाहिए बल्कि सुबोधता, सहजता, संवेदनशीलता उससे अपेक्षित होती है। राकेशजी ने अपने उपन्यासों

की भाषा को पूर्णतः युगीन संवेदना से सिंचित करते हुए उसे आधुनिक भावबोध के स्पंदनों से परिव्याप्त किया है। उनकी भाषा की विशेषता यह है कि यह भाषा जहाँ समसामयिक परिवेश को, उसकी समस्याओं और संवेदनों को उद्‌घाटित करती चलती है, वहीं वह पात्रानुकूल भी है। विभिन्न पात्रों की अलग-अलग मानसिकता एवम् वैचारिकता के अनुसार भाषा की भंगिमा में, उसके उठान में अंतर आता रहता है। यह कार्य एक सजग और कुशल, शब्द-शिल्पी ही सफलतापूर्वक कर सकता है।

'न आने वाला कल' उपन्यास में भाषा-शैली की द्रष्टि से यद्यपि वह रूप नहीं उभरा है, जो 'अंधेरे बंद कमरे' में सशक्त रूप में दिखाई देता है; तथापि रचनाकार ने परिवेश के अनुरूप पात्रों की मनःस्थितियों तथा कथ्य को अभिव्यक्ति देने के लिए जिस भाषा-शैली का प्रयोग किया है, वह प्रशंसनीय है। प्रस्तुत उपन्यास की भाषा में साहजिकता, भाषा का अंतरंग रूप तथा उसकी संप्रेषण शक्ति विशेष रूप से आकर्षित करती है। 'न आने वाला कल' उपन्यास की भाषा-शब्दावली में साहित्यिक आडंबरपूर्ण भाषा का उपयोग न कर तत्सम् लोकभाषा तथा मिश्र शब्दावली का विशेष रूप से उपयोग किया है।

'न आने वाला कल' उपन्यास की भाषा मिश्रित भाषा है। इसमें आया शब्दविधान व्यावहारिक है। उसे बोलचाल से जोड़कर देखा जा सकता है। उपन्यास में एक ओर तो तत्सम् व परिस्कृत शब्दावली है और दूसरी ओर अंग्रेजी, उर्दू-फारसी की शब्दावली को भी महत्त्व प्राप्त है। हाँ तत्सम् शब्द अपने आप ही आये है। अधिकतर बोलचाल या रोजमर्रा की शब्दावली को ही अपनाया गया है। असल में आलोच्य उपन्यास की भाषा का वास्तविक रूप इसी शब्दावली के सहारे निर्मित हुआ है। बोलचाल के शब्दों में बीच-बीच में अंग्रेजी के शब्द ठीक उसी तरह मिल गये हैं जैसे किसी शिक्षित व्यक्ति की भाषा में सभी तरह के शब्द मिल जाते है। लहरों पर लहरों का फैलना तथा बनना-बिगड़ना जैसे एक सहज ढंग से होता रहता है, वैसे ही देशज और तद्‌भव तथा बोलचाल के शब्दों के साथ अंग्रेजी शब्दावली का व्यवहार सहजता से हुआ है।

इस उपन्यास की भाषा में प्रेषणीयता, आत्मीयता, भावानुकूलता, प्रसंगानुकूलता और चित्रात्मकता भरपूर है। इसके प्रायः सभी पात्र शिक्षित हैं। वे मध्यवर्गीय पात्र हैं। उनकी अपनी समस्याएँ हैं और उनकी अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त भाषा सार्थक और अर्थगर्भित प्रतीत होती है। इसी कारण उपन्यास की भाषा में प्रवाहशीलता है, एक

निरंतरता है । दो स्थितियों के बीच के अंतराल को स्पष्ट संकेतित करने के लिए अपनायी गयी भाषा कथ्य के अनुरूप है उसमें अभिव्यक्त कथ्य सीधा और मानव-संबंधों में आयी जड़ता तथा रिक्तता का बोध कराता है । उदाहरणार्थ : "कि कितना फर्क होता है आदमी की एक जगह की जिन्दगी और दूसरी जगह की जिन्दगी में । ये लड़कियाँ जैसी सड़क पर है, वैसी घर पर जाकर नहीं रहेगी । जैसे घर में होंगी, वैसी किसी अकेले कोने में जा खड़ी होने पर नहीं रहेगी । इनमें से हरेक के मन में न जाने कितना कुछ है जिसे वह अकेली ही जानती है । अगर मैं सिर्फ अपने को ही ले लूँ तो न जाने कितना कुछ है मेरे अंदर जिसे मेरे सिवा कभी कोई नहीं जानेगा ।"[१४३]

जहाँ पर पात्र की मनःस्थिति अजनबीपन, कटुता और अकेलेपन से आक्रांत है, वहाँ उसकी भाषा भी तद्नुकूल हो गई है । दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों एवम् कटुता को व्यक्त करने के लिए भाषा की गति शिथिल और शैली का स्वभाव भी खिंचा-खिंचा सा हो गया है । देखिए तो सही ये पंक्तियाँ : "नींद आने तक हम दो अजनबियों की तरह दम साधे पड़े रहते थे । शायद दोनों को यह आशा रहती कि कभी किसी दिन कुछ ऐसा होगा जिससे वह गतिरोध टूट जायेगा – और उस आशा तथा तनाव की स्थिति में ही दोनों सो जाते थे । वह बायें बिस्तर पर बायीं और मैं दायें बिस्तर पर दायीं करवट । कभी गलत करवट में एक का हाथ दूसरें से छू जाता, तो एक शब्द से उसकी गलतफहमी दूर कर दी जाती – सोरी ।"[१४४] स्पष्ट ही यह भाषा पात्रों की मनःस्थिति के सर्वथा अनुरूप है । इसमें दाम्पत्य संबंधों की कटुता और रिक्तता को बखूबी अभिव्यक्ति मिली है । प्रसंगानुकूल होने के साथ-साथ 'न आने वाला कल' की भाषा में प्रेषणीयता भी भरपूर है । चाहे संवाद हों, चाहे किसी प्रसंग या परिस्थिति का वर्णन हो, भाषा में आदि से अंत तक प्रेषणीयता विद्यमान है । शब्द, वाक्य और शैली सभी में यह विशेषता निहित है । प्रेषणीयता का यह गुण उपन्यास की भाषा में इतना अधिक है कि उससे काव्य की गंभीरता और तथ्यपरकता भी अबाध रूप से संप्रेषित होती गई है । उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखिए : "स्कूल एक संस्था है", वह कुछ देर रूका रहने के बाद बोला, "और संस्थाएँ व्यक्तियों से चलती हुई भी व्यक्तियों पर निर्भर नहीं करती । अपनी जगह के लिए एक आदमी बहुत अनुकूल हो सकता है, पर किसी भी जगह के लिए कोई आदमी अनिवार्य नहीं होता । फिर भी एक अनुकूल आदमी अपनी जगह से उखड़ रहा हो, तो उसे समय से सचेत कर देना गलत नहीं है ।"[१४५]

आलोच्य उपन्यास की भाषा में प्रेषणीयता एवम् प्रसंगानुकूलता के साथ–साथ काव्यात्मकता भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । जहाँ कहीं भी राकेशजी को अवसर मिला है या जहाँ भी उनके चिंतन के ऊपर हृदय हावी हो गया है वही पर उपन्यास की भाषा कवित्वमय हो गई है । 'अँधेरे बंद कमरे' उपन्यास की भाषा में तो यह गुण अत्यधिक मात्रा में है ही, यहाँ भी इसका अभाव नहीं है । इसके अंतर्गत सुंदर और स्मरणीय सूक्तियों तथा कथन वक्रताओं का विधान तो है ही, परिवेश का बिंबांकन भी सहयोगी प्रमाणित हुआ है । राकेशजी लिखते है – "मगर जीने से उतरते हुए लगा कि मैं अपने को नहीं, किसी और व्यक्ति को नीचे ले जा रहा हूँ । एक ऐसे व्यक्ति को जो बहुत दिन उस घर में रह चुकने के बाद फिर एक बार चोरी से वहाँ चला आया हो ।"[१४६] इसी प्रकार गतिशील भाषा का एक और प्रयोग देखिए : "रात का कोहरा सुबह तक घना होकर बरफानी बादल में बदल गया था, हालाँकि बरफ पड़नी अभी शुरु नहीं हुई थी । हर हाथ की प्याली से उठती हुई भाप मुँह की भाप से टकराकर कुछ ऐसा आभास देती थी जैसे सीधे भाप की ही चुस्कियाँ ली जा रही हो ।"[१४७]

'न आने वाला कल' की भाषा में आई गतिशीलता को चित्रात्मक भाषा ने और भी अधिक गहरा रंग दे दिया है । इसमें आये परिवेश के चित्र, पात्रों के व्यक्तित्व के व्यंजक चित्र और उनके अनेक प्रसंग ऐसे हैं जहाँ भाषा चित्रात्मक हो गई है । ऐसे स्थानों पर भाषा में अर्थगांभीर्य, प्रसंगानुकूलता और प्रेषणीयता की क्षमता भी अतिरिक्त रूप से नियोजित हो गई है । चित्रात्मक भाषा के उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ ली जा सकती है – "नाम के लिए उसने कंधे पर शाल ले रखा था पर वह इस तरह अलग से झूल रहा था जैसे कंधा एक खूँटी हो जो उसे लटका रखने के काम आता हो ।"[१४८] इन पंक्तियों में एक अस्तव्यस्त एवम् बेपरवाह फूहड़ नारी का बिंब उभर आता है । शब्दों में ही नहीं पूरी–की–पूरी वाक्यावली में भी चित्र उतारने की क्षमता विद्यमान है । कंधे पर लापरवाही से लटकते शाल का सीधे नेत्रों के समक्ष बिंब झूल जाता है । इसी संदर्भ में ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं, जिनमें बरफानी प्रकृति का बिंब बखूबी उतर आया है । इसमें न केवल औचित्य की रक्षा का प्रयास परिलक्षित होता है , वरन् नवीनता भी भरपूर है । यथा – "बाहर हल्की–हल्की बरफ अब भी गिर रही थी । धुनी रूई के उड़ते रेशों जैसी ... खिड़की के चौखटे पर बाहर की तरफ इतनी बरफ जम गयी थी कि वह पूरा बरफ की तख्तियों का बना लग रहा था । मिसेज ज्याफ्रे, जो कोमन रूम के बाहर खिड़की के पास खड़ी उन लोगों से बात कर रही थी, अपने नीले स्कर्ट और रूपहले बालों के कारण उस चौखटे में जड़ी एक तस्वीर की तरह लग रही थी ।"[१४९]

'न आने वाला कल ' उपन्यास की भाषा–शब्दावली में परिष्कृत शब्दावली, लोकभाषा शब्दावली, उर्दू शब्दावली और अंग्रेजी शब्दावली का विशेष प्रयोग किया गया है ।

४.४.३ 'अंतराल' उपन्यास की भाषा–शैली :

भाषा–शैली की द्रष्टि से आधुनिक उपन्यासों में उदारता है । भाषा का सहज रूप इन उपन्यासों में प्रयुक्त होता है । कृत्रिम भाषा पात्रों के स्वभाव और व्यवहार को ढक लेती है । उसके सहज रूप का चित्रण करने के लिए भाषा का प्रकृत रूप वांछनीय है । शैली विचारों का परिधान है और भावों की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम है । शैली के अंदर भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है । भाषा का महत्त्व इतना अधिक है कि शैली में कभी–कभी हम भाषा का ही अर्थ समझ बैठते हैं । कई विद्वानों का कथन है कि उपन्यास में स्वाभाविकता लाने के लिए पात्रानुकूल भाषा होनी चाहिए ।

उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ चित्रण में शैली का विशेष महत्त्व होता है, शैली ही अभिव्यक्ति का एक सफल माध्यम है । उपन्यास की विभिन्न शैलियाँ प्रचलित हैं । कथानक की द्रष्टि से शैलियाँ हैं – प्रत्यक्ष और परोक्ष शैली । समष्टि रूप से शैलियाँ कई हैं, आत्मकथात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, परोक्ष शैली अथवा नाटकीय शैली, पत्रात्मक शैली, डायरी शैली, यथार्थवादी शैली के रूप में मनोविश्लेषणात्मक शैली अधिक प्रचलित है ।

राकेशजी का उपन्यास 'अंतराल' व्यावहारिक भाषा में लिखा गया उपन्यास है । लेखक आजकल भाषा को, अपने भावों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है । 'अंतराल ' भाषा सरल है, जिसमें अंग्रेजी शब्दों का बहुत प्रयोग है । 'अंतराल ' युगानुकूल उपन्यास है । समाज में जिस भाषा का व्यवहार होता है उसी का प्रयोग लेखक ने भी किया है । डॉ. सुषमा अग्रवाल ने ठीक ही लिखा है कि – "समकालीन जीवन के विविध आयामों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस सशक्त भाषा की आवश्यकता थी, अंतराल की भाषा में उतनी ही सामर्थ्य एवम् प्रेषणीयता के दर्शन होते हैं । ... संबंधों की कटुता एवम् वास्तविकता को चित्रित करने में कहीं–कहीं भाषा बहुत तल्ख भी हो गई है । उसमें यथार्थ के बिंब झांकते हैं ।"[१४०]

प्रस्तुत उपन्यास की भाषा का रूप स्थिति, परिस्थिति एवम् पात्र के अनुरूप बदलता रहा है । वह कहीं परिस्कृत है, तो कहीं बोलचाल की भाषा के निकट है, तो कहीं प्रतीकात्मक हो गई है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित अवतरण की भाषा श्यामा की मनःस्थिति की परिचायिका है : "खामोश हो जाने के बाद उसका चेहरा पहले से ज्यादा बात करता लग रहा था । भाव ऐसे जल्दी-जल्दी बदल रहा था जैसे वह खुला समुद्र हो जहाँ कई-कई लहरें उठकर अपने में डूब जाती हों । सतह पर कभी घटा घिर आती हों, कभी नितांत सूनापन घिर आता हों । वह उसके सामने बैठी उससे बात करती हुई भी बिलकुल अकेली हो गयी थी – सीधी नजर से उसे ताकते हुए भी जैसे वह उसे नहीं उसकी जगह अपने अकेलेपन को देख रही थी । ... अपनी जिन्दगी में व्यक्ति के न होने को, और उन 'न होने' को लक्ष्य करके उमड़ते अपने अंदर के दर्द को बाहर बिखर आने से बचाना चाह रही थी ।"[१५१]

स्थितियों का चित्रण भी इतना हो दो टूक है । कुमार द्वारा श्यामा को बाहों में कस लिए जाने की स्थिति का चित्रण राकेशजी ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया है – "पहले उसने अपने पैरों का संतुलन बनाये रखने का प्रयत्न किया क्योंकि कुमार की बाहों ने एकाएक उसे अपने में कस लिया था और उसके होठों को बार-बार चूमते दो होंठ लगातार धौंकनी के-से स्वर में कहे जा रहे थे, 'जीने का अर्थ है ... जीने का अर्थ है ... ।' फिर उसका संघर्ष एक पुरुष के आवेश से बचने के संघर्ष में बदल गया ।"[१५२]

महानगर की यांत्रिकता में जीवन यापित करते हुए व्यक्ति का चित्रण करने में भाषा अत्यंत सफल रही है । "कुर्सी से उठा, तो रीढ़ की हड्डी रोज की तरह अकड़ गयी थी । कनपटियाँ और पपोटे दर्द कर रहे थे । सिर पर जैसे मोटे कागज का खोल चढ़ा था । उसने कई बार पलकें झपकीं कि शायद इस करतब से ही आँखों में कुछ ताजगी लौट आये । फिर जंग खायी मशीन-सा केबिन से बाहर निकल आया ।"[१५३] जंग खायी मशीन का उपमान एक थके-हारे व्यक्ति की स्थिति को साकार कर देता है ।

संबंधों की कड़वाहट और वास्तविकता का चित्रण करने में भाषा में बहुत तीखापन आ गया है । भाषा के तीखेपन को कुमार के इस कथन में देखा जा सकता है : "और जो था, वह था केवल एक डर । बात अपने तक रहे, किसी को पता न चले । जितना सड़ना है, अंदर-ही-अंदर सड़ों । जो जहर चखना है अंदर-ही-अंदर चखो । उसी सड़ाँध और जहर से बच्चे पैदा करो और उन्हें भी उसी ढंग से जीने की शिक्षा दो । अपनी स्वाभाविकता के साथ विश्वासघात करो और ऐसा करने की परंपरा को बनाये

रखो।"[१५४] यहाँ दाम्पत्य जीवन की कृत्रिमता पर तीखा प्रहार किया गया है। यहाँ भाषा की व्यंजक शक्ति प्रभावशाली है। 'अंतराल' की भाषा में एक गतिशील भावुकता भी है। यद्यपि इस भावुकता का एक सीमांत यथार्थ के बिंबों में उलझा हुआ है, और दूसरा रोमानीपन में। हाँ, भाषा के इस गुण में शब्दों ने अपनी ऊपरी केंचुल उतार फेंकी है और वे अपने भीतरी अर्थ के साथ पाठक के सामने आते चले गये हैं – "एक विशेष तरह की गंध जो अँधेरे में उसके पास आकर पलंग पर लेट गयी। वह गंध एक अपरिचित शरीर की भी थी और साँसों में मिली एलकोहल की भी। एकाएक जीवन में दूसरी बार, एक पुरुष की बाहों में कस जाने पर उसका जी क्यों मितलाने लगा था।"[१५५]

प्रस्तुत उपन्यास का परिवेश दो कस्बाती शहर तथा बंबई महानगर का होने से भाषा प्रांजल और निखार-युक्त है। तथापि शब्दावली में तत्सम्, परिष्कृत, लोकभाषा शब्दावली तथा मिश्रित शब्दावली द्रष्टिगत होती है। व्यावहारिक भाषा का उपन्यास में विशेष आग्रह रखा गया है। भाषा, अस्तित्ववादी चिंतन के साथ मानसिकता को व्यक्त करने में समर्थ है और प्रेषणीयता को लिए हुए हैं। "इस उपन्यास की भाषा या तो मानसिक ऊहापोह के संसार में जाती है, या आधे-अधूरे टूटे और खंडित वाक्यों में उसका काफी हिस्सा समाप्त हो जाता है। यहाँ भाषा लगातार मौन में और मौन लगातार भाषा में परिणत होने के लिए बाध्य है।"[१५६]

'अंतराल' आधुनिक व्यवहार की गांभीर्य पूर्ण भाषा में लिखा गया उपन्यास है। इसकी शैली अस्तित्ववादी और मनोविश्लेषणात्मक है। इसकी भाषा में भावानुगामिता और यथार्थ का गहरा स्पर्श है। 'अंतराल' में प्रयुक्त संवादों की भाषा भी मार्मिक और प्रभावी बन पडी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'अंतराल' उपन्यास की भाषा में भाव यथार्थ का स्पर्श, जीवन की सरलता और प्रेषणीयता का गुण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। वह न केवल प्रवाहपूर्ण है, अपितु उसमें प्रतीकात्मकता, व्यंजकता और चित्रात्मकता भी भरपूर है। हाँ, शैली में सपाटता नहीं है। वह उलझन पूर्ण है। जटिल संबंधों की निरूपक भाषा-शैली में एक खिंचाव तो सर्वत्र मिलता ही है। संक्षेप में कह सकते है कि राकेशजी का 'अंतराल' उपन्यास जिस शैली में लिखा गया है वह व्यावहारिक शैली है। उसमें प्रयुक्त भाषा व्यंजकता तथा यथार्थपरक शब्दावली से युक्त है। मनोविज्ञान की शैली में लिखा गया होकर भी यह उपन्यास अपने शिल्प विधान से हमारे मन को छू लेता है।

भाषा और उसका रूप तथा गति रचना का एक ऐसा तत्त्व है जो रचनाकार का नीजि होते हुए भी रचना के अन्य तत्त्वों से निरपेक्ष नहीं रह सकता । रचनाकार की वैयक्तिक विशिष्टता से युक्त होने पर अभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण भाषा वस्तु और विषय के अनुरूप होने को बाध्य होती है । यही कारण है कि उपन्यास के संदर्भ में, भाषा का अध्ययन–विवेचन करते समय देखना पडता है कि वह कथा, चरित्र तथा परिवेश आदि के अनुकूल है या नहीं ? किसी भी रचना की भाषा–शैली उसके कर्ता की अद्धितीयता का प्रमाण होती है या होनी चाहिए; लेकिन मात्र ऐसा होने से ही रचना के प्रति वह या उसका रचनाकार न्याय नहीं करता या कर सकता । भाषा को अनिवार्य रूप से रचना के अन्य तत्त्वों की दशा–दिशा देखकर उनके अनुकूल होना होता है । पहले के उपन्यासकारों में जैनेन्द्रकुमार को रचनाकार की विशिष्टतावाली भाषा शैली के शीर्षस्थ उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है कि भाषा–शैली की जिस विशिष्टता के चलते उनकी कृतियों के अन्य तत्त्व यदि क्षतिग्रस्त नहीं हुए हैं तो पूर्णतः अक्षुण्ण भी नहीं रहे हैं । जबकि उसकी पीढ़ी के दूसरे उपन्यासकार अज्ञेयजी हैं, जो न केवल अपनी भाषा की मौलिकता को बनाये रखते है, बल्कि अन्य कथा–तत्त्वों को भी स्वस्थरूप से विकसित करते हैं, और तीसरें प्रकार के कथाकार भगवतीचरण वर्मा और अमृतलाल नागर हैं जो कथा–तत्त्वों के प्रति ही पूर्णतः समर्पित हैं कि जिनकी भाषा–शैली आग्रहपूर्वक रचनाकार की विशिष्टता को स्थापित नहीं करती ।

हिन्दी उपन्यास के सृजन क्रम में भाषा–व्यवहार के उक्त तीन उदाहरणों को देखते हुए राकेशजी के उपन्यासों की भाषा–शैली का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि वे अज्ञेयजी की कोटि के रचनाकार हैं । एक ऐसे उपन्यासकार जो अपनी भाषा–शैली की विशिष्टता स्थापित करते हुए भी उपन्यास की कथा, चरित्र तथा देशकाल आदि तत्त्वों से उसकी अनुकूलता का भी पूरा–पूरा ध्यान रखते हैं ।

राकेशजी के तीनों उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अंतराल' की कथा स्त्री–पुरुष के निजी संबंधों की कथा है । उनका समग्र औपन्यासिक कथ्य एक शब्द में दाम्पत्य का कथ्य है और इसी कथ्य की यथासाध्य पूर्ण विवेचना हेतु ही अन्य कथ्य भी आये हैं । अतः स्पष्ट है कि उनके उपन्यासों की भाषा–शैली का अध्ययन करते समय सर्वप्रथम यही देखना उपयुक्त होगा स्त्री–पुरुष संबंधों के विवेचन में वह सक्षम है या नहीं ।

राकेशजी के उपन्यासों के लगभग नायक–नायिका नगर या महानगर–निवासी बौद्धिकजन हैं और उनका निजी जीवन एक साथ ही दो स्तरों पर गतिशील रहता है। पहला स्तर है उनकी निजी बौद्धिक स्थितियाँ तथा उनसे उत्पन्न तर्क और तनाव–भरी मनोदशाएँ तथा दूसरा स्तर है उनके देशकाल की गति के दबाव से युक्त आधुनिक व्यस्ततापूर्ण परिस्थितियाँ। ऐसे परिप्रेक्ष्य में आज के इन स्त्री–पुरुषों का निजी जीवन अपेक्षित शांति और आत्मीयता से रहित हो उठा है। विभिन्न अन्य संदर्भों में इन चरित्रों के उक्त जीवन–पक्षों का विवेचन करते समय यह स्थापित किया जा चुका है कि राकेशजी एक उपन्यासकार के नाते अपने प्रयत्नों में सफल रहे हैं। निश्चित है कि उनके ये प्रयत्न भाषा और उसकी शैली विशेष में ही द्रश्य है, अतः यह स्वयं स्थापित हो जाता है कि राकेशजी की भाषा उपन्यास के लिए पूर्णतः उपयुक्त है।

'अँधेरे बंद कमरे' पर द्रष्टिपात करते हुए, आधुनिक कथा–साहित्य के विभिन्न विद्वान समीक्षकों ने भी यह प्रायः एक मत से स्वीकार किया है कि आज के स्त्री–पुरुष संबंधों तथा महानगरीय जीवन के आंतरिक प्रस्तुतीकरण में राकेशजी को पूर्ण सिद्धि प्राप्त है। तब संभवतः यह दुहराने की आवश्यकता नहीं कि उन्हें यह सिद्धि भाषा के द्वारा ही प्राप्त हुई है। अतः यह स्वयं स्पष्ट है कि राकेशजी की भाषा कथा के सर्वथा अनुकूल और उसके पूर्ण प्रस्तुतीकरण में सर्वथा सक्षम है। 'अँधेरे बंद कमरे' के अधिकांश पृष्ठों में अंकित हरबंस और नीलिमा के पारस्परिक संवाद तथा उनके बारे में मधुसूदन की वैचारिक प्रतिक्रियाएँ प्रमाणित करती है कि लेखक इस आधुनिक दंपति के आंतरबाह्य जीवन को अपनी सक्षम भाषा–शैली के द्वारा ही इतनी सहजता और प्रभावकता के साथ उद्‌धाटित कर सके हैं। पूर्व–पृष्ठों में हरबंस, नीलिमा, मधुसूदन, सुषमा, शुक्ला, सुरजीत के महानगरीय भीतरी–बाहरी जीवन के जो विविध उद्धरण संकेत विभिन्न संदर्भों में दिये गये हैं वे प्रकारांत्तर से राकेशजी की भाषा–शैली की सामर्थ्य के ही प्रमाण हैं। इसी प्रकार 'न आने वाला कल' और 'अंतराल' की कथा का भी विवेचन किया जा चुका है। आशय यह है कि राकेशजी के इन तीनों उपन्यासों का विवेचन प्रकारांत्तर से लेखक की भाषा–शैली की इनसे अनुकूलता या इनके प्रस्तुतीकरण में भाषा की क्षमता–अक्षमता का ही विवेचन है। अतः अब ज्यादा अच्छा होगा कि राकेशजी की औपन्यासिक भाषा के कतिपय अन्य पक्षों पर द्रष्टिपात किया जाय।

गतिशील कथाक्रम में कहीं प्रसंगवश और कहीं चरित्र विशेष की परिप्रेक्ष्य में राकेशजी प्रायः भावुक होकर काव्यात्मक वर्णन करने लगते हैं। ऐसे वर्णनों में प्रायः

देखा गया है कि उनकी खड़ी, तीखी और परिपक्व शिष्ट नागरिक भाषा तथा उसकी आधुनिक शैली अनायास ही कोमल–कांत, तरल और सूक्ष्म होकर विभिन्न बिंबों, प्रतीकों और उपमानों का विधान करती हुई एक अच्छी–खासी कविता की भाषा–शैली का रूप धारण कर लेती है । 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अंतराल' के परिवेश का विवेचन करते समय ऐसे पर्याप्त उद्धरण दिये जा चुके हैं जो वातावरण के काव्यात्मक चित्रण के साथ लेखक की भाषा के इस विशिष्ट पक्ष को भी उजागर करते हैं । इसी प्रकार "मोहन राकेश की भाषा–क्षमता तब और भी अधिक पूर्णता प्राप्त करती है जब उनकी यही काव्यात्मक भाषा परिवर्तित प्रसंग में जहाँ एक ओर साहित्य, कला, समाज तथा राजनीति के सिद्धांतों की गंभीर और स्पष्ट कथा प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर पति–पत्नी के परम आत्मीय संबंधों के निबिड़ क्षणों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्तों को पूर्णातिपूर्णरूप में उद्‌घाटित करती है ।"[१५७] यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि राकेशजी ने अपने उपन्यासों में मानसिक तथा भौतिक परिवेश का चित्रण पूरी सफलता के साथ किया है । और ऐसी स्थिति में जब वे चरित्र विशेष के मनोलोक का उद्‌घाटन कर रहे होते है तब उनकी भाषा अधिक अर्थवत्ती, शब्द अधिक सटीक और शैली अधिक संश्लिष्ट हो जाती है तथा जब वे किसी बाहरी द्रश्य के वर्णन में संलग्न होते हैं तब भाषा का खुलापन, शब्दों की संतुलित स्वच्छंदता और शैली की गतिशीलता स्वयं में द्रष्टव्य होती है ।

राकेशजी के उपन्यास साहित्य में भाषा अपनी अर्थगर्भिता द्वारा बिंबों–प्रतीकों का निर्माण करती हुई विभिन्न आयामों की आंतरिकता और मार्मिकता का उद्‌घाटन करती है । उनकी भाषा में दुरुहता और बोझिलपन का कहीं भी एकसास नहीं होता । बल्कि समस्त द्वन्द्व और बोझिलपन का कहीं भी एहसास नहीं होता । बल्कि समस्त द्वन्द्व और संत्रास के भीतर अदम्य जिजीविषा की अपूर्व लय का गुंथन बहुत ही प्रेरक बन पड़ता है । आधुनिक जीवन की विषमताओं को दर्शाने के लिए लेखक ने अत्यंत आडंबरहीन, सरल, बोल–चाल की भाषा का प्रयोग किया है । छोटे और तीखे संवाद समस्त परिवेश की कटुता को एकदम सजीव बना देते हैं । राकेशजी की भाषा के विषय में ओम शिवपुरी का कथन एकदम सत्य है कि ..."वह इनसान किस कदर भाषा की तलाश कर रहा था ।"[१५८]

राकेशजी एक सिद्धहस्त नाटककार भी है इसलिए 'नाटकीय सक्रियता' उनकी भाषा का एक सक्रिय गुण है । नाटकीय सक्रियता अर्थात् भाषा के द्वारा प्रस्तुत व्यक्ति

या स्थिति को जीवंत या क्रियाशील रूप में व्यक्त करना राकेशजी की निजी भाषिक विशिष्टता है । उनके उपन्यासों में अनेक स्थान हैं – विशेष रूप से वहाँ जहाँ लेखक किन्हीं दो चरित्रों के आत्मीय प्रसंगों का वर्णन करता है या परिवेश की स्थिति विशेष का – जहाँ उन्होंने कुछेक शब्दों के द्वारा पात्र की किसी सक्रिय मुद्रा को पूर्णतः रूप में प्रस्तुत कर दिया है, जैसे – "ठक् ठक् ठक् .... पंप को धकेलता हाथ और जलते स्टोव का तेज होता शोर । ... बेसिन में नल के खुलने और बंद होने की आवाज । प्यालियों के धुलने की आवाज ।"[१५९] इसी प्रकार राकेशजी के उपन्यासों के संवादों में भाषा की नाटकीयता या नाटकीय भाषा की विभिन्न मुद्राएँ देखी जा सकती हैं । आशय यह है कि एक नाटककार होने के नाते और भाषा पर पूरी पकड़ रखने के कारण राकेशजी यह भली भाँति जानते हैं कि मुद्रा और भंगिमा से युक्त भाषा किस प्रकार पात्र के भाव विशेष या परिवेश के द्रश्य विशेष को मूर्त और आकर्षक बनाती है । भाषा की अर्थमयता, उत्सुकता, अपेक्षित चुस्ती और सीधा प्रभाव डालने की क्षमता आदि गुण उनके उपन्यासों के संवादों में कहीं भी देखे जा सकते हैं । अपने नाट्य-जगत में राकेशजी 'रंगमंच पर शब्द' की स्थिति, शक्ति, सीमा और संभावना की खोज के प्रति समर्पित थे । अतः यह अनायास ही नहीं कि उपन्यास रचना में भी उन्होंने भाषा के उस मंचीय रूप, उसकी शक्ति और अभिप्रेत को ध्यान में रखा हो ।

अपनी औपन्यासिक भाषा की उपर्युक्त तमाम विशेषताओं के साथ ही राकेशजी अपने भाषा-जगत में कहीं-कहीं हमारा ध्यान अन्यथा रूप में भी आकर्षित करते हैं । कहीं-कहीं ऐसा हुआ है कि उनकी भाषा में अकारण ही पुनर्कथन का दोष आ गया है । तो कहीं-कहीं वाक्य-रचना अशुद्ध होने से वाक्य निरर्थक हो गया है । इसके अतिरिक्त अंग्रेजी काव्य-रचना या वार्ता-शैली के अधिक प्रभावस्वरूप कहीं-कहीं कुछ ऐसे वाक्य भी प्रयुक्त हुए हैं जो न केवल असंगत ही है, बल्कि पढ़ने और सूनने में भी असुंदर प्रतीत होते हैं तथा हिन्दी की प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल है । जैसे मधुसूदन का यह कथन – 'सब कुछ कैसा जा रहा है,' जिसका पूरा प्रश्नोत्तर अंग्रेजी रूप यह है, "हाऊ इज गोइंग ऑल ? ऑल इज गोइंग वेल ।"[१६०] इस प्रकार का भाषिक अनुवाद लेखक की भाषा या रचना-शैली को कौन-सी विशेषता या सुंदरता प्रदान करता है, समझ में नहीं आता । कहीं-कहीं नवीनता के मोह में पर्याप्त विचित्र भाषा का प्रयोग किया गया है तो कहीं-कहीं भाषा अनेक व्यक्त रूप में इतनी दुरूह हो गई है कि सहज ग्राह्यता बुरी तरह बाधित हो उठी है ।

विविध स्तरों पर तथा विभिन्न रूपों में प्रयुक्त राकेशजी की औपन्यासिक भाषा-शैली शिल्प की द्रष्टि से भी पर्याप्त विविधता लिये हुए हैं। उनके तीनों उपन्यासों का रचना-शिल्प इसलिए भाषा के शैलीगत रूप में कोई बहुत अधिक अंतर नहीं है। 'अँधेरे बंद कमरे' तथा 'न आने वाला कल' में क्रमशः मधुसूदन और मनोज प्रथम पुरुष एक वचन में अधिकतर निजी कथन, विचार, कल्पना या प्रतिक्रिया-स्वरूप व्यक्तिपरक आत्मीय और चिंतन-प्रधान शैली का प्रयोग करते हैं; लेकिन जहाँ वे किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति के बारे में सोच या लिख रहे होते हैं वहीं उनकी रीति वस्तुगत, तटस्थ तथा वर्णनात्मक हो उठती है। फिर इन दोनों उपन्यासों में वस्तुगत और तटस्थ भाषा-शैली बहुत कम है और उसका एक मात्र कारण व्यक्ति विशेष द्वारा निजी तौर पर कथा-वाचन है जो कितना भी वस्तुगत होकर भी चीजों से अपना पूरा संबंध विच्छेद नहीं कर पाता। हाँ, तीसरे उपन्यास 'अंतराल' में अवश्य ऐसा रचना-शिल्प न होने से लेखक या किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा कथा-स्थितियों और चरित्रों का वर्णन करने से शैली में थोड़ी-बहुत तटस्थता आ गई है। विवरण, कथोपकथन, व्याख्यान, पूर्व-स्मृति-उद्धरण, स्वप्न-वर्णन, पत्र, डायरी, चित्रपटशैली, भावी काल्पनिक चित्र आदि विविध शैलियाँ और तद्नुरूप बदले हुए भाषिक रूपों के प्रयोग नहीं है। उक्त लगभग सभी रूप-प्रयोग उनके पूर्ववर्ती अज्ञेयजी आदि के उपन्यासों में बहुत पहले हो चुके हैं। हाँ, भाषा और उसकी शैली के प्रति एक सजग व्यवहार राकेशजी की रचनाओं में अवश्य है जो उन्हें इस क्षेत्र में अपने समकालीनों में विशिष्ट बनाता है।

राकेशजी ने अपने उपन्यासों में भाषा की जो विभिन्न शैलियाँ प्रस्तुत कि है, मेरे विचार से, वे उनकी रचनाओं की अपेक्षा कलात्मक, आकर्षक और प्रभावशाली ही बनाती है। साथ ही लेखक के भाषा-व्यवहार के कौशल को भी प्रमाणित करती है। "मोहन राकेश के उपन्यासों में उनकी भाषा चरित्र और परिवेश के अनुकूल प्रयुक्त होकर एक तरह से पात्रों और उनसे संदर्भित वातावरण का सृजन करती चलती है।"[९१]

उपर्युक्त विवेचन के अंतर्गत समाहार रूप से राकेशजी की औपन्यासिक भाषा की रचना के संदर्भ में समीक्षा के साथ-साथ यथा अवसर यह भी स्पष्ट किया गया कि भाषा लेखक की निजता का प्रमाण है या प्रचलन के अनुकूल। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सन् १९५०-६० के दशक में सक्रिय हिन्दी के आधुनिक कथाकारों में विशिष्ट राकेशजी, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, शानी जो नयी कहानी आंदोलन से जूड़े रहे, प्रायः एक समान भाषा-शैली के ही प्रस्तुतकर्ता रहे। इनमें शैलेष मटियानी, शेखर जोशी,

मार्कंडेय, रेणु आदि कुछ कथाकार जो देश के किसी अंचल विशेष को अपनी रचना–भूमि बनाये रहे। भाषा–शैली की द्रष्टि से पृथक और विशिष्ट रहे, अन्यथा नगर या महानगर के जीवन को चित्रित करने वाले प्रायः सभी उपन्यासकार उन्नीस–बीस के अंतर के साथ एक–जैसी भाषा–शैली को ही प्रयोग में लाते रहे। फिर भी राकेशजी के उपन्यासों में यथा–स्थान उनकी निजी भाषा–शैली के दर्शन होते है।

४.६ कथोपकथन :–

कथोपकथन अथवा संवाद तत्त्व का समावेश उपन्यास में मुख्यतः कथानक का विकास करने, पात्रों की व्याख्या करने तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया जाता है। उपयुक्तता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, संबद्धता, अनुकूलता, मनोवैज्ञानिकता तथा भावात्मकता कथोपकथन के मुख्य गुण हैं जिन पर उसकी सफलता निर्भर रहती है। राकेशजी एक सिद्धहस्त नाटककार है इसलिए नाटकीय सक्रियता उनकी भाषा का एक सक्रिय गुण है। नाटकीय सक्रियता अर्थात् भाषा के द्वारा प्रस्तुत व्यक्ति या स्थिति को जीवंत या क्रियाशील रूप में व्यक्त करना राकेशजी की निजी भाषिक विशिष्टता है। उनके उपन्यासों में अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ दो चरित्रों को आमने–सामने रख उन्होंने कथोपकथन के माध्यम से रसिकता और जीवंतता लाने का प्रयत्न किया और उसमें उन्हें तात्त्विक रूप से भी सफलता प्राप्त हुई है।

राकेशजी सफल उपन्यासकारों की श्रेणी में आते हैं, इसमें मुख्य हाथ उनके रचना शिल्प और संवाद का है। राकेशजी प्रमुखतः नाटककार हैं, संवाद लिखने में माहिर हैं। कहानी हो या उपन्यास उनकी संवाद कला गतिशील, सहज, चरित्रोद्घाटक व प्रवाही है। यही संवाद तत्त्व उनके अनेक कमजोर तत्त्वों को ढ़क देता है।

'अँधेरे बंद कमरे' अस्तित्ववादी भूमिका पर लिखा गया व्यक्तिवादी उपन्यास है। इसमें सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा वैयक्तिकी पर बल दिया गया है। नए उपन्यासकारों की मुख्य चिंता आधुनिक जीवन के जटिल ताने–बाने में व्यक्तित्व की सही खोज करना है। यही कारण रहा कि संवाद मनोविश्लेषणात्मक और आत्मविश्लेष्ण को प्रस्तुत करने लगे हैं। इसके संवाद कथा सम्बद्ध और गत्वरता से युक्त हैं। राकेशजी की कलम से वही शब्द उद्धृत हुए हैं जिनमें स्पंदन है, भावों की गहनता है। ऐसा लगता है मानों उपन्यासकार का मानस अर्थपूर्ण शब्दों का खजाना है जो कहीं से भी शब्दों का चयन कर लेता है। इस उपन्यास की भाषा काव्यात्मक, भावात्मक,

संगीतात्मक, संवेदनशील है तथा यथार्थ की वाहिका, जटिल मनःस्थितियों की सहज विश्लेषिका के रूप में भी विद्यमान है। 'अँधेरे बंद कमरे' में कथोपकथन का काफी निखार–युक्त शिल्प दृष्टिगत होता है। लम्बे कथोपकथन का उपयोग नहींवत् हुआ है। जहाँ कथोपकथन का विधान किया गया है वे पात्रानुरूप, स्वाभाविक, चोटदार और मार्मिकता को लिए हुए हैं। पात्रानुरूप संवाद की दृष्टि से मधुसूदन इबादत अली और खुरशीद के संवाद को लिया जा सकता है –

"कहिये !"
"मैं मियाँ साहब से मिलने के लिए आया हूँ।"
"फरमाइये !"
"मैं अक्सर रात को आपका सितार सुना करता हूँ।"
"अब्बा, ये निचली मंजिल में हमारी वाली कोठरी में रहते हैं।"
"आइये, तशरीफ रखिये," मियाँ ने कौर तोड़ते हुए कहा।
"... आप भी थोड़ा–सा नोश फरमाएँ।" [१६२]

चुहल, हँसी–मजाक तथा पात्रों के व्यक्तित्व का परिचायक संवाद ठकुराइन और अरविन्द के बीच में रोचक बन पड़ा है –

"ठकुराइन, तर माल तो तुम सब ठाकुर साहब को दे देती हो, हमारे आगे तो जो रुखा–सूखा बच जाता है, वही रख देती हो।"
"अभी तुम तर माल के लायक हो कहाँ, लाला ?"
"तुम तो ठकुराइन सारी उम्र हमें बच्चा ही बनायें रखोगी।"
"जब खाने लायक हो जाओगे, तो माँगकर नहीं खाओगे, ... जहाँ पतीली देखोगे, वहीं मुँह मारने लगोगे।"
"इस तरह कहीं मुँह मारेंगे, तो जूती नहीं खाएँगे।" [१६३]

इस प्रकार मधुसूदन और ठकुराइन के बीच में जो कथोपकथन है, उसमें आत्मीयता का भाव बहुत ही स्वाभाविक है। इरावती में मधुसूदन को नौकरी मिलने पर ठकुराइन को विशेष खुशी होती है।

नीलिमा और हरबंस के कथोपकथन चरित्र–व्यंजक तथा कथानक के विकास में विशेष सहायक हुए है। दोनों के कथन जहाँ मानसिक कुढ़न, तनाव और उत्तेजना को व्यक्त करते हैं वहीं साथ ही एक–दूसरे से उखड़ते जा रहे हैं, इसके भी ये व्यंजक हैं –

"तुम किसी से भी पूछ लो।"

"मुझे किसी से पूछने की क्या जरूरत है।"

"तुम हर समय अजीब बातें करते हो !"

"हा-हा ... !"

"अह यह 'हा-हा' 'हा-हा' क्या किये जा रहे हो ?"

"तुम अपनी जबान को ताला क्यों नहीं लगाती ?"

"तुम्हारा बस हो, तो तुम दुनिया-भर की जबान को ताला लगा दो।"[१६४]

हरबंस कटु दाम्पत्य-जीवन से थक जाता है। अपने मानसिक तनाव से मुक्त होने के लिए वह डाक्टरेट करने के बहाने अचानक ही लंदन जाने का निर्णय ले लेता है। लंदन जाने के बाद भी हरबंस मानसिक अशांति से मुक्त नहीं होता है। इसलिए नीलिमा को वहाँ बुला लेता है। लंदन में आर्थिक स्थिति अच्छी न होने से नीलिमा युरोप की ट्रिप में नृत्य करने के लिए सम्मिलित हो जाती है। हरबंस इसके लिए पहले उससे दुबारा ट्रिप में न जाने का वचन लेता हैं तभी सम्मत होता है। उस स्थिति एवम् दोनों पात्रों की मानसिकता को व्यक्त करता एक संवाद –

"देखो, तुम मुझे वचन दे रही हो !"

"मैंने कह दिया है कि नहीं कहूँगी !"

"यह बात भूल तो नहीं जायेगी ?"

"तुम अब सवाल पूछना बंद नहीं करोगे ?"[१६५]

कॉफी हाउस में अनेक चर्चाएँ चलती हैं, उनमें से 'नयी कांशसनेस' पर काफी बहस चलती है। बृजेन्द्र खन्ना तथा कवि श्रीनिवास के बीच में इस पर एक उत्तेजनात्मक वाद-विवाद चल पड़ता है –

"मैं तो समझता हूँ कि नई कांशसनेय हो या पुरानी, सब बेकार हैं।"

"तब तो तुम साहित्य को भी बेकार चीज मानोगे !"

"उसमें मानने-न-मानने को क्या है ? उसमें रखा ही क्या है ?"

"इसका मतलब है कि तुम्हारे लिए जिन्दगी का भी कोई अर्थ नहीं।"

"जिन्दगी का अर्थ ! " खन्ना हँस देता है – "यह मैं नई बात सुन रहा हूँ कि जिन्दगी में कुछ अर्थ भी है।"

"तुम्हारा दृष्टिकोण ध्वंसात्मक है।"[१६६]

इसी प्रकार 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास के संवाद काफी मनोरंजक, व्यंग्यात्मक, नाट्य भंगिमा को लिए हुए तथा पात्र के व्यक्तित्व के व्यंजक हैं।

'न आने वाला कल' उपन्यास में कथोपकथन की योजना द्वारा उपन्यास में आकर्षण, सजीवता तथा जिज्ञासावृत्ति की वृद्धि विशेष रूप से हुई है। उपन्यास की मूल संवेदना संवादों द्वारा मुखरित हुई है। मनोज एक दिन स्कूल में पार्टी होने के कारण देरी से घर की ओर आता है कि रास्ते में ही शोभा कहने लगी –

"मुझे तुमसे कुछ जरूरी बात करनी थी।" मनोज ने आग्रह रखा, घर जाकर बातें करेंगे, लेकिन शोभा तैयार न थी। इस लिए मनोज ने कहा, "तुम्हें जो कुछ भी कहना है, यहीं पर कह डालो।"[१६७]

इस कथोपकथन में दोनों ही पात्रों की कुंठित मानसिक स्थिति व्यक्त हुई हैं। और इस कुंठा को चुपचाप सहन न कर पाने के कारण युद्धविराम के अंत में लक्षण स्पष्ट होता है। मनोज और बोनी हॉल दोनों सड़क पर टहलने निकलते हैं। दोनों गुम-सुम चलते हैं और फिर एक-दूसरे की बेचैनी को समझने की कोशिश करते हैं। इसी संदर्भ में दोनों का संवाद नायकीय भंगिमा को लिए हुए है –

"हमने इस सड़क पर आकर अच्छा नहीं किया।" मैंने कहा।
"क्यों ?"
"... मैंने नहीं सोचा था कि तुम मुझे ऐसी मनःस्थिति में मिलोगी।"
"तो क्या सोचा था ?"
"तुम लौट चलना चाहते हो ?"
"नहीं।"
"तो इस तरह मुँह लटकाकर मत चलो।"[१६८]

यह संवाद दोनों पात्रों की उस स्थिति को व्यक्त करता है, जहाँ दोनों ही जीवन-चैतन्य के अभाव में प्रकृति का सौख्य वातावरण होते हुए भी मानसिक स्थिति का दबाव सरसता को भी नीरसता में बदल देता है।

मनोज जाने पूर्व सामान की व्यवस्था कर रहा है, तब तक समय पूछने के बहाने कोहली की पत्नी शारदा नीचे आ जाती है। शारदा बतलाने लगती है, मैं इसे छोड़कर

दूसरी शादी करूँगी, क्योंकि आज ही कोहली ने शारदा की बहुत पिटाई की थी । तब मनोज कहता है –

"और जो फैसला करना हो, ठीक से सोच–समझकर करना चाहिए ताकि..."

"मैंने सब सोच–समझ लिया है जी, इतने दिन इसके साथ रह लेने के बाद भी अभी सोचना–समझना बाकी है ? अगर आप देखें कैसे इसने मेरी हड्डीपसली एक की है आज, "[१६९]

प्रस्तुत संवाद द्वारा भी यथार्थ स्थिति का उद्‌घाटन सुंदर ढंग से हुआ है । मनोज के त्यागपत्र ने वहाँ सभी के अंदर एक तहलका मचा दिया । सभी अपने–अपने दृष्टिकोण से अस्तित्व–चिन्ता को ध्यान में रखते हुए शंका–कुशंका उठाने लगते हैं । मिसेज पार्कर की मनःस्थिति द्रष्टव्य है –

"फिर भी तुम कहते हो कि यहाँ कुछ होनेवाला नहीं है ?"

"क्यों ? एक आदमी के त्यागपत्र दे देने से..."

"इतने मासूम मत बनो । कम से कम मुझे तो तुम बता ही सकते हो । तुम्हें पता है, मैं यहाँ किसी चीज के लेन–देन में नहीं हूँ ।"

"मेरे पास बताने को कुछ हो तब न !"

"तुमने इसलिए त्यागपत्र नहीं दिया कि ..."

"किसलिए ? "[१७०]

इस उपन्यास में अनेक कथोपकथन उपन्यास की कथावस्तु को आगे बढ़ाने में तथा पात्रों के चरित्र की विशिष्टताओं को व्यक्त करने में विशेष रूप से सफल रहे हैं ।

'अंतराल' उपन्यास की मूल संवेदना कथोपकथन के द्वारा ही व्यक्त हुई है । संवाद संक्षिप्त, तथ्यपूर्ण और आकर्षक हैं, जिनमें नाट्य भंगिमाओं के भी दर्शन होते हैं । श्यामा के 'कल्पना लोक' का एक संवाद द्रष्टव्य है, जब कि शोभा कुमार को पूछती है, क्यों हँसते हो ?–

"आदत है हँसने की ।"

"अच्छी आदत नहीं है ।"

"क्यों ?"

"लगता है मजाक बना रहे हो ।"

"तुम्हारा सचमुच ख्याल है मैं उससे मिलने के लिए आया हूँ ?"[१७१]

इस संवाद के द्वारा श्यामा की मानसिकता सुंदर ढ़ंग से व्यंजित हुई है। सीमा के पीकर आने पर बीजी इस तथ्य को गोपन रखने की दृष्टि से सीमा को अपने कमरे में सुलाना चाहती है, उस समय बीजी और सीमा के बीच का संवाद नाटकीय भंगिमा लिए हुए है –

"मैं मिन्नत से कह रही हूँ। आज की रात मेरे कमरे में सो जा।"
"उस कमरे में मुझे नींद नहीं आती।"
"आहिस्ता बात कर। वह जाग जायेगी।"
"जाग जाये। तुम मेरा हाथ छोड़ दो।"
"मुन्नी"[१७२]

कुमार और श्यामा दोनों ही टी–सेन्टर पर जाकर पहले औपचारिक बातें करते हैं और धीरे–धीरे व्यक्तिगत चर्चा पर आते हैं। श्यामा ने कहा –

"एक बार अपने को सुलझा क्यों नहीं लेते ?"
"... किसी मानसिक चिकित्सालय में जाकर ?"
"मेरा मलतब है यह अकेलापन कब तक ढोओगे ?"

इस कथोपकथन के माध्यम से जहाँ अरस–परस के भावों का आदान–प्रदान हुआ है, वहीं कथावस्तु आगे बढ़ाने के लिए एक नई दिशा लेती है। दोनों के मन का अकेलापन और सूनापन व्यक्त होता है। वस्तुतः राकेशजी संवाद लिखने में माहिर थे। उनके प्रत्येक उपन्यास का संवाद तत्त्व सराहनीय है।

४.७ उद्देश्य :–

उपन्यास का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है – उद्देश्य। आविर्भाविन हिन्दी उपन्यास मुख्यतः मनोरंजन तथा उपदेश के लिए लिखे जाते थे। आधुनिक उपन्यासों में इस तत्त्व के प्रति लेखकों का विशेष आग्रह मिलता है। इसीलिए वर्तमान युग का उपन्यासकार ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक क्षेत्रीय उद्देश्य से उपन्यास की रचना करता है। नीति शिक्षा, मनोरंजन, कौतूहल सृष्टि, सुधार भावना, हास्य सृष्टि, समस्याओं का चित्रण, जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण आदि तत्त्व उद्देश्य के रूप में

आधुनिक युग में विकसित हुए है। इस प्रकार से उपन्यास का स्वरूप हिन्दी साहित्य में निरंतर विकासशीलता का द्योतन करता हुआ अपने भावी विकास की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता है। राकेशजी के सभी उपन्यास मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं को उजागर कर रहे हैं।

'अँधेरे बंद कमरे' में राकेशजी बहुआयामी उद्देश्य लेकर चले है। उन्होंने इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांस्कृतिक, राजनीतिक गतिविधियों व दांवपेचों को, जन-जीवन की असंगति, तनाव व पीड़ा को उभारा है। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि आज मनुष्य का जीवन कितना कृत्रिम व तनावपूर्ण है। उन्होंने अपने इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हरबंस और नीलिमा के माध्यम से दाम्पत्य जीवन के तनाव, पीड़ा आदि का मनोवैज्ञानिक शैली में बड़ा सुंदर चित्रण किया है। उन्होंने यह स्पष्ट करना चाहा है कि आज मनुष्य स्वयं में शून्यता अनुभव कर रहा है वह स्वयं को पराजित, बिखरा हुआ समझता है। पति-पत्नी के मधुर व पावन संबंधों का उद्देश्य समाप्ति पर है, दोनों एक दूसरे के प्रति अविश्वासी हो गए हैं। राकेशजी ने हरबंस व नीलिमा के माध्यम से दाम्पत्य जीवन को प्रगाढ़ रिश्ते और उसकी विडम्बनाओं को चित्रित किया है। एक ही छत के नीचे रहते हुए भी वे अजनबी हैं उन्हें एक दूसरे से बात करने तक की फुरसत नहीं है। यहाँ राकेशजी ने अस्तित्ववाद की मान्यता पोषित की है। उनका नायक हरबंस सहअस्तित्व के नरक को भोगने के लिए विवश है। अस्तित्व का यह संघर्ष उपन्यास के मधुसूदन, नीलिमा, सुषमा श्रीवास्तव आदि पात्रों में भी हैं। सभी सहअस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। वस्तुतः राकेशजीने आधुनिक युग की पीठिका पर सहजीवन की यंत्रणा का चित्रण किया है तथा संबंधों की ऊब, खोखलापन, तनाव आदि को अस्तित्ववादी आधार पर स्पष्ट किया है। 'अँधेरे बंद कमरे' में राकेशजी ने 'आत्मसंतोष' जैसे मानवीय तत्त्व को स्थान दिया है। आज की इस भागती दौड़ती भौतिक सभ्यता में मनुष्य असंतोषी हो गया है, उसकी आवश्यकताओं का कोई ओर-छोर नहीं रहा है। आत्मसंतोष से सभी समस्याएँ हल हो सकती हैं। असंतोष तो व्यथा ही उत्पन्न करता है। नीलिमा के माध्यम से लेखक ने असंतोष से उत्पन्न भटकन व डर को दर्शाया है। दिग्भ्रमित और महत्त्वाकांक्षी स्त्री नीलिमा जिन्दगी में मिली हुई वस्तुओं की परवाह न कर और ज्यादा प्राप्त करने हेतु मृगतृष्णा के पीछे भटकती रहती है उसे कहीं आत्मसंतोष नहीं होता, उसका मन असंतोषी ही रहता है।

अंततः स्पष्ट हो जाता है कि 'अँधेरे बंद कमरे' एक परिवार व परिवार के दम्पति की कहानी है इसमें उस परिवार की समस्त असंगतियों, विडम्बनाओं की अस्तित्ववादी शैली में अभिव्यक्ति हुई है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के समाज में रहनेवाले व्यक्ति की पारिवारिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक जन-जीवन की पीठिका पर लिखा गया यह उपन्यास राकेशजी के औपन्यासिक रूप को उजागर करनेवाली श्रेष्ठ कृत्ति है।

'न आने वाला कल' उपन्यास का नायक मनोज मिशनरी स्कूल का जागरुक अध्यापक है जिसका जीवन संघर्षमय है। यथार्थ की मार सहन करते हुए भी वह अपने स्वाभिमान को, अपने अस्तित्व को बचाए हुए हैं। वह सदैव अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रति बेचैन है। अपने अस्तित्व पर किसी भी प्रकार का प्रहार उसके लिए असहनीय है, फिर वह चाहे उसकी पत्नी शोभा हो या साथ काम करनेवाली बॉनी। इसी अस्तित्व की रक्षा हेतु उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया है। उपन्यास की नायिका अपने पूर्व पति की मृत्यु के पश्चात् मनोज से विवाह करती है किन्तु तालमेल नहीं बिठा पाती। दोनों पति-पत्नी का स्वातंत्र्य बोध आड़े आता रहा, एक भी झुकना नहीं चाहता। दोनों ही अपने-अपने ढ़ंग से जीना चाहते हैं। शोभा पर अपने पूर्व पति और ससुराल की छबि है वह उसी ढ़ग से रहना चाहती है। वह भी अपने अस्तित्व रक्षण के प्रति जागरुक है। वह साहसी, निर्भीक और घरेलू जीवन जीना चाहती है। वह एक घरेलू नारी के रुप में रहना चाहती है। वह स्वतंत्र विचारों की अस्तित्ववान नारी है।

स्कूली परिवेश में लिखे गये इस उपन्यास में स्कूल के सभी अध्यापक व सदस्य विषाद, ऊब एवम् अकेलेपन के वातावरण में स्वयं को जबरदस्ती घसीटते प्रतीत होते हैं। इस उपन्यास में व्यक्ति व्यक्ति के संबंधों, दाम्पत्य जीवन की कटूता व विसंगतियों की अभिव्यक्ति है। आज प्रत्येक व्यक्ति का मन अनेक यंत्रणाओं के बीच दबा हुआ है उसका मानस दर्पण टूटकर बिखर चुका है। ऐसी स्थिति में भी वह अपने अस्तित्व की रक्षा के प्रति चिंतित है। अस्तित्व की चिंता व भावी कल के प्रति अनजाने प्रश्नों से घिरे होने की स्थिति का चित्रण ही इस उपन्यास का उद्देश्य है। हेडमास्टर मि.टोनी व्हिसलर के अत्याचारों से समस्त अध्यापक वर्ग दुःखी है, फिर भी सहना पड़ रहा है। मनोज हेडमास्टर से नहीं डरता। सभी को अपने न आने वाले कल की चिन्ता है। स्पष्टतः सबकी एक ही तलाश है, एक ही बिन्दु पर दृष्टि केन्द्रित है वह है न आने वाला कल।

अंततः निर्विवाद रुप से 'न आने वाला कल' उपन्यास आधुनिक जीवन की विसंगतियों, मानव संबंधों व उसमें आए तनाव आदि को अभिव्यक्ति से रंजित

अस्तित्ववादी भूमिका पर लिखा गया है। मानवीय एकांतता, ऊब, उलझन, व्यक्ति की छटपटाहट का राकेशजी ने बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से चित्रण किया है। राकेशजी का यह एक सफल कथा प्रयोग है जिसमें निर्णय तो एक है, किन्तु उसकी प्रतिक्रियाएँ अनेक हैं।

" 'अंतराल' एक ऐसे सर्जक का सर्जन है, जिसमें उसका युग और उससे संबंधित सभी संदर्भ यथार्थ शैली में अभिव्यक्त हुए हैं। अंतराल युग-दर्पण में पड़ी समस्त छवियों का लेखा जोखा प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है।"[१७३] राकेशजी के उपन्यास आधुनिक उपन्यास साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धि है। 'अंधेरे बंद कमरे' में दिल्ली महानगर के परिवेश में व्याप्त विषमता, स्त्री-पुरुषों के संबंधो की कटु अनुभूति की अभिव्यक्ति हैं। 'न आने वाला कल' स्कूली जिन्दगी पर आधारित अस्तित्ववादी चेतना का उपन्यास है। उसी प्रकार 'अंतराल' की मूल चेतना भी अस्तित्ववादी है जिसमें स्त्री-पुरुषों के मध्य घटनेवाली जटिल व सरल दोनों ही अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक शैली में चित्रण राकेशजी का उद्देश्य है। इसमें पति-पत्नी के एक दूसरें को झेलते जाने का यथार्थ चित्रण है। वर्तमान युग में नारी-पुरुष के संबंधों की जटिलता व विकसित होते नामहीन रिश्ते को प्रदर्शित करना इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है।

स्त्री-पुरुषों के संबंधों के साथ-साथ एक विधवा स्त्री का अपनी सास-ननद के संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है। प्रतिमाह कुछ रुपया भेजने कारण सास ननद के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है। इस उपन्यास की यह नारी पात्र श्यामा की ननद सीमा है जो फेशनेबल, चंचल एवम् शोख है। वह जिन्दगी अपने ढंग से जीने की आदी है, निडर है। रुपगर्विता सीमा पीने-पीलाने का शौक रखती है और क्लबों में भी जाती है। यह उपन्यास का एक ऐसा जीवन्त पात्र है जिसकी जिन्दादिली से पाठक पर अमिट प्रभाव छूट जाता है।

'अंतराल' में प्राचीन आदर्शों के प्रति कोई मोह नहीं है। इसमें यथार्थ रुप में आधुनिक मानव संबंधों की कहानी चित्रित है। इसमें मुख्यता 'सेक्स' तथा मानवीय संबंध जो केवल सहने के संबंध हैं चित्रित किए गए हैं। स्त्री पुरुष का संबंध इस उपन्यास का प्रमुख विषय है। हमारे समाज में स्त्री-पुरुष का संबंध एक ज्वलन्त समस्या बन गया है। इस उपन्यास में श्यामा-कुमार का संबंध, श्यामा-प्रो. गोपाल का आपसी आकर्षण, श्यामा-देव का संबंध, कुमार-लता, कुमार-उसकी पत्नी, सीमा-उसके पुरुष मित्रों प्रत्यक्ष व परोक्ष रुप से इसी समस्या को लिए हुए हैं। आधुनिक मानव संबंधों की कहानी पारिवारिक व वैयक्तिक मानव संबंधों की कहानी है। आज संबंध

भौतिक आवश्कता पर टिके हैं। राकेशजी ने इन भौतिक संबंधों का अति सूक्ष्मात्मक विश्लेषण किया है। साथ ही मानव जीवन का भी अति सूक्ष्मात्मक विश्लेषण किया है। मानव जीवन अनेक दुर्बलताओं व विसंगतताओं का भंडार है। भूख के समान भोग भी मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। उपर से सरल, व सदाचारी व्यक्ति के अंदर नारी रूप के प्रति उत्कंठा होती है। स्त्री पुरुष का आकर्षण चिरंतन है। इसी उद्देश्य को राकेशजीने 'अंतराल' में बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से दर्शाया है।

५.८ शीर्षक :-

साहित्यशास्त्र के आचार्यों के मतानुसार किसी ग्रंथ का नामकरण बहुत ही सावधानी के साथ अच्छी तरह सोच-विचार कर किया जाना चाहिए। साहित्यशास्त्र के पण्डितों के मतानुसार शीर्षक के द्वारा ही उसका स्वरूप; वर्ण्य-विषय एवम् मंतव्य स्पष्ट हो जाना चाहिए। किसी भी ग्रन्थ का नामकरण चार प्रकार से किया जा सकता है, यथा - (१) नायक अथवा नायिका के नाम पर, (२) किसी मुख्य घटना के आधार पर, (३) किसी घटना-स्थल के नाम के आधार पर, (४) ग्रन्थ में निहित संदेश अथवा उसके उद्देश्य के आधार पर। इस संबंध में एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है। उपन्यास के शीर्षक यानी नामकरण में कम से कम शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। केवल एक शब्द वाला नाम सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। वैसे आवश्यकतानुसार उपन्यास के शीर्षक के नामकरण में तीन शब्दों तक का नाम स्वीकार किया जा सकता है।

'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। इस उपन्यास का शीर्षक अपनी प्रतीकात्मकता को सार्थक करता है। 'अंधेरे बंद कमरे' में नीलिमा और हरबंस की मनःस्थितियों को स्पष्ट करने के लिए कस्बाती एवम् शहरी जीवन के परिदृश्यों के अंकन में प्रतीक योजना का सफल प्रयोग हुआ है। महानगरीय परिवेश में मानवीय संबंधों की अर्थहीनता और अजनबीपन के शिकार हरबंस और नीलिमा की गलतफहमी क्रमशः बढ़ती जाती है। ऊपर से आर्थिक समस्या से मानसिक तनाव, खोखले अधिकार की टकराहट तथा जीवन के व्यर्थताबोध से स्थिति और भी बदतर हो जाती है। न केवल समकालीन नारी-पुढष ही इस पीड़ा, घुटन और संत्रास का सामना करते हैं, बल्कि हरबंस का पुत्र अरूण जैसी अगली पीढ़ी को भी प्रभावित करते है। इसी प्रकार मधुसूदन, सुषमा, इबादत अली, ठकुराइन, शिवमोहन आदि उपन्यास के कई अन्य पात्र भी महानगरीय परिवेश के दबाव में बिखर जाते हैं और उस बिखराव में भी जीवित

रहकर युग-जीवन की यंत्रणा झेलते पाये जाते हैं। यहाँ तक कि इबादत अली की लड़की का निकाह नहीं हो पाता और वह कुआँरी माँ बनकर समाज से दूर भागने पर मजबूर हो जाती है। इस प्रकार अन्य अनेक समस्याओं को पैदा होने और पनपने का अवसर मिलता है और लगभग उपन्यास के सभी पात्र अँधेरे बंद कमरे में फँसे घुटन और अंतर्द्वन्द्व का अनुभव करते पाये जाते हैं। पात्रों के व्यक्तित्व के विकास के अवसर उपन्यास में बहुत कम हैं क्योंकि सभी पात्र अपनी अपनी भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की बैसाखियों का सहारा लेकर जहाँ तक चल पाते हैं वहीं बंद कमरों में बहुत जल्द कैद हो जाते हैं। हरबंस और नीलिमा जिस कमरे में कैद हैं उससे बाहर जाने का रास्ता उन्हें मालूम नहीं। सभी पात्र एक निराशामय अंधकार युक्त परिवेश से घीरे होने के कारण इस उपन्यास का शीर्षक यथार्थ प्रतीत होता है।

स्कूली परिवेश पर लिखा गये उपन्यास 'न आने वाला कल' का शीर्षक टूटते मानव संबंधों की छटपटाहट की यथार्थता का बोध कराता है। राकेशजी का यह कथा प्रयोग अस्तित्ववादी विचारधारा से प्रभावित है। आधुनिक समाज के ढ़ाँचे को देखते हुए भावी जीवन का कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता। जो आज विद्यमान है वह कल हो या न हो। मनुष्य या उसका कल। कुछ भी नियंत्रित नहीं है। यांत्रिक जीवन व बौद्धिकता की निष्प्राणता के कारण आज जीवन अस्थिर हो गया है। एक अडिग जड़ता छायी हुई है। अस्थिरता व अनिश्चितता के मध्य पिसती जिन्दगी का भविष्य अभिशप्त प्रतीत होता है। आज ऐसा किसी राह का अन्वेषण नहीं हो रहा जिसके आधार पर मनुष्य अपना कल, अपना भावी निश्चित कर सके। प्रतिदिन की बढ़ती अकुलाहट, शून्यता तथा एकाकीपन ने मानवीय दृष्टि एवम् चिंतन को धुंधला बना दिया है। राकेशजी ने इस पीड़ा को जाना है, भोगा है, अनुभव किया है और इसी आधार पर इन सब समस्याओं को अपने 'न आने वाला कल' उपन्यास में पिरों दिया है। अस्तित्व की समस्या तथा दाम्पत्य संबंधों की निरंतर बढ़ती कटुता को लेकर लिखे गए इस उपन्यास के समस्त पात्र अनिश्चय व द्विधा-बोध की स्थिति से जकड़े हुए हैं। स्कूल के सभी अध्यापक व अध्यापिकाएं अपने भविष्य से त्रस्त व निराश हैं।

इस उपन्यास के पात्र आने वाले कल की तलाश में जीवित हैं। एक ही प्रकार की जिन्दगी को जीते उपन्यास के पात्र परस्पर की उपस्थिति का बोध नहीं करते। 'न आने वाला कल' का मनोज इस परिवेश से दूर नयी शुरुआत करने की आकांक्षा रखता है। परंतु जीवन की आगे की यात्रा में भी वह उन सबसे उबर नहीं पाता जिनसे

वह जुड़ा हुआ था। इस उपन्यास में दिए गए खंड़ों के नाम भी कथानक के अनुसार प्रवाहमान प्रतीत होते है। शीर्षक के अनुसार उपन्यास में अलगाव और अकेलेपन को झेलते पात्र अपने आने वाले कल से चिंतित है। ऐसा प्रतीत होता है कि शीर्षक का 'कल' शब्द अपने चारों और शब्दकोशीय अर्थ को प्रतिपादित करता है – बीता कल, आने वाला कल, यंत्र और सुख शांति। बीते हुए दिन 'दुबारा नहीं आएँगे' अभीष्ट आनंदमय दिन के आने की संभावना भी नहीं और यांत्रिकता में पिसे जाने के कारण सुख–शांति कभी नहीं मिलेगी। पर गंभीरता से सोचने पर यह सब व्यर्थ बौद्धिक प्रयास मालूम पडता है। वास्तव में यह अनिर्दिष्ट की ओर ही संकेत करता है।

'अंतराल' उपन्यास का शीर्षक सार्थक है। शीर्षक के अनुसार उपन्यास के सभी पात्रों व घटनाओं में अंतराल ही अंतराल दिखाई देता है। कुमार और श्यामा के बीच अस्वीकार की स्थिति बनी हुई है। जिसकी वजह से कुमार की मनःस्थिति इतनी असंतुलित हो जाती है कि वह हर जगह अपने आप को अकेला अनुभव करता है। क्योंकि कुमार ने अपने अकेलेपन को भरने के लिए जिन–जिन स्थितियों का सहारा ढूँढ़ा, वे सब व्यर्थता में बदलती जाती है। दूसरी ओर श्यामा अपने अकेलेपन को भरने के लिए आने वाले क्षण में कुमार से जुड़ने का प्रयास करती थी। किन्तु श्यामा के जीवन में "एक भी क्षण उसके लिए मानसिक विश्राम का क्षण नहीं बन पाता था।"[१७४] उसे लगता था कि 'हर क्षण पीछे की बेचेनी को आगे की बेचेनी से जोड़ देता है।"[१७५] उसके अंदर का अभाव बाहर के अभाव में बदल जाता था। अंतर्द्वन्द्व से उबरने के लिए छटपटा रही थी लेकिन अपने आप से टकरा कर एक भरा पूरा अंतराल अकेले जी रही थी। उपन्यास में प्रोफेसर मलहोत्रा और उसकी पत्नी के जीवन में भी लम्बा अंतराल है। पति–पत्नी होते हुए भी वे एक दूसरे के लिए सुविधा के अलावा कुछ और नहीं थे, जिसे वे दोनों साथ साथ झेलने के लिए अभिशप्त थे। "मानो वे एक दूसरे से किसी चीज का बदला चुकाने में लगे रहते हैं।"[१७६] राकेशजी ने उपन्यास में श्यामा और कुमार दोनों के एकाकीपन की संवेदना को भिन्न–भिन्न स्थितियों, दृश्यों, स्थलों आदि के वर्णन द्वारा चित्रित किया है। अंतराल में अकेलापन शारीरिक नहीं मानसिक है। जिसको भरने के लिए देव शराब का सहारा लेता है, श्यामा कुमार के व्यक्तित्व का और कुमार श्यामा के व्यक्तित्व का। वस्तुतः श्यामा, देव, कुमार, प्रोफेसर मलहोत्रा और उसकी पत्नी के अंदर का 'अंतराल' बने रहना मनोवैज्ञानिक जटिलता है। लेकिन उसे बनाये रखना ही उपन्यास का रचनात्मक कार्य है। इसलिए यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक और अति मानसिक होने के कारण आधुनिक है। 'अंतराल' शीर्षक भी यथार्थ है।

७.९ प्रारंभ–मध्य–अंतः–

साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत यह उपन्यास दिल्ली की चमक–दमक तथा वहाँ के जीवन की अंतहीन आकांक्षाओं–जटिलताओं व तनावपूर्ण स्थिति के विश्लेषण को समेटे हुए हैं। संस्कृति का ह्वास होता हुआ तथा एक नई उभरती संस्कृति की ओर संकेत किया है। उपन्यास के प्रारंभ में एक शिक्षित पति अपनी शिक्षिता और आधुनिक पत्नी के साथ तालमेल नहीं बैठा पाता। विवाह से पहले युगल प्रेमी एक दूसरे के प्रति आकृष्ट रहते हैं किन्तु विवाह के कुछ समय पश्चात ही उनका प्रेम स्त्रोत सूख जाता है और वे दाम्पत्य जीवन के स्नेह विहीन बंधन में दम तोड़ने को विवश हो जाते हैं। वे पति–पत्नी न रहकर एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं केवल कर्तव्य–बोध या प्रबल ईर्ष्या के कारण मात्र साथ रहते हैं। यह उपन्यास स्वीकार और अस्वीकार के मध्य झूलते पति–पत्नी के अभिशप्त जीवन के अनेक रूपों का विस्तृत रूप लिए हुए हैं। इस उपन्यास में राकेशजी ने पाठकों से सीधा संबंध न रखकर कथक या वर्णन कर्ता की सृष्टि की है। कथक का प्रयोग परंपरागत है केवल इसका प्रयोग नए संदर्भ में हुआ है। राकेशजी के 'अंधेरे बंद कमरे' का कथक एक पत्रकार है जो कभी कॉफी हाउस में, कभी हरबंस के घर अन्य पात्रों से मिलता है। इस प्रकार परिस्थिति विशेष में फंसे पात्रों की मानसिक दशा के वर्णन के सहारे वह उपन्यास की कथावस्तु को निश्चित अन्त की ओर अग्रसर करता है।

उपन्यास की प्रमुख कथा के साथ–साथ मधुसूदन, सुषमा, श्रीवास्तव, ठकुराईन, शुक्ला, सुरजीत, इबादत अली आदि की अन्य प्रासंगिक कथाएँ चलती है। इन कथाओं का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। मूलकथा के साथ उनका समायोजन नहीं बैठता। इन प्रसंगों से उपन्यास को रोमानी वातावरण अवश्य मिला है तथा मध्यवर्गीय पात्रों की सार्थक व असार्थक स्थितियों का ब्यौरा मिलता है। 'अंधेरे बंद कमरे' की कथा का केन्द्र बिंदु हरबंस और नीलिमा की जिन्दगी का बंद कमरा है। यद्यपि कहीं कहीं पर बहुत से सम्बद्ध–असम्बद्ध संदर्भो व घटना प्रसंगों के लम्बे–लम्बे वर्णन व विवरणों से मूलकथा का सूत्र छूटने लगता है किन्तु इन वर्णनों की औपन्यासिकता, रोचकता व आकर्षण पुनःपाठक को आकर्षित कर लेती है। ठकुराईन के यहाँ का परिवेश, अरविंद और मधुसूदन के संबंध से रंग रहस्यपूर्ण, इबादत अली और उसकी पुत्री खुरशीद के संदर्भ कथा में रोचकता लाते हैं। उपन्यास में कौतूहल अनेक स्थानों पर रहता है किन्तु उसका पूर्णतः निर्वाह नहीं हुआ है। हरबंस और नीलिमा के मध्य बढ़ती दूरी कौतूहल

उत्पन्न करती है किन्तु कोई विशेष आधार नहीं मिलता। खीझ, ईर्ष्या, महत्त्वाकांक्षा के नित नए आयाम दम्पति के मध्य हैं इससे कौतुहलता को पूर्णता नहीं मिलती। चरम सीमा पर पहुंचने में पाठक खाली हाथ लौट आता है किन्तु यह सब होते हुए भी राकेशजी पाठको को आशा में बांधे रखते हैं, उसकी वृत्ति को जिज्ञासु व कौतूहली बनाए रखते हैं। अतएव कथा एक सीमा तक ही गतिशील हो सकती है। इसका कथानक सीमित घटनाओं के आधिक्य के कारण गतिहीनता का शिकार हो गया है किन्तु उसमें रोचकता, संभाव्यता एवम् आत्मीयता भरपूर मात्रा में है।

'न आने वाल कल' उपन्यास का प्रारंभ एक मिशनरी स्कूल के हिन्दी अध्यापक मनोज की कथा से होता है। मनोज स्व-अस्तित्व रक्षा के प्रयत्न हेतु अनेक त्रासद अनुभवों से गुजरता है। उसका अकेलापन उसे कचोटता है। वह एक ओर स्कूल से त्यागपत्र देता है दूसरी ओर अपनी पत्नी शोभा के साथ सहयोग नहीं कर पाता। मनोज का त्यागपत्र एक प्रमुख घटना का रूप ले लेता है जिससे चपरासी से लेकर हैड मास्तर सभी प्रभावित होते हैं। त्यागपत्र की व्यक्तिगत समस्या उपन्यास के मध्य तक आते आते सामाजिक हो गई है यह राकेशजी के प्रस्तुतीकरण की विशेषता है। समग्र उपन्यास में एक गति है, प्रवाह है जिसने राकेशजी को सफल उपन्यासकार की पंक्ति में खड़ा कर दिया है। मनोज और शोभा की प्रमुख कथा के साथ-साथ शारदा व कोहली, काशनी व फकीरे तथा टोनी व्हिसलर आदि की कथा चलती हैं। सभी में स्त्री-पुढष के संबंधों की विद्रूपताओं व विसंगतियों का चित्रण है।

मनोज के त्यागपत्र की घटना से उत्पन्न भय सबके मन में व्याप्त है। सभी के मन में एक ही प्रश्न है किन्तु विचार व उत्तर विभिन्न हैं। एक समस्या व एक ही परिवेश में विचार-विनिमय में भिन्नता तथा अलग-अलग निष्कर्षो की अवतारणा ने उपन्यास को रोचकता प्रदान की है। प्रारंभ से अंत तक उपन्यास अबाध्य गति से आगे बढ़ता जाता है कहीं भी उसका आकर्षण कम नहीं होता।

'अंतराल' की संरचना, परिवेश और समस्या राकेशजी के पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न है। यह भावात्मक अंतर्द्वन्द्व का उपन्यास है। राकेशजी के उपन्यास 'अंतराल' में प्राचीन आदर्शो के प्रति कोई मोह नहीं है। इसमें यथार्थ रूप में आधुनिक मानव संबंधों की कहानी चित्रित है। इसमें मुख्यता सेक्स तथा मानवीय संबंध जो केवल सहने के संबंध हैं चित्रित किए गए हैं। स्त्री-पुढष का संबंध इस उपन्यास का प्रमुख विषय है। हमारे समाज में स्त्री-पुढष का संबंध एक ज्वलंत समस्या बन गया है। इस

उपन्यास में श्यामा–कुमार का संबंध, श्यामा–प्रो. गोपाल का आपसी आकर्षण, श्यामा–देव का संबंध, कुमार–लता, कुमार–उसकी पत्नी, सीमा–उसके पुढष मित्र प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इसी समस्या को लिए हुए हैं। आधुनिक मानव संबंधों की कहानी पारिवारिक व वैयक्तिक मानव संबंधों की कहानी है। आज संबंध भौतिक आवश्यकता पर टिके हैं। राकेशजी ने इन भौतिक संबंधों का अति सूक्ष्मात्मक विश्लेषण इस उपन्यास में किया है। मानव जीवन अनेक दुर्बलताओं व विसंगतताओं का भंडार है। भूख के समान भोग भी मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। उपर से सरल व सदाचारी व्यक्ति के अंदर नारी के प्रति उत्कण्ठा होती है। स्त्री–पुढष का आकर्षण चिरंतन है। राकेशजी ने इसी संबंध को 'अंतराल' में बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से दर्शाया है।

स्त्री–पुढष के बीच नामहीन संबंधों, तनावों, समस्याओं और अनेक प्रश्नों से जूझते व्यक्ति के संघर्ष को इस उपन्यास में प्रमुखता दी गई है। उपन्यास के प्रारंभ से ही श्यामा और कुमार एक दूसरे से जूड़कर भी अभाव–बोध से ग्रस्त हैं। उनके जीवन में क्रमशः देव और लता का भी स्थान है तथा उनके जीवन में नामहीन संबंधों के चलते अंतराल बनता चला जाता है। विवाहित होने पर भी देव का परिचय श्यामा के देह के स्तर पर था, मन के स्तर पर नहीं। साथ–साथ गुजरते उनके दाम्पत्य जीवन के अंदर विरोध और अंतराल पनपता चला जाता है। देव के न रहने पर कुमार के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने का निश्चय करती श्यामा का सामाजिक यथार्थ का चित्रण राकेशजी ने उपन्यास के मध्य में मार्मिक ढंग से किया है। इस उपन्यास का आत्मसंघर्ष रोमाण्टिक स्तर पर चलता है। अंतराल का अकेलापन मानसिक है और उसे दूर करने के लिए पात्र अलग–अलग स्तर पर जूझते हैं। सभी पात्र श्यामा, देव, कुमार, प्रोफेसर मलहोत्रा और उनकी पत्नी के आपसी संबंधों के बीच एक अंतराल बना रहता है। उपन्यास के अंत में राकेशजी ने आधुनिक मानदण्डों तथा युग–आदर्शों को स्पष्ट किया है। वस्तुतः यथार्थ और आदर्श दोनों ही एक तत्त्व के दो पहलू हैं जो आदर्श है वह यथार्थ भी है तथा यथार्थ को लेकर आदर्श निश्चित किया जाता है।

निष्कर्ष :

राकेशजी का उपन्यास साहित्य उन्हें एक सफल उपन्यासकार के रूप में प्रदर्शित करता है। उनके उपन्यास समकालीन जीवन की पीड़ा, विसंगतियों, विडंबनाओं को प्रस्तुत करते हैं। महानगरीय संत्रास व्यक्तियों के टूटते बिखरते संबंध, औपचारिकता,

ऊब, अकेलेपन का मार्मिक अहसास, अलगाव की त्रासदी, घुटन तथा मानवीय रिक्तता को देखना या समझना हो तो राकेशजी के उपन्यास बेहतर उचित सिद्ध होंगे। समकालीन जीवन में प्रतिदिन घटनेवाली घटनाओं का विशद चित्रण राकेशजी के उपन्यासों की अपेक्षा कहाँ मिलेगा। स्त्री हो या पुरुष दोनों की ऊपरी चमक–दमक का आवरण कितना ही लुभावना क्यों न हो ? उनके भीतरी टूटन, बिखरी हुई मनोदशा उनके इस नकाब को तितर–बितर कर देती है। किसी न किसी स्थान पर मनुष्य की वर्तमान मनोदशा का वर्णन कर ही देता है। परिवेश के दबाव को आज का मनुष्य किस तरह सह रहा है, जीवन को थका देने वाले दैनिक कार्य, मनुष्य की विवशता सबकी संरचना प्रतीक व बिंबों से सजसंवरकर राकेशजी के उपन्यासों में परिरक्षित है। आधुनिक परिवेश से जूझते कथानक, यथार्थ शैली, चरित्रात्मक विश्लेषण तथा आधुनिक बोध उनके उपन्यासों में गहनता लिए हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' हो 'न आने वाला कल' हो या 'अंतराल' सभी उपन्यासों में आधुनिकता का गहरा बोध है जो उन्हें एक सफल उपन्यासकार के रूप में प्रतिरूपित करता है।

संदर्भ सूची

१	व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डॉ. पुढषोत्तम दूबे	२०८
२	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	३३३
३	विवेक के रंग में संकलित निबंध	श्रीकांत वर्मा	२८६
४	दिशाओं का परिवेश	राही मासूम रजा	७१
५	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	७१
६	अंतराल	मोहन राकेश	७१
७	प्रतिपक्ष साहित्य : रिश्तों की अविश्वसनीय पहचान	महेन्द्र भल्ला	२५
८	आज का हिन्दी उपन्यास	डॉ.इन्द्रनाथ मदान	९५
९	प्रतिपक्ष साहित्य : रिश्तों की अविश्वसनीय पहचान	महेन्द्र भल्ला	२६
१०	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल	३१
११	अज्ञेय और मोहन राकेश के उपन्यासों में यथार्थ की परिकल्पना	डॉ. रॉय जोसेफ	६३
१२	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डॉ. महेन्द्र भटनागर	२०
१३	आज का हिन्दी उपन्यास	डॉ.इन्द्रनाथ मदान	९१
१४	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१४५
१५	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१४६
१६	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२२८
१७	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२२९
१८	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४२२
१९	अधूरे साक्षात्कार	नैमिचन्द्र जैन	१३०
२०	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	धनराजे मानधाने	२३६
२१	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२२९
२२	न आने वाल कल	मोहन राकेश	२५
२३	न आने वाल कल	मोहन राकेश	२५
२४	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१५
२५	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१३
२६	अंतराल	मोहन राकेश	११-१२
२७	अंतराल	मोहन राकेश	२११

२८	अंतराल	मोहन राकेश	२११
२९	अंतराल	मोहन राकेश	२१८
३०	अंतराल	मोहन राकेश	२०१
३१	अंतराल	मोहन राकेश	२०१
३२	हिन्दी उपन्यास उद्‍भव और विकास	डॉ. सुरेश सिन्हा	५५८
३३	दिशाओं के परिवेश में संकलित निबंध	शैल कुमारी	७४
३४	प्रतिक्रियाएँ	डॉ. देवराज	१२६
३५	हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा	डॉ. रामदरश मिश्र	१४६
३६	माध्यम – फरवरी, १९६५ अंक	इलाचंद्र जोशी	७५
३७	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल	४२
३८	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल	३०३
३९	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल	३०४
४०	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३१२
४१	'विवेक के रंग' में संकलित निबंध	श्रीकांत वर्मा	२८९
४२	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४७९
४३	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४६६
४४	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१३१
४५	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१३२,१३३
४६	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१३८
४७	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१३८
४८	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल	३०७
४९	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	७०
५०	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	७१
५१	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२८२
५२	मोहन राकेश का नारी–संसार	श्रीमति मीना पिंपलापुरे	१०५
५३	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	७१
५४	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२८८
५५	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२२७
५६	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२०४
५७	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२०४
५८	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२००
५९	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२३४

६०	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३८५
६१	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	३१४
६२	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	भूमिका
६३	हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख इन्द्रनाथ मदान,	श्रीकांत वर्मा	२२९
६४	हिन्दी उपन्यास	सुरेश सिन्हा	३५२,३५३
६५	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	३१६
६६	हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख	इन्द्रनाथ मदान	२३०
६७	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४१०
६८	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४०९
६९	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४०८
७०	'विवेचना' संकलन	इलाचंद्र जोशी	१७९
७१	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२५१
७२	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२५१
७३	न आने वाला कल	मोहन राकेश	७४
७४	न आने वाला कल	मोहन राकेश	५१
७५	न आने वाला कल	मोहन राकेश	७८
७६	न आने वाला कल	मोहन राकेश	७६
७७	न आने वाला कल	मोहन राकेश	०७
७८	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१४८
७९	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१५
८०	न आने वाला कल	मोहन राकेश	३१
८१	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१०१
८२	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुष्मा अग्रवाल	३४०
८३	न आने वाला कल	मोहन राकेश	२९
८४	न आने वाला कल	मोहन राकेश	३०
८५	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१४
८६	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुष्मा अग्रवाल	३०२
८७	न आने वाला कल	मोहन राकेश	९२
८८	न आने वाला कल	मोहन राकेश	९४
८९	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१०६
९०	न आने वाला कल	मोहन राकेश	२९
९१	मोहन राकेश व्यक्तित्व एवम् कृतित्व	डॉ. धनानंद एम.शर्मा	२७९

९२	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१६
९३	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१८
९४	न आने वाला कल	मोहन राकेश	२३
९५	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१२६
९६	न आने वाला कल	मोहन राकेश	३५
९७	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१६१
९८	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१६१
९९	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१५४
१००	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१६४
१०१	न आने वाला कल	मोहन राकेश	५१
१०२	न आने वाला कल	मोहन राकेश	६३
१०३	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. रमेश कुमार जाधव	६९
१०४	न आने वाला कल	मोहन राकेश	५१
१०५	न आने वाला कल	मोहन राकेश	५१
१०६	न आने वाला कल	मोहन राकेश	११५
१०७	अंतराल	मोहन राकेश	४९
१०८	अंतराल	मोहन राकेश	०७
१०९	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप	डॉ. विमला शर्मा	२४३
११०	अंतराल	मोहन राकेश	२१६
१११	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. रमेशकुमार जाधव	५८
११२	अंतराल	मोहन राकेश	५६
११३	अंतराल	मोहन राकेश	१९९
११४	अंतराल	मोहन राकेश	२०३
११५	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	२६९
११६	अंतराल	मोहन राकेश	१६०
११७	अंतराल	मोहन राकेश	१७०
११८	कथाकृति मोहन राकेश	डॉ. ओम प्रभाकर	८१
११९	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य	डॉ. देवराज	४५४
१२०	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३८४
१२१	आज का हिन्दी उपन्यास	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	९०
१२२	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३८
१२३	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१२८

१२४	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१७३
१२५	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	९८
१२६	न आने वाला कल	मोहन राकेश	मुख पृष्ठ
१२७	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१८८
१२८	उपन्यासकार मोहन राकेश (अंतराल के विशेष संदर्भ में)	विमला कुमारी पंडित	५२
१२९	उपन्यासकार मोहन राकेश (अंतराल के विशेष संदर्भ में)	विमला कुमारी पंडित	४६
१३०	अंतराल	मोहन राकेश	९६
१३१	मोहन राकेश – व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	३२५
१३२	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१४५
१३३	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१४६
१३४	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४१५
१३५	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२१७
१३६	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३४३
१३७	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४२९
१३८	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४१०
१३९	आज का हिन्दी उपन्यास	इन्द्रनाथ मदान	९५
१४०	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३४७
१४१	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१९
१४२	मोहन राकेश : शब्द और ध्वनि – 'नटरंग' अक्टूबर १९७४		
१४३	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१४६
१४४	न आने वाला कल	मोहन राकेश	२४
१४५	न आने वाला कल	मोहन राकेश	६६
१४६	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१५६
१४७	न आने वाला कल	मोहन राकेश	३४
१४८	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१७१
१४९	न आने वाला कल	मोहन राकेश	५९
१५०	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्त्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	३७८
१५१	अंतराल	मोहन राकेश	७३
१५२	अन्तराल	मोहन राकेश	२१०
१५३	अन्तराल	मोहन राकेश	०९
१५४	अन्तराल	मोहन राकेश	२०४

१५५	अन्तराल	मोहन राकेश	१४७
१५६	उपन्यास की यथार्थ और रचनात्मक भाषा	डॉ. परमानंद श्रीवास्तव	१४७
१५७	कथाकृति मोहन राकेश	डॉ. ओम प्रभाकर	१२१
१५८	सारिका मार्च १९७३	ओम शिवपुरी	३३
१५९	अंतराल	मोहन राकेश	२०५
१६०	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	४५२
१६१	मोहन राकेश का कथा साहित्य	डॉ. सुजाता चतुर्वेदी	१४१
१६२	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२८–२९
१६३	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	१९
१६४	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	७९
१६५	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	२०५
१६६	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	३२
१६७	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१७–१८
१६८	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१४७
१६९	न आने वाला कल	मोहन राकेश	१७९
१७०	न आने वाला कल	मोहन राकेश	४४
१७१	अंतराल	मोहन राकेश	१२६
१७२	अंतराल	मोहन राकेश	१५४
१७३	उपन्यासकार मोहन राकेश	विमला कुमारी पंडिता	६२
१७४	अंतराल	मोहन राकेश	९७
१७५	अंतराल	मोहन राकेश	९८
१७६	अंतराल	मोहन राकेश	१२८

अध्याय :- ६

मोहन राकेश के नाटक एवम् एकांकी साहित्य का तात्त्विक विवेचन

६.१	नाट्य कला की उत्पति और विकास	३२०
६.२	हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास	३२५
६.३	मोहन राकेश के नाटक	३२६
६.४	आषाढ़ का एक दिन	३२८
६.४.१	कथानक	३३०
६.४.२	रचना विधान	३३४
६.४.३	चरित्र – चित्रण	३३५
६.४.४	भाषाशैली	३४१
६.४.५	अभिनेयता	३४२
६.५	लहरों के राजहंस	३४३
६.५.१	कथानक	३४४
६.५.२	रचना विधान	३४६
६.५.३	चरित्र – चित्रण	३४९
६.५.४	भाषाशैली	३५५
६.५.५	अभिनेयता	३५७

६.६	आधे अधूरे	३५९
६.६.१	कथानक	३५९
६.६.२	रचना विधान	३६३
६.६.३	चरित्र – चित्रण	३६५
६.६.४	भाषाशैली	३७६
६.७	पैरों तले की जमीन	३७९
६.७.१	कथानक	३७९
६.७.२	रचना विधान	३८४
६.७.३	चरित्र – चित्रण	३८८
६.७.४	भाषाशैली	३९५
६.८	मोहन राकेश के नाटकों का शिल्प	३९७
६.९	मोहन राकेश का एकांकी साहित्य	४०२
६.९.१	अंडे के छिलके	४०२
६.९.२	सिपाही की माँ	४०३
६.९.३	प्यालियाँ टूटती हैं	४०४
६.१०	निष्कर्ष	४०५
	संदर्भ सूची	४०७

६.१ नाट्य-कला की उत्पति और विकास

चंचल समीर जलराशि पर अपना चित्र अंकित कर देता है, सूर्य की किरणें जल-थल पर अपना शीतोष्ण प्रभाव ही उत्पन्न नहीं करतीं, अपितु विभिन्न पदार्थों में प्रतिफलित होकर विभिन्न रंगों का उद्घाटन भी करती हैं। दीपशिखा अपने चारों ओर प्रकाश को विकीर्ण कर एक विशेष प्रकार का आकर्षण वातावरण उत्पन्न कर देती है, कौन कह सकता है सृष्टि के कितने रूप हैं ? प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ अपने आसपास एक नहीं, अनेक प्रकार के चित्रों का सृजन करता रहता है। मानव भी इस नियम का अपवाद नहीं है। चैतन्य मनुष्य पर बाह्य सृष्टि की विविध वस्तुओं की प्रतिच्छाया भी पडती है और छाप भी पडती है। फलस्वरूप उनका हृदय दोलित हो उठता है और उसी क्षण वह अपने हृदय पर पडनेवाले इन प्रभावों को व्यक्त करने को उत्सुक हो उठता है। इन प्रभावों को व्यक्त करने के लिए उसके पास अनेक माध्यम अथवा साधन हैं। अभिव्यक्ति के इन विभिन्न माध्यमों को 'कला' कहते है।

यद्यपि मूल अभिव्यक्ति कलाकार के अंतर की अभिव्यक्ति, एकरस अथवा अखंड ही रहती है, तथापि उनकी अभिव्यक्ति में हमें उपकरण-भेद दिखाई देता है। जब हम भिन्न-भिन्न कला-कृतियों पर विचार करते हैं, तब हमारी द्रष्टि उनके मूर्त रूप पर जाती है और तभी कलाओं की भिन्नता के दर्शन होते हैं।

जिस प्रकार प्रकृति के पदार्थो में हमें सुंदरता और उपयोगिता ये दो गुण दिखाई देते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के द्वारा निर्मित पदार्थो अथवा उसकी कला-कृतियों में हमें लालित्य एवम् उपयोगिता के दर्शन होते हैं। लालित्य और उपयोगिता सापेक्ष हैं। किसी पदार्थ में लालित्य की प्रधानता होती है और किसी में लालित्य की अपेक्षा उपयोगिता होती है।

इस प्रकार कला-कृतियों के दो विभाग किए जाते हैं - (१) जिनमें उपयोगिता की प्रधानता है और (२) जिनमें सुंदरता की प्रधानता हो। इन्हें क्रमशः 'उपयोगी-कला' और 'ललीत कला' कहते हैं। पहली द्वारा प्रायः हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। बढ़ई, लोहार, कुम्हार सभी के व्यवसाय उपयोगी कला के अंतर्गत आते हैं। द्वितीय वर्ग की कलाओं द्वारा हमारी मानसिक तृप्ति होती है। यदि उपयोगी कला का संबंध मनुष्य की शारीरिक और आर्थिक उन्नति से है तो ललित कला का संबंध उसके मानसिक विकास से है। ललित कला वाले वर्ग के अंतर्गत पांच कलाएँ रखी गई

हैं – (१) वास्तु-कला (२) मूर्ति-कला (३) चित्र-कला (४) संगीत-कला तथा (५) काव्य-कला ।

ललित कलाओं को दो हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है (१) जो नेत्रेन्द्रिय द्वारा मानसिक तृप्ति करती हैं और (२) जो श्रवणेन्द्रियों द्वारा मानसिक तृप्ति करती हैं । वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला प्रथम विभाग के अंतर्गत आती हैं और संगीतकला और काव्यकला द्वितीय विभाग के अंतर्गत आती हैं ।

काव्य कला के प्रमुख भेद दो हैं – (१) गद्य, (२) पद्य । 'नाटक' दोनों ही के अंतर्गत आता है । नाटक पद्य में भी होते हैं और गद्य में भी । नाटक देखे भी जाते है और पढे भी जाते है । काव्य के अंग – उपन्यास, कविता, निबंध, कहानी तो केवल पठन या श्रवणेन्द्रियों द्वारा मानसिक तृप्ति प्रदान करते हैं परंतु नाटक काव्य का ऐसा अंग है जो श्रवणेन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय – दोनों के ही द्वारा मन को आनंदित करने का सामर्थ्य रखता है । इस प्रकार तृप्ति-विधान के आधार पर काव्य के दो भेद हो जाते हैं – (१) श्रव्य काव्य और (२) द्रश्य काव्य । द्रश्य काव्य के अंतर्गत केवल नाटक आता है । यही कारण है कि द्रश्य काव्य को हम नाटक अथवा नाट्य-कला कहते है ।

क्षेत्र के व्यापकत्व के कारण काव्यकला में नाट्यकला को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है – "काव्येषु नाटकं रम्यम् ।" श्रवणेन्द्रिय एवम् नेत्रेन्द्रिय दोनों ही द्वारा प्रभावित करने के सामर्थ्य के कारण नाटक में अंतःकरण के भावों को व्यक्त करने की पूर्ण शक्ति रहती है । नाटक का प्रभाव व्यापक एवम् स्थायी होता है, उसके द्वारा बाह्य और अंतर – दोनों ही प्रकार के ज्ञान भली भाँति कराए जा सकते हैं ।

संस्कृत में द्रश्य-काव्य को 'रूपक' कहते हैं । संस्कृत में आचार्यों ने नाटक को रूपक का भेद बताया है । रूपक के दस भेद माने गए हैं । रूपक के भेद इस प्रकार है । (१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) प्रहसन, (५) डिम, (६) व्यायोग, (७) समवकार, (८) वीथी, (९) अंक और (१०) ईहामृग । रूपक के साथ साथ उपरूपकों की भी चर्चा की है तथा इनके १८ भेद बताए हैं ।

नाटकों की उत्पत्ति-काल के विषय में निश्चयपूर्वक कहना अत्यंत ही कठिन है । हाँ, इतना अवश्य है, कि इनका उल्लेख हमें भारतवर्ष के प्राचीनतम वाङ्मय में मिल जाता है । श्री जयशंकर प्रसादजी ने इस संबंध में काफी खोज की और उन्होंने अपने

निबंधों में सप्रमाण यह सिद्ध किया कि नाटकों को ही आदि पाठ्य-काव्य माना जाना चाहिए ।

कतिपय विदेशी विद्वान भारतीय नाट्यकला को पश्चिम की देन बताते हैं । उनका विचार है कि भारतीय नाट्यकला पाश्चात्य नाट्यकला को देखकर विकसित हुई हैं । इस संबंध में कहे कि उनकी धारणा सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है । हमारे यहाँ कम से कम ढाई हजार वर्ष पूर्व नाट्यकला चरम विकास को प्राप्त हो चुकी थी । निम्नलिखित प्रमाण विचारार्थ प्रस्तुत हैं ।

(१) वेदों में कई स्थानों पर संवाद-सूक्त आए हैं । उनमें सोमयोग तथा पुरूरवा ओर उर्वशी का संवाद, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इन सूक्तों के कथोपकथन तो सर्वथा नाटकीय ही हैं, उन्हें नाटक का आधार स्तंभ कहा जा सकता है । आदि काव्य वाल्मीकि रामायण में भी नाट्य-विषयक उल्लेख मिलते है । यथा –

"नाराजके जनपदे प्रकृष्टा नटनर्त्तकाः"

अर्थात् – "जिस जनपद में राजा नहीं है, वहाँ नाटक और नर्तक प्रसन्न नहीं दिखाई देते ।" अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल में राजा नटों को अपने आश्रय में रखकर नाटक का अभिनय करने के लिए प्रोत्साहन दिया करते थे ।

महाभारत में भी 'नट' शब्द की कई स्थानों पर चर्चा मिलती है । हरिवंश पुराण में तो रामायण से कथा लेकर नाटक लिखने का स्पष्ट उल्लेख है । इसी प्रकार अग्निपुराण में श्रव्य तथा द्रश्य-काव्यों की विशद विवेचना मिलती है । इन ग्रन्थों का रचना-काल भले ही संदिग्ध हो, परंतु इतना सुनिश्चित है कि भारतीय नाट्यकला अत्यंत प्राचीन है, वह किसी अन्य देश का अनुकरण मात्र नहीं है ।

(२) संस्कृत के नाटकों की परंपरा ईसा से पहले से चली आती है । नाट्य रचना के विभिन्न नियमों का पालन करते हुए तीसरी-चौथी शताब्दी पूर्व से अनेक नाटककारों ने अपनी श्रेष्ठ, नाट्य कृतियाँ प्रस्तुत की थी । भास, कालिदास, भवभूति, शूद्रक, श्री हर्ष, विशाखदत्त, आदि अनेक विश्वविख्यात नाटककार इसी परंपरा में हुए हैं । अतः आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में नाट्यकला का जन्म और विकास हो चूका था ।

(३) ईसवीं संवत् के आसपास हमारे यहाँ भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' जैसा सुंदर ग्रन्थ लिखा था। नाट्यकला का जैसा सर्वाङ्गीण, सूक्ष्म एवम् मनोवैज्ञानिक विवेचन भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में हुआ है, वैसा विश्व के समस्त प्राचीन वाङमय में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

'नाट्यशास्त्र' में लिखा है – " एक बार वैवस्वत मनु के दूसरे युग में प्रजाजन बहुत दुःखी हुए। इस पर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने जाकर ब्रह्माजी से प्रार्थना की आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए जिसके द्वारा सबका मन प्रसन्न हो सके। इस पर ब्रह्माजी ने चारों वेदों को बुलाया और उन चारों की सहायता से उन्होंने पंचम वेद 'नाट्यशास्त्र' की रचना की। इस नये वेद के लिए ऋगवेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लिया गया था।"

"सर्व शास्त्रार्थ सम्पन्न सर्व शिल्प प्रवर्तकम्।
नाट्याख्यं पंचम वेदसे इतिहासं करोम्यहम्॥" (नाट्यशास्त्र)

यहाँ संवाद, गीत और नाटक के तत्त्वों के अतिरिक्त रस तत्त्व पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। रस के अभाव में नाटक के साहित्यिक एवम् कलात्मक रूप की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

अब हम इस विषय में कतिपय विदेशी विद्वानों के मतों का संक्षेप में उल्लेख कर देना अत्यंत आवश्यक समझते हैं –

डॉ. रिजवे ने नाटक की उत्पति का कारण मृत वीरों की पूजा माना है। उनके मतानुसार मृत व्यक्तियों की आत्माओं की प्रसन्नता के हेतु तथा उनके प्रति आदर का भाव प्रदर्शित करने के लिए ही नाटकों का प्रणयन हुआ था। मेरे विचार से इनके कथन में आंशिक सत्य अवश्य है। श्रीराम, श्री कृष्ण आदि आदर्श एवम् वीर पुरूषों के चरित्र से संबंध रखनेवाले नाटक इस कोटि के अंतर्गत रखे जा सकते है।

जर्मन विद्वान डॉ. पिशेल ने नाटक की उत्पति पुत्तलिका नृत्य से मानी है। इनके मतानुसार यह पुत्तलिका नृत्य सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही प्रारंभ हुआ था और तत्पश्चात् विदेशों में भी इसका प्रसार हुआ। नाटकों के संबंध में प्रयुक्त होने वाले कतिपय शब्द – सूत्राधार, स्थापक आदि के कारण इस मत को सहारा मिल जाता है। इनका कहना है कि जैसे पुत्तलिका–नृत्य में एक संचालक के हाथ में सूत्र रहता है तथा दूसरा व्यक्ति

पुत्तलिकाओं को स्थापित करता रहता है, ठीक उसी प्रकार नाटक के सूत्रधार तथा स्थापक भी नाटकों के पात्रों का यथावत् संचालन करते रहते हैं।

पुत्तलिका-नृत्य से नाटक की उत्पति मानना, मेरे विचार से असंगत है – क्योंकि

(१) पुत्तलिका-नृत्य आज दिन तक हमारे देश में स्वतंत्र रूप से प्रचलित हैं। बच्चे कठपुतली के नाच को बड़े चाव से देखते हैं, तथा-

(२) हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पुत्तलिकाओं का उल्लेख स्वतंत्र रूप से मिलता है। गुणाढय की 'बृहत्कथा' में लिखा है कि मायासुर की कन्या के पास एक ऐसी कठपुतली थी जो नाचती – गाती थी और हवा में उड सकती थी। 'महाभारत में लिखा है कि उत्तरा ने अपने पति अभिमन्यु से एक पुत्तलिका लाने को कहा था।

कतिपय विद्वान छाया-नाटकों से नाटक की उत्पति मानते हैं। आधुनिक सिनेमाओं की भाँति पहले छाया-नाटक दिखाए जाते थे। रूपान्तरित होकर उन्होंने नाटक का रूप धारण कर लिया। इस मत की पुष्टि के लिए विद्वानों ने काफी खोज-बीन की है परंतु वे अपने मत को समीचीन एवम् युक्ति-युक्त सिद्ध नहीं कर पाये हैं।

इन आधुनिक विद्वानों के मतों का विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाटक की उत्पति के संबंध में प्रायः दो मत हैं – एक मत तो यह है कि उनका उदय लौकिक और सामाजिक कृत्यों से हुआ है। कल्पनाशील विद्वान इस बात को भूल जाते हैं कि भारतवर्ष में – धार्मिक, सामाजिक और लौकिक कृत्य भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं, इनमें कोई विशेष भेद नहीं है। एक के बिना अन्य की स्थिति असंभव है। भारतवर्ष में धर्म जीवन का अनिवार्य अंग रहा है। इस देश में जितने आनंद-प्राप्ति के साधन हैं, उन सबका मूल धर्म में ही स्थित है। नाटक की रचना भी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिए हुई थी। यही कारण है कि भारतवर्ष के प्राचीन नाट्य-साहित्य में दुःखान्त नाटकों का अभाव है। सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय नाटकों का उदय वैदिक कर्मकाण्ड तथा धार्मिक अवसरों पर होनेवाले अभिनयात्मक नृत्यों से हुआ। पीछे रामायण, महाभारत आदि काव्य ग्रन्थों से पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हुई और वह विकसित होकर अपने पूर्ण रूप में आ गया।

६.२ हिन्दी नाट्य-साहित्य का विकास :

सन् १६४३ – १८६६ ई. में लिखे गये हिन्दी नाटकों के दो रूप इस समय मिलते है – साहित्यिक और रंगमंचीय। पहली श्रेणी मे नाटक अधिकांशतः काव्यत्व से भरपूर हैं और दूसरे वर्ग में रंगमंचीय आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक ध्यान दिाय गया है। आगे चलकर भी ये दोनों धाराएँ पृथक-पृथक रूप से वेगवती होकर हमारे साहित्य को आप्लावित करती रही। अतएव हिन्दी नाटक-साहित्य का इतिहास वास्तव में इन्हीं दोनों धाराओं का इतिहास है।

हिन्दी में नाटक-साहित्य का आरंभ नाटकीय काव्य से हुआ है। 'हनुमन्नाटक' तथा 'समयसार' आदि इसी कोटि के नाटक हैं। परंतु कलात्मक द्रष्टि से हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' (रचना काल लगभग १६४३ ई.) है। यह संस्कृत के 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक का अनुवाद है। अनुवादक जोधपुर नरेश स्वर्गीय महाराज जसवन्तसिंहजी (१६२६-७८) के अनुवाद में गद्य और पद्य दोनों ब्रजभाषा में है। दूसरा नाटक 'आनंद-रघुनंदन' है। इसके रचनाकाल का पता नहीं चलता, परंतु अनुमान से यह सन् १७००ई। के आसपास लिखा हुआ माना जा सकता है। लेखक रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथसिंहजी (१६६१-१७४० ई.) थे। यह नाटक हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक नाटक है और इसके गद्य की भाषा भी ब्रजभाषा है। इनका लिखा हुआ एक 'गीता रघुनंदन' नामक नाटक ओर मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी की नाटक परंपरा, निर्माण की द्रष्टि से दो रूपों में चली – अनुवादित एवम् मौलिक। इन दोनों परंपराओं में आगे चलकर क्रमशः राजा लक्ष्मणसिंह (१८२६-९६ ई.) कृत 'शकुन्तला नाटक' (१८६१) और भारतेन्दु के पिता गोपालचंद्र कृत 'नहुष' (१८४१) लिखे गये। १९ वीं शताब्दी में ऐंग्लो-सैक्सन संस्कृति की संदेशवाहक अंग्रेज जाति के साथ हिन्दी भाषा-भाषियों का संपर्क हुआ और इससे देश में नई जागृति आई। अपना राज्य स्थापित करने के बाद अंग्रेजों ने नवीन या आधुनिक शिक्षा का प्रचार किया और अनेक स्कूलों, कालेजों आदि की स्थापना की। इन संस्थाओं में अंग्रेजी साहित्य का भी अध्ययन होता था। अंग्रेजों के पास अपना समुन्नत नाट्य साहित्य था। इसके अतिरिक्त उन्होंने मनोरंजन के लिए कलकता, बम्बई, मद्रास, पटना आदि बडे-बडे नगरों में अभिनयशालाएँ भी स्थापित की। इस प्रकार हिन्दी नाट्य-साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास १९वीं शताब्दी के उतरार्ध से माना

जाता है। भारतेन्दु के साथ ही हिन्दी नाट्य-साहित्य की परंपरा आरंभ हो गई और वह परंपरा आज तक चली आ रही है।

हिन्दी नाट्य साहित्य का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है -

(क) प्रथम उत्थान काल या भारतेन्दु काल (सन् १८३७ - १९०४ ई.)

(ख) सन्धि (सन् १९०५ - १९१५ ई.)

(ग) द्वितीय उत्थान काल या प्रसाद काल (सन् १९१५-१९३३ ई.)

(घ) तृतीय उत्थान काल या वर्तमान युग (सन् १९३३ ई. से अब तक)

देश के वातावरण और चतुर्दिशी ज्ञान-विज्ञान के विकास ने नवीन प्रयोगों के प्रति प्रेरणा प्रदान की है और हिन्दी के नाटककारों ने उसे उनसे पूरा-पूरा लाभ उठाया है। आजकल हिन्दी में नित्य नये और नाना प्रकार के नाटक लिखे जा रहे हैं। इस युग में अधिकतर समस्या-प्रधान नाटक लिखे जा रहे हैं। ऐतिहासिक, प्रेम-प्रधान, पौराणिक आदि धाराएँ भी समस्या में ही मिल गई हैं। प्रचलित धाराओं के अतिरिक्त भाव-नाट्य, गीति-नाट्य, रेडियो-नाटक, छाया-नाटक आदि भी हिन्दी में मिलती हैं। यह प्रसाद और उनके परवर्ती लेखकों की नई देन है।

आज हिन्दी का नाट्य-साहित्य पूर्णतः समृद्ध है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा आरंभ की गई परंपरा श्री जयशंकर प्रसादजी का प्रसाद पाकर आज पूरी तरह फूल-फल रही है। हिन्दी नाटक साहित्य का भविष्य इसकी सतत् श्रीवृद्धि का सूचक है। उसका भविष्य पूर्णोज्ज्वल एवम् आशाप्रद है।

६.३ मोहन राकेश के नाटक :-

नाट्य क्षेत्र में राकेशजी की अनूठी प्रतिभा के दिग्दर्शन होते हैं। वस्तुतः राकेशजी नाट्य जगत के लिए ही अवतरित हुए हों। मुझे तो उनके नाट्य साहित्य को देखनें के बाद ऐसा ही लगता है। नाटक रंगमंच के साथ उनके व्यक्तित्व में उजागर हो गया हो ऐसी प्रतीति मुझे होती है। उन्होंने नाटक में न केवल मानव मन की दुर्भेयताओं को तोड़ा वरन उसे इन तहों के नीचे से निकालकर उन्मुक्त और स्वच्छंदता भी प्रदान की। नाटक सृजन में उन्होंने एक नया शिल्प तथा एक नया मंच हिन्दी जगत को प्रदान किया है। उन्होंने चार नाटकों की रचना की। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे - अधूरे' और 'पैरों तले की जमीन'। उनके नाटकों के

संदर्भ में चर्चा करें तो एक गहरी संवेदना, अलौकिक पात्र जगत और आधुनिकता से मंडित एकदम नूतन शिल्प उनके इन नाटकों में दिखाई देता है, जो हिन्दी नाट्य साहित्य में एक नवीन अभिरूचि को ही जन्म नहीं देता वरन लेखन के क्षेत्र में एक अभिनेयता की वसुधिका पर एक कुशल और ईमानदार नाटककार के रूप में उन्होंने मानव जीवन के अनादिकाल से चले आते हुए प्रश्नों को निरूपित किया है। मानवीय संबंधों के प्रति ऐसी कलात्मक, विवेचनात्मक और सौन्दर्यबोधपूर्ण अभिव्यक्ति राकेशजी के विराट व्यक्तित्व की मौलिकता है। कथा तत्व, चरित्र सृजन, मंचीयता सभी को उन्होंने पूर्ण स्वाभाविकता और व्यवहारिता प्रदान की है। उनकी परिकल्पनाएँ यथार्थ से पोषित, समकालीन जीवन की ट्रेजिक अस्तित्ववादी चेतना में भूली हुई मानव की प्रतिमूर्तियाँ हैं। अपने इन नाटकों में उन्होंने एक ऐसे मानव की रचना की है जो प्रारंभ से इस सृष्टि के साथ जुझ रहा है और जूझता रहेगा। सामाजिकता को इस वास्तविक बोध से परिचित करना उसकी सभी नाट्य कृतियों की आकांक्षा रही है।

भारतेन्दु से आरंभ होकर राकेशजी तक चली आयी यह यात्रा आधुनिक विसंगतियों और उनसे उत्पन्न पीड़ा की अनुभूति और उससे मुक्त होने की छटपटाहट अथवा उसमें और भी गहरे तक फँसते जाने की पीड़ा आधुनिक संवेदना की ही यात्रा है। इस यात्रा में नाटक का कथ्य स्थूल से सूक्ष्म, बाह्य प्रभावों से आंतरिक अनुभूतिगत प्रभावों तथा बाह्य द्वन्द्वों से आंतरिक द्वन्द्वों की ओर अग्रसर होता गया है। राकेशजी तक आते-आते यह चित्रण मुख्य रूप से बाह्य विसंगतियों की अपेक्षा मानसिक विसंगतियों, बाह्य द्वन्द्वों की अपेक्षा आंतरिक द्वन्द्वों का चित्रण बन गया है। राकेशजी के नाटकों का मूल स्वर मानव की आधुनिक संवेदना का स्वर है, जो व्यक्ति के द्वन्द्व अभिभूत द्वैध व्यक्तित्व की पीड़ा का स्वर है।

राकेशजी के सभी नाटकों का मूल स्वर आधुनिक संवेदना का स्वर है। आधुनिक समाज के तीन वर्गो - उच्च, मध्यम और निम्न में से उच्च एवम् मध्यम वर्ग की दुःखती रगों की भोग-पीड़ा के त्रास को उन्होंने अपने नाटकों का कथ्य बनाया है। मध्य वर्ग की प्रमुखता का कारण यह है कि यह वर्ग अपनी बौद्धिकता, रहन-सहन, शिक्षा आदि के कारण भौतिक तथा मानसिक दोनों ही स्तरों पर सबसे अधिक पीड़ा भोग रहा है। राकेशजी ने मध्यवर्ग के विभिन्न पीड़ा-भोगों को न लेकर, नारी-पुरूष अथवा पति-पत्नी के रिश्तों के तनाव, दूरी और टूटन की स्थितियों तक पहुँचाने वाली जटिलताओं, विवशताओं, असंगतियों, गलतफहमियों तथा आकांक्षाओं का चित्रण किया

है । व्यक्ति आज अपनी आकांक्षाओं और विषम परिस्थितियों की द्वन्द्वग्रस्त स्थिति से पीड़ित होकर अपनों के बीच में ही अजनबीपन की घुटन में सावित्री और महेन्द्रनाथ तथा नन्द और सुंदरी की तरह द्वैध व्यक्तित्व जीने को विवश हो रहा है या कालिदास के समान निश्चय–अनिश्चय के द्वन्द्व से पीड़ित होकर पलायन करने पर विवश हो रहा है या अब्दुल्ला, पण्डित, झुनझुनवाला, अयूब, सलमा, नीरा और रीता की तरह आपसी संबंधों को ज्यों–त्यों निभाने के खोल को उतार फेंकने में ही अपने अस्तित्व को पाने का अहसास कर रहा है ।

'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' नाटक का कथानक प्रत्यक्षतः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । पर इन दोनों नाटकों के द्वारा आज के जीवन की जटिलताओं को ही मूलतः उजागर किया गया है । इन दोनों ही नाटकों के माध्यम से राकेशजी ने इतिहास को आज से जोड़कर जीवन की सूक्ष्म मानसिक अनुभूतियों के नैरन्तर्य को स्पष्ट किया है । मनुष्य चाहे किसी भी युग का हो, अपनी चारित्रिक विशेषताओं और जटिलताओं के कारण तथा अपनी आकांक्षा की पूर्ति में सफलता–असफलता, अपने स्वभाव की निश्चय–अनिश्चय की प्रवृत्ति से आपसी संबंधों के बनने–टूटने के सुख–दुःख के स्थूल और सूक्ष्म भोग में कहीं एक जैसा है । इतिहास और आधुनिकता के इस अंतर्निहित संबंध को उजागर करने में साहित्य की भूमिका को स्पष्ट करते हुए स्वयं राकेशजी ने 'लहरों के राजहंस' की भूमिका में स्पष्ट किया है, – "साहित्य इतिहास के समय से बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है, युग से युग को अलग नहीं करता, कई–कई युगों को एक साथ जोड़ देता है । इस तरह इतिहास के आज और कल उसके लिए आज और कल नहीं रह जाते । वो समय की असीमता में कुछ ऐसे जुड़े हुए क्षण बन जाते हैं, जो जीवन को दिशा–संकेत देने की दृष्टि से अविभाज्य हैं ।"

⌗ नाट्य कृतिओं का तात्त्विक अनुशीलन

६.४ आषाढ़ का एक दिन :

'आषाढ़ का एक दिन' उन महत्त्वपूर्ण नाटकों में से एक है जिसमें एक ओर आधुनिक बोध के आयाम हैं और दूसरी ओर रोमांटिक भावबोध के स्तर । 'आषाढ़ का एक दिन' सन १९५८ में प्रकाशित, कालिदास के जीवन पर आधारित तीन अंकों का

नाटक है । इस नाटक में राकेशजी का रचनाकार कितने ही जीवंत क्षणों को उजागर करता है और कितनी ही जानी–अनजानी स्थितियों को मनोविश्लेषण और आधुनिक बोध की भूमि पर स्पष्ट करता है । रचना का संदर्भ कुछ भी हो, उसकी शैली कोई भी हो, आवश्यक यह होता है कि कृतिकार ने सर्जन क्षणों में अपने आपको कितना दिया है ? यह आत्मदान और पात्रों के रूप में उसका विलयन ही कृति को महत्ता और कृतिकार को सफलता प्रदान करता है ।

'आषाढ़ का एक दिन' राकेशजी के नाट्य–सृजन का आरंभिक बिंदु तो है ही, हिन्दी में नये नाटकों की नाट्य यात्रा का भी आरंभिक सोपान है । इस संदर्भ में नेमिचंद जैन ने लिखा है कि – "हिन्दी के तथाकथत ऐतिहासिक नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन' इसलिए मौलिक रूप में भिन्न है कि उसमें अतीत का न तो तथाकथत विवरण है, न पुनरूत्थानवादी गौरवगान और न द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों की शैली में कोई भावुकतापूर्ण अति नाटकीय स्थितियां रचने की कोशिश करता है । उसकी द्रष्टि कहीं आधुनिक है जिसके कारण वह सही अर्थ में आधुनिक हिन्दी नाटक की शुरूआत का सूचक है । "[१] वस्तुतः यह वह नाटक है जिससे पारंपरिक संदर्भ रचनाकार की निजी प्रतिभा का अदभुत योग पाकर चमक उठे हैं । टी.एस.इलियड ने परंपरा और रचनाकार की प्रतिभा के योग की जो बात कहीं थी उसे सही रूप में यह नाटक आत्मसात करके चला है । इस नाटक के विषय में डॉ. जगदीश शर्मा कहते है – "हिन्दी नाटक साहित्य के इतिहास में पहली बार इस नाटक में यथार्थवादी रंगमंच की सीमाओं को संभावनाओं में बदल दिया है – अपरिवर्तित द्रश्य बंध को समय की परिवर्तनशीलता से टकराकर मोहन राकेश ने समय की शक्ति के प्रभाव को और सघन कर दिया है ।"[२]

'आषाढ़ का एक दिन' में राकेशजी ने इतिहास की ओर देखा है और एक मौलिक और संवेदना प्रधान नाटक की सृष्टि कर दी है । संपूर्ण नाटक को देखने के बाद ऐसा लगता है, "कालिदास ने ऐतिहासिक जीवन वृत्त के संबंध में प्रचलित विविध परस्पर विरोध मतों से किसी एक को नाटककार ने युक्ति–युक्त मानकर स्वीकार किया हो, ऐसी बात भी नहीं है । लगता है उस कल्पना में कल्पना का वर्णन किया है ।"[३] प्रसाद के नाटक स्कंदगुप्त में कालिदास जीवन निर्वाह के लिए राजधानी आता है और वहीं मातृगुप्त के नाम से प्रसिद्ध होता है । अपनी प्रियतमा की स्मृति उसे कचोटती रहती है । यहाँ आकर वह राज्याश्रय प्राप्त करता है । स्कंदगुप्त के शासक हो जाने पर उसे काश्मीर का प्रशासक नियुक्त कर दिया जाता है । इसी बीच उसकी प्रियतमा

वारांगना बनकर कालिदास का इंतजार कर रही है । जब वह यह जानता है तो उसे ढूंढ़ने लगता है । मानसिक अस्वस्थता के कारण राज्य में अचानक हुए विद्रोह को शांत करने में अक्षम प्रमाणित होता हैं । फलतः राज्य भी छोड़ देता है । ये कतिपय ऐसे संकेत हैं जिन्हें कुछ परिवर्तन करके कलात्मकता के साथ राकेशजी ने 'आषाढ़ का एक दिन' में पिरोया है । राकेशजी ने कल्पना के सहारे इन सूत्रों को नया रूप दिया है । राकेशजी इतिहास में ठहरना नहीं चाहते अपितु उससे अपेक्षित संकेत लेकर नाट्य-सृजन को आधुनिकता से जोड़ना चाहते है और वे सफल भी हुए हैं । उनका यह कथन भी इस बात को पुष्ट करता है, कि – "कालिदास के जीवन के संबंध में कितने प्रामाणिक तथ्य हमें आज उपलब्ध है ? ।"[४]

वस्तुतः यह नाटक कथा को ऐतिहासिक व्यक्तित्व से जोड़ा गया है किन्तु ऐतिहासिकता न्यून ही रह गई है । फिर उनकी स्वीकारोक्ति भी है कि – "कालिदास मेरे लिए व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है । नाटक में यह प्रतीक उस अंतर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिमा को आंदोलित करता है ।"[५] राकेशजी ने रंगसज्जा, भाषा, पात्रों के कतिपय नाम और स्थान विशेषताओं के उल्लेख के कारण ऐतिहासिकता का भ्रम पैदा किया है ।

६.४.१ कथानक :

यह एक ऐसा नाटक है जो कितनी ही स्थितियों में एक बेजुबान रिश्ते का नाम देता है । उसमें प्रयोग की भूमिका है, किन्तु साथ ही परंपरा या मध्यकालीन बोध का भी समाहार हुआ है । रोमांटिक बोध और आधुनिक बोध का सुंदर सामंजस्य बिठाया गया है । इससे कथानक सरस और जीवंत बन पड़ा है ।

आषाढ़ के प्रथम दिन वर्षा में भीगकर ग्राम्यबाला मल्लिका घर में प्रवेश करती है । आज वह अत्यंत खुश है क्योंकि प्रकृति के साथ सौंदर्य का जो साक्षात्कार उसने किया था उसकी अनुभूतियों को बताना चाहती है किन्तु माँ उसकी बातों में कोई रुचि नहीं लेती । वह अत्यंत उदासीन एवम् तटस्थ भाव से अपने कार्य में संलग्न रहती है । मल्लिका का इस तरह वर्षा में भीगना एवम् कालीदास के साथ पर्वत शिखरों पर घूमना उसे सह्य नहीं है क्योंकि अंबिका को कालिदास पसंद नहीं है । वह समझती है कि कालिदास ही उसकी बेटी की लोक निंदा का कारण है । मल्लिका के विवाह संबंधी विचार अंबिका से मेल नहीं खाते । वह जीवन को स्वतंत्र रूप से अपने स्तर पर जीने

की आकांक्षा रखती है। "मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपति है।"[६] वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उसपर आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है। उसके मन में कालिदास के प्रति पवित्र कोमल एवम् अनश्वर भावना है। उसने भावना में भावना का वर्णन किया है। उसी भावना से उसे प्रेम है किन्तु अंबिका उसे आत्म प्रवंचना कहती है – "मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वर्णन क्या होता है ? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस प्रकार पूरी होती है ? भावना में भावना का वरण !"[७] इसी बीच कालिदास हरिणशावक को लेकर मल्लिका के घर में प्रवेश करते हैं। मल्लिका और कालिदास मिलकर हरिणशावक का उपचार करते हैं तभी उन्हें ढूंढ़ता हुआ राज्य का कर्मचारी वहाँ प्रवेश करता है और अपने शिकार की मांग करता है। कालिदास इसका विरोध करते हैं। कर्मचारी सूचना देता है कि राज्य कालिदास का सन्मान करके उन्हें राजकवि के पद पर आसीन करना चाहता है। यह सुनकर कि आचार्यवर उन्हें उज्जयिनी ले जाने के लिए आये है, मल्लिका के हर्ष की सीमा नहीं रहती। उस समय माँ की उदासीनता उसे बहुत खलती है। तभी कवि मातुल आकर अंबिका से कहते हैं कि कालिदास राजकीय सम्मान को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं है। उनका कहना है – " मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ। "[८] कालिदास मंदिर में चले जाते है। निक्षेप मल्लिका को समझाता है कि उसी के कहने पर कालिदास अपनी जीद छोड़ेगा। माँ के विरोध के बावजूद मल्लिका उस क्षण के महत्त्व को समझकर कालिदास के पास चली जाती है। उसके जाने के बाद विलोम कालिदास और मल्लिका के संबंधों को लेकर अंबिका को आघात पहुँचाता है। कालिदास और मल्लिका के वापस आने पर विलोम कालिदास के प्रति अपना जहर उगलता है। विलोम की द्रष्टि में "विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास और कालीदास ? एक सफल विलोम।"[९] मल्लिका कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करती है; किन्तु कालिदास के मन में शंका है, कि "यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।"[१०] मल्लिका उसे विश्वास दिलाते हुए कहती है, कि "नई भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नई भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे।"[११] कालिदास के विदा माँगने पर वह कह उठती है, "नहीं ! विदा तुम्हें नहीं दूँगी। जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करुँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।"[१२]

उज्जयिनी जाने के बाद कालिदास अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना करते हैं, उनकी प्रसिद्धि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। गुप्तवंशीय राजदुहिता प्रियंगुमंजरी से

उनका विवाह हो जाता है। मल्लिका कालिदास की कीर्ति सुनते रहने के कारण अपने जीवन को सार्थक समझती है। कालिदास के विषय में किसी भी प्रकार की कटु बात उसके लिए असह्य है। व्यावसायियों से कालिदास की रचनाओं की प्रतियाँ मँगवाकर पढ़ती है एवम् अपनी बीमार माँ की परिचर्या में व्यस्त रहती है। उन्हीं दिनों कालिदास जो इस समय देव मातृगुप्त के नाम से जाने जाते हैं, काश्मीर जाते समय एक दिन ग्राम में रुकते हैं। निक्षेप मल्लिका को इस बात की सूचना देता है कि कालिदास इस तरफ आ रहे है तो वह स्तंभित रह जाती है। जिसने भावना में भावना का वर्णन करके जिस कालिदास को अपनाया था, वहीं उसे पुनः आया जानकर मधुर कल्पनाओं में खो जाती है। वह सोचती है कि अपने हाथों से सिले पन्नोंवाला ग्रंथ कालिदास को भेंट करेगी और कहेगी यह उसकी नई रचना के लिए है। उसके मन में आशंका के बादल भी छाये हुए हैं कि कालिदास में कोई परिवर्तन न आया हो। वह इसी अन्तर्द्वन्द्व में हैं कि प्रियंगुमंजरी मल्लिका से मिलने के लिए घर आती है। मल्लिका उसे देखकर स्तब्ध रह जाती है। किस रुप में उसका आदर-सत्कार करें? प्रियंगुमंजरी घर की अवस्था देखकर उसका परिसंस्कार कराना चाहती है, किन्तु स्वाभिमानी मल्लिका यह कैसे सह सकती ? अतः विनम्रतापूर्वक इन्कार कर देती है। प्रियंगुमंजरी मल्लिका को समझ नहीं पाती वह किसी योग्य अधिकारी के साथ मल्लिका का विवाह करना चाहती है यह जानकर मल्लिका को आघात पहुँचता है। इस प्रसंग से मल्लिका उदासीन हो जाती है किन्तु अंबिका आवेश में आ जाती है। परिस्थिति की गंभीरता समझकर प्रियंगु यथा संभव सहायता का वचन देकर वहाँ से चली जाती है। ठीक उसी समय विलोम भी अपने व्यंग्य की वर्षा करने से नहीं चूकता। वह बार-बार कालिदास की चर्चा करके अंबिका के व्यथित हृदय को ओर पीड़ा पहुँचाता है वह कहता है कि कालिदास को मल्लिका से अवश्य मिलना चाहिए। निक्षेप को भी कालिदास के व्यवहार को देखकर कहना पड़ता है कि "मैंने आशा नहीं की थी कि उज्जयिनी जाकर कालिदास इस तरह वहाँ के हो जायेंगे। यहाँ रहते उनका जो आग्रह था कि जीवन-भर विवाह नहीं करेंगे, उस आग्रह का क्या हुआ ? उन्होंने यह नहीं सोचा कि उसी आग्रह की रक्षा के लिए तुमने ...?"[73] निक्षेप की सम्मति के अनुसार मल्लिकाने जिस अभ्युदय की कामना से कालिदास को उज्जयिनी भेजा था उसकी परिणति यह हुई कि काश्मीर जाते समय गाँव से निकलते हुए कालिदास भले ही अपने मन की अस्थिरता के कारण सही, मल्लिका से मिलने भी न आ सका। मिलने आई उसकी पत्नी जो कालिदास पर अपने अधिकारों की चर्चा और मल्लिका के प्रति दयाभाव के ओछे प्रस्तावों से जले पर नमक छिड़क

गई । "कालिदास के अभ्युदय की कामना का बदला समय ने प्रियंगुमंजरी के दर्द के रूप में दिया ।"[७४]

कुछ वर्षों के बाद आषाढ़ की वर्षा में भीगा मातुल बैसाखी के सहारे मल्लिका के घर में प्रवेश करता है । वह मल्लिका को अपने राज प्रासाद के अनुभव सुनाता है । राज प्रासाद में रहने का मोह अब नहीं रहा । मातुल सूचना देता है कि कालिदास ने अब काश्मीर छोड़ दिया है और राजकारभार से सन्यास ले लिया है । यह समाचार सूनते ही मल्लिका के ह्रदय का बांध ढ़ह जाता है । उसे अपनी सार्थकता अंबर में झूलती नजर आती है । कालिदास के इस प्रकार सन्यास लेने पर वह तटस्थ नहीं रह पाती । अपनी बच्ची की ओर संकेत करते हुए वह कहती है, "यह मेरे अभाव की संतान है । जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परंतु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी-कितनी आकृतियाँ हैं ! जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है ।"[७५] आज वह अपनी द्रष्टि में भी एक विशेषण भर बन गई है । काश ! कालिदास उसके अभावों का पता लगा पाते ? उसकी वेदना बढ़ती जाती है । उसने समय की गति के विपरीत अतीत संबंध की भावना को संजोये रखने का प्रयास किया था, लेकिन समय किसी के लिए नहीं ठहरता । एक बार समय की गति के लिए कालिदास मल्लिका के द्वार पर आकर खड़ा हो जाता है । वह ज्वारक्रांत और क्षत-विक्षत अवस्था में था । वह आषाढ़ की वर्षा में भिगे हैं और इस तरह भीगना उनके जीवन की महत्त्वाकांक्षा है । मल्लिका उसे देखकर हैरान रह जाती है । कालिदास को मल्लिका और उसके घर की स्थिति देखने पर लगता है कि पिछले वर्षों में उसकी आशा के प्रतिकूल बहुत परिवर्तन हो गया है । वह पिछली बार मल्लिका से इसलिए नहीं मिला, क्योंकि उसे डर था कि मल्लिका की आँखें उसके अस्थिर मन को और अस्थिर न कर दें । अब प्रभुता एवम् सत्ता का मोह भंग हो चूका है । वह कहता है, " 'कुमार-सम्भव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो । 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दिता यक्षिणी तुम हो - यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की । 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में शकुन्तला के रूप में तुम्ही मेरे सामने थी ।"[७६] वह अफसोस व्यक्त करता है कि काश ! तुमने मेरी रचनाएँ पढ़ी होती ! मल्लिका के बताने पर कि उसके पास सभी रचनाओं की प्रतियाँ हैं, कालिदास को अपने अभाव और बड़े प्रतीत होते हैं । वह महसूस करता है कि उसे वर्षों पहले वहाँ लौट आना चाहिए था । मल्लिका द्वारा सिले पन्नों को देखकर कालिदास को लगता है कि वे अब कोरे नहीं है । उन पर अनंत सर्गोवाले महाकाव्य की

रचना हो चुकी है। कालिदास जब 'फिर अथ से आरंभ' करने का प्रस्ताव करता है, तो समय की गति को विपरित दिशा में मोड़ने की चेष्टा करता है, लेकिन तभी मल्लिका की बच्ची के रोने की आवाज उसकी इस चेष्टा पर पानी फेर देती है। मल्लिका जब अंदर जाती है तो कालिदास कुछ सोच-विचार कर वहाँ से चला जाता है। और मल्लिका फिर से अकेली हो जाती है। इस प्रकार नाटक का अंत होता है।

६.४.२ रचना विधान :

'आषाढ़ का एक दिन' तीन अंकों का नाटक है। कथा के केन्द्रित और लक्ष्योन्मुख होने पर अंकों का विस्तार कम होता है। अंकों में द्रश्य विभाजन नहीं किया गया है। इससे रचनाकार एक ओर तो प्रयोग की भूमियाँ निर्देश करना चाहते थे तो दूसरी ओर बिखराव से भी बचना चाहते थे। कालिदास और मल्लिका की कथा आधिकारिक है, जबकि मातुल, अंबिका, विलोम, निक्षेप आदि की कथाएँ प्रासंगिक और गौण है। राकेशजी ने नाटक की कथावस्तु को एक ऐसी संश्लिष्टता प्रदान की है जिसमें कथा अथ से इति तक संगठित रहती है। "नाटक में जितनी घटनाएँ हैं वे सब एक-दूसरे से क्रमिक रूप से संबंधित है। इनमें कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि नाटककार ने किसी न किसी संदर्भ अथवा घटना को कथानक में ऊपर से ढांक दिया हो। कालिदास के अंतरंग जीवन से संबद्ध इस नाटक में श्लोक ऐतिहासिक प्रवाहों को नाटकीय कल्पना का रंग देकर प्रस्तुत किया गया है। इन प्रयासों का यद्यपि कोई प्रामाणिक इतिहास हमें नहीं मिलता, फिर भी इनके समन्वय-संयोजन में राकेशजी ने पूरी संगति बिठाई है, इसमें कोई संदेह नहीं। एक रचनाकार के ह्रदय की विवशता का बोध ही नाटककार के निष्कर्षों में निहित होता है। उसमें एक मानवीय उदार द्रष्टि सर्वत्र लक्षित होती है, जो कालिदास के साथ न्याय करती है एवम् प्रेक्षक अथवा पाठक के ह्रदय में विश्वस्त भाव को स्थिर करती है।"[१७]

नाटक में जितने भी अंक है, उन सब में एक ही द्रश्य है – मल्लिका का घर। काल के व्यतीत होने के साथ-साथ घर की स्थिति में भी परिवर्तन होता गया है। "इस तरह एक ही स्थान पर समय की गति के साथ परिवर्तित होता गया परिवेश समय के हाथों पिटे मानव की नियति को यथाबद्ध करता गया है।"[१८] कथानक में जो भी संदर्भ है, उनमें किसी-न-किसी संदर्भ से कोई-न-कोई परिचयात्मक भूमिका तैयार होती है। प्रथम अंक में ही मल्लिका और अंबिका के वार्तालाप से कालिदास के प्रारंभिक

जीवन के परिचय-सूत्र मिल जाते हैं। कालिदास के अंतर्द्वन्द्व एवम् संघर्ष का भी संकेत मिल जाता है। हरिणशावक एवम् राजपुरुष का प्रसंग कथानक को गति प्रदान करता है एवम् नाटकीय कौतूहल की सृष्टि करता है। कथा सौष्ठव की द्रष्टि से यह अंक सुगठित है, कार्य व्यापारों में अन्विल है।

दूसरे अंक की कथावस्तु कुछ वर्षों के बाद की घटनाओं से संबंधित है। इस अंक में निक्षेप मल्लिका को कालिदास के उज्जयिनी के जीवन संबंधी सभी प्रसंग कहता है। पूरे अंक में कालिदास की चर्चा है, प्रत्यक्ष मंच पर नहीं आता। निक्षेप एवम् मल्लिका के वार्तालाप द्वारा समस्त कार्य व्यापारों की सूचना मिलती है। रंगिनी-संगिनी का प्रसंग निरर्थक प्रतीत होता है एवम् किसी उद्‌देश्य को सिद्ध नहीं करता। अनुस्वार और अनुनासिक के प्रसंग में न तो उत्कृष्ट हास्य की सृष्टि हुई है और न कथानक को कोई गति प्रदान हुई है। ये प्रसंग आरोपित लगते है। प्रियंगुमंजरी का मिलने आना, दूसरे अंक की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है।

तीसरे अंक की घटना कुछ और वर्षों के बाद की है। अब अंबिका नहीं रही। कालिदास के काश्मीर छोड़ने और सन्यास ग्रहण करने की सूचना मल्लिका को अस्थिर बना देती है। कथानक का यह पूर्ण विकास है। तदंतर कालिदास का प्रवेश चरम नाटकीय स्थिति है। विलोम का प्रवेश एवम् उसके कथन संपूर्ण नाटक में उसके चरित्र के अनुकूल ही है। अंत में कालिदास का समय के हाथों पराजित होकर लौट जाना दर्शक-पाठक पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है।

नाटक का कथानक अत्यंत सरल एवम् सुगठित है। कुछ प्रसंगों को छोड़कर सभी घटनाएँ नाटक के मूल उद्‌देश्य को सिद्ध करने में योग देती है। सभी घटनाएँ परस्पर काल एवम् स्थान की द्रष्टि से काफी पृथक होते हुए भी सुगम्फित है। समग्र कथा स्थितियाँ वैविध्यमयी होकर भी परस्पर संबंधित, नियोजित और सूत्रबद्ध है। एक कथा-स्थिति के साथ दूसरी का योग सहज ही होता चला गया है। संघर्ष के पक्ष बदलते रहे हैं, फिर भी कथा में गुंथावट है, एक रचाव है।

६.४.३ चरित्र - चित्रण :

चरित्र सृष्टि की द्रष्टि से भी यह नाटक हिन्दी साहित्य की एक प्राचीन रुढ़ि को तोड़ता है, जो नाटककार की प्रवृत्ति का परिचायक है। हमारे समाज में राम, कृष्ण,

गांधी और सभी महान कवि मात्र विशिष्ट गुणों की विभूतियाँ माने जाते हैं। हमारे संस्कार इनके व्यक्तित्व से सदैव महानता की अपेक्षा रखते हैं, उनकी दुर्बलता को स्वीकार नहीं कर सकते। गुण – दोषों से पूर्ण मानव यथार्थ जीवन में भी कुछ महान कार्य कर सकता है। हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते। संभवतः इसलिए राकेशजी द्वारा चित्रित कालिदास के व्यक्तित्व को आलोचकों ने नाटककार का अन्याय और एक महान चरित्र को गिराने का प्रयास माना है। "कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का फलक है ...।"[७९]

⌗ मल्लिका :

नाटक का केन्द्र मल्लिका का भावनामय चरित्र है। वह कालिदास की बालसखी और काव्य की मूल प्रेरणा है। ग्रामप्रान्तर के भावना की अवहेलना करते हुए कालिदास के साथ पर्वत श्रृंखलाओं पर घूमती हुई उमड़ते मेघों का निर्व्याज सौंदर्य निहारती है। "संपूर्ण नाटक उसके व्यक्तित्व की छाया से अनुप्राणित है, वहीं दर्शक और पाठक की समूची सहानुभूति का एकमात्र आलंबन बनती है।"[८०]

मल्लिका राकेशजी की अदभूत पात्र कल्पना है। यद्यपि वह नायक कालिदास की परिसीमा नहीं है फिर भी नायिका का पद उसे ही प्राप्त है। मल्लिका को नायिका बनाकर राकेशजी ने एक साथ दो कार्य किए हैं – एक तो नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट नायिका के मानदंडों को तोड़ने का साहसिक कार्य और दूसरा नायक की प्रेमिका को नाटक की हर स्थिति से जोड़कर क्रान्ति के मार्ग पर प्रक्षेपित किया।

वह व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर कालिदास को महान होते देखना चाहती है। 'भावना में भावना का वर्णन' करनेवाला उसका निःस्वार्थ प्रेम कालिदास से किसी भी प्रतिदान की अपेक्षा नहीं करता। उसका आग्रह ही कालिदास को जीवन की नई दिशा स्वीकार कर उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करता है। जीवन की स्थूल आवश्यकताओं को नकार कर वह मात्र अपनी कोमल भावनाओं के आधार पर ही शेष जीवन व्यतीत करने का संकल्प करती है। यद्यपि कालिदास के प्रस्थान के पश्चात् भविष्य में छानेवाली रिक्तता और सूनेपन की अनुभूति उसे मन–ही–मन भयभीत करती है, तथापि वह कालिदास को अत्यंत उत्साह पूर्वक भेजती है।

दूसरे अंक में मल्लिका की करुण नियति का चित्र है। उसकी पराकाष्टा का क्षण तब आता है, जब कालिदास ग्राम आकर भी उससे मिलने नहीं आता। कालिदास की पत्नी प्रियंगुमंजरी उसके भाग्य की विडंबना को गहरा आघात पहुँचा जाती है। उसका आहत स्वाभिमान प्रियंगु के व्यंग्य भी किसी तरह झेल लेती है। पर क्षण–क्षण दूर होता कालिदास के घोड़ों की टापों का शब्द उसकी चिरसंचित अभिलाषाओं को ध्वस्त कर देता है। "सोचती थी तुम आओगे तो उसी तरह मेघ धिरे होंगे ... और मैं अपनी यह भेंट तुम्हारे हाथों में रख दूंगी। परंतु आज तुम आये हो तो सारा वातावरण ही ओर है।"[२१]

तीसरे अंक में मल्लिका के जीवन की त्रासदी को उसी के शब्दों में मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। जीवन की स्थूल आवश्यकताओं से विवश होकर वह विलोम से विवाह करती है, किन्तु उसके मन में आज भी कालिदास की प्रतिमा है और विलोम से अपने संबंध को वह एक वारांगणा का ही रूप मानती है। मातुल से कालिदास के सन्यास लेने की बात सुनकर उसे लगता है कि उसका आजीवन क्षण–क्षण कष्टों में मिटना व्यर्थ था। कालिदास के रचना संसार में ही उसने अपने जीवन की सार्थकता की तलाश की थी, लेकिन सब कुछ ध्वस्त हो गया, – "मैंने अपने भाव के कोष्ठ को रिक्त नहीं होने दिया। परंतु मेरे अभाव की पीड़ा का अनुमान लगा सकते हैं।"[२२] वस्तुतः मल्लिका उस अलिखित करुण महाकाव्य के समान है, जिसके अनन्त सर्ग अपने में पीड़ा का इतिहास समेटे है। इस संदर्भ में राकेशजीने सही लिखा है – "मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नहीं, भूमि में रोपित उस स्थिर आस्था का भी है जो ऊपर से झुलस कर भी अपने मूल में विरोपित नहीं होती।"[२३] किन्तु मल्लिका के चरित्र की परिणती "कथावस्तु की समग्र कल्पना और स्वयं मल्लिका के चरित्र से संगति नहीं रखती। यह संभवतः नाटककार के अस्तित्ववादी विचार दर्शाने का ही परिणाम है अथवा फ्रायड द्वारा निर्देशित मानवीय मनोविज्ञान की वह स्थिति जहाँ मनुष्य आत्मपीड़क बनकर स्वयं से प्रतिशोध लेने लगता है।"[२४]

कालिदास :

सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक कालिदास प्रकृति की गोद में पले भावुक कवि हैं। ग्राम प्रांतर के हरिणशावकों से उन्हें विशेष मोह है। आषाढ़ की धरासार वर्षा में भीगना उनकी महत्त्वाकांक्षा है। ग्राम्य जीवन में ही सीधी–सरल प्रेयसी मल्लिका से

उन्हें अटूट भावात्मक लगाव है। इतने पर भी कालिदास अपने साहित्य की सीमितता के कारण मल्लिका से विवाह नहीं करना चाहते। अंबिका की द्रष्टि में वह आत्मसीमित और आत्मार्थी है। ग्रामवासी भी उसे संदेह और वितृष्णा की निगाहों से देखते है।

उज्जयिनी की राज्य सभा कालिदास का सम्मान करके उन्हें राजकवि का आसन देना चाहते है किन्तु कालिदास इससे कतराते है। कालिदास उसे अस्वीकार कर कहते है – "मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।"[२५] मल्लिका इस महत्त्वपूर्ण क्षण में कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करती है। किन्तु कालिदास को भय था कि वह अपनी भूमि से उखड़ जायेगा। यहाँ कालिदास का अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट होता है। मल्लिका के प्रबल आग्रह पर वह उज्जयिनी जाते हैं और वहाँ जाकर वे कई नयें काव्यों का सृजन करते है। प्रियंगुमंजरी से विवाह और तत्पश्चात् काश्मीर का शासनभार भी संभालते है। इस प्रकार अपने संकल्प के विपरित आचरण करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे जो नहीं करना चाहते वहीं करना पड़ता है मानों उसके लिए वे अभिशप्त हो।

ग्रामप्रांतर में रुकना और मल्लिका से नहीं मिलना उसकी अपराध भावना को स्पष्ट कर देते है। उनकी यही अपराध भावना उन्हें तो मल्लिका को भी कहीं भीतर से तोड़ देती है। कुछ वर्षों पश्चात् शासन छोड़कर सन्यास लेना और फिर यकायक एक दिन क्षत-विक्षत अवस्था में मल्लिका के घर में प्रवेश करना उसकी अीस्थिरता का सूचक है। घर और मल्लिका की परिवर्तित स्थिति को देखकर उसे लगता है कि अपनी ही द्रष्टि बदल गई है। मल्लिका की विचन्नावस्था देखकर कालिदास को अपने अभाव और बड़े प्रतीत होने लगते है। वह जीवन फिर अथ से प्रारंभ करने की बात करता है, किन्तु समय बहुत शक्तिशाली है। कालिदास उसके विघटनकारी रूप का अनुभव करता है एवम् मल्लिका के घर से चुपचाप चला जाता है।

कालिदास के चरित्र में पर्याप्त दुर्बलता है; किन्तु वह उसकी यथार्थ स्थिति की वाहिका है। इस दुर्बलता के मूल में उसकी अस्थिरता और विकल्पात्मक स्थिति ही प्रमुख प्रतीत होती है। उसे न तो अपने पर विश्वास है और न वह निर्णय के क्षणों में सही उतरता है। उसकी स्वीकारोक्ति है – "मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करुंगा। मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा ... और यह आशंका

निराधार नहीं थी।"[२६] कालिदास की अस्थिर मानसिकता काश्मीर का शासनभार संभालते समय और भी स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः उनकी प्रकृति द्विधाग्रस्त है, दोलायमान है तथा वह मल्लिका के गाँव से गुजरने पर भी उससे नहीं मिलता। वह कहता भी है – "मैं तब तुमसे मिलने नही आया क्योंकि भय था, तुम्हारी अस्थिर आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी।"[२७]

इस प्रकार कालिदास के चरित्र में जो भी संदर्भ आये वे उसे उसकी सभी दुर्बलताओं के बावजूद एक यथार्थ चरित्र बना देती हैं। "नाटक में उसका जो स्थान है, उसके अनुकूल वह है। हो सकता है कि कुछ परंपरावादी कालिदास के नायकत्व में यह सब न देखना चाहे किन्तु युग की मांग और समकालीन जीवन धारा की तरंगों के अभिसिक्त होकर कालिदास जिस रूप में भी आया है, उससे दूसरा रूप हो ही नहीं सकता था और यदि वह होता भी तो आधुनिक मनीषा को स्वीकार न होता।"[२८]

अंबिका :

यथार्थ में झांकता व्यक्तित्व – मल्लिका की माँ अंबिका नाटक का यथार्थवादी स्त्री चरित्र है। उसे मल्लिका से अत्यधिक स्नेह है, किन्तु कालिदास के साथ मल्लिका के संबंध को लेकर वह क्षुब्ध है। वह मल्लिका की पवित्र कोमल भावनाओं को आत्म-प्रवंचना मानती है। उसकी वह अवस्था बीत चुकी है जब यथार्थ से आँख मूंदकर जिया जाता है। उसका जीवन भावना नहीं कर्म है – "माँ का जीवन भावना नहीं कर्म है...। कल तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा, तो जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?"[२९] अंबिका की दुरद्रष्टि का यह भय ही नाटक के अंत में सत्य सिद्ध होता है। उसे कालिदास से वितृष्णा है। वह कालिदास को आत्म केन्द्रित एवम् स्वार्थी समझती है। राकेशजी ने अंबिका एवम् मल्लिका के माध्यम से समकालीन पीढ़ी के भेद को मुखरित किया है। अंबिका अपने यथार्थवादी एवम् परंपरा मूलक द्रष्टिकोण के कारण चाहती है कि मल्लिका विवाह करके सुखी जीवन बिताये, किन्तु मल्लिका के लिए उसकी भावना ही सर्वोपरी है। अंबिका जीवन की स्थूल आवश्यकताओं को महत्त्व देती है। परिणामतः दोनों में संघर्ष चलता रहता है। अंबिका मल्लिका के विचार बदलने में असमर्थ होकर उसकी विपन्नावस्था को लक्षित कर, उसकी व्यथा एवम् वेदना को अनुभव कर घुटती रहती है। अंबिका को अपने घर का वातावरण गुफा सा प्रतीत होता है। जिसमें वह

बंद रहती है। दिन, मास और वर्ष उसे घूटते हुए बीत गये है। कालिदास के ग्राम में आने पर प्रियंगुमंजरी का उनसे मिलने आना, मल्लिका को साथ ले जाने का प्रस्ताव, घर की भित्तियों के परिसंस्कार की व्यवस्था उसके स्वाभिमान को आहत करती है। अंततः वह बिलकुल टूट जाती है और अंतिम सांस तक प्रयत्न करती है कि मल्लिका भावना के स्थान पर यथार्थ स्थिति को समझने का प्रयत्न करें।

वस्तुतः अंबिका का पात्र नितांत यथार्थवादी है। उसका जीवन पीड़ा का इतिहास बनकर रह गया है। उसका चरित्र अधिक जीवंत और विश्वसनीय बन सका है।

विलोम :

विलोम परंपरागत खलनायक नहीं है। उसका यह कथन ही उसकी चारित्रिक विशेषताओं को उदधोषित करनेवाला है – "विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास और कालीदास ? एक सफल विलोम।"[३०] विलोम कालिदास के हृदय का दर्पण ही प्रतीत होता है जिसमें झांकने पर वह भयभीत होता है। अन्य सभी पात्र विलोम से दूर रहने की चेष्टा करते हैं, क्योंकि वह सब के अवचेतन में छिपी भावनाओं और सत्य को निर्भयता से उघाड़कर रख देता है। वह कालिदास का प्रतिस्पर्धी है एवम् मल्लिका से प्रेम करता है तथा अंत में उससे शरीर संबंध स्थापित करने में सफल भी हो जाता है। किन्तु मल्लिका के लिए वह आज भी धृणापात्र ही है। "नाटक में विलोम जो कालिदास की अपेक्षा अधिक सबल प्रतीत होता है, दुराग्रह की आक्रामक शक्तियों को संकेतित करता है। वह व्यक्ति अपने अंतर्द्वन्द्व को खो चुका है।"[३१] राकेशजी ने खुद 'लहरों के राजहंस' की भूमिका में लिखा है – "यही कारण है कि 'आषाढ़ का एक दिन' में पराजित व्यक्ति टूटा हुआ कालिदास नहीं, अपितु अपने में संयोजित विलोम है, क्योंकि विजय और पराजय के संकेत वे दोनों स्वयं नहीं है, संकेत है – मल्लिका , जो कालिदास की आस्था का विस्तारित रूप है।"[३२]

विलोम की भूमिका नाटक को कोई मोड़ नहीं देती। वह कथा नायक के विरुद्ध न तो षडयंत्र करता है न उससे टकराता है। उसके चरित्र के अप्रीतिकर पक्षों को उदधाटित करने में ही उसके पात्र की सार्थकता है। वह धूर्त नहीं, स्पष्ट वक्ता है किन्तु उसकी स्पष्टवादिता में द्वेष का स्वर मुखरित हुआ है। जैसा कि उसके चरित्र से प्रगट है, वह जीवन के निषेध पक्ष की झलक देने के लिए मंच पर आता है और भीतर की

कड़वाहट उगलकर वहाँ से चला जाता है । इस तरह वह परंपरागत खलनायक से भिन्न है ।

६.४.४ भाषाशैली :

चरित्र की तरह नाटक की भाषा भी आलोचक वर्ग में विवाद का कारण रही है । सबसे बड़ी आपत्ति इसकी संस्कृतनिष्ठ शब्दावली को लेकर थी, लेकिन इससे साधारण दर्शक तथा नाटक के संप्रेषण में बाधा उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं लगता । वस्तुतः भाषा के इस रूप के अभाव में कालिदास के कविरूप और उसके युग की विश्वसनीयता नाटक में लाना असंभव था । इस नाटक के संवादों की एक विशेषता अनायास ही जीवन के शाश्वत सत्यों का उदधाटन करना भी है – "जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ ही तो सबकुछ नहीं है ।"[३३] ऐसे वाक्य प्रासंगिक अर्थ को लांधकर सार्वकालिक अर्थ दे जाते हैं ।

नाटक के प्रारंभिक अंकों में भाषा का तत्सम और परिकृत रूप मिलता है, तो अंतिम अंक में और खासकर मल्लिका और कालिदास के वार्तालाप में भाषा का यथार्थ रूप मिलता है । शब्दों का चुनाव और प्रयोग इतना सहज और विश्वसनीय है, कि प्रेमी–युगल की वियोगानुभूति और अंतर्द्वन्द्वमयी स्थितियों को उभारने के लिए इससे अच्छी और प्रामाणिक भाषा दूसरी नहीं हो सकती थी । विलोम और कालिदास व मल्लिका के संवादों में भी भाषा का बोलचालवाला रूप मिलता है । उसमें यथार्थ अनुभवों का खरापन है । परिस्थिति और पात्र की मांग के अनुसार भाषा ढलती रहती है । केवल शब्दों के बल पर मल्लिका का भावभीना चरित्र, अंबिका की मूक वेदना तथा कालिदास का अंतर्द्वन्द्व साकार हो उठता है । लक्षणाव्यंजना के प्रयोग से नाटक की भाषा नये अर्थों की वाहिका बनी है – " मैं अनुभव करता हूँ कि ग्राम प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जूड़ा हूँ ... यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा ।"[३४] रोमानी संदर्भों को यथार्थ के नजरिये से देखने के लिए भाषा में जिस व्यक्तिमत्ता की जरूरत होती है, वह 'आषाढ़ का एक दिन' में उपलब्ध है । कुल मिलाकर "बिम्बों के बड़े प्रभावी और नाटकीय प्रयोग के साथ साथ उसमें शब्दों की अपूर्व मितव्यता भी है और भाषा में ऐसा नाटकीय काव्य है जो हिन्दी नाटकीय गद्य के लिए एकदम अभूतपूर्व है और अचानक ही हिन्दी नाटक का वयस्क होना सूचीत करता है ।"[३५]

संवाद नाटक का प्राण तत्त्व होता है । नाटक की सफलता संवाद-योजना पर निर्भर होती है । 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में संवाद प्रायः छोटे-छोटे और चुस्त हैं । किन्तु जब कालिदास और मल्लिका जैसे भावुक पात्र स्मरणशील हो उठते हैं, वहाँ अवश्य ही लम्बे स्वगत कथन मिलते हैं । कहीं-कहीं संवाद पाँच-छ पृष्ठों तक फैले हुए है । इन पर ऊबा देनेवाले, कमजोर, निरर्थक आदि आरोप लगाए गए हैं । परंतु नाट्य-स्थितियों और पात्रों की मनोदशाओं को देखते हुए ये संवाद उचित लगते हैं । राकेशजी ने हास्य-व्यंग्य की योजना अत्यंत कुशल ढंग से अपने नाटकों में की है । इस नाटक के संवादों में हास्य-व्यंग्य की छटा दर्शनीय है । रंगिणीं-संगिनी, अनुनासिक-अनुस्वार के संवाद बेहद रोचक और हास्य से ओतप्रोत हैं । मातुल और विलोम के संवादों में तीखा व्यंग्य है । विलोम के व्यंग्य में स्वार्थ की बू आती है लेकिन उसमें वाक्चातुर्य के साथ वस्तुवादिता और स्पष्टवादिता भी है । उदाहरण स्वरूप यह संवाद दिया जा सकता है – अंतिम अंक में कालिदास की वापसी पर मल्लिका से विलोम कहता है –

"तुमने कालिदास के आतिथ्य का उपक्रम नहीं किया ? वर्षों के बाद एक अतिथि घर में आए और उसका आतिथ्य न हो ? जानती हो, कालिदास को इस प्रदेश के हरिण शावकों का कितना मोह... ।"

"एक हरिण शावक इस घर में भी है... तुमने मल्लिका की बच्ची को नहीं देखा? उसकी आँखें हरिण शावक से कम सुंदर नहीं हैं, और जानते हो, अष्टावक्र क्या कहता है? कहता है ... ।"

इस संवाद में 'अतिथि' और 'हरिण शावक' शब्दों में इतनी व्यंजना है कि वह एक साथ अनेक अर्थों को उजागर कर नाटकीय विडम्बना के कई आयाम प्रस्तुत करते है । विलोम के सारे संवाद नाटक की कढण परिणति को और भी कढण बनाते है ।

६.४.७ अभिनेयता :-

हिन्दी के आधुनिक नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन' एक विशेष महत्त्व का अधिकारी है । इस नाटक ने न केवल नाटक लेखन को एक नया मोड़ दिया, किन्तु अनेक रंगमंचीय समस्याओं को भी उभारकर प्रस्तुत किया है ।

कथावस्तु की द्रष्टि से देखें तो स्पष्ट ही वह अभिनय के अनुकूल प्रतीत होती है । वह जिस सादगी और प्रभुविष्णुता से प्रारंभ होती है उसी सहजता और विश्वसनीयता के

साथ समाप्त भी हो जाती है। संपूर्ण कथा का आयाम तीन खंडों मे सिमटा हुआ है। उसमें किसी भी प्रकार के द्रश्यबंधों की योजना नहीं की गई है। इतने पर भी वह अभिनय के सर्वथा सानुकूल है। पात्र और प्रसंग क्रमिक रुप से स्वयं ही मंच पर आते-जाते रहते है। नाटक की घटना से शेष सभी घटनाएँ जुड़ी हुई है। इस प्रकार कथातत्व की द्रष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक अभिनेय है।

पात्रों की द्रष्टि से देखें तो इस नाटक में पात्रों की अनावश्यक भीड़ नहीं है। जो भी पात्र हैं, वे किसी-न-किसी बिंदु से नाटक के मूल उद्देश्य से जूड़े हुए है। अभिनय कला की द्रष्टि से संवादों का महत्व उनकी सरलता, संक्षिप्तता और प्रेषणीयता के आधार पर आंका जाता है। 'आषाढ़ का एक दिन' के संवादों में उक्त सभी गुण मिलते है। भाषागत आभिजात्य बोध इसके मंचन में थोड़ी बाधा अवश्य उत्पन्न करता है। लेकिन आज के दर्शक की रुची इतनी परिष्कृत हो चूकी है, कि वह ऐसी भाषा के मर्म को ह्रदयंगम कर सकता है और यही कारण है कि अब तक कई स्थलों पर 'आषाढ़ का एक दिन' का अभिनय हो चूका है।

नाटककार ने अनेक ध्वनि-संकेतों की सहायता से अपनी क्षमता को बढ़ाया है। स्थान संकलन की द्रष्टि से तो अत्यंत ही सफल है; क्योंकि तीनों ही अंकों में मल्लिका का घर ही सारी स्थितियों का केन्द्र बना हुआ है। अन्य स्थान मात्र सूचीत है। साथ ही कोई अनावश्यक द्रश्य भी नहीं है। ऐसी स्थिति में किसी विशेष द्रश्य प्रसाधन की आवश्यकता भी नहीं रह गई है। नाटक का फलक छोटा है, अधिक से अधिक दो घंटे में अभिनित किया जा सकता है। राकेशजी का यह नाटक अभिनेयता की द्रष्टि से एकदम सफल नहीं है। "यह नाटक बिना कुछ फेरबदल किये अभिनित किया जा सकता है और यह विशेषता इससे पहले किसी भी हिन्दी नाटक में इस कदर नहीं उभरी थी।"[३६]

६.७ लहरों के राजहंस

'लहरों के राजहंस' राकेशजी की नाट्य-यात्रा का दूसरा सोपान है। जिसका प्रकाशन १९६३ में हुआ। इसमें कुछ चरित्र संबंधी और उद्देश्य संबंधी दुर्बलताएँ थीं, इसे दूर करने के लिए इसका दूसरी बार सन् १९६७ में संशोधित प्रकाशन हुआ। यहाँ भी अतीत के माध्यम से सम-सामयिक युग के मानव की उलझन और आत्मसंघर्ष को संम्प्रेषित करने का प्रयत्न किया गया है। राकेशजी ने इस नाटक में प्रवृत्ति और निवृत्ति

तथा पार्थिव और अपार्थिव मूल्यों के चयन में उलझे मानव की संशयग्रस्त मनःस्थिति को नंद के आंतरिक संघर्ष के माध्यम से मुखरित करने का प्रयास किया है।

'लहरों के राजहंस' की कथावस्तु अश्वघोष के 'सौंदर-नंद' काव्य पर आधारित है, किन्तु राकेशजी ने काल्पनिक प्रसंगों और पात्रों के आधार पर उसमें अपने युग और मानव के संघर्ष और उलझनों को मुखरित करने का प्रयास किया है। कथानक का कथा-व्यापार बहुत संक्षिप्त है। तीन अंकों में विभाजित कथा का काल मात्र एक रात्री के प्रारंभ से दूसरी रात्री के प्रारंभ तक है। राकेशजी ने इसमें कपिलवस्तु के राजकुमार नंद के बौद्ध भिक्षु बनने और उसकी पत्नी सुंदरी के रूप-गर्व की कथा प्रस्तुत की है। कथा के इस क्रम में एक ओर यदि नंद की बौद्ध भिक्षु के रूप में जीवंत कथा है तो दूसरी ओर उसमें सौंदर्य की गगरी से छलकती कुछ बूंदे भी है। वस्तुतः राकेशजी पूरी नाटकीयता के साथ मानव की अंतर्द्वन्द्वमयी आधुनिक भंगिमाओं को भी उजागर करते है तो दूसरी ओर ऐतिहासिक पात्रों को नये जीवन-संदर्भों और संबंधों में कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि उसमें वर्तमान युग के जीवन आदर्शों और मूल्यों की प्रतिध्वनि भी सुनी जा सकती है। जीवन-यात्रा पर निकले प्रत्येक व्यक्ति को अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करना पड़ता है। किसी दूसरे द्वारा निर्दिष्ट मार्ग कितना ही श्रधेय क्यों न हो, अथवा कितने ही ऐश्वर्यों से पूर्ण हो, किसी संवेदनशील व्यक्ति की समस्या का समाधान नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी खोज से जीना चाहता है, दूसरे के विश्वासों को ओढ़कर नहीं। नाटक के अंत में नंद का अनिश्चित दिशा में प्रस्थान करना इसी तथ्य का सूचक है।

६.४.१ कथानक :

नाटक का प्रारंभ नंद की पत्नी सुंदरी के कामोत्सव आयोजन से होता है। नंद अपनी पत्नी पर आसक्त है किन्तु उसे अपने बड़े भाई गौतम बुद्ध के प्रति भी श्रध्धा प्रेरित प्रबल आकर्षण है। इन दोनों के चयन में वह उलझा हुआ है। सुंदरी ठीक उसी रात कामोत्सव का आयोजन करती है, जिसमें सुबह यशोधरा भिक्षुणी बननेवाली है। सुंदरी के विचार से सिद्धार्थ का गौतम बुद्ध बनना यशोधरा में नारी आकर्षण का अभाव था। सुंदरी की धारणा है कि – "नारी का आकर्षण पुढष को पुरुष बनाता है तो उसका अनाकर्षण गौतम बुद्ध बना देता है।"[३७] सुंदरी की धारणा ही उसे निवृत्ति की ओर जाने नहीं देती और जो इस ओर जा रहे है उनके प्रति ईर्ष्या भड़कती है। कामोत्सव को पूरे रंग-रोगान के साथ आयोजित किया जाता है किन्तु बुद्ध के प्रभाव से सन्यास की ओर

उन्मुख नगरवासियों में से कोई नहीं आ पाता । सुंदरी के अहंकार पर यह चोट है । वह क्षुब्ध हो उठती है । उसका मानस उद्वेलित हो उठता है । दूसरे दिन जब वह प्रातः स्वस्थ होती है तो नंद को वचनबद्ध करती है कि आज वे कहीं बाहर नहीं जायेगा । नंद वचनबद्ध भी होता है, किन्तु वह जानता है कि भिक्षा के लिए आये गौतम बुद्ध उसके प्रासाद के द्वार से खाली हाथ लौट गये तो वह व्यथित होता हुआ क्षमा याचना के लिए गौतम बुद्ध के पास जाना चाहता है । सुंदरी के अहं पर फिर से चोट पड़ती है । नंद जल्द ही लौटने का वादा करके चला जाता है किन्तु वहाँ जाने पर गौतम बुद्ध का प्रभाव उसे अभिभूत कर देता है और वह अपने बाल भी कटवा लेता है । वह धर्म में दीक्षित तो होता है पर एक कर्तव्य समझकर । उसकी दशा लहरों पर तैरते चंचल राजहंसों के समान है । वह न तो सुंदरी के मोहपाश को पूर्णतः अपना सकता है और न ही साहसपूर्वक बुद्ध की शरण का स्वीकार कर पाता है । अंततः उसे भिक्षापात्र भी दे दिया जाता है लेकिन नंद उसे ग्रहण नहीं करता । इसी अंतर्द्वन्द्वमयी स्थिति में वह भटकता रहता है । वन में जाकर व्याघ्र से युद्ध करता है और अपने पीछे छाया की तरह लगे भिक्षु आनंद के साथ घर लौटता है । नंद, सुंदरी, बुद्ध, यशोधरा और भिक्षु आनंद इतिहास में वर्णित पात्र है । अलका, श्यामांग, श्वेतांग, शशांक और लोहिताक्ष कल्पित पात्र है । राकेशजी ने कल्पित पात्रों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह भी ऐतिहासिक हो ऐसा प्रतीत होता है । उनके नाम भी उनके ऐतिहासिक होने का आभास देते है ।

घटना निरुपण में भी राकेशजी ने इतिहास और कल्पना का समन्वय किया है । नाटक की मुख्य घटना ऐतिहासिक है । गौतम बुद्ध और उनकी पत्नी यशोधरा का बौद्ध धर्म में दिक्षा ग्रहण करना, बुद्ध के सौतेले भाई नंद की पत्नी का अलौकिक रुप-सौंदर्य और उनमें नंद का आसक्त होना, उस सौंदर्यपाश में से मुक्त होकर बौद्ध धर्म का अंगिकार करना और उसके अंतर्द्वन्द्वमय जीवन आदि घटनाएँ इतिहास से मेल खाती है । इन घटनाओं को प्रभावशाली रूप देने के लिए एवम् आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उसे देखने के लिए राकेशजी ने श्यामांग का प्रसंग, कमलताल से हंसों का उड़ जाना, सुंदरी का कामोत्सव आयोजन, नंद का क्लांति से मरे मृग को देखकर क्षुब्ध हो उठना, व्याघ्र से संघर्ष, पत्नी के मस्तक पर विशेषक लगाना और नंद का बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर घर वापस लौट आना आदि घटनाओं की सृष्टि की है । ये सभी घटनाएँ इतिहास की घटनाओं के साथ इतनी सहजता से जुड़ गई है, कि कहीं पर भी वह अविश्वसनीय नहीं लगती ।

वातावरण की योजनाएँ भी इस खुबी के साथ की गई है, कि प्राचीनता एवम् बौद्ध कालीन वातावरण का सहज निर्माण हो सकता है। भाषा भी ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में सहयोग देती है।

वस्तुतः राकेशजी की यह नाट्यकृति ऐतिहासिक कथा को लेकर चलनेवाली एक नवीनतम मौलिक कृति है। राकेशजी की कल्पना के कारण उसमें इतिहास के संदर्भों ने आधुनिक रूप ग्रहण कर लिया है। अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि ऐतिहासिकता यहाँ एक बिंदु मात्र है। उससे जो रेखा बनी है वह पूरी–की–पूरी आधुनिकता के रंग में रंगी हुई है। इस संदर्भ में खुद राकेशजी का विधान है कि – "प्रस्तुत नाटक का आधार भी ऐतिहासिक है, परंतु उतने ही अर्थ में जितना इस व्याख्या में आबद्ध है। यहाँ नंद और सुंदरी की कथा एक आश्रय मात्र है क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेप्ति किया जा सकता है। नाटक का मूल अंतर्द्वन्द्व यहाँ भी उसी अर्थ में आधुनिक है जिस अर्थ में 'आषाढ़ का एक दिन' के अंतर्गत।"[३८]

इस प्रकार यह नाटक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित होते हुए भी समकालीन जीवन स्पन्दन से युक्त है। वस्तुतः ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर सशक्त चिरंजीवी नाटक की रचना तभी हो सकती है, जब नाटककार पात्रों और कथा स्थितियों को 'अनैतिहासिक' और युगीन बना दे। इस नाटक का स्वरूप ऐतिहासिक कम और आधुनिक अधिक दिखाई देता है। सामयिक जीवन का संघर्ष और आज के मानव की यातना ही इसका मूल स्वर है।

६.७.२ रचना विधान :

'लहरों के राजहंस' रचना विधान की द्रष्टि से सफल कृति है। आधिकारिक एवम् प्रासंगिक कथाएँ मिलकर प्रभाव की अदभूत सृष्टि करते हैं। राजकुमार नंद और उसकी रूपगर्विता पत्नी सुंदरी की कथा आधिकारिक है। श्यामांग और अलका का प्रसंग पताका की तरह आया है। यह प्रसंग मूल कथा के साथ इस प्रकार संबंद्ध है कि इससे मूल कथा में गति बनती है। मूल कथा को प्रसंग पोषण प्रदान करता है। नाट्यकार ने श्यामांग के प्रलापों के माध्यम से नंद का अंतर्द्वन्द्व बखूबी से उभारा है। इसके साथ ही यशोधरा का प्रवज्या ग्रहण करने का प्रसंग प्रकरी के रूप में आया है। इस प्रसंग के माध्यम से ही सुंदरी में अहं की स्थिति को उभारा गया है। यशोधरा के इस निर्णय से सुंदरी के अहं को ठेस पहुँचती है। किसी भी प्रकार उसका मन इसे

स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। नंद भी क्षुब्ध हो उठता है। इस प्रकार यह प्रसंग प्रकरी के रूप में आकर भी मूल कथा से अभिन्न रूप जुड गया है। नंद और सुंदरी पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। यह प्रसंग उन दोनों के मन में विभिन्न लहरें उत्पन्न करके एक ऐसे अंतर्द्वन्द्व को जन्म देते है जिसमें नंद और सुंदरी के कामोत्सव की विफलता का कारण बन जाता है और अहं को चोट पहुँचाता है।

राकेशजी ने इस कौशल्य के साथ मूल कथा के साथ साथ गौण कथाओं को सम्बद्ध किया है कि नाटक में एक सहज स्थिति का निर्माण हो सका है। इससे कथा में कहीं पर भी क्रमबद्धता टूटी नहीं है। नाटक आरंभ, मध्य और अंत तीनों की स्थितियों को सहजता से पार कर जाता है।

इस नाटक में तीन अंकों की योजना की गई है। इसका रचना विधान आधुनिक यथार्थवादी नाट्यरचना पर आधारित है। प्रथम अंक में कपिलवस्तु के राजकुमार नंद के बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण करने एवम् उनकी पत्नी सुंदरी के रूप-गर्व की कथा है। नाटक की मुख्य घटना है नंद का भिक्षु बनना एवम् सुंदरी के गर्व का खंड़ित हो जाना। नंद के मन में निरंतर चलनेवाला अंतर्द्वन्द्व ही संघर्ष की भूमिका प्रस्तुत करता है। इसी संघर्ष को उभारने के लिए राकेशजी ने आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं को आबद्ध किया है।

दूसरे अंक में नंद के अंतर्द्वन्द्व को श्यामांग के प्रलाप के माध्यम से ओर अधिक गहरे रुप में उभारा गया है। नंद निर्णय नहीं कर पाता कि उसे बुद्ध के पास जाना चाहिए या नहीं। वह सुंदरी के रुपजाल में ऐसा बंध गया है कि वह अनिश्चय की स्थिति में भटक जाता है। अंत में खुद सुंदरी ही उसे बुद्ध के पास भेजकर उसके अनिश्चय को दूर करती है।

तीसरे अंक में कथा अधिक सुगठित हो गई है। नंद का बुद्ध के पास जाना, दीक्षा ग्रहण करना, मुंड़न करवाना, फिर बुद्ध के भिक्षापात्र को अस्वीकार करके संशय की स्थिति में इधर-उधर भटकना, अपने भवन में लौटना और सुंदरी का उसे कोई दूसरा ही व्यक्ति मानना, दोनों के बीच वार्तालाप और तत्पश्चात् नंद का चले जाना ये सब घटनाएँ सुगठित रुप में प्रस्तुत हुई है। यह अंक घटित कम और सूच्य अधिक है। नंद के द्वारा बुद्ध के पास जाने एवम् वन में व्याघ्र से युद्ध करने की घटना का बार-बार कहने के कारण कथा के प्रवाह एवम् प्रभाव में क्षति पहुँचती है। नाटक के अंत का

अंतर्द्वन्द्व स्पष्ट रुप में मुखरित होता है। नाटक की अंतिम घटना उसके मूल द्वन्द्व को उभारती है। नाटक का मूल द्वन्द्व पार्थिव और अपार्थिव मूल्यों का द्वन्द्व है। भिक्षु आनंद का प्रसंग भी नाटकीय गति में अवरोध उत्पन्न करता हुआ लगता है। उसके आगमन का कोई निश्चित उद्देश्य प्रतीत नहीं होता। तीसरा अंक घटित कम और सूच्य अधिक होने के कारण दुर्बल बन गया है। इसका मुख्य कारण है उनकी रंगमंचीय परिकल्पना।

इस नाटक का रचना विधान आधुनिक नंद के दीक्षित होने का समाचार सुंदरी को देना चाहता है किन्तु नंद उसे ऐसा करने से रोक देता है। भिक्षु आनंद उसके साथ ही है। नंद अपने किये कार्य को सही बताता है और कहता है कि उसे उस पर कोई संकोच नहीं है। गौतम बुद्ध के प्रति उसके मन में आदर था और उसके सम्मान के कारण ही उसने अपने केश काटने का विरोध नहीं किया। आनंद नंद की व्याकुलता को लक्ष करके वहाँ से चला जाता है। नंद चाहकर भी मदिरा नहीं पीता, वह अपनी स्मृति को मदिरा की विस्मृति में डूबोना नहीं चाहता। उसकी छटपटाहट फिर भी कम नहीं होती। वह संपूर्ण स्थिति पर विचार करता है। उनकी द्रष्टि में केश काटने से कोई अंतर नहीं पड़ता। वह अब भी सुंदरी के प्रति प्रबल आकर्षण का अनुभव करता है। वह सुंदरी का विशेषक गीला करने का प्रयत्न भी करता है तभी सुंदरी जाग उठती है। वह नंद को इस रुप में देखकर आहत होती है और क्रोध में आकर सभी को अपने कक्ष से चले जाने का आदेश देती है। नंद सभी घटनाओं को बताना चाहता है किन्तु सुंदरी उसे निर्बल समझती है। सुंदरी कहती है कि वह बहुत ही शीघ्र प्रभावित हो जाता है। प्रभाव की यह प्रक्रिया बार-बार घटित होती है। नंद का कहना है कि वह वर्षों से जो एक स्थान पर रह रहा है वह किसी प्रभाव के कारण नहीं, किन्तु अपनी एक आंतरिक आवश्यकता के कारण। नंद की व्याकुलता और हताशा क्रमशः बढ़ती जाती है। सुंदरी के शब्दबाण उसे असह्य स्थिति तक पहुँचा देते है। नंद का विश्वास है कि जब तक वह यहाँ है तब तक वह केवल उतना सा ही है जितना सुंदरी की द्रष्टि उसे देखने को कहती है। यहीं पर सुंदरी का आवेश फूट पड़ता है। क्रोधवश वह चुनौती देते हुए कहती है – "तुम – कितने-कितने बिंदु खोजे हैं आज तक तुमने ? ..... जाओ एक और बिंदु खोजो।"[३९] नंद स्तब्ध सा खड़ा रहता हैं, फिर आहत वहाँ से चला जाता है। उसके जाते ही सुंदरी के धैर्य का बांध टूट जाता है और वह सिसक उठती है। यही नाटक की चरम परिणती है। यहाँ ध्यान से देखें तो ऐसा लगता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास में यदि राज्याश्रय और प्रभुता के वरण का मोह है तो नंद प्रवृत्ति और निवृत्ति

के द्वन्द्व में पिसकर छटपटाते हुए प्राणों को लेकर युग जीवन के उस चौराहें पर आ खड़ा हुआ है जहाँ चारों रास्ते एक साथ मिलकर उसे निगल जाने को तत्पर हैं।

६.४.३ चरित्र – चित्रण :

'लहरों के राजहंस' में प्रस्तुत पात्र नंद और सुंदरी, बुद्ध और यशोधरा एवम् भिक्षु आनंद ऐतिहासिक पात्र है। श्यामांग–श्वेतांग, शशांक और अलका राकेशजी की मौलिक सृष्टि है। इन कल्पित पात्रों के चित्रण में राकेशजी की सिद्धि इस बात में है, कि ये पात्र ऐतिहासिक पात्रों के साथ पूरी तरह सुसम्बद्ध रुप से जुड़ गए हैं। चरित्र सृष्टि की द्रष्टि से यह नाटक विशिष्ट बन पड़ा है। इनके ऐतिहासिक पात्र इतिहास के दायरे में से बाहर निकलकर आधुनिक जीवन संदर्भों को उजागर करते हैं। ये पात्र प्रतीकात्मक बन गये है।

नंद आधुनिक युग के संशयग्रस्त एवम् द्विधाग्रस्त मानव का प्रतीक बन गया है, तो सुंदरी जीवन के प्रति ऐहिक द्रष्टि का प्रतीक है। वह पृथ्वी के प्रतीक रुप में पुरुष और उसकी चेतना को अपने तक बांधे रखना चाहती है तो पुरुष बंधना चाहकर भी उससे ऊपर उठकर अपने लिए उपलब्धि खोजना चाहता है। श्यामांग का चरित्र नंद की संशयग्रस्त स्थिति को मुखरित करता है। वह नंद के अवचेतन मन का प्रतीक है। भिक्षु आनंद का चरित्र भी सन्यास लेने के बाद नंद की द्वन्द्वावस्था में वन में चले जाने और तत्पश्चात् उनकी प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता हैं। किन्तु इन दोनों के चरित्र सहज प्रतीत नहीं होते।

सारांश यह कि नाटक चरित्र सृष्टि के घरातल पर ऐतिहासिकता और आधुनिकता के सफल निर्वाह का नाटक हो गया है। नाटक का प्रत्येक चरित्र अपने आप में विशिष्ट हैं। अपने अस्तित्व बोध के साथ नाटक में प्रस्तुत होकर आधुनिक जीवन संघर्ष को झेलते हैं।

⌗ नंद :

'लहरों के राजहंस' का प्रमुख पुरुष पात्र है – नंद। राकेशजी ने इस ऐतिहासिक पात्र को समकालीन मनुष्य के रुप में प्रस्तुत किया है। नंद का द्वन्द्व उसे इतिहास के नंद से अलग करके समकालीन मनुष्य के निकट ले आता है। प्रारंभ से

अंत तक नंद के चरित्र में यही द्वन्द्व प्रवृत्त है। यह द्वन्द्व उसे किसी भी स्थिति में स्वाभाविक रहने नहीं देता। वह इस द्वन्द्व से मुक्त होकर अपनी उपलब्धि पाना चाहता है। किन्तु सब जगह वह अपने आपको भटका हुआ और अधूरा महसूस करता है। उसके संस्कार उसे बुद्ध द्वारा निर्दिष्ट अपार्थिव मूल्यों की ओर ले जाते हैं तो मन सुंदरी के साथ ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की ओर मोड़ता है। "प्रवृत्ति और निवृत्ति का यह द्वन्द्व नंद के चरित्र को आज के जीवन की त्रासदी के निकट ले आता है।"[४०]

नाटककार ने नंद की त्रासदी के रुप में समकालीन मानवी की त्रासदी को प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग में जीने वाला मनुष्य आज अपनी उपलब्धि खोजने के लिए कई प्रयत्न करता है किन्तु उसे हर बार अपनी निरर्थकता का ही बोध होता हैं। वह महसूस करता है कि वह चौराहे पर खड़ा एक नंगा व्यक्ति है, जिसे सभी दिशाएँ मिला लेना चाहती है और अपने आपको ढँकने के लिए उसके पास आवरण नहीं है। वह जिस दिशा की ओर बढ़ता है वह दिशा स्वयं डगमगा रही है। वह अपने लिए कोई ठोस भूमि नहीं ढूंढ सकता। राकेशजी ने नंद को इसी रुप में प्रस्तुत किया है। वह सदैव अनिश्चय की स्थिति में रहता है। अपने संशय से मुक्त नहीं हो पाता, अस्तित्व और आसक्ति के बीच फँस गया है। वह खुद यह नहीं समझ पाता, कि उसके जीवन का लक्ष्य क्या है ? वह अपने आपको मूल्यहीन अनुभव करता है। स्वयं को टूटे हुए नक्षत्र की तरह पाता है जिसका कहीं वृत्त नहीं है, जिसकी कोई धुरा नहीं है। उसके व्यवहार के पीछे उसकी आंतरिक विवशता ही कारणभूत है। वह सुंदरी को खुश रखने के लिए उसके अनुकूल व्यवहार करता है तो दूसरी ओर अपने केश कटवाकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाता है। इस प्रकार उसके मन की द्विधा किसी भी स्थिति को अपना नहीं सकने की उसकी विवशता के कारण ही है। वह किसी का भी विश्वास ओढ़कर जिना नहीं चाहता। वह एक ऐसी पीड़ा को भोग रहा है जिससे वह चाहकर भी मुक्त नहीं हो सकता। अपनी असहायावस्था पर वह खुद कहता है – "मैं चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएँ मीला लेना चाहती है।"[४१] वह अपनी इस स्थिति से भागने की कोशिश करता है। इस दौड़ में उसके भीतरी स्तर की ही मौत होती है। वह बाहर से जीवित होकर भी वह जैसे भीतर से मरा जाता है।

नंद के चरित्र का दूसरा स्वरुप मुग्ध कामुक प्रेमी का है। वह अपनी पत्नी सुंदरी के अप्रतिम सौंदर्य पर इतना आसक्त है, कि वह हर वक्त उसको प्रसन्न करने के लिए प्रयत्न करता हैं। यहाँ तक की वह उसकी उपेक्षा एवम् अवहेलना को भी सह लेता है।

राकेशजी के ही शब्दों में वह सुंदरी के चेहरे का दर्पण मात्र हैं। संपूर्ण नाटक में नंद का चरित्र सुंदरी के प्रभाव में दबा हुआ प्रतीत होता है। उसमें अपनी इच्छा से जीने का साहस नहीं है इसलिए वह घुटता रहता है। वह सुंदरी को प्रसन्न करने के लिए उसके प्रसाधन करने में भी सहायता करता हैं किन्तु भिक्षुओं का स्तर उसे विचलित कर देता है और हाथ में थामा हुआ दर्पण हाथ से छूट जाता है। इस पर सुंदरी के प्रश्न का उत्तर भी झूठा देता है। टूटा हुआ दर्पण नंद का ही प्रतिरूप बनकर उभरता है।

तीसरे अंक का नंद लहरों पर तैरते राजहंस के समान है। उसका बौद्ध धर्म ग्रहण करना, केश कटवा लेना, अनिश्चय की स्थिति में जंगल में जाना, व्याघ्र से युद्ध करना, अपने भवन में वापस लौट आना और सुंदरी के न पहचानने से फिर से चले जाना यह सब उसके संशय और अंतर्द्वन्द्व को उभारते हैं। वह अपनी पत्नी के प्रति इतना आसक्त है, कि कामोत्सव आयोजन का स्पष्ट विरोध भी नहीं कर पाता। पत्नी की इच्छा के समक्ष उसकी आंतरिक भावना कोई प्रतिक्रिया नहीं कर पाती। लगता है सारी प्रतिक्रिया आसक्ति की तरंगों के भँवर में पड़कर लुप्त हो गई है। इसलिए यह कहना उचित लगता है कि नंद का चरित्र एक मुग्ध कामुक प्रेमी का चरित्र है।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि नंद का चरित्र एक कमजोर और आश्रित व्यक्ति का चरित्र है। वह कहीं भी स्वतंत्र नहीं हैं जहाँ है वहाँ आश्रित और सुंदरी के सहारे कालयापन करनेवाला और उसी के अनुसार चलनेवाला व्यक्ति है। उसका व्यक्तित्व आधुनिक व्यक्ति का व्यक्तित्व है।

⌘ सुंदरी :

सुंदरी इस नाटक की प्रमुख नारी चरित्र है। नाटक के इस नारी चरित्र की परिधि में सभी पात्र और प्रसंग चक्कर लगाते रहे हैं। नाटक में आदि से अंत तक व्याप्त संघर्ष सुंदरी के आत्मसंघर्ष से ही जुड़ा हुआ है। सुंदरी का चरित्र अहम् रुप–गर्व एवम् द्रढ़ आत्म विश्वास से युक्त है जिसके सामने नंद का चरित्र दबा हुआ विवश और असहाय है। आरंभ से ही उसका चरित्र अपना प्रभाव स्थापित कर पाता है। उसे अपने सौंदर्य पर गर्व है। उसे द्रढ़ विश्वास है कि उसके सौंदर्य का आकर्षण नंद को सदैव बाँधे रख सकेगा। वह चुनौती भरे शब्दों में कहती भी है – "नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो स्त्री का आकर्षण गौतम बुद्ध बना देता है।"[४२] इसीलिए वह नंद के भिक्षु बनने की कल्पना नहीं कर सकती। अपने इसी अहम् के अतिरेक में वह

यशोधरा की पीड़ा तथा बुद्ध की महत्ता का परिहास करती है। उसका मानना है कि यदि यशोधरा का आकर्षण बुद्ध को बांध सकता तो वे आज तथागत न होते।

यशोधरा के प्रति उसके मन में कटु भाव है, स्पर्धा है। बुद्ध के तथागत होने में वह यशोधरा के रूप की असफलता सिद्ध करती है। उसके इस कटु भाव का रूप उस वक्त अधिक स्पष्ट रुप में प्रकट होता है जब यशोधरा के भिक्षुणी रूप में दीक्षा ग्रहण करने के दिन ही वह कामोत्सव का आयोजन करती है। कामोत्सव को सफल बनाने के लिए वह अथाग परिश्रम करती है। नंद चाहते हुए भी कामोत्सव का विरोध नहीं कर सकता। इस प्रसंग में सुंदरी के चरित्र की द्रढ़ता के दर्शन होते हैं। उत्सव में किसी भी अतिथि के न आने से वह निराश होती है किन्तु अपना स्वाभिमान छोड़कर वह किसी को मनाने नहीं जाती। नंद को वह स्पष्ट शब्दों में सुना देती है – मेरे उत्सव में लोग बुलाने से आयें इससे उनका न आना ही अच्छा है। कामोत्सव के बारे में मैत्रय जब यह कहते हैं कि – "इसे यदि कल मनाया जाएँ तो अच्छा रहेगा। उस वक्त भी उसका स्वाभिमान फूट पड़ता है – कामोत्सव कामना का उत्सव है आर्य। मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखू ... क्यों ? मेरी कामना मेरे अंतर की है मेरे अंतर में ही उसकी पूर्ति हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए इतना महत्व नहीं रखता जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।"[४३] कामोत्सव के आयोजन में यशोधरा के प्रति उसका ईर्ष्याभाव ही प्रमुख है और इसीलिए वह उसकी असफलता को स्वीकार नहीं कर सकती। वह सोचती है कि यशोधरा ने ही कामोत्सव में आनेवाले अतिथियों को रोका है।

स्वाभिमानिनि के रूप में सुंदरी का चरित्र प्रभावशाली बन सका है। उसके स्वाभिमान का प्रखरता का परिचय उस समय मिलता है जब कामोत्सव के लिए नंद अतिथियों को बुलाने खुद जाता है। वह सोचती है कि आज ऐसी कौन-सी बात हुई जिससे अतिथियों को बुलाने जाना पड़ता है। कपिलवस्तु के किसी भी व्यक्ति ने राजभवन के निमंत्रण का स्वीकार नहीं किया है। सुंदरी में स्वाभिमान की मात्रा इतनी अधिक है कि किसी की भी सहानुभूति वह सह नहीं पाती। सभी उसके क्रोध की अग्नि से बचना चाहते है। नंद भी कामोत्सव का विरोध नहीं कर सकता। अपने निर्णय में परिवर्तन करना या अपने आयोजन में किसी का हस्तक्षेप उसे सह्य नहीं है। नंद के हस्तक्षेप भी उसे स्वीकार्य नहीं है।

अपनी जिंदगी को वह अपनी द्रष्टि से ही जिना चाहती है। उसकी अपनी जीवन द्रष्टि है। वह नारी की सफलता पुरूष को अपने आकर्षण में बांध सके उसी में ही देखती है। बुद्ध की कटु आलोचना करती हुई कहती है – "उन्होंने बोध प्राप्त किया है, कामनाओं को जीता है, परंतु मैं जानना चाहती हूँ कि काम को जान जाये, यह भी क्या मन की एक कामना नहीं है।"[४४] बुद्ध की निवृत्तिवादी प्रवृत्ति की भरपूर निंदा करती है। कोई भी व्यक्ति प्रवृत्ति मार्ग से होकर निवृत्ति मार्ग पर तभी जाएगा जब कोई आकर्षण उसे बांध नहीं पाता। सुंदरी का यही जीवन दर्शन उसके चरित्र का महत्वपूर्ण पक्ष है। वह खुद नंद को अपने आकर्षण में बांधकर निवृत्ति मार्ग की ओर जाने देना नहीं चाहती। यहीं पर यशोधरा के साथ उसकी स्पर्धा है। उसे अपने रूप पर इतना अधिक विश्वास है इसीलिए वह खुद नंद को बुद्ध के पास भेजती है और जब नंद निश्चित समय में वापस नहीं लौटता तब भी वह अपने आपको दुर्बल नहीं मानती। इस प्रकार उसका जीवन दर्शन उसके चरित्र की विशेषता है।

सभी स्थितियों में अविचल रह सकने की उसकी शक्ति भी सराहनीय है। कामोत्सव को विफल देखकर भी वह अपनी स्वस्थता बनाएँ रखती है। वह जानती है कि उसका आकर्षण नंद को जरूर वापस लाएगा। जब नंद को वह सिर मुंड़ाये हुए भिक्षु के रूप में देखती है तब उसे गहरा आघात लगता है किन्तु फिर तुरंत संभल जाती है। वह नंद को उसके मूल रूप में ही स्वीकार कर सकती है, दूसरे किसी भी रूप में नहीं, यहीं उसके चरित्र की द्रढ़ता का परिचय मिलता है। नंद की इस स्थिति को लक्ष्य करके वह उसकी कटु आलोचना करती है। आंतरिक रूप अस्वस्थ होने पर भी बाह्य रूप से स्वस्थ बने रह सकने की उसमें अपूर्व क्षमता है। किन्तु जब नंद फिर से चला जाता है उस वक्त उसे अपनी निरर्थकता का एहसास होता है। जिस यथार्थ से वह अब तक भागती रही और जिसे दूसरों के जीवन में देखकर व्यंग्य करती रही, आज वहीं उसकी करूण नियति बन गया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि सुंदरी का चरित्र इतना प्रभावशाली रूप धारण करता है, कि उसके व्यक्तित्व के समक्ष सभी पात्र निष्प्राण हो गये हैं। वह एक ऐसा केन्द्र है जिसके चारों ओर अन्य पात्र ही नहीं स्वयं नंद भी घूमता रहता है। अतः यही कहा जा सकता है कि सुंदरी एक प्रेमगर्विता नारी है किन्तु अन्ततः उसका दर्पण टूट जाता है। जीवन के भोगों के प्रति उसकी तीव्र लालसा है और इसीलिए उसके जीवन में संघर्ष व्याप्त है।

⌗ अलका :

सुंदरी की सखी एवम् श्यामांग की प्रेयसी के रूप में अलका का चरित्र प्रस्तुत हुआ है । एक आदर्श दासी के रूप में भी प्रतिक्षण वह सुंदरी के साथ ही रहती है । सुंदरी भी अलका के प्रति सहानुभूति रखती है । सुंदरी के मन में चल रहे द्वन्द्व को वह अच्छी तरह पहचान सकती है । सुंदरी के रूप–गर्व एवम् स्वाभिमान को बखूबी जानती है तभी वह नंद के केश मुंडाने की घटना जानकर कहती है – "अब कितना अकुलायेगी ये उस वास्तविकता को जानकर । साथ कितना चाहेंगी कि इनकी अकुलाहट बाहर किसी पर भी प्रगट न हो – मुख पर भी नहीं ।"[४५] वह एक भावुक मुग्धा प्रेयसी के रूप में भी प्रस्तुत होती है । श्यामांग के प्रति उसके हृदय में स्नेह भाव है । उन्माद के क्षणों मे अपनी सीमाओं का उल्लंघन कभी नहीं करती । उसके चरित्र और व्यवहार में संतुलन दिखाई देता है । श्यामांग को मिली शिक्षा से वह क्षुब्ध हो उठती है और उसे माफी दिलाने के लिए वह सुंदरी से प्रार्थना भी करती है ।

प्रतीक रूप में भी सुंदरी का चरित्र उपस्थित होता है । सुंदरी के अंतर्मन की भावनाएँ अलका के चरित्र के माध्यम से व्यक्त होती है । संपूर्ण कथा नंद एवम् सुंदरी के अंतर्द्वन्द्व की ही होने से गौण पात्रों के चरित्र उभर नहीं सके है । अलका का चरित्र एक कर्तव्यनिष्ठ दासी, सखी एवम् मुग्धा प्रेयसी की सीमाओं से अधिक विकास नहीं पा सका ।

⌗ श्यामांग :

श्यामांग के चरित्र की पहचान करवाते हुए खुद राकेशजी भूमिका में लिखते है – "श्यामांग नाटक में छतनार, देवदार और बरफ में से झाँकती एक स्याह ठूंठ टहनी । आसपास की सारी हरी–भरी व्यवस्था से अलग, उस सारे परिद्रश्य में बाधा डालती, फिर भी परिद्रश्य की संपूर्णता के लिए अनिवार्य । श्यामांग नाटक में एक व्यक्ति नहीं, आभास के रूप में है ।"[४६]

श्यामांग एक प्रतीक चरित्र है । राकेशजी ने नंद के मन की संकुलता को श्यामांग के माध्यम से रेखांकित किया है । उसका उन्माद बहुत सोचने वाले मन का संगम है । छाया प्रतीक रूप में उस परोक्ष की छाया है जिसके चेतन रूप से वह बचना चाहता है । कथा प्रवाह से कटकर उसके उन्मादपूर्ण उद्‌गार में नंद और सुंदरी के जीवन

में व्याप्त पीड़ा गूंजती है । श्यामांग की भूमिका नंद के अंतर्द्वन्द्व को प्रतिध्वनित करने के लिए ही रखी गई है जिससे संत्रास के प्रभाव में वृद्धि हो गई है ।

श्यामांग की विक्षिप्ततावस्था के द्वारा नाटककार ने दार्शनिक अर्थवत्ता का वहन भी किया है । वह जिस काली छाया को राजहंसों को अपने में फसता हुआ देखता है वह जीवन को तिरस्कृत करनेवाली उस वैराग्य प्रवृत्ति की प्रतीक है जो उस युग में व्यापक रूप से जन-मानस पर छा रही थी । उस छाया से राजहंस को मुक्त करने की उसकी लालसा सुंदरी की जीवन-कामना की ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति जान पडती है । आरंभ में श्यामांग और अलका का प्रेम पुरुष और स्त्री के बीच की भावना के दूसरे स्तर को प्रस्तुत करता है । उसका प्रेम नंद और सुंदरी के आवेशपूर्ण वासनात्मक प्रेम से अलग स्तर पर प्रतिष्ठित है । सुंदरी श्यामांग की स्थिति पर असंतुष्ट होती है, वह श्यामांग को उन कर्मचारियों में से मानती है जो उसके भवन में रह कर भी वहाँ के नहीं हो पाये । सुंदरी को लगता है कि वह एक व्यक्ति नहीं, दो आँखों का अनचाहा भाव है जो हर समय इस घर की हवा में घुला-मिला रहता है । वस्तुतः श्यामांग नाटक की अनिवार्यता है उसके अभाव में नंद का चित्र धुंधला हो जाने की भीति थी । नंद की स्थिति श्यामांग से ही प्रगट होती है ।

६.७.४ भाषाशैली :-

नाटक में भाषा का अपना महत्त्व होता है । भाषा ही एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से नाटककार अपनी इच्छानुसार नाटक को स्वरूप प्रदान कर सकता है । भाषा की व्यंजना-शक्ति जितनी ज्यादा होगी नाटक उतना ही अर्थसभर बन सकता है । भाषा के माध्यम से ही चरित्रों का उद्‌घाटन होता है, उनकी मानसिक स्थिति प्रगट होती है ।

इस नाटक की भाषा का सबसे बडा गुण है, उसकी व्यंजना-शक्ति । व्यंजक शब्दावली की योजना से राकेशजी ने अदभूत काम लिया है । पात्रों के मनोसंघर्ष को भाषा के सहारे बखूबी से उभारा गया है । नंद की भाषा में सुंदरी की भाषा में एवम् श्यामांग के कथनों में भाषा का विशिष्ट रूप प्रयुक्त हुआ है । वह कोई आम भाषा नहीं है । उसमें दो भिन्न मनःस्थितिवाले पात्रों की स्थिति-परिस्थिति को व्यक्त करनेवाली शब्दावली है, व्यंग्य बोधक शैली है और सबसे ज्यादा एक ऐसी मादकता है जिसके सहारे भाषा का विशिष्ट स्वरूप प्रगट होता है ।

भाषा पात्रों के व्यक्तित्व को बखूबी से उभारने का माध्यम है । नंद, सुंदरी, श्वेतांग, श्यामांग और अलका के कथनों की भाषा ही उनके व्यक्तित्व को प्रगट करती है । संवादों और पात्रों की शारीरिक क्रिया को समन्वित रखने की शक्ति भी इसकी भाषा में हैं । प्रथम अंक में श्यामांग की पत्तियों को उलझाने और तोड़ने की क्रिया, सुंदरी का मदिराकोष्ट तक जाना, पानी पीना आदि क्रियाएँ शब्द से अलग नहीं है । इनसे पात्रों की उलझन और नाटक का संपूर्ण द्वन्द्व ध्वनित होता है ।

भाषा की दूसरी विशेषता है उसकी काव्यात्मकता । अपने कथनों में शब्दों का लालित्य और भावों की रुचिरता मन को गरिमा देती है । सुंदरी के रूप वर्णन के प्रसंगों में शब्दों का लालित्य ध्यानाकर्षक बन पड़ा है ।

औपचारिकता से रहित होना भी इसकी विशेषता है । भाषा सरल और प्रवाहमय है । पात्र की स्थिति और उनके व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा का रूप बनता गया है । संवादों के माध्यम से ही भीतर ही भीतर टूटते नंद के चित्र में भाषा का ही रूप दिखाई देता है – "परंतु बिना घाव के अपनी ही क्लांति से मरे हुए मृग को देखकर मन में जाने कैसा लगा । और लौटकर आते हुए अपने आप इतना थका और टूटा हुआ लगने लगा कि ..."[४७] संवादों के माध्यम से नाटककार ने पात्र के मन में चल रहे संघर्ष और आधुनिक जीवन की जटिलता को व्यक्त किया है । राकेशजी ने भाषा के सरल रूप के साथ कठिन रूप को भी प्रस्तुत किया है । जहाँ पात्र चिंतन में डूबे हुए है वहाँ उसकी विचार श्रृंखला उलझी हुई है । इस उलझी हुई स्थिति को प्रगट करने के लिए भाषा सामान्यतः कठिन हो गई है । नंद की उलझी हुई मनःस्थिति में भाषा का यह रूप देखिए – "क्यों मैंने जान-बूझकर आत्मविनाश को निमंत्रित किया और फिर स्वयं ही आत्म-रक्षा के लिए उस तरह लड़ गया । आत्म-रक्षा और आत्म विनाश इन दो प्रवृत्तियों के बीच एक साथ जिये कैसे और क्यों ?" नंद के इस उद्‌गार में भाषा का कठिन रूप प्रस्तुत हुआ है ।

इसके अतिरिक्त नाटक की भाषा में संस्कृत शब्दावली की योजना भी मिलती है । किन्तु वातावरण के निर्माण में यह सहायक सिद्ध हुई है । कहीं पर भी बोझिल नहीं लगती । यह शब्दावली सहज और बोधगम्य है । प्रत्यूष, उत्तरिय, आखेट, अग्निकाष्ठ, विशेषक, अक्षत, अभ्यागत आदि शब्द तत्कालीन युग का वातावरण सजीव करने में सक्षम हैं ।

इस नाटक में संवाद कला बखुबी निखरी है । 'लहरों के राजहंस' नाटक में द्वितीय अंक के संवाद श्रृंगार-प्रसंग के वर्णन में अत्यंत मधुर एवम् सरस बन पडे हैं । सुंदरी मे मान-मनुहार में उसकी विदग्धता और नंद का उसकी अदायगी पर न्योछावर हो जाना आदि को काव्यात्मक ढंग से अंकित किया गया है । उदाहरण के लिए संवाद देखिए :

"सुंदरी : (कटोरी लेकर रखती हुई) पता है लोग क्या कहते हैं ?

नंद : क्या कहते है ?

सुंदरी : कहते है, आप का ब्याह यक्षिणी से हुआ है जो हर समय आपको अपने जादू से चलाती है ।

नंद : इस में झूठ क्या है ?

सुंदरी : झूठ नहीं है ?

नंद : यक्षिणी हो या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता, पर मानवी तुम नहीं हो । (स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ) ऐसा रूप ही मानवी का नहीं होता ।

सुंदरी : मानवी का रूप बहुत देखा... ?"

सारांश यह कि 'लहरों के राजहंस' की भाषा सधी हुई अच्छे नाटक की भाषा है । गिरीश रस्तोगी के ही शब्दों में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहे तो – "राकेश की नाट्य भाषा औपचारिक नहीं लगती । ऐसा नहीं लगता कि सीखी हुई भाषा के अभ्यस्थ हाथों से नाटकीय स्थितियों को ढाला गया है बल्कि भाषा स्वयं ढलती जाती है – पात्र के व्यक्तित्व, स्थिति और मांग के अनुसार ।"[४८]

६.४.४ अभिनेयता :-

अभिनेयता नाटक के लिए अति आवश्यक तत्व है । नाटक तभी सार्थक कहलाएगा जब उसे अभिनित किया जा सके । जिस नाटक में अभिनेयता का गुण नहीं होगा वह नाटक सफल नहीं कहा जा सकता । नाटक का अभिनय ही उसे विस्तृत रूप प्रदान कर सकता है । नाटक का प्रभाव उसे देखने से ही मिलता है, सिर्फ पढ़ने से नाटक के सही प्रभाव का पता नहीं लग सकता ।

'लहरों के राजहंस' अभिनेयता के गुणों से सम्पन्न हैं। राकेशजी अभिनेयता को विशेष महत्व देते हैं। इसके लिए आरंभ से ही वह जागृत रहते हैं। नाटक को अभिनेय बनाने के लिए आवश्यक है कि उसकी कथावस्तु व्यवस्थित, गठी हुई एवम् जरूरी विस्तारवाली होनी चाहिए। इस नाटक में राकेशजी ने इस बात का पूर्ण ख्याल रखा है। कथा में गति का निर्वाह करके उसे अभिनेय बनाया गया है। इस नाटक में तीन अंकों की योजना की गई है और अंकों की घटना में अन्विति पाई जाती हैं। कथा संक्षिप्त है और अंकों का विस्तार भी संक्षिप्त ही है। प्रत्येक अंक में एक ही द्रश्यबंध पर नाटक की कथा घटित होती है। यथार्थवादी नाट्य-रचना पद्धति में एक द्रश्यबंध और तीन अंकों वाले नाटकों का विकास आधुनिक रंगमंच के स्वरूप और प्रदर्शन की परिस्थितियों तथा साधनों के कारण हुआ है।

नाटक को अभिनेय बनाने के लिए आवश्यक दूसरी बात है – पात्रों की सीमित संख्या। पात्रों की संख्या अधिक होगी तो अभिनेयता में बाधा उत्पन्न हो सकती है। पात्रों को अधिक अवकाश भी नहीं मिलेगा और नाटक की प्रभावक्षमता समाप्त हो जाएगी, अतः कम पात्र ही आवश्यक है। आलोच्य नाटक में राकेशजी ने इसी बात का ध्यान रखा है। मुख्य पात्र सिर्फ दो ही है, बाकी गौण पात्र है। नाटक में मुख्य रूप से नंद-सुंदरी-श्वेतांग-श्यामांग और अलका ही नाटक की घटनाओं से जुड़े हुए हैं। इनसे सम्बद्ध घटनाएँ ही विशेष महत्त्व रखती हैं। बाकी भिक्षु, आनंद, श्यामांग आदि कुछ ही समय के लिए उपस्थित होते है। बुद्ध व यशोधरा सिर्फ सूच्य पात्र है। मंच पर आते ही नहीं। इस प्रकार राकेशजी ने पात्रों की सीमित संख्या रखी है। इसीलिए भी यह नाटक अभिनेय हो सका है।

नाटक को अभिनेयता से युक्त बनाने के लिए स्थान व समय की अन्विति भी आवश्यक है। मंच पर दिखलाई जानेवाली घटनाएँ कम समय में घटित होने वाली एवम् कम से कम स्थानों पर घटित दिखाई जानी चाहिए। स्थान एवम् समय का व्यवधान अभिनेयता में बाधक सिद्ध होते हैं। राकेशजी नाटककार तो थे ही साथ में अच्छे निर्देशक भी थे। उन्होंने अपने सभी नाटकों में इस बात पर विशेष ध्यान दिया है, कि वे अभिनेयता से भरपूर बने।

६.६ आधे अधूरे

सन् १९६९ में रचा गया 'आधे अधूरे' नाटक राकेशजी कृत तीसरा नाटक है। 'आधे अधूरे' का सामयिक नाट्य-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह आज का यथार्थ प्रस्तुत करनेवाला सामाजिक परिवेश प्रस्तुत करता है। वह मध्यमवर्ग से निम्न-मध्यवर्ग के स्तर तक आ गये परिवार की कहानी है। 'आधे अधूरे' एक छोटा-सा विश्लेषणपरक सामाजिक नाटक है। इसमें न तो अंकों का समायोजन है और न द्रश्यपरक विभाजन है। इस नाटक में एक मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति को लेकर कथावस्तु की सृष्टि की गई है। पति-पत्नी के गृह-कलह को आधार बना कर राकेशजी चले है और पत्नी की काम-कुण्ठाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बताते है कि किस प्रकार वे कुण्ठाएँ, पारिवारिक जीवन को क्लेशपूर्ण एवम् असहनीय बना देती हैं। परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार से ऊब चुका होता है और घर में रहते हुए घुटन का अनुभव करता है।

६.६.१ कथावस्तु :-

नाटक का प्रारंभ पुरुष एक जिसका नाम आगे चलकर खुलता है - महेन्द्रनाथ- के स्वगत कथन द्वारा होता है। वह सिगरेट पीता हुआ अपने अंतद्वन्द्व को प्रकट करता है। वह अपने आपको जानता नहीं है, जानना चाहता है कि वह कौन है ? परंतु उसको कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिल पाता। वह तो वस्तुतः अपने आप में ही उलझा हुआ है। उसका मंतव्य है कि 'यह नाटक भी मेरी तरह अनिश्चित है।'

अब स्त्री आती है, जो महेन्द्रनाथ की पत्नी है। उसका नाम आगे चलकर सावित्री भी प्रकट होता है। कमरे को खाली देखकर वह अपने पति के प्रति झल्लाती है। टिपोई पर बैठा देखकर अपनी छोटी लड़की किन्नी को भलाबुरा कहने लगती है। पुरुष एक बाहर से आता है और घर की दुर्व्यवस्था को लेकर दोनों में कहासुनी होने लगती है। पत्नी चाहती है कि आज सिंघानिया खाने पर आनेवाले हैं। सिंघानिया का आना पुरुष को रुचिकर प्रतीत नहीं होता है। इस पर पत्नी कहती है कि वह मेरा अफसर है, मुझे मातहत काम करना पडता है। अच्छा हो कि उसके आने के समय आप घर पर ही रहें। पहले दो बार जब वह आया था तब तुम घर पर नहीं थे। पुरुष कहता है कि जुनेजा छः महीने बाद बाहर से आया है। वह कारबार की बात करने के लिए उसी के पास जाना चाहता है। पुरुष की राय में जुनेजा ने उसकी मदद की है।

पत्नी की राय में उसने उनके घर को बर्बाद कराया है। अब बर्बादी की बात को लेकर दोनों में कहा-सुनी होने लगती है। पति कहता है कि पत्नी की फरमाइशों में सब धन व्यय हो गया। पत्नी के मत में पति ने दोस्तों को शराब पिलाकर सब धन बहा दिया।

अब लड़के अशोक की चर्चा छिड़ जाती है। पत्नी कहती है कि वह भी अपने पिता की भाँति बिगड़ गया है और घर के बाहर रहने लगा है। पत्नी कहती है कि वह सिंघानिया (पुरूष दो) से लड़के की नौकरी के बारे में बात करना चाहती है। इसी स्थान पर पुरूष एक जगमोहन (पुरूष तीन) की चर्चा करने लगता है। स्त्री को उसका नाम सुनकर अजीब-सा लगता है। वह यहाँ तक कह बैठती है कि उसका मन होता है कि वह आज ही इस घर से चली जाए। उसके बाद बड़ी लड़की (बीन) जिसको बिन्नी कहकर पुकारा जाता है आती है। वह काफी समय पर आई है। आते ही स्कूटर-रिक्शा को किराये के पैसे देने के लिए पूरे पचास पैसे माँगती है। वे दोनों जानना चाहते है कि वह कहाँ से और कितने दिनों के लिए, आई है। परंतु बीना से पूछने के बजाय वे आपस में लडने लगते हैं।

तीनों परस्पर बातें करने लगते हैं। एक-दूसरे के प्रति कटाक्ष करते हैं। अंततः लड़की आँखों में आँसू भर कर कहती है कि जिंदगी किसी तरह कटती ही चलती है ? वह मनोज की प्रेयसी है – "शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। पर अब आकर लगने लगता है कि वह जानना बिलकुल जानना नहीं था।" बीना कह देती है कि हम दोनों कहा-सुनी करने के लिए बहाना ढूँढ़ते रहते हैं। छोटी लड़की आती है, इसको भी शिकायत है कि पहले तो घर पर कोई मिलता ही नहीं है और यदि कोई मिलता भी है, तो कोई सीधे मुँह बात नहीं करता। घर के वातावरण में यह छोटी लड़की किन्नी भी संतुष्ट नहीं रहती। किन्नी के स्कूल के लिए आवश्यक रोल की माँग करती है। उसकी माँ आक्रोश व्यक्त करती है। लड़की कहती है कि अशोक की तरह क्या वह भी पढ़ना छोड दे ? छोटी लड़की अशोक के प्रति अवज्ञापूर्ण भाषा का प्रयोग करती है। बड़ी लड़की इस पर आपत्ति करती है। इस पर दोनों बहनें आपस में कीचड़ उछालने लगती हैं।

सिंघानिया के आने की बात शुरू होती है। पुरूष उसके आने के प्रति व्यग्यं करता है। स्त्री फिर कह देती है कि अब मुझसे नहीं होता, बिन्नी। अब मुझसे नहीं संभलता।

इतने में छोटी लड़की किन्नी और अशोक लड़ने लगते हैं । बड़ी लड़की छोटी से कहती है कि अशोक से आदरपूर्वक बोलना सीखे । माता भी अशोक से कहती है कि वह इतनी बड़ी – १२ वर्ष की लड़की के बाल न खींचा करे । इस पर पुरूष भी पूछ बेठता है कि मेरी उम्र कितने वर्ष है, जिससे अधिक अवस्था के नाते घर के लोग उसका आदर करना सीखें । अपने प्रति घर के सदस्यों के दुर्व्यवहार के प्रति उसको भी शिकायत है – "हर वक्त की दुत्कार, हर वक्त की कोंच, बस यही कमाई है, यहाँ मेरी इतने सालों की ?" फिर पति–पत्नी में कहा–सुनी होने लगती है । पुरूष को लगता है कि सब लोग उसे निखट्टू, हरामखोर समझते हैं । महेन्द्रनाथ कहीं चला जाता है । स्त्री कहती है कि ऐसा प्रायः होता रहता है । वह कहीं नहीं जायगा, शीघ्र ही वापस आ जायगा ।

स्त्री और लडके अशोक की बातें होती हैं । स्त्री कहती है कि सिंघानिया को पाँच हजार मासिक वेतन मिलता है । उसको इस कारण घर बुलाया है कि अशोक की नौकरी लगा दे । लड़का सिंघानिया का मखौल उडाता है और कहता है कि उसे नौकरी नहीं करनी है । इस पर सावित्री फिर उसके पिता का उदाहरण देकर कहती है कि उनकी तरह अशोक भी कदाचित् कुछ नहीं करना चाहता । बातचीत में स्त्री लडके से भी कह देती है कि चाहे तो वह भी घर से चला जाए । सिंघानिया के आगमन के साथ अनौपचारिक रूप से इस नाटक का प्रवाह आरंभ होता है । सिंघानिया अपनी शेखी बघारता है । स्त्री अशोक की नौकरी की बात करती है । वह विदेशों की बात करके उसकी बात को उड़ा देता है । लड़का पैड़ पर उसका कार्टून बनाता है । पुरूष दो थोडी ही देर बाद चला जाता है । लड़के के व्यवहार से खीझकर स्त्री फिर कह देती है कि – "आज वक्त आ गया है जब खुद ही मुझे अपने लिए कोई–न–कोई फैसला .... ।" लड़का भी कह देता है कि जो कुछ कहती हो, अपने लिए । अपने लिए चाहे जो प्रबन्ध कर लो ।

लड़का बताता है कि उसके पिता जुनेजा के घर है और वह सावित्री से बात करने के लिए आने वाले हैं । यह भी विदित होता है कि सावित्री चली गई है । बड़ी लड़की का कहना है कि मम्मी कोई गंभीर निर्णय करके घर से गई हैं – ऐसा उनके चेहरे से प्रतीत होता था । लड़के की राय में यह ठीक ही हुआ । लड़का छोटी लड़की को बुरी तरह डपटता है क्योंकि उसने किन्नी को पडोसी की लड़की सुरेखा के साथ कुछ अश्लील बातें करते हुए सुना था । अपना बचाव करती हुई किन्नी भी अशोक की

प्रेमलीला की ओर संकेत कर देती है। लड़का किसी लड़की को चाहे जब घर की चीजें ले जाकर देता रहता है।

सावित्री वापस आती है और फिर तुरंत ही बाहर जाने की तैयारी करने लगती है। कहती है जगमोहन के साथ उसे जाना है। बड़ी लड़की कहती है कि जुनेजाजी आने वाले है। सावित्री कहती है कि वह जुनेजा से कोई बात नहीं करना चाहती। लड़की यह भी कह देती है कि उसके पिता जगमोहन को पसंद नहीं करते, परंतु फिर भी सावित्री नहीं मानती। अशोक जल्द ही वापस लौटने का वादा कर चला जाता है। सावित्री बड़ी लड़की से कह देती है, कि उसने अंतिम निर्णय कर लिया है। अब वह जगमोहन के साथ कहीं जा रही है। सावित्री ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़ी अपना श्रृंगार करती है, साथ ही मन की उलझनों में झूलती है। इतने में ही जगमोहन आ जाता है। दोनों थोडी देर तक प्रेमालाप जैसी बातें करते हैं और चले जाते है।

इस स्थान पर एक प्रकार से नाटक का दूसरा अंक समाप्त होता है। इस अंक में हमें यह पता चलता है कि इस परिवार का जीवन कैसा है। सबके सब प्रेमलीला में मस्त हैं। बड़ी लड़की मनोज के साथ भाग चुकी है, छोटी लड़की सुरेखा के साथ गंदी बातों में रस लेती है, लड़का अशोक उद्योग सेन्टर वाली किसी लड़की के पीछे दीवाना है और गृह–लक्ष्मी सावित्री जगमोहन के साथ नया ब्याह रचने की तैयारी कर चुकी है।

इसके साथ ही नाटक का तीसरा अंक प्रारंभ होता प्रतीत होता है। बिन्नी–किन्नी आपस में झगडती है। जुनेजा छोटी लड़की के साथ अंदर आता है। वह सावित्री से महेन्द्रनाथ के बारे में बात करने आया है। सावित्री को न पाकर कुछ उदास और निराश हो जाता है। जुनेजा लड़कियों से इधर–उधर की बातें करता है। बातचीत के मध्य वह बड़ी लड़की बिन्नी को बताता है कि महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री को बहुत प्यार करता है। महेन्द्रनाथ ने ही यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं किसी प्रकार उसके और सावित्री के मध्य समझौता करा दूँ। जुनेजा जाने लगता है, तभी सावित्री वापस आ जाती है। छोटी लड़की उसकी बाँह पकडे हुए है। सावित्री लड़की को पीटना चाहती है मगर जुनेजा निषेध करता है। सावित्री यहाँ तक कह देती है, “वह उसके घर के मामलों में न पड़े।” थोडी देर बाद जुनेजा और सावित्री का वार्तालाप प्रारंभ होता है। प्रसंग वही है – महेन्द्रनाथ के प्रति सावित्री का अवांछनीय व्यवहार तथा सावित्री के प्रति महेन्द्रनाथ की पूर्ण निष्ठा।

सावित्री जुनेजा से कहती है कि तुम्हारे जैसे दोस्तों ने ही महेन्द्रनाथ को बिगाड़ा है, निकम्मा बनाया है, बर्बाद किया है और मुझसे भी अलग कर दिया है । जुनेजा कहता है कि सावित्री ने महेन्द्रनाथ में हीन भावना भर दी है । इससे वह अपने आपको असमर्थ अनुभव करने लगा है । बातचीत के दौरान धीरे-धीरे वह व्यक्तिगत स्तर पर आ जाती है । जुनेजा सावित्री को बताता है कि वह सदैव काम-पीड़ित एवम् योग की भूखी रही है । इसी कारण विभिन्न पुरुषों के प्रति आकर्षित होती रही है । एक समय था जब वह स्वयं जुनेजा (पुरुष चार) के प्रति आकर्षित हुई थी । इसके बाद क्रमशः शिवजीत और जगमोहन के प्रति आकर्षित हुई । इतना ही नहीं, एक समय ऐसा भी आया जब तुम मनोज को चाहने लगी थीं – वही मनोज जिसके साथ तुम्हारी बड़ी लड़की बिन्नी भाग गई । जुनेजा के कथन ऐसे हैं जो फ्रायड, युग तथा एडलर के सिद्धांतों से प्रभावित हैं और सावित्री के कामुक व्यक्तित्व की बखिया उधेड़ कर रख देते हैं ।

जुनेजा यह भी कह देता है कि मैं बता सकता हूँ कि अभी तुम जगमोहन के पास ही गई होगी । साथ ही साथ यह भी निश्चित है कि जगमोहन ने तुम्हें स्वीकार नहीं किया होगा और वह तुम्हें टालकर यहाँ पहुँचा गया होगा । जुनेजा कहता है कि सावित्री के मन में घुटन रहती है, वह चुनाव करना चाहती है, परंतु कर नहीं पाती । इसी कारण घर के प्रत्येक व्यक्ति से उसकी अनबन रहती है । जुनेजा बार-बार सावित्री से कहता है कि महेन्द्रनाथ को अपने बंधन से मुक्त कर दे यानी तलाक दे दे । इतने में ही महेन्द्रनाथ वापस आ जाता है । वह अस्वस्थ है, परंतु फिर भी टेकते-टिकाते आ जाता है । बात जहाँ की तहाँ रह जाती है और नाटक का अंत हो जाता है ।

६.६.२ रचना विधान :

'आधे-अधूरे' नाटक यद्यपि अंकों में विभाजित नहीं है तथापि कथावस्तु का विन्यास इस प्रकार किया गया है, कि अंकों की स्थिति स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है । पहले समस्त पात्रों का परिचय प्राप्त हो जाता है । परिवार का कलह क्रमशः विकसित होता है । उससे ऊबकर पुरुष एक यानी महेन्द्रनाथ घर छोड़कर चला जाता है । इस स्थान पर एक प्रकार से कथावस्तु की प्रयत्न अवस्था दिखाई देती है । इसके पश्चात् गृह-कलह एक अन्य रूप धारण करता है । स्त्री (सावित्री) और उसके बच्चों (बिन्नी, किन्नी और अशोक) के मध्य कलह होता है और वे सबके सब एक दूसरे से ऊबे हुए

दिखाई देते हैं। अंततः स्त्री जगमोहन के साथ घर छोड़कर चली जाती है। इस स्थान पर मानो नाटक के द्वितीय अंक का पटाक्षेप होता है। यह स्पष्टतः चरम–सीमा अवस्था की स्थिति कही जा सकती है। यहाँ पर घटना–क्रम पूर्णतः उलझ जाता है। पाठक या प्रेक्षक यह सोचने लगता है कि अब क्या होगा ? इन बच्चों का क्या होगा ? लड़का अशोक एक प्रकार से निकम्मा है। बड़ी लड़की बीना या बिन्नी अपने प्रेमी से निराश होकर आई है और उसका भविष्य अंधकारमय है। छोटी लड़की किन्नी अभी बहुत छोटी है – वह केवल स्कूल की छात्रा है। इतने में ही जुनेजा आ जाता है और वह बच्चों को आश्वस्त करता है तथा उनकी सहायता का संदेश लेकर आता है। वह यह भी बता देता है कि महेन्द्रनाथ यानी उन बच्चों के पिता उसके घर सुरक्षित हैं तथा अपने बाल–बच्चों के पास आने के लिए उत्सुक है।

जुनेजा के आगमन के साथ ही घटनाचक्र क्रमशः सुलझने लगता है। थोडी ही देर बाद सावित्री भी आ जाती है। जुनेजा और सावित्री की बातचीत के साथ कथानक अपने अंत की ओर अग्रसर होने लगता है। जुनेजा की बातें जैसे–जैसे आगे बढ़ती हैं, वैसे–वैसे सावित्री अपनी त्रुटियों का अनुभव करती जाती है – वह यथार्थ के स्पर्श द्वारा मानो सोते से जाग जाती है और चाहती है कि जुनेजा वहाँ से चला जाए और उसको अपनी स्थिति का सामना करने के लिए अकेला छोड़ दे। जैसे ही जुनेजा जाने को होता है, वैसे ही महेन्द्रनाथ अपने लड़के का सहारा लिए हुए प्रवेश करता है। बस यहीं नाटक का अंत हो जाता है।

इस प्रकार कथावस्तु अंक और कार्यावस्था दोनों ही द्रष्टियों से सुविभाजित एवम् सुविन्यस्त है। नाटक की कथावस्तु सामान्य मध्य परिवार की एक सामान्य समस्या को लेकर चलती है। इस प्रकार वह हमें आद्यन्त परिचित सी प्रतीत होती है और उसके प्रति हम एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव करते हैं। आत्मीयता की यह स्थिति नाटक की रस–सिद्धि में सहायक होती है।

कथावस्तु जिस क्रम में उलझती है, उस क्रम में सुलझती नहीं है। उलझने की अपेक्षा वह सुलझती बहुत ही शीघ्र है। साथ ही वह एक समस्या को चित्रित तो करती है, परंतु उसका समाधान प्रस्तुत नहीं करती। इन दोनों कमियों का कथावस्तु का दोष कहा जा सकता है।

समग्र रूप में राकेशजी ने कथावस्तु में कार्यावस्थाओं एवम् उत्सुकता के तत्त्वों का सफल निर्वाह किया है । पाठक को कौतूहल प्रदान करने के साथ रसमग्न बनाये रखने में सफल हुए है ।

६.६.३ चरित्र चित्रण :

'आधे-अधूरे' नाटक का कथानक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित है । इसके समस्त पात्र भी इसी वर्ग के हैं । अधिकांश सामान्य प्रकार के पात्र हैं इनमें एक उच्च पदाधिकारी है और एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है । इस प्रकार इस नाटक के पात्र हमारे देश के मध्यवर्ग का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं । इस नाटक के वयस्क पात्र कुण्ठा-ग्रस्त है और युवा पीढ़ी के पात्र विद्रोह पूरित है । महेन्द्रनाथ हीनत्व भावना द्वारा ग्रसित है । वह अपने आपको एक असफल, पराजित एवम् बेसहारा व्यक्ति अनुभव करता है । उसकी पत्नी सावित्री समझती है कि वह मित्रों का मुखापेक्षी है और जुनेजा का कहना है कि महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी को अपना प्राण समझता है ।

सावित्री नाटक की प्रमुख नारी पात्र है । वह काम कुण्ठा द्वारा ग्रस्त है । वह जीवन में सब कुछ चाहती है । इसके लिए वह जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन तथा मनोज तक की ओर देखती है । वह अपने पति से बस झगड़ती है और बच्चों को झिडकती रहती है । वह जगमोहन के साथ भाग जाने का उपक्रम भी कर डालती है, परंतु उसको सफलता प्राप्त नहीं होती । जुनेजा इसकी कुण्ठा का विश्लेषण करता है और अंत में कह देता है कि तुम मन में एक घुटन लिए घर में दाखिल हुई और आते ही तुमने बच्ची को पीट दिया ।

अशोक विद्रोही लड़का है । वह भी उद्योग-सेन्टर वाली लड़की के पीछे दीवाना है । परंतु इसके मन में अभी किसी प्रकार की कुण्ठा नहीं बन पाई है । वह तो अपने माता-पिता की रोज-रोज की चखचख से तंग आ गया है, और चाहता है कि किसी तरह यह झंझट समाप्त हो ।

बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के साथ प्रेम करती है और उसके साथ भाग भी जाती है । परंतु वापस आ जाती है, क्योंकि "वजह सिर्फ वह हवा है, जो हम दोनों के बीच से गुजरती है ।" इस पर उसको जुनेजा के द्वारा यह भी विदित होता है कि उसकी माँ

मनोज के ऊपर डोरे डाल चुकी है । बस, वह हाथों में चेहरा छिपाकर ढह पडती है । वह नहीं जानती है कि उसका भविष्य क्या होगा ?

इस नाटक में कुल पात्रों की संख्या १२ हैं – ७ पुरुष है तथा ५ नारी पात्र हैं । इनमें दो पुरुष शिवजीत और मनोज, दो नारी पात्र सुरेखा तथा उद्योग सेन्टर वाली लड़की की केवल चर्चा मात्र होती है । अन्य पात्र प्रेक्षक के सम्मुख रंगमंच पर आते हैं । सुरेखा नामक लड़की की अवस्था १२ वर्ष के आस–पास होगी । वह छोटी लड़की किन्नी की सहेली है । उसके साथ गंदी बातें करने के कारण किन्नी अपने भाई अशोक की कोप भाजन बनती है और मार खाती है । बस, सुरेखा का नाम केवल इतनी ही देर के लिए एक बार आता है । इसी संदर्भ में उद्योग–सेन्टर वाली लड़की की चर्चा सुनाई देती है । उसका नाम नहीं मालूम, केवल उद्योग–सेन्टर वाली लड़की कह कर छोटी लड़की उसका नाम लेती है । इस लड़की के पीछे अशोक दीवाना है, और अशोक उसे कभी चूडियाँ, तो कभी कुछ दे आता है । इस भेद को छोटी लड़की जानती है । वह जब इस भेद को खोलती है, तो अशोक चिढ़ जाता है और किन्नी को मारने के लिए दौड़ता है ।

पुरुष पात्र शिवजीत तथा मनोज ऐसे पात्र हैं जो रंगमंच पर प्रकट नहीं होते । केवल उनके नाम यहाँ सुनाई देते हैं । शिवजीत की चर्चा जुनेजा करता है । वह सावित्री के चरित्र की बखिया उधेडते हुए कहता है कि सावित्री की काम–पिपासा सावित्री को कई पुरुषों के निकट ले गई है । इन्हीं में शिवजीत भी एक पुरुष है । जुनेजा कहता है कि जरा सा भी, किसी प्रकार का भी वैभव देखते ही सावित्री की लार टपकने लगती है । शिवजीत एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है । उसके पास बड़ी लम्बी–चौड़ी डिग्रियाँ हैं और वह अनेक विदेशों की सैर कर आया है । विद्या और विदेश के अनुभव की चकाचौंध से भरा शिवजीत केवल नाममात्र को इस नाटक का एक पुरुष पात्र है, परंतु वह मध्यवर्ग की एक श्रेणी विशेष का प्रतिनिधित्व करता है । मनोज एक युवक है । वह बड़ी लड़की का पति है । नाटक में उसकी चर्चा दो बार आती है । एक तो उस समय जब बड़ी लड़की बिन्नी प्रथम बार रंगमंच पर आती है । उस समय हमको यह विदित होता है कि वह बिन्नी का पति है । दूसरी बार उसका नाम नाटक के अंत की ओर आता है । जुनेजा बताता है कि एक समय सावित्री भी इस युवक मनोज के प्रति भी आकर्षित हुई थी ।

नाटक में पात्रों की संख्या सीमित है । प्रत्येक पात्र अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है । वह मध्यवर्ग के एक अंग विशेष का प्रतिनिधित्व करता हैं । पात्रों का चरित्र-चित्रण सर्वथा मनोवैज्ञानिक शैली पर किया गया है । इससे दो लाभ होते है - पाठक अथवा प्रेक्षक पात्र के साथ रहते हुए न तो अजनबीपन का अनुभव करता है और न कभी द्रव की स्थिति में ही पड़ने पाता है ।

समग्र रूप से नाटक के पात्र यह उद्घाटित करने में समर्थ हैं, कि हमारे यह मध्यवर्गीय परिवार किस प्रकार कृत्रिम, कुण्ठाग्रस्त एवम् अशांतिमय जीवन व्यतीत करते हैं । हमारे बच्चे इसलिए विद्रोही हो गए हैं क्योंकि उन्हें माता-पिता में न तो अपने आदर्शों की शर्ते मिलती है और न ही वे उनमें अपेक्षित प्यार ही प्राप्त कर पाते हैं । सारांश, यह है कि चरित्र-चित्रण की द्रष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक एक सफल नाटक है ।

⌗ महेन्द्रनाथ :

पुरूष एक का नाम है - महेन्द्रनाथ । उसकी पत्नी का नाम सावित्री है । उनके तीन संतान है - एक लड़का, जिसका नाम अशोक है, जिसकी अवस्था २१ वर्ष के आस-पास है । दो पुत्रियाँ हैं । बड़ी लड़की का नाम बिन्नी है, उसकी अवस्था १९-२० वर्ष के लगभग है । दूसरी लड़की का नाम किन्नी है, उसकी अवस्था १२ -१३ वर्ष है ।

महेन्द्रनाथ के परिवार की स्थिति को लेकर इस नाटक की रचना की गई है । यह परिवार एक सामान्य मध्यवर्गीय परिवार है । परिवार के समस्त सदस्य किसी न किसी प्रकार की कुण्ठा द्वारा ग्रस्त हैं । परिवार अबाध क्लेश से व्याप्त रहता है । प्रत्येक सदस्य को अन्य सदस्यों से सदैव कोई न कोई शिकायत बनी ही रहती है ।

महेन्द्रनाथ की अवस्था ५० वर्ष के आस-पास होनी चाहिए । वह पतलून और कमीज धारण किए हुए एक सामान्य पुरूष के रूप में हमारे सामने आता है । वह नाटक का महत्त्वपूर्ण पात्र है । राकेशजी ने पात्र-परिचय के अंतर्गत लिखा है कि, " यह पुरूष जिंदगी में अपनी लडाई हार चुकने की छटपटाहट लिए है । " इसका यह स्वरूप प्रथम-परिचय में ही प्रकट हो जाता है । नाटक का आरंभ ही महेन्द्रनाथ के स्वगत कथन से होता है, जिसमें वह अपने आपको एक विश्रृंखलित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के रूप में प्रकट करता है । वह जानता ही नहीं है कि वह कौन है और उसे क्या कहना है? मानो वह जीवन की नदी में किसी प्रकार बहते हुए जीवित भर है - शायद अपने

बारे में इतना ही कह देना ही काफी है, कि सड़क के फुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह आदमी मैं हूँ।"

जीविकोपार्जन की द्रष्टि में महेन्द्रनाथ एक बेकार आदमी है। वह किसी समय धनोपार्जन करता था, किन्तु कतिपय कारणोवश वह अपनी गांठ पूँजी भी गवाँ बैठा था। पत्नी की धारणा यह है, कि दोस्तों के चक्कर में, यारबासी के कारण उसने अपने आपको बर्बाद किया। जो भी हो, इस समय वह किसी प्रकार की कमाई नहीं करता। इस निखट्टू पति को पत्नी उपेक्षा एवम् अनादर की द्रष्टि से देखती है और प्रत्यक्ष एवम् परोक्ष दोनों रूपों में उसके निखट्टूपन को लक्ष्य करके उसको ताना मारती रहती है। जुनेजा महेन्द्रनाथ का गहरा मित्र है। वह प्रायः काम करते समय जुनेजा से राय लेता है। पत्नी का ख्याल है कि जुनेजा ने ही उसके पति महेन्द्रनाथ को बर्बाद कर दिया है। परंतु वस्तु स्थिति यह है, कि महेन्द्रनाथ जुनेजा की सलाह के बगैर कोई काम नहीं करता था।

महेन्द्रनाथ आरंभ से आत्मविश्वास रहित व्यक्ति रहा है। वह प्रत्येक काम करते समय किसी का सहारा चाहता रहा है। पत्नी का कहना है कि मुझसे विवाह करने का फैसला भी जुनेजा के हामी भरने से किया था। आज तो इसकी स्थिति ऐसी हो गई है, कि वह स्वयं कुछ करने की सोच भी नहीं सकता। सावित्री कहती है कि वह प्रत्येक बात जुनेजा से पूछकर देखता है, यथा उसके मन में यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी उसके लिए जिंदगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाय नहीं है। मित्र जुनेजा की राय यह है कि "आज वह अपने आपको बिलकुल बेसहारा समझता है।" और पत्नी का कहना यह है कि, अपने आप पर उसे कभी किसी चीज के लिए भरोसा नहीं रहा। वह खुद एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।

आरंभ से ही महेन्द्रनाथ पत्नी के प्रति विनम्र दिखाई देता है। उसकी पत्नी उसे हर बात के लिए झिडकती है और वह चुपचाप सब कुछ सुनता रहता है। ऐसा लगता है कि वह अपनी पत्नी के सम्मुख भीगी बिल्ली बन जाता है। सावित्री घर में आने पर महेन्द्रनाथ को घर में न पाकर डाटती हुई कहती है कि "कहाँ चले गये थे तुम ?" उत्तर में वह केवल इतना-सा निवेदन करता है – मार्केट में। इसके बाद वह घर की चीजों को देखकर बौखला जाती है – "पता नहीं क्या तरीका है इस घर का ? रोज आने पर पचास चीजें यहाँ-वहाँ बिखरी मिलती है।" बेचारा महेन्द्रनाथ किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करने की अपेक्षा केवल यही कहता है, कि लाओं मुझे दे दो। सावित्री

के प्रत्युत्तर में वह केवल यह कहकर अपनी विवशता प्रकट करता है कि, "तो अच्छा यही है, कि मैं कुछ न कह कर चुप रहा करूँ। अगर चुप रहता हूँ तो .... ।" आगे चलकर जुनेजा और सावित्री के वार्तालाप में यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि महेन्द्रनाथ ने अपनी पत्नी को खुश करने की हरचंद कोशिश की थी। सावित्री झल्लाकर कहती है – "वजह इसकी मैं थी, यही कहना चाहते हो न ? वह मुझे खुश रखने के लिए ही यह लोहा–लकड़ी जल्दी से जल्दी घर में भरकर हर बार अपनी बरबादी की नींव खोद लेता था।"

महेन्द्रनाथ की तड़प और छटपटाहट की झलक नाटक में बहुत पहले ही मिल जाती है। उसके परिवार के सदस्य जब उससे बार–बार अशिष्टता पूर्ण व्यवहार करते हैं, तब वह अपना आक्रोश व्यक्त करता है। इस आक्रोश में उसकी क्षोभपूर्ण आत्मग्लानि दिखाई देती है और वह घरवालों को छोड़कर जुनेजा के घर चला जाता है। उसके इन शब्दों द्वारा ही भली प्रकार प्रकट है, कि महेन्द्रनाथ अपनी स्थिति के प्रति पूर्णतः जागरुक हैं तथा उसमें निर्णय लेने की प्रवृत्ति छटपटाती रहती है ; यथा – "आज कितने साल हो चूके हैं मुझे जिंदगी का भार ढोते? यहाँ जिसे देखो वही मुझसे बदतमीजी से बात करता है। हर वक्त की दुत्कार, हर वक्त की कोंच, बस यही कमाई है यहाँ मेरी इतने सालों की ? ... पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है। और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहूँ यहाँ ?" महेन्द्रनाथ की असली छटपटाहट यह मालूम पडती है, कि वह कुछ करे और उसकी सावित्री उसके साथ पूर्ण सहयोग करे। जुनेजा बड़ी लड़की से कहता है कि, "अगर ऐसा न होता तो आज सुबह से ही रिरियाकर मुझसे न कह रहा होता कि जैसे भी हो, मैं इससे बात करके इसे समझा दूँ।"

महेन्द्रनाथ वस्तुतः अत्यधिक भावुक पति है। वह अपनी पत्नी को हर कीमत पर खुश करना चाहता है; परंतु उसकी पत्नी पति–प्रेम के स्थान पर वैभव की भूखी है। बस वही विषमता समस्त कलह–क्लेश का मूल है। महेन्द्रनाथ दुनियावी तौर पर एक असफल मनुष्य है। उसको पत्नी ने हीनत्व भाव से भरकर एक निरालम्ब व्यक्ति बना दिया है। परंतु वह अभी सर्वथा निराश नहीं हुआ। उसके भीतर कुछ–न–कुछ करने की ललक और तड़प है। जैसा जुनेजा का कथन है कि पत्नी की ठोकर ही उसके पुरुष को उभाड़ कर बाहर ला सकती है।

महेन्द्रनाथ प्रत्यक्षतः एक आत्मविश्वासहीन पर मुखापेक्षी व्यक्ति दिखाई देता है। वह आज एक निराश व्यक्ति है, क्योंकि वह जीवन में सांसारिक द्रष्टि से असफल रहा है।

⌘ सावित्री :

सावित्री को राकेशजी ने 'स्त्री' लिखा है। उसकी अवस्था चालीस को छूती हुई है। चेहरे पर यौवन की चमक है। वह महेन्द्रनाथ की पत्नी है तथा तीन संतानों की माँ है। सावित्री कहीं नौकरी करती है। वह एक प्रकार से भोगवादी कामिनी नारी है। राकेशजी ने उसके विषय में अपने मंतव्य को अत्यंत संक्षेप में किन्तु अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत कर दिया है, उम्र चालीस की के साथ यह लिखना – 'चाह फिर भी शेष' बहुत कुछ अर्थ रखता है। जिस अवस्था में, विशेषकर तीन–तीन बच्चों की माँ बन जाने के बाद नारी की प्रायः समस्त भोगेच्छाएँ शान्त हो जानी चाहिए, इस अवस्था में सावित्री नए–नए प्रेमियों की ओर देखती है। 'फिर भी' शब्द का प्रयोग करके राकेशजी ने इसी अस्वाभाविकता की ओर संकेत किया है। राकेशजी के मंतव्य का विश्लेषण नाटक के अंत में जुनेजा करता है। यथा – "असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल–दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़ कर जिना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी जगह न मिल पाता।" सावित्री घर में आतंक का वातावरण बनाए रखती है। उदाहरण के लिए वह छोटी लड़की को चपत जड़ती है और उससे कहती है, कि "इस वक्त चुपचाप चली जा उस कमरे में। मुँह से एक लफ्ज भी ओर कहा, तो खैर नहीं तेरी।"

सावित्री नाटक के आरंभ में ही रंगमंच पर प्रकट होती है। वह काम पर से आती है , तथा अपनी अप्रसन्नता प्रकट करती हुई घर में घुसती है। 'सहजहुँ बोलत मनहुँ रिसाती' वाली स्थिति है सावित्री की। घुसते ही वह अपने पति के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करती है, क्योंकि वह उस समय घर में उपस्थित नहीं हैं। जैसे ही उसके पति महेन्द्रनाथ घर में घुसते हैं, वह उन्हें डाट लगाती है, "कहाँ चले गये थे तुम ?" और इसके बाद घर की चीजों के बेतरतीब रख रखाव को लक्ष्य करके वह महेन्द्रनाथ को डाटती है। अपने लड़के को लक्ष्य करके वह पति को निकम्मा तक कह देती है।

सावित्री जरूरत से ज्यादा जबान की तेज है । उसको क्रोध भी बहुत आता है । उसकी भोगेच्छा की पूर्ति होती नहीं है और वह संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से लडती–झगडती दिखाई देती है । इस आवेश और क्रोध में उसको अपने विवेक पर नियंत्रण नहीं रहता और उसका व्यवहार अशिष्ट हो जाता है । जुनेजा से बात करते हुए वह यह बार–बार जताती है कि वह अपने घर वालों के बारे में सब कुछ जानती है और इस कारण इनके बारे में कुछ भी नहीं सुनना चाहती । वह बारबार यही कहती है कि उसे अपने घर के किससे किस तरह बरतना चाहिए, यह मैं औरों से बेहतर जानती हूँ ।

सावित्री की कामेच्छा अतृष्ट है, वह सम्भवतः इन्द्रिय–भोग से कभी भी तृप्त नहीं हो सकती । काम–कुण्ठा के कारण भी वह इतनी क्रोधी, चंचल, कठोर एवम् अकेलेपन का अनुभव करती है । जुनेजा उसके चरित्र का विश्लेषण करके उसको ग्रसित करनेवाली कुण्ठा के स्वरूप को उद्‌धाटित करता है । वह जुनेजा, शिवजीत और जगमोहन को अपना प्रेम दे चुकी है । अपनी बड़ी लड़की के पति मनोज पर भी वह किसी समय नजर डाल चूकी है । सावित्री ने ही अपने लड़के – लड़की को कुपथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान की । बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के साथ भाग गई तथा अशोक उद्योग सेन्टर वाली लड़की के पीछे लट्‌टु था और छोटी लड़की किन्नी सुरेखा से अश्लिल बातें सीख रही थी । जुनेजा को पाने में निराश होने वाली सावित्री सचमुच एक विचित्र नारी बन जाती है । माता का स्वरूप तो मानों सदा–सर्वथा के लिए लुप्त हो जाता है ।

सावित्री के जीवन में भोग एवम् वासना का प्राधान्य है । अतैव उसमें एक गृहिणी के त्याग एवम् सेवा भाव का सर्वथा अभाव होना स्वाभाविक ही है । उसको न घर अच्छा लगता है और न घर का कोई व्यक्ति । वह केवल प्रयोजन–सिद्धि जानती है । इस कारण वह परिवारजनों के बारे में भी यही सोचती है, कि वे सबके सब उसको केवल प्रयोजन–सिद्धि का साधन बनाए हुए हैं । वह घर का काम–काज करना मुसीबत समझती है । अपने परिवार की सेवा करने में, अपने घर का काम करने में उसको किसी प्रकार के सुख संतोष का अनुभव नहीं होता । वह अपने लड़के और अपनी बड़ी लड़की से हर घड़ी किच्–किच् करती है । उन्हें इस बात का ताना देती है, कि उनके लिए करते–करते वह मरी जा रही है । परिणाम यह होता है कि लड़का उसको जवाब दे देता है – "कोई और निभानेवाला नहीं है । यह बात बहुत बार कही जा चूकी है इस घर में ।"

सावित्री हमारे सामने एक ऐसी नारी के रूप में आती है जो जीवन का लक्ष्य शरीर सुख मानती है, मातृत्व के निर्वाह को जो उपेक्षा की द्रष्टि से देखती है। वह एक ऐसी आधुनिक नारी है जो सदैव युवती बनी रहने का स्वप्न देखती है और बिना कुछ किए-दिए सब कुछ पा लेना चाहती है। ऐसी नारी कुण्ठाग्रस्त होकर क्रोध और क्लेश का जीवन व्यतीत करती है।

⌗ जुनेजा :

राकेशजी ने जुनेजा को पुरूष चार के रूप में इस नाटक में चित्रित किया है। इस नाटक में किसी फल की प्राप्ति नहीं होती है। केवल सावित्री एवम् महेन्द्रनाथ की हृदयस्थ कुण्ठाओं का उद्‌धाटन होता है। अतएव भारतीय परंपरा के अनुसार इस नाटक में उपयुक्त नायक का अभाव है, क्योंकि भारतीय नाट्‌यशास्त्र के अनुसार जो अधिकार या फल को प्राप्त करे, वह नायक है। चारित्रिक मनोविश्लेषण की यह पद्धति पाश्चात्य नाटक परंपरा की देन है। इस द्रष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र का ही निर्णय कर सकते हैं, भारतीय परंपरा के नायक का निर्णय करना कठिन है।

जुनेजा ही वह पात्र है जो महेन्द्रनाथ की कुण्ठा के परिप्रेक्ष्य में उसके वास्तविक स्वरूप को हमारे सामने रखता है। वही हमें यह बताता है कि महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी के प्रेम पाश में ऐसा बँध गया है, कि वह प्रेक्षक को असहाय एवम् असमर्थ दिखाई देता है। परंतु वस्तुतः वह इतना बेसहारा और असमर्थ नहीं है जितना कि वह बाहर से दिखाई देता है। जुनेजा ही सावित्री के चरित्र की कलई खोलता है। ऊपर से ऐसा लगता था कि सावित्री अपने परिवार की समस्याओं से परेशान है। परिवार का कोई सदस्य उनकी समस्याओं को न तो समझता है और न ही उसकी सहायता करता है। परंतु जब वह जगमोहन के साथ चली जाती है, तब उसकी अनुपस्थिति में जुनेजा आता है और उसके विषय में बातें शुरू कर देता है। इतने में ही सावित्री वापस आ जाती है और वह उसकी कुण्ठाओं का ऐसा पर्दाफाश करता है कि पाठक एवम् प्रेक्षक चकित रह जाते हैं। जुनेजा के कथन के साथ हम सावित्री को एक भोगवादी नारी के रूप में देखने लगते हैं। सारांश यह है कि नाटक की गुत्थी को सुलझाने का काम जुनेजा करता है और इस द्रष्टि से वह आधे-अधूरे नाटक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र ठहरता है। वह भारतीय नाटक की शास्त्रीय परंपरा के अनुसार नाटक का नायक भले ही न हो, परंतु नाटक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र होने के नाते तो नाटक का नायक है ही,

और चूँकि नायक के अभाव में नाटक अधूरा ही है, इस कारण भी हम जुनेजा को ही नाटक का नायक मान सकते है ।

जुनेजा एक तेज व्यक्ति है । वह मानो उड़ती चिड़िया को पहचानता है । वह लिफाफा देखकर ही खत का विषयवस्तु पढ़ लेता है । बाहर न्यू इण्डिया की गाड़ी खड़ी देखकर ही वह समझ जाता है कि कुछ दाल में काला है । सावित्री अपने पुराने प्रेमी जगमोहन के साथ गई होगी । फिर भी वह सावित्री से मिलने के बहाने उसके घर आता है । आखिर क्यों ? केवल इसलिए कि अपने अनुमान की पुष्टि कर ले । वह बड़ी लड़की से कहता है, कि "मेरे मन में कहीं थोड़ा सा भरोसा बाकी था कि शायद अब भी कुछ हो सके – मेरे बात करने से ही कुछ बात बन सके । पर आकर बाहर न्यू इण्डिया की गाड़ी खड़ी देखी, तो मुझे लगा कि नहीं, कुछ नहीं हो सकता... ।"

इस नाटक के मुख्य पात्र –महेन्द्रनाथ और सावित्री की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन करने के लिए मनोविश्लेषण की पद्धति अपनाई गई है । यह काम जुनेजा ही करता है । सावित्री के व्यक्तित्व में फ्रायड की दमित काम–वासनाएँ तथा डलर की प्रतिष्ठा की भावना की गुत्थी है । महेन्द्रनाथ का व्यक्तित्व युग की हीनभावना द्वारा ग्रस्त है । जुनेजा फ्रायड के काम सिद्धांत की कसौटी पर सावित्री के चरित्र को कसता है और बीच–बीच में आडलर के सिद्धांत का पुट देकर उसकी गुत्थियों को एकदम सुलझा देता है ।

जुनेजा महेन्द्रनाथ और सावित्री दोनों का उपकारक बन जाता है । महेन्द्रनाथ कहता है, कि जुनेजा सावित्री के साथ उसका समझौता करा दे और सावित्री कहती है कि वह उसको ऐसा बना दे कि वह आँख खोल कर देख सके । अंततः कहा जा सकता है कि जुनेजा इस नाटक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र है । उसे नाटक का नायक कहने में भी कोई आपति नहीं होनी चाहिए ।

अशोक :

अशोक महेन्द्रनाथ और सावित्री का पुत्र है । राकेशजी ने उसका एक चित्र इन शब्दों में प्रस्तुत किया है, "उम्र इक्कीस के आसपास । चेहरे से, यहाँ तक कि हँसी से भी झलकती खास तरह की कडुवाहट ।" वह अपने माता–पिता की ज्येष्ठ संतान है । सावित्री अपने बोस सिंघानिया के स्वागत की तैयारी में व्यस्त है, महेन्द्रनाथ जुनेजा की

फाईल झाड़ रहा है । इसी बात को लेकर पुरुष और स्त्री में कहा–सुनी शुरू हो जाती है । इसी समय छोटी लड़की अंदर से शिकायत करती हुई आती है कि अशोक उसे तंग कर रहा है । लड़की अशोक के लिए शोकी शब्द का प्रयोग करती है । स्पष्ट है कि अशोक का घरेलू नाम शोकी है । लड़की कहती है कि अशोक पड़ा सो रहा था अब तक । मैंने जाकर जगा दिया, तो लगा मेरे बाल खींचने ।

अशोक जब रंगमंच पर प्रवेश करता है, उस समय उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है, लगता है कि उसने दो–तीन दिन से शेव नहीं बनाई है । यह शेव न बनाना भी साभिप्राय है – वह आजकल की फैशन के अनुसार फ्रेंचकट रखना चाहता है । “फ्रेंच कट रखने की सोच रहा हूँ । कैसी लगेगी मेरे चेहरे पर ।”

बातचीत में भी वह अशिष्ट है । पिता के प्रति वह शिष्टतापूर्वक बात नहीं करता । पिता महेन्द्रनाथ जब उससे कहते हैं कि क्या मैं इस पुस्तक को देख सकता हूँ । तो वह किसी प्रकार से संकोचपूर्ण व्यवहार करने की अपेक्षा सीधा–सा नकारात्मक उत्तर देते हुए कह देता है, “नहीं – आपके देखने की नहीं है ।” अशोक आधुनिक बुद्धिवादी युग की उपज है और वह अपने प्रत्येक व्यवहार एवम् आचरण के समर्थन में तर्क प्रस्तुत कर सकता है । सावित्री चाहती है कि अशोक कहीं काम पर लग जाए । इसके लिए वह अपने बोस सिंघानिया की खुशामत करती है । अशोक को सिंघानिया के पास सावित्री छोड़ जाती है । वह चाहती है कि अशोक को सिंघानिया के साथ बात करने का पूरा अवसर मिल सके और अशोक उससे पूरी बात कह कर अपना काम निकाल ले । परंतु अशोक आशा के ठीक विपरीत व्यवहार करता है । सिंघानिया बात पीछे अपनी शेखी बघारता है । अशोक से यह सहन नहीं होता और वह सिंघानिया की खुश्की उड़ाने की कोशिश करने लगता है । सिंघानिया कहता है कि “बहुत से लोग एक दूसरे जैसे होते है । हमारे अंकल है एक । पीछे से देखो मोरारजी भाई लगते है ।” शिष्टतावश अथवा कम से कम सिंघानिया को प्रसन्न करने की द्रष्टि से ही, अशोक को यह कहना चाहिए था कि “ तब तो आपके उन अंकल के दर्शन अवश्य ही करना चाहूगाँ ।” परंतु वह यह न करके, उनकी बात की खिंचाई करने लग जाता है , यथा – “हमारी आंटी है एक । गरदन काट कर देखो – जीना लोलो ब्रिजिदा नजर आती है ।”

अशोक आज के उन युवकों में से है जो अपने माता–पिता को मूर्ख समझते हैं और अपने आपको अक्ल का पुतला । वह मनोविज्ञान के सिद्धांतों को गलत रूप में

जीवन–व्यवहार पर लागू करता है । माँ चाहती है कि अच्छे पद वाले व्यक्तियों के साथ उठने–बैठने से अपना काम निकालने के अवसर हाथ आते हैं । अशोक अपनी योग्यता फाड़ता हुआ हीनत्व भाव के सिद्धांत की आड लेना चाहता है – "बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर, जिनके आने से हम जितने छोटे हैं उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में ।"

अशोक का चरित्र हमारे सामने आधुनिक युवक को प्रस्तुत करता है ; इस युवक को जिसे हम अशिष्ट, उच्छृंख्खल, विद्रोही – न मालूम क्या – क्या कह सकते हैं । परंतु भूल जाते हैं कि उसको ऐसा बनाने के लिए उत्तरदायी उसके माता–पिता और यह संपूर्ण समाज है । सावित्री जैसी माताएँ अपने अस्वाभाविक व्यवहार द्वारा उसके सामने गलत उदाहरण प्रस्तुत करती है । महेन्द्रनाथ और सावित्री जैसे मातापिता बात पीछे आपस में लड़ते रहते हैं और युवकों के सामने कोई आदर्श प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते हैं । समाज में श्रद्धेय को न पाकर युवक श्रद्धा रहित हो जाता है । यदि कहीं जुनेजा जैसे ठीक ठिकानेवाले व्यक्ति मिल जाते हैं, तो वह जीवन में कोई रास्ता पाने की कोशिश करने लगता है ।

अशोक वस्तुःस्थिति समझने में पूर्ण जागरुक है, तथा उसमें मानवोचित्त गुणों का अभाव भी नहीं है । आवश्यक केवल यह है कि उसको उचित वातावरण एवम् अवसर प्राप्त हो । अशोक ऐसा ही युवक है । वह अपनी कर्कशा माता से असंतुष्ट दिखाई देता है, परंतु सीधे सरल पिता के प्रति आश्वस्त बना रहता है । उसको पिता की दुःखद स्थिति के प्रति सहानुभूति रहती है, तथा वह अवसर निकाल कर जुनेजा की आशा के विरुद्ध अपने पिता को घर लाता है । तभी तो महेन्द्रनाथ के प्रवेश करने पर जुनेजा के चेहरे पर व्यथा की रेखाएँ उभर आती है और उसकी आँखें स्त्री से मिल कर झुक जाती हैं । जो काम जुनेजा और सावित्री के सामर्थ्य के बाहर था, उसको अशोक कर दिखाता है ।

अशोक उस विद्रोही युवक का प्रतीक है जिसके मन में बहुत कुछ कर गुजरने की छटपटाहट बनी रहती है , और समाज जिसकी समस्याओं के प्रति उदासीन बना रहता है ।

६.६.४ भाषा–शैली :

भाषा–शैली नाटककार की अभिव्यक्ति का माध्यम है । नाटक अपने विचारों को, अपनी भावनाओं को पात्रों पर आरोपित करता है और फिर उन्हें भाषा–शैली के माध्यम से प्रकट करता है । इस प्रकार भाव यदि किसी नाटक की आत्मा है, तो भाषा–शैली उसका परिधान अथवा शरीर है । कला की अन्य विधाओं की भाँति नाटक में भी भाषा–शैली अभिव्यक्ति का माध्यम है और प्रस्तुतीकरण की विधि–शैली है । भाषा–शैली के अंतर्गत वस्तुतः समग्र कलापक्ष आ जाता है ।

राकेशजी की भाषा–शैली शुद्ध खड़ीबोली है । 'आधे–अधूरे' नाटक की भाषा–शैली राकेशजी के व्यक्तित्व से युक्त सीधी–सादी चलती हुई हिंदी है जिसमें अरबी–फारसी के अतिरिक्त अंग्रेजी के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया गया है । यह नाटक वस्तुतः एक शिक्षित मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित है । इसके चरित्र अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग खुलकर करते हैं । अतः इसकी भाषा को हिन्दुस्तानी कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । नाटक की भाषा में कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं । वह सर्वत्र व्यावहारिक एवम् लोक प्रचलित है । ऐसा प्रतीत होता है कि राकेशजी जो कुछ कहना चाहते है उसके लिए भाषा अपने को संजोए उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है । कहीं भी राकेशजी को अपनी भाषा शैली को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए व्यर्थ का शाब्दिक व्यायाम नहीं करना पडता ।

'आधे–अधूरे' नाटक की भाषा का स्वरूप समाज में प्रचलित भाषा के स्वरूप के अधिक निकट है । उसमें विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिक किया गया है । उसकी शैली प्रायः संवाद–शैली है । अंत में जुनेजा के कथनों में वह विवेचनात्मक रूप धारण करती हुई दिखाई देती है । 'आधे–अधूरे' नाटक में शब्द–चयन के समय राकेशजी ने पूरी उदारता का परिचय दिया है । उन्होंने पात्र और अवसर के अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया है । इस प्रकार लोक–प्रचलित शब्दों के प्रयोग के कारण 'आधे–अधूरे' नाटक की भाषा स्वाभाविक और बोधगम्य हो गई है ।

शब्दों की पुनरावृति द्वारा अथवा दोहरे प्रयोग द्वारा भाषा को सजीवता प्रदान की जाती है और वक्ता अपने कथन को बल प्रदान करता है । राकेशजी ने इस प्रकार का सफल प्रयास कई स्थानों पर किया है । नाटक में राकेशजी ने एक–दो स्थानों पर अंग्रेजी के शब्दों में छायावाद भी दिखाई देता हैं ; जैसे – "I have not got many years

to live now." को इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि मेरे पास अब बहुत साल नहीं हैं जिने को ।

इस नाटक में नारी पात्र भी हैं । वे स्वभावतः बात को घुमाकर कहती हैं । उदाहरण के लिए – बड़ी लड़की अपने दाम्पत्य जीवन का वर्णन इस वक्र शैली में लाक्षणिक प्रयोग के सहारे करती है, कि – "वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है ।" सावित्री अपने पति के बारे में छुपाकर कहती है कि उन्हें जुनेजा ने किसी काम का नहीं रखा है ; यथा – "क्योंकि जुनेजा तो एक पूरा आदमी है अपने में । और वह खुद ? वह खुद एक पूरे आदमी का आधा–चौथाई भी नहीं है ।"

नाटक की भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए राकेशजी ने लक्षणा का भी सहारा लिया है । परंतु ऐसे स्थान विरल ही हैं । नाटक की भाषा सामान्य बोलचाल की, सीधी सादी भाषा है । इसमें आलंकारिक प्रयोगों का प्रायः अभाव है । केवल दो–तीन स्थानों पर विरोधाभास अलंकार का प्रयोग किया गया है । यथा – " दो आदमी जितना साथ रहे, उतना ही ज्यादा अपने को एक दूसरे से अजनबी महसूस करें ।"

'आधे–अधूरे' नाटक के पात्र मध्यवर्ग के शिक्षित व्यक्ति हैं । स्वभावतः नारियाँ अपेक्षाकृत कम शिक्षित होनी चाहिए । राकेशजी ने उनके द्वारा जिस भाषा का प्रयोग कराया है , वह सर्वथा अर्ध–शिक्षित नारियों जैसी है । स्त्री गर्म को गरम तथा शर्म को शरम कहती है । बूढ़ी हो जाने के लिए बुढ़ा हो जाना शब्द का प्रयोग करती है । बड़ी लड़की स्कूटर रिक्षा के लिए पचास टूटे पैसे माँगती है । राकेशजी के पात्रों की भाषा अपने भावों के अनुसार अपना स्वरूप परिवर्तित करती चलती है । महेन्द्रनाथ अपने जीवन की लड़ाई प्रायः हार चुका है ; परंतु उसके मन में कुछ कहने की छटपटाहट है । वह अपने परिवार से परेशान है । उसकी समझ में नहीं आता है कि वह क्या करे ? उसके इन भावों की झांकी हमें उसके इस वक्तव्य द्वारा प्राप्त होती है – "परंतु मैं अपने संबंध में निश्चित रूप में कुछ भी नहीं कह सकता । ... मैं वास्तव में कौन हूँ ? यह एक ऐसा सवाल है जिसका सामना इधर आकर मैंने छोड़ दिया है ।" नाटक में कई ऐसे स्थान हैं जहाँ राकेशजी ने शब्द–विधान के द्वारा सजीव चित्र उपस्थित कर दिए हैं । इन्हें हम चित्रात्मक वर्णन भी कह सकते हैं ।

'आधे-अधूरे' नाटक की शैली संवाद-शैली है। छोटे-छोटे व्यंग्यपूर्ण वाक्यों के प्रयोग द्वारा लेखक अपनी शैली को प्रभावपूर्ण बनाए रखता है। बीच-बीच में प्रश्न वाचक चिह्न लगाकर शैली को विशेष सजीव एवम् प्रभावोत्पादक बनाया गया है। एक दो स्थानों पर शैली स्वरूप भावात्मक हो गया है। ऐसे स्थानों पर पात्र भावना के प्रवाह में बह चलता है और अभी कथन में छोटे-छोटे वाक्यों की लड़ी-सी पिरोता चलता है। यथा – बिन्नी का कथन – "तुम बता सकती हो। ममा, कि क्या चीज है वह ? और कहाँ है वह ? इस घर के खिडकियों-दरवाजों में ? छत में ? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गई हूँ ? बताओ ममा, क्या है वह चीज ? कहाँ पर है वह इस घर में ?"

'आधे-अधूरे' नाटक की संवाद-योजना विशिष्ट है। पहले दो नाटकों की अपेक्षा इसके संवाद ज्यादा तीखे, मर्मातक और स्थिति सापेक्ष हैं। नाटकीय संवादों में जो त्वरा है, जो गति है, वह बड़ी सहज है। कही भी नाटककार ने किसी भी पात्र को अनावश्यक शब्द नहीं बोलने दिये है। वे उतना ही बोलते हैं जितना जरूरी है। ये संवाद देखिए –

"बड़ी लड़की : ऐसे में वह क्या बात कहता है।

स्त्री : क्या ?

बड़ी लड़की : कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती !

स्त्री : क्या चीज ?

बड़ी लड़की : मैं पूछती हूँ क्या चीज, तो भी उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री : वह क्या ?

बड़ी लड़की : कि इसका पता मुझे अपने अंदर से चल सकता है। वह कुछ नहीं बता सकता।"

अंततः हम कह सकते हैं कि भाषा-शैली की द्रष्टि से 'आधे-अधूरे' एक सफल नाटक है और इसमें राकेशजी की भाषा शैली के उत्कृष्ट रूप के दर्शन होते हैं। नाटक की भाषा सर्वथा स्वाभाविक, व्यावहारिक, चलती हुई, सरल एवम् प्रभावशाली है। उसमें हमें मध्यवर्गीय परिवार का सजीव स्वरूप दिखाई देता है। शैली सशक्त एवम् नाटकोचित है।

६.७ पैरों तले की जमीन

'पैरों तले की जमीन' राकेशजी का चौथा पूर्ण कालिक नाटक है। जो उनके निधन के पश्चात सन् १९७५ ई. में प्रकाशित हुआ। अनीता राकेश ने 'दो शब्द' में बताया है कि – "यह नियति की विडम्बना समूचे नाटक की संयोजना को पका लेने के बाद राकेशजी 'पैरों तले की जमीन' को अधूरा छोड़ गये – शोधा, मांजा अंतिम मसविदा केवल पहले अंक का ही कर पाये। दूसरे अंक की परिकल्पना उसके द्देश्यबन्ध के खाके इस अंक के आधे संवाद, उनकी नोट–बुक्स में ही मिले। राकेशजी ने नाटक की पांडुलिपि प्रकाशकों को सौंपने की तारीख भी तय कर रखी थी जो काल यदि उनसे और हमसे इस बीच क्रूर खिलवाड़ न करता तो एक – दो महिनों से अधिक न टलती। अपने भीतर 'पैरों तले की जमीन' के रिहर्सल ही नहीं, पूरा नाटक पूरी साज–सज्जा के साथ अंतिम रूप से खेल चूके थे – एक माने में अब केवल टाईपराइटर पर कागज चढ़ा कर उसे प्रकाशनार्थ दे देना।" [४९]

कमलेश्वर द्वारा इस नाटक को पूरा किए जाने के संबंध में डॉ. सिद्धनाथ कुमार ने लिखा है – "किसी प्रतिभासंपन्न सृजनात्मक रचनाकार की किसी अधूरी कृति का अन्य रचनाकार द्वारा पूरा किया जाना सैद्धांतिक विवाद के लिए अवकाश देता है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी संवेदनशीलता होती है, अपनी द्रष्टि होती है। एक संवेदनशीलता की अधूरी यात्रा दूसरी संवेदनशीलता द्वारा सही लक्ष्य पर ही पूरी होगी ऐसा नहीं कहा जा सकता।" [५०] इसी बात को अनीता राकेश भी स्वीकार करती हैं – "किसी कृति की अधूरी छुटी रचना को पूरा करने के लिए बड़े साहस और रागात्मक तद्रूपता की आवश्यकता होती है। कमलेश्वरजी ने राकेशजी से अपने कितने गहरे लगाव के नाते इस चुनौती को स्वीकार किया होगा, इसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।" [५१]

६.७.१ कथानक :–

'पैरों तले की जमीन' की कथावस्तु दो अनुवर्तन में विभाजित है। यहाँ की सारी घटनाएँ काश्मीर में दो नदियों के बीच में स्थित करीब आधे मील के प्रदेश के एक द्वीप या टापू में निर्मित 'टूरिस्ट क्लब ऑफ इंडिया' में घटती है। ये नदियाँ हैं लिद्दर और शेषनाग। एक टूरिस्ट अफसर सोमनाथ के मातहत एक ठेकेदार मुहम्मदशफी इस

क्लब का मालिक है । लोग यहाँ मेम्बर बनने आते हैं और शराब पीने, ताश खेलने, स्विमिंग पुल में तैरने, मौज उड़ाने और जाज संगीत सुनने आते हैं । समाज के विभिन्न वर्गों, उम्रों, मनोभावों के स्त्री–पुरुष यहाँ जमा होते हैं । यहाँ आनेवाला हर व्यक्ति दुहरी जिंदगी जीनेवाला है । इसीलिए रीता कहती हैं कि – बड़ी ममी अक्सर कहा करती हैं कि भीड़ में आदमी आदमी होता है और अकेले में ... ।"[९२] हर आदमी का भीड़ का चेहरा अलग और उसके अकेलेपन में दिखाई देनेवाला चेहरा अलग है । जैसे सब लोग मुखौटे पहने हुए हैं । एक बार दोनों नदियों में बाढ़ आती है और चारों तरफ से क्लब पानी से घिर जाता है । मौत सबके सिर पर सवार होने को है । क्योंकि क्लब के इन लोगों को बाहर की दुनियाँ से जोड़नेवाले पुल में अब दरार पड़ गई है । जैसे जैसे पानी बढ़ता जाता है और पुल की दरार बड़ी होती है और उसकी कड़ियों शहतीरों के गिरने की आवाज आने लगती है । इन सबके सिर पर मौत का साया तीव्र होता जाता है । ऐसे आसन्न मृत्यु–भय के समय हर व्यक्ति धीरे–धीरे अपनेपन से बाहर आने लगता है । पहले वे सब मृत्यु–भय से पलायन करने का प्रयत्न करते हैं – ताश खेलकर या शराब पीकर या सिगरेट या संगीत सुनकर या चैक लिखकर । और एक समय आता है जब पलायन की स्थिति को भी पार कर जाते हैं तो मृत्यु से उनका बिलकुल सामना होता है और वे सब अपने खेल खेलकर मुक्त रूप से आत्म–साक्षात्कार की स्थिति में पहुँच जाते हैं और एक दूसरे के सामने अपने सारे अपराधों, छल–प्रपंचों की दुनिया को बेनकाब कर देते हैं । इस तरह उनके असली चेहरे दिखाई देने लगते हैं । आत्मस्वीकृति के ऐसे ही समय में बाहर से कुछ लोगों की सहायता आश्वासन मिलते ही वे सब फिर मुखौटों की अपनी नकली दुनिया में लौट आते हैं । यही नाटक का व्यंग्य व्यंजनात्मक बन जाता है । मौत को सिर पर पाकर वे अपने आंतरिक पशुत्व, अपराधों, क्लीव वासनाओं, स्वार्थो, टूटे संबंधों की नफरतों को खोलकर भी फिर उन्हीं गुणों से मूक स्थिति में लौटकर जैसे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति बनने लग जाते हैं । फिर वही कृत्रिमता उनके चेहरे की रौनक बन जाती है ।

नाटक में कुल आठ पात्र हैं – क्लब के बार का काउन्टर क्लर्क अब्दुल्ला अली खाँ, एक जुआरी पंडित जो ब्राह्मण है और क्लब का सदस्य है । नीरा और रीता नाम की दो लड़कियाँ है जो टेनिस आदि खेलती हैं और एक दम्पति अयूब और सलमा है । झुनझुनवाला जो जुआरी क्लब का सदस्य भी है । इस क्लब में प्रायः नियमित रूप से ये लोग आते रहते हैं । बाढ़ की वजह से उनके पैरों तले की जमीन ही अब खिसकने लगती है तब नाटक का रंग गाढ़ा होता जाता है ।

अब्दुल्ला के माध्यम से अनुवर्तन का चक्र घूमने लगता है । क्लब के ठेकेदार शफी साहब का फोन है तो अब्दुल्ला कहता है कि – "पुल में दरार पड़ने की खबर पाते ही सब लोग क्लब खाली कर गए हैं ।" वह भी सब सामान पैक कर रहा है । और उसे हिसाब की कापी देखनी है । नियामत दरवाजे बन्द कर रहा है और शफी के दोस्त अयूब को जो शराब में धुत्त था, पुल के उस पार भेज दिया गया है और शफी साहब से ही पता चलता है कि दरार डेढ़ फुट की हो गई है । बेचारा अब्दुल्ला भुलक्कड है, ईमानदार और कुछ ही दिन पहले ही उसकी चौथी बीबी से पहला बेटा हुआ है जिसे देखने जाने की बड़ी ललक होने पर भी शफी उसे छुट्टी नहीं देता है । अब्दुल्ला और नियामत की बातों से पता चलता है कि क्लब में इस वक्त और दो आदमी हैं – पंडित और झुनझुनवाला जो अब भी ताश खेल रहे हैं । "पंडित की शेरवानी और कमीज के आधे बटन खुले हैं जिससे उसकी बनियान और काले डोरे का तावीज बाहर नजर आ रहा है । चेहरे से लगातार हारने वाले आदमी की परेशानी झलकती है । झुनझुनवाला उस आदमी के अंदाज से जो मुस्कराने से लेकर जुआ खेलने तक हर काम नापतोल के साथ करता है, कुरसी की पीठ टेक लगाये पंडित के पत्ता चलने की राह देख रहा है । आँखों में जीतने वाले आदमी का आत्मविश्वास है ।" [७३]

नियामत और अब्दुल्ला क्लब का सारा सामान समेटना चाहते हैं तभी पता चलता है कि पास वाले कमरे में नीरा और रीता टेबल–टेनिस खेल रही हैं । बाहर आते हुए नीरा नियामत से टकरा जाती है और काउंटर पर आकर पानी का गिलास माँगती है । तभी रीता आकर बताती है कि उसने अयूब को अपनी बेगम सलमा के साथ पुल पार करके आते देखा है । इस बीच पंडित शराब और सिगरेट की माँग करता ही रहता है । पुल में दरार पड़ने से पंडित, अब्दुल्ला, नियामत आदि बहुत डरते हैं । पर लगता है झुनझुनवाला पर उसका उतना प्रभाव नहीं पडा है । नीरा और रीता बिलकुल आधुनिक समाज की लड़कियाँ हैं उनकी जिंदगी अभी बेफिक्र बन गई है । पुल में दरार पड़ने पर भी उन्हें डर नहीं है । अब्दुल्ला और पंडित नीरा को बच्ची कहते हैं तो वह नाराज होती है कि वह बड़ी है । अयूब ने कल शाम को रीता से अच्छा व्यवहार नहीं किया था । अब ये सब क्लब खाली करके जाना चाहते थे कि अयूब अपनी बीबी सलमा के साथ आ धमकता है । अयूब चौबीस–पच्चीस साल का युवक है और सलमा बाईस–तेईस की है । उसके चेहरे पर स्वाभाविक सौम्यता के अलावा विषाद की भी हल्की छाया है । अयूब कहता है कि उसे एक डॉक्टर से मिलना था जो यहाँ आनेवाला था । उस डॉक्टर से वह अपनी बीबी को मिलाना चाहता था क्योंकि वह सलमा का

बचपन का दोस्त है। अयूब अब भी नशे में है और वह कहता है कि उसके और उसकी बीबी का रिश्ता खराब है। सलमा नीम–बेहोश–स्त्री बाहर पोर्टिकों में पड़ी है जिसकी चिन्ता अयूब को नहीं है। पर नियामत उसकी देखभाल में लगा था। अयूब कहता है कि उसकी बीबी का पाँव फिसल गया था और उसके लिए एक कब्रिस्तान बन गई है। वह जानना चाहता है कि औरत कब्रिस्तान क्यों बनती है। उसे अपने अकेलेपन से ही दहशत होती रहती है। इसीलिए घर पर सख्त लड़ाई–झगड़ा होता है। इन बातों से पता चलता है कि पति–पत्नी के संबंध में एक ठहराव और टूटन पर आ पहुँचे हैं।

तभी टूरिस्ट अफसर सोमनाथ फोन करके बताता है कि इन्जीनियर की सूचना है कि कोई पुल पर न जाए, पुल किसी भी वक्त पूरा ढह सकता है। इतने में वहाँ नीरा को खोजते हुए रीता आती है तो अयूब की नजर उस पर पड़ती है। कल अयूब द्वारा अपना हाथ पकड़े जाने पर रीता ने उसका अपमान किया था अयूब कहता है कल को वह भूल जाए, कल कल है, आज आज है। अब तक अंधेरा उतर रहा है, छा रहा है – सब पर। रीता के वहाँ से जाने पर एक लम्बे स्वगत में अयूब अपने अकेलेपन के दर्द को रोता है। घर पर बीबी है, दो बच्चे हैं, फिर भी बीबी में उसकी सारी आस्था खो गई है। अब सलमा को यहाँ लाकर डॉक्टर से मिलाने से या यहाँ क्लब की लडकियों के साथ की गई हरकतों से वह सलमा को और ज्यादा चिढाना चाहता है। वह बिलकुल खुले दिल, नंगा होकर जिना चाहता है। सलमा की तबीयत जरा सुधर गई है और उसे अंदर लाकर सोफे पर बिठाया गया है। तभी बीजली चली जाती है और टेलीफोन भी बेजान हो जाता है।

नाटक के दूसरे अनुवर्तन में सलमा और अयूब के पूरे रिश्ते खुल जाते हैं। सलमा कहती है – मुझे तुम हमेशा चेहरों को लेकर शर्मिदा कर सकते है ... खुद भी अगर शर्मिन्दा हो सकते तो शायद हम एक–दूसरे के चेहरों को ज्यादा पहचान पाते। इस कथन से अयूब अपने भीतर देखे तो दोनों बराबर हैं अगर सलमा में डॉक्टर का भूत अयूब देखता है तो कल रीता के साथ अयूब ने किया वह क्या है ? दोनों अपनी भूलों को समझें तो शायद उनके संबंध टिक सकते हैं। अब क्लब में धीरे–धीरे पानी बढ़ रहा है। पंडित कहता है कि थोड़ी देर में हम सब भी कुत्तों की तरह मर जाएँगे। सलमा कीचन में जाकर खाना तैयार करती है कि जो कुछ है उसे खा तो ले। पंडित को भूख लगी है खाने की। अयूब को भी भूख लगी है – मगर वह रीता का शीलहरण करके नीरा की तलाश में जा रहा है। वह कहता है – "मुझे एक और चाहिए।

औरत... जो मौत के खतरे के बावजूद मेरा... साथ दे सके।"[५४] वह कहता है कि रीता में भी उसे एक कब्रिस्तान ही मिला। वह नीरा के भोलेपन को उसके इन्नोसेन्स को आजमाना चाहता है। सलमा अयूब को बदजात, नाकारा कहकर जलील करती है। थोड़ी देर बाद वह नीरा का भी शीलहरण करता है।

अब क्लब की अलमारी तोड़कर शराब, सिगरेट आदि लिए जाते हैं। पंडित कहता है कि – " आज यहाँ किसी भी चीज पर किसी की मिल्कियत नहीं है।"[५५] नीरा और रीता की मनःस्थिति ऐसी है कि शीलहरण किए जाने पर उन्हें बुरा जरूर लगता है कि उसे वे दोनों उतनी गंभीरता से नहीं लेती। वे दोनों लाउंज में जाकर रिकार्ड का म्युजिक सुनने लगती हैं। इस तरह मौत में भी खुशी का समारोह चल पडता है। झुनझुनवाला कहता है कि – "सब लोग डर और दहशत से पागल हो गए हैं।"[५६] अब तक कमरे में पानी चढ़ आया है, यहाँ से किसी भी तरह बच निकलने की धुन में सभी हैं। अब्दुल्ला अपनी हिसाब की कापी को और नियामत को हिफाजत से पकड़े हुए है। रीता तमाम रिकार्ड पकड़े है और झुनझुनवाला अपना पार्टफोलियो जिसमें चेकबुक है। सलमा कुछ नहीं बचाना चाहती। नीरा को अब सबसे खौफ लग रहा है, अयूब को वह दरिन्दा कहती है। बाद में वह इतनी थकी लगती है कि बेहोश ही हो जाती है। पंडित अपने सारे मुखौटे फेंककर पूछता है – "मेरी आज तक की जिंदगी एक नपुंसक आदमी की जिंदगी नहीं रही ? रही है। घर था, पर घर की जिंदगी नहीं थी। बीबी है पर बीबी नहीं है ... उसकी तस्वीर औरों के बटुओं में बंद है।"[५७] उसका इशारा झुनझुनवाला के प्रति ही था। पंडित अपने नंगेपन के साथ मरने के इरादे से सारे कपड़े उतारकर पानी में फेंक देता है। पर झुनझुनवाला को लगता है कि – "मैं अपने नंगेपन को देखने लायक भी नहीं रह गया हूँ।"[५८] और वह भी अपने मुखौटे उतारकर अपने सारे अपराध स्वीकार कर लेता है कि – "पैदा होते ही उसके कान में पहला मंत्र फूंका गया था कि दुनिया में बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर ही जी सकती है। उसने सबको अपना व्यापार बनाया है। सैंकडों जवान लड़कियों के साथ, उनकी नहीं अपनी मर्जी से सोया है, स्मगलिंग किया है, रिश्वत दी है, टेक्स बचाकर काला धन जमा किया है। और इस देश के भीतर एक और अपना ही अपनी सुविधाओं का देश बनाया।"[५९] अब वह भी अपने को परास्त महसूस कर रहा है।

जब नियामत अपनी बूढ़ी माँ के वास्ते और अब्दूल्ला अपने नवजात बच्चे के लिए जिन्दा रहना चाहते हैं तब अयूब सामूहिक आत्महत्या की सूचना देता है, स्वयं अयूब

और सलमा भी कोमल पड़ जाते हैं और वह भी मरना नहीं चाहते पर रीता और नीरा बड़ी दिलेरी से मौत का वरण करके डूबकर मरना चाहती है। तब तक पानी भी उतरने लगता है और तभी दूर से बचाने के लिए आनेवालों की सीटियाँ सुनाई पड़ती हैं और टार्च लाइट दिखाई पड़ती है। फिर से सब अपने अपने पूर्ववत् रंग में आ जाते हैं और इस तरह रीता के शब्दों में – "एक नाटक पूरा होते–होते रह गया। एक इतिहास घटित होते–होते रूक गया।"[६०]

इस प्रकार 'पैरों तले की जमीन' की कथावस्तु आज आधुनिक जीवन की विडम्बना से युक्त है। इसमें यथार्थता है। प्रत्येक वर्ग, समाज का व्यक्ति इसमें अपनी कमजोरियों और आज अर्थ की महत्ता में 'कुछ बनने' की अंधी दौड में उसके सामाजिक, पारिवारिक जीवन के मूल्यों में एक टूटन, बिखराव आ जाता है। व्यक्ति – व्यक्ति के बीच का संबंध टूटने की कगार पर आ पहुँचा है। इसमें लोग दोहरी जिंदगी जीते हैं, जो आज के समाज से हमें रूबरू कराता है।

६.७.२ रचना विधान

'पैरों तले की जमीन' में राकेशजी के अस्तित्वपरक चिंतन तथा विसंगत विचारधारा का सुंदर समन्वय प्रतिबिम्बित है। डॉ. जयदेव तनेजा के मत में राकेशजी के नाट्य–साहित्य में अस्तित्ववादी चिंतन की पूर्ण परिणति हमें देखने को मिलती है। इस दृष्टि से यह नाटक और भी उल्लेखनीय हो जाता है, क्योंकि मुद्राराक्षस के रेडियो नाटक 'संतोलाः एक छिपकली' के अतिरिक्त 'पैरों तले की जमीन' ही एक ऐसा हिन्दी नाटक है जिसमें अस्तित्ववाद प्रत्यक्षतः आद्यन्त व्याप्त है। राकेशजी सभी प्रकार के आधुनिक विचारों को अपने में आत्मसात करके अपनी रचनाओं का एक नया रूप एक अपना लगनेवाला रूप वे निर्मित करते थे। 'पैरों तले की जमीन' में भी यह बात देखने को मिलती है – "बाढ़ में घिरे हुए कुछ लोगों की प्रतिक्रिया के माध्यम से राकेश का यह नाटक विसंगत नाटकों की भाँति वर्तमान जीवन की असंगति, ऊब और निरर्थकता को मार्मिक अभिव्यक्ति देता है।"[६१] विशेष कर इस नाटक में राकेशजी अत्याधुनिक लगते हैं। तभी तो तिलराज शर्मा लिखते हैं – "यहाँ के पूर्णतया और अस्तित्ववादी जीवन दर्शन की अप्रत्याहत चेतना से मंडित एवम् उत्पीड़ित होकर आये हैं। अस्तित्व के संकट संदर्भों ने उन्हें जो नई जीवन द्रष्टि दी है वह सीधी अस्तित्ववादी

दर्शन से जुड़ी है, अतः 'पैरों तले की जमीन' नाटक को अस्तित्ववादी जीवन दर्शन पर आधारित हिन्दी का अभी तक का पहला या एकमात्र नाटक कहा जा सकता है।"[६२]

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि, नाटककार, आलोचक टी.एस.इलियट अपनी 'दी वेस्ट लैंड' नामक प्रसिद्ध कविता में 'लंडन ब्रिज इज फोलिंग डाउन फोलिंग डाउन फोलिंग फोलिंग।"[६३] कहकर स्पष्ट रूप से आधुनिक सभ्यता और मानवीय संबंधों की गिरावट, मूल्यों की टूटन की अभिव्यंजना करते हैं। पुल उनकी कविता में इस प्रकार व्यापक रूप से समग्र मानव चेतना के वैज्ञानिक युग में पतित होने का प्रतीक बनकर आया है। 'पैरों तले की जमीन' में एक ऐसे ही पुल के टूटते जाने और टूट जाने का अहसास देकर भारतीय परिवेश में राकेशजी ने भी संबंधों के टूटने का अर्थ भर दिया है। प्रेम और काम, हार और जीत, परंपरा और नवीनता, काला और सफेद, निष्ठा और कपट, छोटा और बड़ा, खुला और बंद सभी प्रकार की परिस्थितियों और उम्रों का एक यही पुल है, जिस पर से होकर कई मुखौटे रोज आते जाते हैं, संकटों में फँसते और पार भी होते जाते हैं। यह पुल ऐसे लोगों के जीवन का उनकी भावनाओं का, विचारों का जिनमें खोट ही ज्यादा है तथा उनके संबंधों–रिश्तों का है जो अब टूट रहा है और एक भयानक स्थिति उत्पन्न कर रहा है। इस नाटक में केन्द्रीय संवेदना नारी पुरुष के संबंध हैं तो उन्हें नये तेवर से अभिव्यंजना देनेवाला केन्द्रीय स्तर है – टूटता हुआ पुल जो अपने प्रतीकात्मक स्वरूप में दुहरा जीवन जीनेवाली मानसिकता का पुल भी हो सकता है और बाह्य द्रष्टियों से उस दोहरेपन में भी दो किनारों को जोड़े रखनेवाला पुल भी हो सकता है। यह पुल निश्चय ही अस्तित्ववादियों से लिया गया प्रतीक है। वह ऊपर से गुजरने वालों के समस्त बोध और दबाव को सहकर भी जीता या बना रहता है, पर उसमें दरार भी आ सकती है, उसकी एक–एक कड़ी टूटकर बिखर भी सकती है वह भी अपने ही अस्तित्व की परिचायक नदी या नदियों की बाढ़ से, आँधी या तूफान के और फिर मूल्यों की तरह पुराना पड़कर के भी। मतलब यह कि वह टूट भी सकता है। टूटने से वह एक नया अहसास एक नया संत्रास, जीवन की ललक का आयाम भी दे सकता है या फिर व्यक्ति को उसके अपने नितांत नीजि स्तर पर लाकर वर्गभेदों के बाह्य मुखौटों से निकलकर एक समान मानसिकता को भोगने और उसके विस्फोट का कारण भी बन सकता है।

इस नाटक में सामाजिक समस्या की विशेषता व्यक्त हुई है। जिसमें राकेशजी के शब्द और नेपथ्य की ध्वनियों के मिले–जुले प्रभाव को रंगमंच पर एक नये प्रयोग में

प्रस्तुत कर वर्तमान युग में व्यक्ति के सामाजिक जीवन से वैयक्तिक जीवन तक व्याप्त विसंगति, निरर्थकता, मूल्य विघटन तथा मानवीय संबंधों के खोखलेपन को मूर्त किया है। इस नाटक के दो पात्र समाज के निम्न वर्ग के हैं – अब्दुल्ला और नियामत। यही दो पात्र ऐसे हैं जो अन्य या उच्च वर्ग के पात्रों की तरह उतने भ्रष्ट नहीं हुए हैं। जब इस मौत की छाया में भी वे मानवीय संबंधों और गुणों से दूर नहीं होना चाहते। उनमें जीने की चाह अब भी है। अब्दुल्ला कहता है कि – "मुझे अपने लड़के का मुँह देखना है और शफी साहब का हिसाब देना है।"[६४] और नियामत कहता है कि – "नहीं ... मेरी बूढ़ी माँ की देखभाल करनेवाला कोई नहीं है और क्लब की चाबियाँ मेरे पास हैं।"[६५] अब्दुल्ला अपनी बीबी, बच्चे और माँ के चेहरे को देखना चाहता है और शफी को हिसाब दिखाने के लिए हिसाब की कापी हाथ में लिए हुए है। नियामत अपनी बूढ़ी माँ की रक्षा के लिए जिन्दा रहना चाहता है और इस क्लब को वक्त पर खोलने और बंद करने के लिए चाबियाँ अपने पास ही रखता है। ममता, प्रामाणिकता और कर्तव्य भावना जैसे मनुष्य से मनुष्य के संबंधों को जोड़नेवाले गुण उनमें अब भी बचे हुए हैं।

दूसरा वर्ग जो समाज का उच्च वर्ग कहलाता है ऊँची जाति, सामाजिक पद सब कुछ होते हुए भी अंदर से खोखले व्यक्तित्व का पात्र है पंडित और उनके जैसे झुनझुनवाला। शराब, ताश गुलामी आदि में खोकर अब दूसरों के लिए ही वह अपनी जिंदगी जीता रहा है। वक्त आने पर दूसरों की चीजें उन्हें बताए बिना लेने वाला पंडित कहता है – "अब किसी भी चीज की कोई कीमत नहीं है।"[६६] जैसे पंडित के व्यक्तित्व की भी कोई कीमत नहीं रह जाती है। वह अपने जीवन भर एक नपुंसक की तरह जिया है। खुद अपनी पत्नी का झुनझुनवाला से संबंध जानकर भी वह झुनझुनवाला के अधिकारों और अर्थ के प्रभाव में रहता है। अंत में सारे कपड़े उतार फेंककर नंगा होना चाहता है, किन्तु मौत इस परीक्षा के बाद टल जाती है और पंडित फिर मुखौटाधारी बन जाता है।

इसमें शहरी जीवन है ग्रामिण समाज नहीं है। क्लब में आने-जाने वाले लोग शिक्षित अभिजात्य वर्ग के लोग हैं। अयूब और सलमा अत्याधुनिक समाज व नगरीय सभ्यता के खोखलेपन को दर्शानेवाले पति-पत्नी हैं। अयूब जानता है कि सलमा का संबंध विवाह से पहले डॉक्टर से था। बार-बार उसी को लेकर उसे जलील करता रहता है। परिणामतः दो बच्चे होने पर भी वह उसके लिए कब्रिस्तान बन गई है। पुल में दरार पड़ने पर भी नशे में वह घर से अपनी बीबी को लेकर क्लब आया है। यहाँ बीबी

से डॉक्टर को मिलाकर उसकी प्रतिक्रियाएँ देखना चाहता है । बीबी से उसका रिश्ता खराब हैं । क्योंकि "डॉक्टर को जितना मेरी बीबी जानती है उतना शायद यहाँ और कोई नहीं जानता ।"[६७] उसे दुःख है – "क्या तुम सोच सकते हो कि मियाँ–बीबी के रिश्तों के बीच अगर कोई छाया भी आ जाए तो क्या हो सकता है ... मेरी बीबी मेरे लिए एक कब्रिस्तान बन गई है... औरत कब्रिस्तान क्यों बन जाती है ?"[६८] वह अकेलेपन से डरता है । सलमा एक हारी हुई, हताश स्त्री लगती है । पति और दो बच्चों के साथ एक घर में रहकर भी उसका डॉक्टरवाला भूत उसे सताए जा रहा है । अयूब अपनी काली करतूतों के बावजूद सलमा में एक कब्रिस्तान ही पाता है । सलमा को लगता है – "जब मुसीबत आती है तो सब अकेले ही होते हैं । मुसीबत की शकलें अलग–अलग हो सकती हैं । छुटकारा इतना आसान तो नहीं है ।"[६९] सलमा अपने पति अयूब से कहती है कि मुझे तुम शर्मिन्दा कर सकते हो पर खुद भी कभी अपने चेहरे को लेकर शर्मिन्दा हो सको तो शायद हम दोनों एक–दूसरे को ज्यादा समझ सकते हैं । इन दोनों के संबंध इतनी हद तक टूट जाते हैं कि आसन्न मृत्यु के भय से वह आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाते हैं ।

रीता और नीरा उच्चवर्ग की लड़कियाँ हैं । क्लब में मौत की छाया मंडरा रही है । बाढ़ का पानी बढ़ रहा है, लेकिन इन्हें कोई डर नहीं है । अयूब ने कल रीता से अच्छा व्यवहार नहीं किया था, फिर भी आज उससे वह फिर बात करती है । वह इतनी गंभीरता से लेती नहीं है । हिम्मत के नाम पर ये लड़कियाँ अपनी जिंदगी खराब कर लेने पर तुली हुई हैं । नीरा चौदह साल की है लेकिन कोई उसे बच्चा कहे यह उसे पसंद नहीं है । "अभी चौदह की तो हुई नहीं फिर अभी से उसे अपने को बड़ी समझने का शौक क्यों चर्रा आया है ?"[७०] ये दोनों लड़कियाँ अपनी उम्र से बड़ी लगती हैं । जीवन का भोलापन उन दोनों में नहीं है । वे आधुनिक सभ्यता के खोखलेपन कामुकता की मानसिकता की ही पुतलियाँ लगती हैं । ये सारे समाज के तथाकथित संभ्रांत, आधुनिक, आभिजात्य, शालीन प्रतिनिधि कहीं साहसी हैं, कहीं कायर, कहीं नपुंसक, कहीं दरिन्दे, कहीं विनम्र तो कहीं विवश हैं । मानव के जीवन मूल्यों का जो बिखराव 'पैरों तले की जमीन' में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । पराजय और हताशा का यह क्षण नाटक में समाज के विभिन्न वर्गों के इन प्रतिनिधि पात्रों के चेहरों पर पहली और अंतिम बार अपने ओढ़े मुखौटों को उतारने का अवसर जुटाता है, जब ये पात्र जीवन में अपनी पराजय और व्यवहार में अपने अनैतिक आचरण को स्वीकार करते हैं ।

इस प्रकार पूरा नाटक एक जिंदगी और मौत के संघर्ष को लेकर चलता है और मौत को सामने पाकर नाटक के पात्र अपने दोहरेपन को व्यक्त करते हैं। संबंधों को निभाने में संघर्ष, उसके टूटने में संघर्ष, मानवीय मूल्यों के नष्ट होने का संघर्ष अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को न पूरा होने का संघर्ष है।

६.७.३ चरित्र चित्रण

राकेशजी का नाट्य साहित्य आधुनिक युग की विसंगतियों का प्रतिबिम्ब है, इसलिए उनके नाटकीय पात्र आधुनिक जीवन-बोध से अनुवर्तित होकर अपने आंतरिक अंतर्द्वन्द्व से परिचालित हैं। आज का समय किसी लोक-विख्यात नायक न होकर अपनी अस्मिता का बोध करानेवाले किसी आधे-अधूरे व्यक्ति का है, जो अपने जीवन-संघर्ष की यात्रा में अकेलेपन, अस्थिरता, घुटन, कुंठा, विवशता आदि से संत्रस्त होकर जीवन में असंबद्ध विकृत और विसंगत परिस्थितियों को भोगने के लिए अभिशप्त है। यही कारण है कि राकेशजी ने अपने साहित्य में व्यक्ति के समसामयिक जीवन के बाह्य-संघर्ष की अपेक्षा उसके आंतरिक संघर्ष को अतिरंजना से अनुरेखित किया है। पिछले पाँच-सात दशकों में विश्व के राजनैतिक, सामाजिक मंच पर जो परिवर्तनपरक परिद्रश्य अभिमंचित हुए, उससे जीवन से जुड़े प्रत्येक धरातल पर सदियों से स्थापित जीवन मूल्यों एवम् मानव-आदर्श विखंडित होकर बिखर गये। मूल्य विघटन के इस परिचक्र में आदमी की संपूर्ण चेतना उसके अस्तित्व की समग्रता में केन्द्रित हो गयी। समाज की छोटी इकाई से जुड़े व्यक्ति से लेकर बड़ी इकाई तक के व्यक्ति सभी अपने-अपने स्तर पर आत्मकेन्द्रित होकर मुखौटे पहनते-पहनते बौने हो गये हैं। अस्तित्वपरक द्रष्टिकोण से आंदोलित मानव का समूचा संघर्ष अंतरंग स्तर पर दो समय की रोटी से लेकर यौन-संवेगों की परितृप्ति तक सिमट गया। इन दो प्राथमिक आवश्यकताओं के बीच की सारी भौतिक सुख सुविधा की उपलब्धता उसके बहिरंग संघर्ष का हेतु बनी।

राकेशजी ने अपने 'पैरों तले की जमीन' नाटक में युग संघर्ष के इस अंतरंग पक्ष को बहिरंग पक्ष की तुलना में अधिक सूक्ष्मता से अभिव्यंजित किया। समझा जाता है कि जीवन के यथार्थ से परिक्लांत व्यक्ति से अंतर्द्वन्द्व का हिन्दी नाटक में प्रणयन छठे दशक के आसपास राकेशजी के द्वारा ही हुआ। उन्होंने विसंगत परिवेश में आस्था और अनास्था के बीच जूझते तथा विघटित होते मानवीय संबंधों की पीड़ा, घुटन और द्वन्द्व

को भोगते व्यक्ति को अपना लक्ष्य बनाया । उन्होंने इस नाटक में या अन्य किसी भी नाटक में निरर्थक पात्रों की भीड़ एकत्रित नहीं की । बाह्य विसंगतियों और संवेदनशील व्यक्ति के संघर्ष एकरस जिंदगी की ऊब और निरर्थकता तथा मूल्यहीन होते आपसी संबंधों के बोझ को ढोती व्यक्ति की विवशता को उनके नाट्य पात्र सहजता और सबलता से मूर्तता प्रदान करते हैं ।

राकेशजी के पात्र अपने अस्तित्व के संकट के प्रति सतर्क होने के कारण या तो परिस्थितियों से अनुवर्तित होते हैं या यथास्थिति में जीने के लिए बाधित हैं अथवा परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए छटपटा रहे हैं । स्थितियों के परिचालित होने के कारण उनके नाटक पात्र प्रधान न होकर स्थिति प्रधान हो गये हैं । उनके प्रत्येक पात्र का अपना एक परिवृत्त और वैयक्तिक संसार है, जहाँ वे नित्य प्रति की एकरसता से प्रायः मुक्त रहते हैं । द्विविधा में जिना उनके पात्रों की त्रासदी है, जहाँ दो विरोधों के बीच उन्हें जीवन यापन हेतु अभिशप्त होना पडता है । उनमें अधूरापन एवम् अन्तर्विरोध एक समान धरातल पर है । यही कारण है कि उन्होंने नायक की परंपरागत अवधारणा को नकार दिया है । सच तो यह है कि चरित्र–सृष्टि नाटककार का विशिष्ट उद्देश्य भी नहीं है वे उपादानों के द्वन्द्व उभारने के माध्यम के रूप में ही प्रयुक्त करते हैं । डॉ. गोविन्द चातक का मत यहाँ अधिक समीचिन प्रतीत होता है, जिसमें उन्होंने राकेशजी के चरित्र शिल्प के उस आयाम को उद्‌घाटित किया है – "जहाँ वे एक ही पात्र को व्यक्तित्व की अन्यान्य विशेषताओं से गुंफित करने के बजाय उनके खण्ड–व्यक्तित्व के आधार पर एक स्वतंत्र पात्र की कल्पना करते हैं ।" [७९]

इस नाटक में कुल आठ पात्र हैं , जिनमें पाँच पुरुष पात्र हैं और तीन स्त्री पात्र हैं । नाटक का पात्र–विधान किसी पात्र विशेष की केन्द्रीय धुरी पर आधारित नहीं है । वस्तुतः यह नाटक स्थिति–प्रधान है, फलतः बाढ़ की स्थिति से उत्पन्न आसन्न मृत्यु का भय क्लब में उपस्थित सभी पात्रों को अपने – अपने अस्तित्व की रक्षा में सक्रिय कर देता है, जिससे एक–एक करके सभी पात्रों के मुखौटे उतरने लगते हैं । सभी पात्र एक–दूसरे के सामने अपनी अनावृत्तता के साथ अपने दमित अथवा उदात्त मनोविकारों को परितृप्त करने की चेष्टा में हैं । ये पात्र हैं बार काउन्टर क्लर्क अब्दुल्ला, बार का चपरासी नियामत, क्लब का सदस्य जुआरी पंडित, क्लब का सदस्य झुनझुनवाला, अयूब, उसकी पत्नी सलमा, टेबल–टेनिस की अल्पवयस्क खिलाड़ी रीता और उसकी सखी नीरा है ।

नाटक में द्वन्द्व का स्थल व्यक्ति न होकर परिवेश है इसलिए स्थूल रूप से किसी भी ऐसे पात्र की नियोजना नहीं की गई है जिसे नायक अथवा नायिका की सीमाओं में बांधा जा सके। पति–पत्नी के रूप में नाटक में एक मात्र युगल अयूब और सलमा को उपस्थित किया गया है, जो कथा के विकास में सहयोगी होने के अनन्तर संपूर्ण कथा–सूत्र को अपनी पकड़ से दूर ही रखते हैं।

⌗ अब्दुल्ला और नियामत :

'पैरों तले की जमीन' नाटक में अब्दुल्ला के पात्र के माध्यम से अनुवर्तन का चक्र घूमने लगता है। क्लब के ठेकेदार शफी साहब का फोन आता है तो अब्दुल्ला कहता है – "पुल में दरार पड़ने की खबर पाते ही सब लोग क्लब खाली कर गए हैं।" अब्दुल्ला भी अब हिसाब की कापी देखकर सामान समेटकर जाना ही चाहता है क्योंकि उनकी चौथी बीबी से लड़का पैदा हुआ है जिसे देखने की उसमें उत्सुकता है। पर शफी साहब उसे छुट्टी नहीं देते। अब्दुल्ला भुलक्कड और ईमानदार आदमी है। अब्दुल्ला और नियामत निम्नवर्ग के पात्र हैं। नियामत वफादार है बार का चौकीदार है वह अब्दुल्ला से कहता है कि – "जब तक एक भी आदमी क्लब के अंदर है, मैं यहाँ से कैसे जा सकता हूँ ? बड़े साहब के सामने जवाबदेही किसकी है मेरी या किसी और की ?" [७२] अब्दुल्ला और नियामत से नाटक का चक्र घूमता रहता है पुल में अब दरार पड़ गई है वह किसी भी वक्त टूट सकता है। अब्दुल्ला डरा हुआ है कि उसे अपने बेटे का मुँह देखने जाना है और नियामत को अपनी माँ का चेहरा भीड़ में दिखाई देता है। अब्दुल्ला क्लब में फँसे लोगों को जमा करके एक साथ क्लब से निकलना चाहते हैं पर तब तक पुल टूट चुका होता है और नदी में बाढ़ आ जाती है। अब मौत सामने है अब्दुल्ला का अपने परिवार के प्रति और उसके रिश्तों की गरमाहट अभी मरी नहीं है – "मैं एक बार... सिर्फ एक बार अपने लड़के का मुँह तो देख लेता। फिर चाहे जो हो जाता....।" [७३] अब्दुल्ला नियामत से मिलकर आखिरी दम तक बाढ़ से लड़ने का प्रयत्न करता है। जब अयूब सामूहिक आत्महत्या का सुझाव देता है तब अब्दुल्ला और नियामत मरना नहीं चाहते और अपने कारण बताते हैं – "मुझे अपने लड़के का मुँह देखना है और शफी साहब का हिसाब देना है।" [७४] और नियामत कहता है – "नहीं .... मेरी बूढ़ी माँ की देखभाल करनेवाला कोई नहीं है। और क्लब की चाबियाँ मेरे पास हैं ... सोमनाथजी को देनी है।" [७५] इन दोनों पात्रों में ममता, प्रामाणिकता और कर्तव्य

भावना जैसे गुणों के दर्शन होते है। नाटक में यह दोनों पात्र हास्य उत्पन्न करनेवाले भी हैं जिससे दर्शकों का मनोरंजन भी होता है।

⌗ पंडित :-

पंडित समाज का एक उच्चवर्ग का पात्र है, पर वह भ्रष्ट हो चुका है इसमें धार्मिक मूल्य कुछ है ही नहीं। धर्म में भ्रष्ट लोगों का यह पात्र प्रतिनिधित्व कर रहा है। ऊँची जाति, धन, सामाजिक पद आदि सब कुछ होते हुए भी अंदर से खोखले व्यक्तित्व का पात्र है, जो शराब और ताश में खो कर अब दूसरों के लिए ही वह अपनी जिंदगी जीता रहा है। वह पैदायसी बुजदिल है। पंडित नियामत से शराब मांगता है – "यहाँ... किसी को सुनता नहीं क्या? मुझे चाहिए... एक ब्लेक एण्ड इवाइट... बड़ा।"[७६] मौत को सामने देख जैसे उनकी कोई कीमत ही न रह गई हो। वक्त आने पर दूसरों की चीजें उन्हें बताए बिना लेनेवाला पंडित कहता है – "अब किसी भी चीज की कोई कीमत नहीं है।"[७७] वह अपने जीवन भर एक नपुंसक की तरह जिया है। पंडित आज के दोगले दौर में कभी भी अपनी अय्यारी में नहीं जी पाया है वह अपने आपके लिए नहीं रह पाया, वह एक साया बनकर रह गया है। हर वक्त कोई न कोई स्वांग रचता जाता है। उनके घर के संबंध टूट चुके हैं , सामाजिक मूल्य बिखर गये हैं – "घर था। पर घर की जिंदगी नहीं थी। बीबी है पर बीबी नहीं है ... उसकी तस्वीर औरों के बटुओं में बन्द है (झुनझुनवाला को आग उगलती आँखों से देखता है)"[७८] पंडित आज की दौड़भरी जिंदगी में कुछ पाने के लिए दौड़ता रहता है महिनों बाहर भटकना.... यह और वह हाँसिल करके खुश होना चाहता है पर उदास होते ही जाना यह उसका प्राप्य बन गया है। इस भागदौड़भरी जिंदगी में घर की ओर ध्यान ही नहीं दिया। विश्वास दिलाने का एक झूठा खेल एक-दूसरों के साथ खेलता रहता है। वह झुनझुनवाला से नफरत करता है फिर भी उसी के साथ उसी की खुशी के लिए उसी के ताशों की गड्डी हाथ में लिए, उसी की पसंद की पतलून, कमीज पहने हुए वह उसकी एक कठपुतली बनकर रह गया है। पंडित अंत में मरते वक्त वह सब उतार कर अपने नंगेपन के साथ ही मरना चाहता है जो उसका नहीं है – "मैं मरूँगा अपने नंगेपन के साथ ... हालाँकि यह नंगापन भी बिलकुल मेरा अपना नहीं है।"[७९] किन्तु बाढ़ का पानी उतर जाने पर वह भी फिर अपनी मुखौटाधारी जिंदगी जीने लगता है। यह पात्र आधुनिक व्यक्ति के द्वन्द्व का प्रतिनिधित्व करता है जो संबंधों के खोखलेपन, गुलामी और अपनी मर्जी से नहीं दूसरों की मर्जी से जीनेवाला है।

झुनझुनवाला :-

झुनझुनवाला अमीर व्यापारियों और दगाखोरों का प्रतिनिधि पात्र है। मौत की छाया से जब डर जाता है, तब उसे मजाक सूझता है। वह दूसरों की सहायता को गंभीरता से लेता नहीं है। लेकिन अंदर-अंदर मौत धीरे-धीरे उसे भी खलती है तो घबड़ा जाता है और पोल खोल देता है। वह स्वीकार करता है कि उसे बचपन से ही धोखा देने, झूठ बोलने और किसी भी मार्ग से पैसा कमाने का ही पाठ पढ़ाया गया है। उसने धर्म, नैतिकता, विज्ञान, राजनीति सबको अपने मूल्य दिए बिना अर्थात् सबको अपना व्यापार बनाया है। बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है, वह नित्य ही बड़ी मछली बनता जाता था। अनेक जवान लड़कियों के साथ उनकी मर्जी के खिलाफ अपनी मर्जी से सोया था। अपने दोस्तों को भी दगा देकर उनकी पत्नियों के साथ भी संबंध रखे हैं। पंडित की पत्नी की तस्वीर भी उसके बटुए में बंद है। उसने अनेक हत्याएँ करवाई हैं। स्मगलींग किया है, लाखों रूपये रिश्वत में दिए हैं, करोडों का टैक्स बचाया है, काला धन कमाया है और सारे देश को अपनी सुविधाओं का एक अलग देश बना लिया है। कोई भी कमिशन, कोई भी कमेटी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकी। पर आज बढ़ते पानी पर जब उसका वश नहीं चलता है तो उसे लगता है – "आज मैं जान सका हूँ कि मैं दूसरों की ही मौत नहीं, खुद अपनी मौत भी हूँ...। दो दरियों के मिल जाने से आई बाढ़ जिसके बीच की जमीन को, मेरे द्वीप, मेरे टापू को नेस्त-नाबूद कर दिया है।"[८०] पानी उतरने लगता है, बचानेवालों की सीटियाँ सुनाई देती है और टार्च का प्रकाश दिखाई देने लगता है तो यहीं झुनझुनवाला फिर अपने मुखौटे धारण कर लेता है। पंडित के 'झुनझुन' कहने पर उसे धमकाता है – "तमीज से बात करो ... झुनझुन नहीं झुनझुनवाला। अपनी औकात का कुछ खयाल है तुम्हें।"[८१]

अयूबः-

अयूब और सलमा टूटे हुए रिश्तों के अत्याधुनिक समाज व नगरीय सभ्यता के खोखलेपन को दर्शानेवाले पति पत्नी हैं। अयूब जानता है कि सलमा का इस विवाह से पहले एक डॉक्टर से संबंध रहा है। परिणामतः दो बच्चे होने पर भी वह उसके लिए एक कब्रिस्तान ही है। वह जीवन में होश खो बैठा है और चाहता है कि दूसरे भी उसी की तरह होश खो बैठें। पुल में दरार पड़ने पर भी नशे में वह घर से अपनी बीबी को लेकर क्लब आया है। यहाँ अपनी बीबी को डॉक्टर से मिलाकर उसकी प्रतिक्रियाएँ देखना

चाहता है। बीबी से उसका रिश्ता खराब है। क्योंकि "डॉक्टर को जितना मेरी बीबी जानती है उतना शायद यहाँ ओर कोई नहीं जानता। यों डॉक्टर और मैं हम दोनों एक मोहल्ले में रहे हैं एक कॉलेज में पढ़े हैं और एक ही... खैर छोड़ो।"[८२] उसे दुःख है – "क्या तुम सोच सकते हो कि मियाँ बीबी के रिश्तों के बीच अगर कोई छाया भी आ जाए तो क्या हो सकता है ... मेरी बीबी ... मेरे लिए वह एक कब्रिस्तान बन गई है ... औरत कब्रिस्तान क्यों बन जाती है ?"[८३] वह अकेलेपन से डरता है। रास्ते पर कार ठीक तरह से चला नहीं सकता। अपनी बीबी को और ज्यादा नाराज करने और नफरत करने के लिए उसी के ही सामने क्लब में रीता और नीरा का शीलहरण भी करता है और चाहता है कि बिना किसी छिपाव–दूराव के सब लोग इसे देख–जान लें। वह जानता है – कोई भी आदमी कौन है यह क्या वह कभी ठीक से बता सकता है ? हर आदमी अलग–अलग वक्त और अलग–अलग जगह ओर किसी एक जगह पर वह कौन है, क्या यह वह आसानी से बता सकता है ?

अयूब युवक है, अमीर है, अमीरों का दोस्त है, समाज के बड़े बड़े लोगों की अंदरूनी जिंदगी को जानता है। इतने बड़े सर्कल में रहकर भी वह अकेला अलग है। उसकी मानसिकता उसकी संवेदनीयता ही और है। हर शाम को वह अपना दिन भर का हिसाब लगाने लगता है – "फिर वही उतरती हुई रात और वही आवाजें – झींगेरों, झिल्लियों और मेंढकों की। वही एक आदमी–सी दहशत, वही अकेलापन और वही अपने–अपने आप से सामना। ... खासतौर से जब रात उतरती है, ये आवाजें सुनाई देती हैं तो क्यों इतना छटपटाने लगता है ? ... हर शाम को सुनी हुई आवाजें जिन्होंने यह सोचने के लिए मुझे मजबूर कर दिया था कि जो जिंदगी मैं जी रहा हूँ, वह मेरी अपनी जिंदगी नहीं है – मैं चाहे जितने साल उसे ढोता रहूँ फिर भी कभी उसे अपना नहीं सकूँगा। कहने को सबकुछ है – घर है, बीबी है, दो बच्चे हैं फिर भी मैं जानता हूँ कि यह सारा ताना–बाना एक न चाहते मन के चारों तरफ बुना गया है, हालाँकि बुननेवाले सिर्फ दूसरे ही नहीं हैं, मैं भी हूँ। बल्कि जब कभी ताना–बाना ढीला होता नजर आया, मैंने खुद उसमें ओर तार बूने हैं, खुद अपने को उन धागों में और जकड़ लेना चाहा है, और इसी से मन की छटपटाहट और बढ़ती गयी है।...डॉक्टर अपनी बीबी सकीना को पाकर खुश नहीं हो सका उसी तरह जैसे मैं सलमा से शादी करके।"[८४]

अयूब अपने व्यक्तित्व को खुद खोलकर रख देता है। अपनी बीबी के बारे में सबके सामने बता देता है। लड़कियों से हरकते भी सबके सामने करता है। अपने को

अत्यंत स्पष्टवादी दिखाने का प्रयत्न करता है। अपने जीने के लिए वह हमेशा एक ऐसी औरत चाहता है जो मौत के खतरे के बावजूद उसका साथ दे सके। लेकिन यहीं अयूब अपनी बीबी के डॉक्टर से पुराने रिश्ते को भी बरदास्त करने को तैयार नहीं है। इतना खुला व्यक्तित्व रखते हुए भी अपनी बीबी की नजरों से या दूसरों की नजरों से अपनी परीक्षा नहीं करता है। यह उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। रीता और नीरा का शीलहरण करना जैसे उसके लिए एक सहज क्रिया बन जाती है।

अयूब एक महत्त्वाकांक्षी किन्तु विवेकहीन अय्यार प्रकृति का विसंगत आत्म –सीमित पात्र है। वह केवल लेना चाहता है, किन्तु देना कुछ नहीं चाहता। सलमा ने उसे बहुत कुछ दिया, किन्तु बदले में उसे नफरत और वितृष्णा के अतिरिक्त वह ओर कुछ न दे सका। वह अपने जीवन में वर्तमान उपलब्धता के प्रति असंतुष्ट और आत्मपीड़क ही रहा। इस तरह कुछ हद तक “अयूब का पात्र सतही, खोखला, असंगत और अविश्वसनीय लगने लगता है।”[८५]

⌗ सलमा :–

सलमा अयूब की तुलना में एक सीधी, सरल और भावुक युवती होने के साथ–साथ वह एक हारी हुई, हताश स्त्री लगती है। वह पारस्परिक वैवाहिक जीवन की विसंगतियों को भोगने के लिए अभिशप्त है। अयूब अपनी काली करतूतों के बावजूद सलमा में एक कब्रिस्तान ही पाता हैं। सलमा को लगता है – “जब मुसीबत आती है तो सब अकेले ही होते हैं। मुसीबत की शक्लें अलग–अलग हो सकती है। छुटकारा इतना आसान तो नहीं है।”[८६] उसे अपने चारों ओर एक अँधेरा ही नजर आता है। वे अपने पति से कहती है – “मुझे तुम हमेशा चेहरों को लेकर शर्मिन्दा कर सकते हो ... खुद भी अगर शर्मिन्दा हो सकते तो शायद हम एक–दूसरे के चेहरे को ज्यादा पहचान पाते ... तुमने कल यहाँ रीता के साथ कुछ करने की कोशिश की... वह भी तो एक चेहरा है ... उसके लिए भी तुम शर्मिन्दा नहीं हो सकते ...।”[८७] वह अयूब से नफरत करती है। अयूब को उसने अब तक बहुत कुछ दिया है, किन्तु बदले में उसे कुछ भी नहीं मिल पाया है। वह अपने जीवन से निराश है। वह बाढ़ के जल में डूब कर मरना चाहती है, किन्तु उस पल उसकी इच्छा से उसे अयूब मरने भी नहीं देता। वह उसे केवल जीने के लिए जिन्दा रखना चाहता है। अयूब से केवल एक बार... उसका उर्मिल प्यार पाना चाहती है, वह उसे नहीं मिलता वह जी नहीं पाती और जब वह मरना चाहती है तो मर

भी नहीं पाती। न उसे जिन्दा रहने दिया जाता है और न मरने। यह उसके जीवन की त्रासदपूर्ण नियति है।

⌗ रीता और नीरा :-

रीता और नीरा उच्च वर्ग की लड़कियाँ हैं। क्लब में मौत की छाया मंडरा रही है, बाढ़ का पानी बढ़ रहा है लेकिन इन्हें कोई डर नहीं है। अयूब ने कल रीता से अच्छा व्यवहार नहीं किया था फिर भी आज उसी से वह फिर बात करती है। वह अपनी शीलहरण की बात को इतनी गंभीरता से नहीं लेती है। "मैं उसे अपने से परे हटा रही थी और वह जानवर उसे अपने पास बुलाना चाह रहा था। वह चाह रहा था कि मरने से पहले एक बार... चाहे ... कुछ भी हो... सिर्फ एक बार ...।" " ये दोनों लड़कियाँ जो कुछ नया अनुभव करने के प्रयत्न में क्रमशः इच्छा-अनिच्छा से अपने जीवन के प्रारंभ में ही मनुष्य के अंदर निवास करनेवाले दरिन्दे से परिचय पाकर अपना भोलापन खोकर कब्रिस्तान बन चुकी हैं।

ये दोनों अपनी उम्र से बड़ी लगती हैं। जीवन का भोलापन उन दोनों में नहीं है। वे आधुनिक सभ्यता के खोखलेपन, कामुकता की मानसिकता की ही पुतलियाँ लगती हैं।

६.७.४ भाषाशैली :-

'पैरों तले की जमीन' आधुनिक चेतना से उत्पन्न जीवन-संघर्षों की विसंगतियों को प्रस्तुत करता है। एक तरह से यह विसंगत नाटक है, जिसमें पुल के ध्वस्त हो जाने पर आसन्न मृत्यु को सामने पाकर सभी पात्र अपने मुखौटे उतारकर विसंगत रूप में उपस्थित हो जाते हैं। मृत्यु के पूर्व अपनी अतृप्त कामवासनाओं को पूर्ण कर लेना चाहते हैं। इस भावाभिव्यक्ति को शब्द-संस्कार देना एक बहुत बड़ी चुनौती थी। राकेशजी ने इस चुनौती को स्वीकार किया था। 'पैरों तले की जमीन' में भाषा के अतिरिक्त नेपथ्य-ध्वनियों को अधिक सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नदी का पानी पुल की कड़ियों का टूटना तथा तट के पत्थरों के गिरने की ध्वनि एक तरह से नेपथ्य की ध्वनि प्रभावान्विति में एक पात्र की भूमिका का निर्वाह करती है। नेपथ्य की इन ध्वनियों के माध्यम से नाटक के शिल्प में जहाँ कसाव आया है वही भय और तनावपूर्ण वातावरण की सृष्टि भी हुई है जो आद्यन्त चलती रहती है यथा- पल भर सब

लोग खामोश रहते हैं । दूर से सुनाई, हिलती-चूलों की आवाज अधिक स्पष्ट होती जाती है । नीरा अचकचायी – सी एक दूसरे की तरफ देखती रहती है वह पूछती है – "बात क्या है ? यह आवाज । उत्तर कोई नहीं देता । पुल की कुछ कड़ियों के एक साथ टूटने की आवाज । इसके बाद अनुवर्त के अंत तक बीच-बीच में एक-एक कड़ी की टूटने और पानी में बह जाने की आवाज सुनाई देती रहती है ।" ८९

'पैरों तले की जमीन' की संवाद-योजना यथार्थमूलक है जो नाटक को कलात्मक परिणति तक पहुँचाने में सफल होता है । ताश के बिखरे हुए पत्ते, मूँगफली के छिलके, खाली गिलास और प्लेट आदि शब्दों का प्रयोग जीवन की निरर्थकता को विलक्षण संवेदना के साथ उभारता है । इसमें व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त बिलकुल साधारण शब्दों को नये संदर्भ देकर उसमें गहरा अर्थ भरने का प्रयास किया है । संवाद ऊपर से जितने सपाट दीख पड़ते है भीतर से उतने ही संश्लिष्ट हैं । उदाहरण के लिए निम्नलिखित संवाद प्रस्तुत है –

"पंडित : वो आदमी ठीक कहता है ।
झुनझुनवाला : क्या ठीक कहता है ?
पंडित : ऐसी औरत चाहिए जो मौत के खतरे के बावजूद साथ दे सके ।
झुनझुनवाला : ऐसी औरत होती है....
पंडित : होती है ।
झुनझुनवाला : कहाँ देखी है ...
पंडित : अपने घर में, मेरी औरत ...
झुनझुनवाला : क्या मतलब ?
पंडित : मेरी औरत । मेरी बीवी । जो मौत के खतरे के बावजूद तेरा साथ दे सकती है ।
झुनझुनवाला : (इधर-उधर देखकर) क्या बक रहा है तू ?
पंडित : तुझे मेरी बीवी की नहीं इस वक्त अपनी इज्जत का ख्याल है..
झुनझुनवाला : यह इल्जाम है ।
पंडित : तुझ पर नहीं ... खुद अपने पर । ओह... यह जिन्दगी ।"

इसी प्रकार इन संवाद में व्यंग्य, व्यथा, आरोप, प्रहार, उलझना, खीज, हताशा, अपराध-बोध सभी एक साथ प्रयोग होते है । इस प्रकार 'पैरों तले की जमीन' के संवाद दुधारी तलवार की तरह काम करते हैं ।

'पैरों तले की जमीन' में वर्तमान युग के विघटित हो रहे समाज, अर्थ प्राप्ति की अंधी दौड़ में कुछ बनने की प्रक्रिया से लोगों की टूटती अस्मिता मानवीय संबंधों का खोखलापन तथा तेजी से समाज को प्रभंजित करता मूल्य-विघटन, मनुष्य के तनाव, अकेलापन और निरर्थकता का अहसास, कुण्ठाएँ और संत्रास तथा असन्न मृत्यु का भय आदि मनःस्थितियों को शब्द एवम् संवादों में प्रभावी अभिव्यक्ति दी गई है। अयूब का स्वगत कथन प्रस्तुत है – "फिर वही उतरती हुई रात और वही आवाजें – झींगेरों, झिल्लियों और मेंढकों की। वही एक आदमी-सी दहशत, वही अकेलापन और वही अपने-अपने आप से सामना। ... खासतौर से जब रात उतरती है, ये आवाजें सुनाई देती हैं तो क्यों इतना छटपटाने लगता हूँ ?"[९०] नाटक में स्वगत अयूब का अंतर्द्वन्द्व, उसका अकेलापन, उसकी उदासी, उसके विचारों की अस्थिरता तथा जिंदगी के प्रति उसकी ऊब अभिव्यंजित होती है। उसकी इस मनःस्थिति को उभारने में परिवेश एवम् संवाद के बीच की क्रियात्मकता का विशेष योगदान है। झींगुर, झिल्ली तथा मेंढक का स्वर उसकी उदासी और अकुलाहट को प्रभावी अभिव्यक्ति देने में उत्प्रेरक की भूमिका का निर्वाह करती है। बीच-बीच में टेलीफोन के निकट जाना रिसीवर उठाना, रखना आदि क्रियात्मक अंतराल है। नाटक के संवाद भी अर्थपूर्ण और ध्वन्यात्मक हैं।

६.८ मोहन राकेश के नाटकों का शिल्प :

हिन्दी नाटकों में राकेशजी की नाट्य रचना रंगमंच से प्रतिबद्ध एक कलाकार के रूप में ही प्रारंभ हुई थी। अपने हर नाटक की प्रस्तुति के साथ उनका रचनात्मक जुड़ाव इसका साक्षी है। "रचयिता की दृष्टि मूलतः रंग-शिल्प की दृष्टि होती है या होनी चाहिए, इस मुहावरे को अपनी समग्रता में कम से कम हिन्दी नाटक के क्षेत्र में सर्वप्रथम नाटककार मोहन राकेश ने समझा, अपनाया और प्रयोगों की अनवरत सीमा-रेखा में सही नाटक को तलाश कर हिन्दी नाटक-साहित्य के क्षेत्र में एकदम नये आयामों को खोला, नये क्षितिजों का उद्‌घाटन किया।"[९२] यह मान्यता तथा यह मानना कि – "सही नाटक की तलाश का युग न तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आरंभ होता है और न ही प्रसाद के युग से ..."[९३] जितना सही और निर्विवाद है उतना ही गलत भी। वह इस लिए कि रंगमंच के साथ जितना जुड़कर राकेशजी ने लिखा और उस दृष्टि से नाटक को नया रूप दिया उतना दूसरा नहीं कर पाया। यह मान्यता गलत इसलिए है कि इस संबंध में भारतेन्दु की देन को अनदेखा नहीं किया जा सकता। सदियों के अंतराल के बाद आधुनिक काल के प्रारंभ में जब अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में नाटक का

प्रादुर्भाव हुआ और भारतेन्दु ने हिन्दी में नाटक लिखना प्रारंभ किया तो रंगमंच से जुड़े होने में ही नाटक खेलने और उसके लिए उपयुक्त रंगमंच निर्माण और विकास पर भी ध्यान दिया था । भारतेन्दु हिन्दी के पहले नाटक लेखक थे जिनका जितना लगाव नाटक लेखन के साथ था, उतना ही उसकी प्रस्तुति के साथ भी था । नाटक को रंगमंच से जोड़ने की प्रक्रिया के माध्यम से 'सही नाटक' की तलाश के बीज वस्तुतः भारतेन्दु के नाटकों में विद्यमान थे, जो उपयुक्त और अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में न तब अंकुरित हो पाये और न प्रसाद के द्वारा ही ।

यह बात सही है कि – "मोहन राकेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी के दूसरे ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने रंगमंच से जुड़कर अपने नाटक लिखे ।"[९४] यह कहना भी गलत न होगा कि इस दृष्टि से भारतेन्दु से कहीं बढ़कर हैं । उन्होंने नाटक लिखते लिखते रंगमंच पर उनकी प्रस्तुति की आकांक्षाओं के अनुरूप नाटकों को तराशा–सँवारा और परिमार्जित किया, तो नाटक की प्रस्तुति के साथ गहराई से जुड़कर नाटक को लिखा । नाटक यदि सहबोध की कला है, तो वह सह–प्रस्तुति की भी कला है । सह बोध और सह–प्रस्तुति की अनिवार्य पूरकता को जितना सही ढंग से राकेशजी ने समझा उतना हिन्दी साहित्य के दूसरे किसी नाटककार ने नहीं समझा । नाटक की प्रस्तुति में लेखक, निर्देशक, अभिनेता तथा अन्य पार्श्व कलाकारों के सामूहिक सहयोग की भूमिका होती है । नाटक लेखक को रंगमंच की दृष्टि से सफल नाटक लिखने के लिए सभी की आत्मा को जिना होता है । सभी की दृष्टि का सामंजस्य कर नाटक लिखना होता है । यही है रचयिता की रंग–शिल्प–दृष्टि । रचनाकार की रंगशिल्प की दृष्टि के प्रति जागरूक होने के कारण ही 'लहरों के राजहंस' की कलकत्ता की नाट्य संस्था 'अनामिक' के लिए श्यामानन्द जालन द्वारा प्रस्तुति तथा ओम शिवपुरी द्वारा 'आधे अधूरे' की प्रस्तुति के समय राकेशजी ने अपने आपको पूरी गहराई के साथ जोड़ा था । रंगमंच से नाटककार के लगाव को स्पष्ट करते हुए स्वयं राकेशजी ने लिखा है – "रंगमंच की पूरी प्रयोग–प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहे, यह स्थिति मुझे स्वीकार्य नहीं ।"[९५] राकेशजी ने हमेशा इस बात पर बल दिया, कि "नाटककार की प्रयोगशीलता क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता एक–दूसरे से जुड़ सकें और दोनों को एक–दूसरे के निकट लाने के लिए उन्होंने यह बहुत आवश्यक समझा कि नाटककार पूरी रंग–प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बन सके । नाटक की रचना प्रक्रिया और रंगमंच की प्रयोगशीलता के परस्पर जुड़

जाने में वह दोनों ओर की संभावनाएँ ज्यादा देखते हैं। रचनाकार की भी और रंगमंच के विकास की भी।"[९६]

आज के टूटते–बिखरते मानवीय संबंधों से उत्पन्न पीड़ा से व्याकुल मनुष्य के अंतर्द्वन्द्व और उसकी परिस्थितियों के ताने–बाने से बुने कथानक, उस कथानक को घटनाओं और पात्रों के अंतर्बाह्य द्वन्द्वों से परिचालित कार्य–व्यापारों और उसके संघात से उत्पन्न नाटकीय स्थितियों तथा अनुभूति के तनावोंवाले नाटक के व्यक्तित्व का साकार साक्षात् करानेवाले रंगशिल्प तथा कथ्य के अन्तर्भाव को स्पष्ट करनेवाले भाव–भंगिमा युक्त अभिनय के उपर्युक्त आंगिक एवम् वाचिक अभिनय की सार्थक भाषा एवम् वाक्य–विन्यास की दृष्टि से राकेशजी अपने समय के नाटककारों के श्रृंखला में अगली कड़ी हैं। विकास की एक मंजिल हैं, जिस पर पहुँच कर नाटक ने अपनी सही दिशा पा ली, अपनी सार्थकता की कसौटी पहचान ली। वह कसौटी है नाटक की सफल प्रस्तुति और सफल प्रस्तुति से अभिप्राय है – अपनी आंतरिक्ता का दर्शक को पूर्ण साक्षात्कार कराना, ऐसा साक्षात्कार की दर्शक नाटक के पात्रों को अपनी जिंदगी के कथांशों को जीते हुए डूब कर देख सके और उनमें कहीं अपनी, अपने परिवेश की, अपने पास–पडोस की, अपने युग की वास्तविकता को पहचान सके और अपने आंतरिक भाव–बोध को दर्शक–श्रोता के भाव का विषय बना सके।

राकेशजी के सभी नाटकों के संवादों के शब्द–संयोजन और वाक्य–विन्यास की लय और ध्वनि के संघात से उत्पन्न आंतरिक अर्थ की विस्फारक अनुगूँज में नाटकीयता के दर्शन होते हैं। राकेशजी ने अपने नाट्य–कथ्य की मूल चेतना को अपनी संपूर्ण अर्थवत्ता के साथ संप्रेषित करने में भाषा का शब्द–संयोजनगत अन्तः द्वन्द्वात्मकता से युक्त संवादों का जैसा सार्थक और सफल प्रयोग किया है, उससे वह आज के हिन्दी नाटककारों में अपना अलग स्थान रखते हैं। राकेशजी आंतरिक शिल्प की दृष्टि से कथा के चयन, उसके संयोजन तथा उसकी विकास प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देते हैं। कथा के चयन में उनकी दृष्टि अपने चारों नाटकों में ऐसी कथा चुनने में रही है ; जो समकालीन मानव के पूरे जीवन को प्रभावित करने वाले केन्द्रीय संघर्ष को उजागर कर सकें, उसकी सबसे बड़ी कमजोरी को झनझना सकें। रचनाकार की इस चेतना–दृष्टि से प्रेरित होकर उन्होंने अपने चारों ही नाटकों में आधुनिक मानव के मूल अंतर्द्वन्द्व को अपनी सूक्ष्मतर जटिलताओं के साथ चित्रित किया है।

कथा–संयोजन में राकेशजी ने दो बातों पर विशेष ध्यान दिया है, एक तो उसकी कसावट पर तथा दूसरे कथा द्देश्यों को इस प्रक्रिया से समायोजित करने पर की प्रत्येक द्देश्य कथा के उत्तरोत्तर विकास, पात्रों के चरित्र, उनके अंतर्द्वन्द्व, उनके द्वैध अर्थात् उनके संपूर्ण व्यक्तित्व के अंतर्बाह्य तथा स्थूल–सूक्ष्म पक्ष को एक अन्विति में बाँधकर प्रस्तुत किया जा सके, ताकि नाटक का मूल स्वर ध्वनित हो सके, अपनी संपूर्ण अर्थवत्ता के साथ स्पष्ट हो सके । अर्थात् नाटककार अपने नाटक के माध्यम से जो बात अपने दर्शक–श्रोता से कहना चाहता है वह अपनी संपूर्णता में संप्रेषित हो सके । कथा की विकास–प्रक्रिया में उन्होंने इस बात पर ध्यान दिया कि प्रत्येक द्देश्य अपने आंतरिक द्वन्द्व तथा अगले द्देश्य के साथ द्वन्द्वात्मक पूर्वापर प्रक्रिया से जुडकर नाटकीय स्थितियों और नाटकीय कथा–मोडों को प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके ।

राकेशजी की आंतरिक शिल्प–द्दष्टि मूलतः द्वन्द्व प्रधान रही है । "यह द्वन्द्व दो विरोधी या समानान्तर विचारधाराओं या स्थितियों में है तो कहीं पात्र के निर्णय न ले सकने की दुर्बलता के कारण है ।"[९७] राकेशजी के नाटकों में स्थितियाँ स्वतंत्र रूप से नहीं आती वरन् स्थितियाँ पात्रों और चरित्रों के क्रिया–व्यापारों द्वारा उभरती हैं, अतः वस्तु और चरित्र घुल–मिल कर एक हो जाते हैं । अतः उनके विकास की प्रक्रिया भी साथ–साथ चलती है । साथ–साथ चलने के लिए राकेशजी अनेक प्रकार के द्वन्द्वों और विरोधी स्थितियों का आश्रय लेते हैं, परिणामस्वरूप वस्तु और चरित्रों का उद्‌धाटन ही विरोधों और द्वन्द्वात्मक तनावों में होता है । "इस प्रकार विरोधी स्थितियाँ और द्वन्द्व ही राकेश के नाटकों के रूपबंध का न केवल उत्प्रेरक बल्कि अन्तः संयोजक तत्त्व है ।"[९८]

नाटक की कला अपनी रचना–प्रक्रिया तथा संप्रेषण–प्रक्रिया दोनों ही में द्वन्द्वमूलकता हर युग के पाश्चात्य और भारतीय नाटकों की संरचना का आधार स्वीकारी गई है । "चाहे द्वन्द्व घटना–घटना, स्थिति–स्थिति, पात्र–पात्र और मनोभावों या आकांक्षाओं आदि के बीच हो ।"[९९] राकेशजी ने इस कलागत द्वन्द्वमूलकता को जितनी सफलता से अपने नाटकों में प्रयुक्त किया है, उतनी सफलता और पूर्णता से हिन्दी का दूसरा नाटककार नहीं कर पाया है । राकेशजी के चारों नाटको का द्देश्य विधान एक ही है तथा सरल और प्रतीकात्मक है । राकेशजी उतनी ही द्देश्य–सज्जा के पक्षपाती थे जितने की आवश्यकता नाटक का कथ्य माँग करता है । उन्होंने द्देश्य विधान में कथा के मूल द्वन्द्व की सूक्ष्म व्यंजना को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न प्रतीकों का भी प्रयोग किया है । वस्तु–विन्यास में कार्य की एकता की द्दष्टि से कसावट और कार्य–व्यापार की

गतिमयता ने भी उनके नाटकों को रंगमंच की दृष्टि से सफल बनाया है। उनके नाटकों के संवादों में अभिनयात्मकता है, दृश्य-बिम्ब प्रस्तुत करने की क्षमता है और चुस्ती है। कई संवाद लम्बे भी हैं और उन्हें कुछ आलोचकों ने दोष भी माना है – किन्तु उन लम्बे संवादों में भी दृश्य बिम्ब प्रस्तुत करने की क्षमता है, जिससे दर्शक अपनी कल्पना-शक्ति से दृश्य का अप्रत्यक्ष साक्षात्कार कर सकने में समर्थ हो जाता है। साथ ही लम्बे संवाद कथा के संघर्ष की आंतरिक मांग के रूप में आए हैं। अतः अस्वाभाविक और उबाऊ नहीं है और न ही नाटकीय गति को खंडित ही करते हैं। राकेशजी के नाटकों की रंगमंच पर सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है, उनके द्वारा उन्हें रंगमंच की दृष्टि से बार-बार संशोधित और परिशोधित करते रहना। "उनका शिल्प रूप अत्यंत श्रम-साध्य, निरंतर तराशे जाने की प्रक्रिया, निरंतर माँजते-सँवारते रहने और उससे कभी न अघाने का फल है।"[१००]

राकेशजी आधुनिक युग के एक ऐसे नाटककार हैं, जिन्हें अल्पायु में ही हिन्दी के एक स्थापित और प्रतिष्ठित नाटककार के रूप में न केवल मान्यता प्राप्त हुई, अपितु इन्हें रंगमंच की दृष्टि से सही नाटक की तलाश के नए आयामों को उद्‌धाटन का श्रेय भी प्राप्त हुआ। उन्हें यह श्रेय इसलिए प्राप्त हुआ, क्योंकि उन्होंने सक्रिय रूप में रंगमंच से जुड़कर अपने नाटकों की रचना की। उन्होंने नाटक जिया, नाटक किया तथा नाटक लिखा। राकेशजी के चारों नाटकों की मूल संवेदना और उनकी मर्म-पीड़ा आधुनिक है। 'आषाढ़ का एक दिन' का नायक कालिदास जहाँ एक ओर व्यवस्था से जुड़े आज के साहित्यकार की पीड़ा का प्रतीक है, वहीं वह प्रेम-संबंधों में भी अपने से प्रेम करने वाले अनिश्चयग्रस्त व्यक्तित्व का प्रतिरूप है। कालिदास और मल्लिका दोनों इतिहास की मिट्टी से गढ़े होने पर भी वर्तमान की घुटन में साँस लेते हैं, जिनकी आस्थाएँ आज के प्राणी की तरह खंडित हो चुकी है। 'लहरों के राजहंस' भी यद्यपि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित नाटक है, किन्तु नंद का अंतर्द्वन्द्व, तनाव, अकेलापन, घुटन और टूटन आधुनिक मानव की नियति का ही प्रतिनिधित्व करता है। 'आधे अधूरे' की कहानी आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के आपसी रिश्तों के टूटने और टूटे हुए रिश्तों में ही घुट-घुटकर जिने की विवशता की कहानी है। 'पैरों तले की जमीन' आज के उस तथाकथित आधुनिक व्यक्ति की कहानी है, जो घर के भीतर आधे अधूरेपन के एहसास की घुटन से मुक्ति पाने के लिए बाहर भटकता है और एक कृत्रिम जिन्दगी जिने का भ्रम पालता जा रहा है।

राकेशजी ने जैसे जिन्दगी से जुड़कर और उसे भोगकर उसकी संवेदना को अपने नाटकों में स्वर दिया है, उसी तरह रंगमंच से जुड़कर और उसकी प्रस्तुति को लिखने से पूर्व अपनी कल्पना में तथा लिख चुकने के बाद प्रस्तुति की तैयारी के क्षणों में भोगकर उन्होंने अपने नाटकों की रचना की है। नाटक रचना में उनकी दृष्टि मूलतः एक रंगशिल्पी की रही है। इसीलिए उनके नाटक कथा की मार्मिकता, संरचनात्मक कसावट और नाटकीय प्रस्तुति तीनों ही दृष्टियों से नए मोड़ के सूचक हैं। उनकी इस विशेषता का कारण है कि उन्होंने नाट्य-संरचना, कथा-संयोजन और प्रस्तुति तीनों ही की मूल अंत-प्रक्रिया द्वन्द्व को न सिर्फ गहराई से पकड़ा और समझा है किन्तु अत्यंत कुशलतापूर्वक उसका प्रयोग भी किया है। आधुनिक संवेदना के स्तर वाले नाटकों के साथ-साथ रंगमंचीयता की योग्यता वालें नाटकों के प्रदेय से राकेशजी अपने समकालीन हिन्दी नाटककारों में ही नहीं आधुनिक युगीन हिन्दी नाटककारों में भी उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

६.९ मोहन राकेश का एकांकी साहित्य

तीन पूर्ण नाटकों के प्रकाशन के पश्चात् राकेशजी का उपरोक्त एकांकी संकलन उनके देहान्त के पश्चात् १९७३ में प्रकाशित हुआ। इस संकलन में तीन एकांकी 'अंडे के छिलके', 'सिपाही की माँ', 'प्यालियाँ टूटती हैं' संग्रहित है।

६.९.१ अंडे के छिलके :

यह संग्रह का प्रथम एकांकी है, इस एकांकी में मध्यवर्गीय खोखली मान्यताओं को हास-परिहासपूर्ण संवादों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'अंडे के छिलके' में एक सुखी परिवार का चित्रण किया है। साधारणतः इस परिवार में तीन पीढ़ियों के प्रतिबिम्ब रहते हैं। माँ जमुना पुरानी पीढ़ी की है तो बड़े भैया माधव और भाभी राधा नई पुरानी पीढ़ी को जोड़ने वाली बीच की कड़ी हैं। गोपाल, पत्नी बीना एवम् सबसे छोटा श्याम नई पीढ़ी के हैं। इस एकांकी में छिपकर अंड़े खाने, चन्द्रकान्ता पढ़ने, सर्दी बुखार में मिक्स्चर लेने वाले हर शक्स अपनी चोरी को अपने तक छिपाकर रखना चाहते हैं।

'अण्ड़े के छिलके' एकांकी के सभी पात्र हमारे चारों ओर के जाने-पहचाने चेहरे है। श्यामा, राधा और गोपाल मध्यवर्गीय कथनी और करनी के विरोध का प्रतीक है। ये सभी पात्र मध्यवर्ग का जीता-जागता उदाहरण है। किन्तु इन सबमें सहज व्यक्तित्व

केवल बीना का है । वह कहीं भी कुण्ठित नहीं है, बल्कि दूसरों को भी अपनी कुण्ठाकाराओं से मुक्त होकर जीने का साहस देती है । एकांकी के अंत में माधव का पात्र भी आता है । बीना एक 'फोरवर्ड' नारी है । जमुना भी राधा के जैसी ही है । इस प्रकार एकांकी के सभी पात्र एक विशेष संदर्भ में अपना विकास करते हैं ।

मध्यवर्ग में रूढ़ियों का स्पष्टतः विरोध करने का साहस प्रायः नहीं होता । खोखला आदर्शवाद विचारों और आचरण में विसंगति ले आता है । माँ के भय से खाये हुए अंडे के छिलके मोजों में छिपाये जाते हैं । गुटका रामायण की आड़ में चन्द्रकान्ता संतति पढ़ी जाती है । अपनी मान्यताओं के साथ खुलकर जी लेने का साहस किसी में भी नहीं है । मध्यवर्गीय लोगों के पर्याय से आम लोगों की मानसिक अवस्था चित्रित हुई है । वे न तो संस्कारों को झटके से तोड़ पायेंगे और न ही संस्कारों में बंधे ही रहेंगे । जो भी परिवर्तन होंगे आहिस्ता से होते रहते है । परिवर्तन की प्रक्रिया अनवरत है । सिर्फ वे सहजता से होते रहे, अंडे के छिलके में पीढ़ी दर पीढ़ी सूक्ष्म परिवर्तन का अंकन हुआ है ।

६.९.२ सिपाही की माँ :

यह एकांकी संग्रह का दूसरा एकांकी है । युद्ध के परिणाम जो भी हों परिवार के सदस्यों की स्थिति किसी घायल से कम नहीं होती निरंतर वापसी का इंतजार, निरंतर चिंता मन में बनी रहती है । इर्द-गिर्द के लोग भी अपने शब्दों और सहानुभूति के माध्यम से उस परिवार के लोगों की चिन्ता बढ़ाते रहते हैं । इस एकांकी में युद्ध पर गये सैनिक की विधवा माँ बिशनी और अविवाहित बहन मुन्नी प्रमुख रूप से चित्रित हुए हैं । दोनों पूर्णतः मानक पर अपने भविष्य को लेकर निर्भर है । इसीलिए वापसी का इंतजार तीव्र चित्रित हुआ है । क्योंकि मुन्नी की शादी करनी है । सारा समय दोनों मानक की चिट्ठी के इंतजार में हैं । एकांकी का प्रारंभ और अंत माँ की व्याकुलता के चित्रण से हुआ है । बेटे के इंतजार में व्याकुल बिशनी और मुन्नी है, तो दूसरी ओर गाँव के छोटे से दायरे में दीनू और कुंती जैसे पात्र हैं जिनका कार्य केवल दूसरों के घाव पर नमक छिड़कना है । इन दोनों को भयभीत करने की द्रष्टि से गाँव के कुछ लोग एक और लडाई का समाचार नमक मिर्च लगाकर बताते तो साथ ही मुन्नी की शादी का जिक्र भी अवश्य करते, उसी से यह परेशान परिवार और भी आतंकित हो जाता है ।

दूसरे द्रश्य में बिशनी और मुन्नी चारपाई पर सोये हैं। बिशनी भयानक सपना देखती है मानक लौट आया है, उसका पीछा हो रहा है। मानक और दूसरा सिपाही एक दूसरे को मार डालना चाहते है। दोनों की छीना झपटी में बिशनी बीच में पड़कर दोनों को रोकना चाहती है। सपने में दो सिपाहियों को बचाने उठी माँ के संवादों में सजीवता है। "नहीं तू इसे नहीं मार। देख इसका शरीर कितना घायल है। तू भी तो आदमी है - - तेरा भी घर-बार होगा। तेरी भी माँ होगी। -- अगर लड़की के ब्याह की चिंता न होती तो हम लोग आधा पेट खाकर रह लेते, पर मैं भी कभी इसे लड़ाई पर न भेजती।" [१०१]

युद्ध के भीषण परिणामों का भविष्य राकेशजी ने प्रस्तुत किया है।

६.९.३ प्यालियाँ टूटती हैं :

'प्यालियाँ टूटती हैं' एकांकी के माध्यम से राकेशजी ने आत्मविश्वास खोनेवाले व्यक्ति का चित्रण किया है। यह मानसिकता आज के युग की देन कहा जायेगा; क्योंकि अपने प्रति, समाज के प्रति, अन्य लोगों की नजरियों के प्रति अतिरिक्त चौकन्नापन लोगों को सहजता से नहीं जीने देता तभी तो प्यालियों के टूटते ही, दीवानचंद के घर आते ही माधुरी अस्वस्थ हो जाती है सहज नहीं रह पाती यह सब आत्मविश्वास की कमी से उभरती मानसिकता की वजह से होता है। ऐसे समय हीनता का भाव उभरता है। हीनता यदि ग्रस ले तो खुद को सहज बना पाना बड़ा मुश्किल होता है।

यहाँ भी परफेक्शन की दीवानगी है। हर चीज परिपूर्ण है और जहाँ-जहाँ यह परिपूर्णता को जरा-सा भी धक्का लगता है तो न जाने कैसी मानसिक अवस्था हो जाती है कि हर चीज हाथ से फिसलती हुई नजर आती है। साधारण सी बात है कि माधुरी और भोलानाथ ने शाम को मिस्टर मिसिस मेहता को चाय पर निमंत्रित किया है। हर छोटी-छोटी बात माधुरी की इच्छानुसार करने से पूरिपूर्ण हो क्योंकि मन में सदैव डर बना रहता है कि मिसिस मेहता नाज-नखरेवाली हैं और हर चीज में कमियाँ उसे नजर आती हैं। इतनी सी बात से माधुरी परेशान है। व्यक्तित्व का बिखराव इस संवाद से ध्यान में आता है।

माधुरी : लेकिन फिर भी मुझे अपना घर अधूरा-सा लगता है।

मीरा : तुम जैसा परफेक्शन चाहती हो, वैसा परफेक्शन दुनियाँ में नहीं मिलता जीजी।

माधुरी : मैं खुद नहीं जानती कि मैं क्या चाहती हूँ। लेकिन यह सब मुझे अधूरा-अधूरा सा लगता है।

उसी समय माधुरी की लड़की पम्मी स्यालकोट वाले मौसाजी के आने की खबर दे जाती है। माधुरी की परेशानी और बढ़ जाती है। माधुरी नहीं चाहती कि वे दीवानचंद जीजाजी अपने पुरानेपन के साथ यहाँ आकर सारे वातावरण में बासीपन -पुरानापन भर दें। माधुरी को उन्हें देखकर सिहरन महसूस होती है। दीवानचंद अपने जमाने की बुलंद आवाज थे आज विभाजन, परिस्थिति और परिवेश ने उन्हें एकाकी बना दिया। तभी तो वे अपनत्व की चाह में पम्मी के लिए कुछ न कुछ लेकर आते हैं। दीवानचंद को अपने खोए परिवार का और लड़की शुक्ला का रूप पम्मी में दिखता है। वे किसी अनाथ लड़की को लाये हैं, जिसमें उन्हें अपनी खोई बेटी शुक्ला का रूप दिखता है। उसके लिए वे कुछ कमाई करना चाहते हैं और इसीलिए वे भोलानाथ माधुरी से कुछ मदद माँगने आये है। मगर माधुरी को तो दीवानचंद को देखकर सिहरन होती है - माधुरी कहती है - "चार पैसे की चीज लायेंगे और मेरे कार्पेट अपने जूतों से खराब कर जायेंगे।"[१०१] प्यालियों का टूटना संबंधों का अपनत्व टूटना है। कितनी मनहूस छाया है इनकी। माधुरी जैसी अस्थिर, ऊपरी नोंक-झोंक के लिए मरनेवाली स्त्रियाँ जो प्रेम, अपनत्व को तिरस्कृत करती हैं, मिसिस मेहता के लिए सतर्क रहती है। व्यक्तित्व का बिखराव, अंदर की हीनता माधुरी को अस्थिर बना डालती है। मनुष्यता को निभा पाना इस वर्ग विशेष के लिए बहुत कठिन है। इसी वजह आने वाला हीनत्व बोध इस एकांकी में चित्रित हुआ है।

६.१० निष्कर्ष :

स्वातंत्र्योत्तर साहित्य जगत में विशेष रूप से हिन्दी नाट्य जगत में अब तक की सीमाओं को लाँघने की क्षमता मेरे विचार से राकेशजी के नाटकों में हैं। राकेशजी के नाटक मानो रंगमंच संप्रेषण का पूरा ध्यान रखते हुए लिखे प्रतीत होते हैं। रंगमंच सापेक्ष कृतियाँ युग जीवन को अपने कथ्य द्वारा प्रस्तुत करने लगी। तभी तो जनमानस सतर्क होकर उन कृतियों का मूल्यांकन करने लगा। राकेशजी के नाटकों की अपनी एक द्रढ़ नींव है, नाटक के बदलते मानदंड उनके नाटकों में पहचाने जा सकते हैं।

सामान्यतः राकेशजी को प्रसाद परंपरा को विकसित करनेवाला नाटककार कहा जाता है; क्योंकि ऐतिहासिकता और आधुनिकता, नारी पात्रों की प्रधानता, रोमांटिक वातावरण, काव्यात्मकता, भावुकता और काल्पनिकता कुछ समान तत्व राकेशजी और प्रसादजी में हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' को द्रष्टि में रखते हुए यह कहना समीचीन होगा। रंगमंच की आंतरिक अपेक्षा को पहचानने और परखने की कोशिश राकेशजी में निरंतर रूप से मिलती है। इसीलिए डॉ. जगदीश शर्मा का यह कहना समयोचित लगता है, "प्रसाद ने रंगमंच को साहित्य के स्तर तक उठाने की चेष्टा की तो राकेश ने रंगमंच की अपेक्षाओं को सामने रखकर नाटक लिखे। उन्होंने लोक –रंजन की आवश्यकता का सम्मान किया है, किन्तु वे दर्शकों की रुचि से निर्दिष्ट नहीं हुए हैं, इसके विपरीत उनमें सुरुचि के विकास का दायित्व उन्होंने निभाया है।"[९]

भारतेन्दु युग में ऐतिहासिक – पौराणिक कथाओं को फिर से कहा भर जाता था परंतु समसामयिक हिन्दी नाटककारों ने इन प्रतीकों की मूल संवेदना समसामयिक जीवन प्रसंगों के संदर्भ में व्यक्त की है, आज का नाटककार यह स्वीकार करता है कि आधुनिक जीवन के इस अनचाहे दबाव ने गंभीर आघात व्यक्ति के ऊपर किया है। वह उसके यथार्थ से उसके संबंध का टूटा जाना। निरंतर अपने आप तक से अजनबी होते हुए मानव का यथार्थ पहले से एकदम भिन्न हो गया है।

राकेशजी के प्रथम दो नाटकों में ऐतिहासिक संदर्भ में समकालीन मनुष्य के अंतर्द्वन्द्व और आधुनिक युगबोध को अभिव्यक्ति मिलती है। क्योंकि कलाकृति में घटना अथवा पात्र की अपेक्षा उन्हें अभिव्यक्त करने वाला द्रष्टिकोण अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। राकेशजी ने समकालीन परिवेश और उसके भीतर जिने के लिए निरंतर संघर्षरत मानव से सीधा साक्षात्कार किया है, जिनमें कथा निर्माण तथा घटनाओं के चयन की अपेक्षा पात्रों के चरित्र पर अधिक बल दिया गया है।

संदर्भ सूची

१	नारंग – अंक – २१	नैमिचंद जैन	३६
२	मोहन राकेश की रंगसृष्टि	डॉ.जगदीश शर्मा	३१
३	नाटककार मोहन राकेश : कल्पना का यथार्थ नामक लेख	विष्णुकान्त शास्त्री	४१
४	आषाढ़ का एक दिन – भूमिका	मोहन राकेश	
५	लहरों के राजहंस – भूमिका	मोहन राकेश	
६	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	१२
७	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	१४
८	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	२८
९	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	४१
१०	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	४८
११	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	४८
१२	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	५०
१३	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	५५
१४	मोहन राकेश की रंगसृष्टि	जगदीश शर्मा	१८
१५	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	१००
१६	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	१०९
१७	डॉ. महेन्द्र भटनागर : आलोचना विशेषांक	डॉ. महेन्द्र भटनागर	१७९
१८	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल	६९
१९	लहरों के राजहंस –भूमिका	मोहन राकेश	०८
२०	समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि	डॉ. जयदेज तनेजा	१०७
२१	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	५१
२२	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	१०८
२३	लहरों के राजहंस –भूमिका	मोहन राकेश	
२४	स्वातंत्र्योतर हिन्दी नाटक – मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में	डॉ. रीताकुमार	२६५
२५	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	२८
२६	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	१०६

२७	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	१०८
२८	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	७६
२९	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	२६
३०	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	४१
३१	समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र–सृष्टि	डॉ. जयदेव तनेजा	१०९
३२	लहरों के राजहंस – भूमिका	मोहन राकेश	
३३	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	४५
३४	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	४८
३५	'नटरंग'–अंक – २१	नेमिचन्द जैन	
३६	नाटककार मोहन राकेश	जीवन प्रकाश जोशी	५५
३७	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	५५
३८	लहरों के राजहंस – भूमिका	मोहन राकेश	१०
३९	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	१३९
४०	स्वातंत्र्योतर हिन्दी नाटक – मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में		३०४
४१	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	१३९
४२	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	३३
४३	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	१२१
४४	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	५६
४५	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	१२१
४६	लहरों के राजहंस भूमिका	मोहन राकेश	
४७	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	४२
४८	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व में उदधृत	गिरीश रस्तोगी	१२०
४९	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	०५
५०	हिन्दी नाटक और नाट्य समीक्षा	स. नरनारायण	७३
५१	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	०६
५२	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	६२
५३	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१६–१७
५४	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	८०
५५	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	९१

५६	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	९०
५७	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१०५–१०६
५८	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१०९
५९	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१०८
६०	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	११२
६१	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में	डॉ. रीता कुमार	३१७
६२	अपने नाटक के दायरे में मोहन राकेश	तिलकराज शर्मा	१३५
६३	सिलेक्टेड पोएमस्	टी.एस.इलियट	६७
६४	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	११०
६५	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	११०
६६	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	९१
६७	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	४२
६८	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	४५
६९	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	६७
७०	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	६४–६५
७१	नाटक रंगमंच और मोहन राकेश	डॉ. सुरेन्द्र यादव	१७०
७२	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१४
७३	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	७२
७४	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	११०
७५	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	११०
७६	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१६
७७	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	९१
७८	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१०६
७९	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१०७
८०	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	१०९
८१	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	११२
८२	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	४२
८३	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	४५
८४	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	५८
८५	हिन्दी नाटक और नाट्य समीक्षा	नरनारायण	७०

८६	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	६७
८७	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	६८
८८	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	८४
८९	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	२३
९०	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	२३
९१	मोहन राकेश की रंग-सृष्टि	डॉ. जगदीश शर्मा	११
९२	अपने नाटको के दायरे में : मोहन राकेश	तिलक राज शर्मा	१५१
९३	अपने नाटको के दायरे में : मोहन राकेश	तिलक राज शर्मा	१५१
९४	द्वैध व्यक्तित्व से उत्पन्न नाटकीयता, मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में	डॉ. नवनीत चौहान	१४
९५	नाटककार और रंगमंचः मोहन राकेश, नटरंग, अंक – ६ वर्ष –१९६८		१०
९६	मोहन राकेश और उनके नाटक	गिरीश रस्तोगी	६०
९७	नाटककार मोहन राकेश : शिल्प दृष्टि और नाट्य शिल्प	ओमप्रकाश शर्मा	२०८
९८	अपने नाकटों के दायरे में मोहन राकेश	प्रो. तिलकराज शर्मा	१५४–१५५
९९	द्वैध व्यक्तित्व से उत्पन्न नाटकीयता (मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में)	डॉ. नवनीत चौहान	२३
१००	नाटककार मोहन राकेश (समसामयिक युगबोध)	मनोहर अभय	१३६
१०१	सिपाही की माँ	मोहन राकेश	७७
१०२	प्यालियाँ टूटती हैं	मोहन राकेश	७२

अध्याय :- ७

मोहन राकेश का यात्रा-वृत्त, निबंध-साहित्य, डायरी, अनुवाद, संपादित साहित्य

७.१	यात्रा-वृत्तांत	४१२
७.२	निबंध	४१४
७.२.१	परिवेश	४१५
७.२.२	बकलम खुद	४१८
७.२.३	मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि	४१९
	सैद्धांतिक निबंध	४२२
	समीक्षात्मक निबंध	४२३
	चिंतनपरक निबंध	४२३
	आत्मपरक निबंध	४२५
	व्यक्तिपरक निबंध	४२६
	वर्णनात्मक निबंध	४२७
७.२.४	राकेशजी के निबंधों की भाषा-शैली	४२८
७.३	डायरी	४३०
७.४	अनुवाद	४३२
७.५	जीवनी - साहित्य	४३४
	संदर्भ सूची	४४०

राकेशजी के समग्र सृजन को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक मनीषी थे, साहित्य की तपस्या को उन्होंने वरा था तथा प्रकृति ने उनमें एक विविध आयामी व्यक्तित्व की रचना की थी। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार समाज को विरल ही प्राप्त होते हैं। राकेशजी भी हिन्दी साहित्य को प्रकृति की एक अनमोल देन थी, जिन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, यात्रा-वृत्त, डायरी, आदि का प्रणयन किया। मूलतः वे कथा साहित्य की द्रश्य और श्राव्य दोनों विधाओं में कुशल शिल्पी की तरह डूबे रहे परंतु उन्होंने अपने मंथन को साहित्य की अन्य शैलियों में भी व्यक्त किया है। इन विधाओं में राकेशजी का अंतरंग व्यक्तित्व तथा उनकी बौद्धिकी बड़ी व्यग्रता से व्यक्त हुई है।

७.१ यात्रा-वृत्तांत :

यात्रा-वृत्तांत से सीधा तात्पर्य है यात्रा का विवरण। मनुष्य स्वभावतः यायावर है। इसी वृत्ति के कारण वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर अपनी आत्मतुष्टि करता है, अपने अनेक उद्‌देश्यों को पूरा करता है। फिर वह उद्‌देश्य उसके जीविकोपार्जन संबंधी हों या अन्वेषण संबंधी। कलाकार की आत्मा तो निर्बन्ध है। एक यायावर कलाकार की आत्मा तो शाश्वत यात्री है वह किसी सीमा में बंधती नहीं। उसके लिए न कोई विराम है न कोई प्रतिबंध। राकेशजी स्वयं घूमनेवाला व्यक्तित्व रखते थे। कभी यहाँ तो कभी वहाँ। उनकी स्वयं की डायरी में आए अनेक शहरों के नाम इसके प्रमाण है। राकेशजी ने यात्रा साहित्य पर भी अपनी कलम चलाई है। उनका गद्य साहित्य अपनी विविधता में अकेला है। संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, जीवनी आदि सभी विधा पर उन्होंने लिखा है। यात्रा संबंधी उनकी वृत्ति "आखिरी चट्टान तक" में गोवा से कन्याकुमारी तक की यात्रा का वर्णन बड़ी भावुकता और ईमानदारी से किया गया है। इस कृति का प्रथम संस्करण सन् १९५३ के अंत में तथा द्वितीय संस्करण १९६८ में प्रकाशित हुआ था। इसमें दक्षिण भारत के यात्रा - संस्मरण है। इस कृति में राकेशजी का व्यक्तित्व तो निरूपित है ही, प्राकृतिक आभा, विभिन्न व्यक्तियों के साथ व्यतीत किए क्षणों का आलेख भी है। इसमें अनेक व्यक्तियों की मनःस्थितियों व चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन है। 'वांडरलस्ट' शीर्षक में राकेशजी ने मानसिक यात्राओं के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं। "इसमें काव्यात्मक वर्णनों की भरमार है, द्रश्यों का आकर्षक विधान है, सौन्दर्य की अनासक्त छवियां हैं और अनेक पात्रों का व्यक्तित्व

विश्लेषण है । उसमें एक ओर तो रेखा चित्र का गुण है तो दूसरी ओर उसकी चित्रात्मकता और काव्यात्मकता अदभुत है ।"[१]

राकेशजी के 'आखिरी चट्टान तक' यात्रा-वृत्तांत में वर्णनों की लंबी कतार है । कहीं जल की तरल गति है, कहीं जलाशयों का सौन्दर्य । कहीं झरनों का मधुर संगीत है तो कहीं नौका विहार के स्वर्गिक द्रश्य । कहीं सूर्योदय है कहीं सूर्यास्त का संध्याकालीन स्वरूप का जीता जागता वर्णन । राकेशजी के वर्णन में भावुकता यथार्थ का स्पर्श लिए हुए हैं । नौकाविहार के समय चप्पुओं के पानी में पड़ने की आवाज मानों नए ढंग से जीने की भावना को व्यक्त करती हैं । "ऐसी दहेशत थी, ऐसा ही खामोश समा था । जब मैं झील के बीचोबीच पहुंचा तो यह आवाज उस वक्त मुझे कुछ ओर सी लगने लगी । हर बार जब यह आवाज होती तो मेरे जिस्म में एक सनसनी-सी दौड़ जाती । मुझे लगता जैसे कोई चीज हल्के से मेरी रूह को थपथपा रही है ।"[२] राकेशजी ने प्रकृति के सौन्दर्य को अपने वर्णन में जिस बारीकी से उतारा है वह अप्रतिम है । यह वर्णन स्थानीय परिवेश के बिम्ब हैं । अनेक जगह परिवेश का यथार्थ चित्रण हुआ है । राकेशजी की पैनी द्रष्टि परिवेश के यथार्थ को कहीं भी नहीं छोड़ती, पकड़ ही लेती है । "बैठते ही जिन लोगों पर नजर पड़ी लगा कि वे उतने परिचित नहीं है । चेहरों के अलावा और सब कुछ पहचाना हुआ था । रूखे हाथ-पैर, उलझे बाल, चीथड़े वस्त्र, खोयी-खोयी आँखें और रोयें-रोयें से झलकती शिथिलता ।"[३] लेखक की सूक्ष्म द्रष्टि और सजगता के कारण अनेक वर्णन इसमें आए हैं । एक ओर तेल्लीचेरी के परम्‌शिव के मंदिर का सौन्दर्य मन को बांध लेता है तो दूसरी ओर मुस्लिम होटल का परिवेश करुणा उत्पन्न करता है । मंदिर के बाहर मिट्टी खोदते मजदूरों का जीवन क्रम और रहन-सहन का आभास करुणा से विगलित कर देता है । प्रत्येक कलाकार सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता है । सौन्दर्य निरूपण में प्रायः कलाकार या तो प्रकृति के प्रागंण से सौन्दर्य कण सहेजता है या फिर नारी शरीर के अंगों से । इस यात्रा वृत्तांत में प्रकृति सौन्दर्य निरूपित है । नारी की मोहक छवि आपवादिक रूप से है । लेखक की यायावरी वृत्ति में सजीवता लाने का श्रेय उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व को है जो जाने-अनजाने यात्रा में जुडते चले गए । इस कृति में हुसैनी, पंजाबी भाई, फर्नान्डिस, नंदलाल, कपूर, श्रीधरन्, अब्दुल जब्बार आदि चरित्र व व्यक्तित्व बड़ी आत्मीय शैली में चित्रित हुए हैं । राकेशजी ने अपनी यात्रा के दौरान जिस व्यक्ति को जिस रूप में जाना, समझा उसी रूप में प्रस्तुत कर दिया है । नवयुवकों की बेकारी, भुखमरी, पीड़ा का वर्णन इस यात्रा-वृत्तांत

में यथार्थ शैली में हुआ है । इन पात्रों के व्यक्तित्व विश्लेषण के साथ–साथ स्वयं राकेशजी का व्यक्तित्व भी विश्लेषित होता गया है ।

इस रचना में निरुपित विविध संस्कृतियों का वर्णन इसे सांस्कृतिक संदर्भ प्रदान करता है । विभिन्न स्थानों के इतिहास, संस्कृति जीवन की अनुभूतियों का वर्णन इस कृति में हैं । गोआ से कन्याकुमारी तक की यात्रा में जो भी स्थान आए वहाँ की संस्कृति, धर्म, विचारधारा को राकेशजी ने सांकेतिक शैली में वर्णन किया है । प्रत्येक स्थान का अपना धार्मिक परिवेश होता है जिसमें वहाँ के जीवन का सारा क्रम समा जाता है । 'त्रिचुर में बडक्कुनापन' के मंदिर में जाकर लेखक ने अनेक नए देवताओं का परिचय पाया तथा बाद में 'कूथाम्बलम्' की नाट्यशाला का वर्णन किया । 'मलबार' के वर्णन में राकेशजी ने वहाँ के जीवन, आचार–विचार, कृषि व्यापार और उत्सव आयोजन का गहराई से चित्रण किया है । राकेशजी ने सभी स्थानों के त्यौहार – रीति रिवाजों का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया और अपनी लेखनी से उसे प्रस्तुति दी । उनके ज्ञान को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उनकी यात्रा केवल 'यायावरी ललक' की तुष्टि के लिए नहीं वरन विविध संस्कृतियों के अध्ययन के लिए थी । 'आखिरी चट्टान तक' राकेशजी की कलात्मकता से पूर्ण यात्रा–संस्मरण है । उनके वर्णन की भाषा संगीतमय, भावप्रवण, अकृत्रिम और व्यवहारिक है । इसमें राकेशजी ने अधिकांश स्थानों पर प्रसाद शैली, धारा शैली, तरंग शैली, भाव–उदबोधन शैली, चित्रात्मक शैली और संवाद शैली को अपनाया है । अन्ततः राकेशजी की यह रचना साहित्य विधाओं की सफलता में एक सोपान और जोड़ देती है । राकेशजी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे । साहित्य की जिस विधा पर उन्होंने अपनी लेखनी का प्रयोग किया, उधर ही अपने प्रतिभा के निशान छोड़ते हुए आगे बढ़ते गए । राकेशजी का समूचा साहित्य उनकी जिन्दादिली का प्रमाणपत्र है । एक सर्जक की प्रतिभा का मापदंड यही हो सकता है कि वह जिस पथ पर अग्रसर हो उसी पर अपने अमिट पद चिन्ह छोड़ता हुआ आगे बढ़ता चला जाए ।

७.२ निबंध :

राकेशजी के समस्त सृजन पीठिका में उनका व्यक्तित्व प्रभावी बन गया है । गद्य की जिस विधा की ओर वे उन्मुख हुए है, उसीमें उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन के चित्रों को उकेर दिया है । आत्मप्रकाशन मनुष्य की प्रबल प्रवृत्ति है यह नाटक, उपन्यास और

कहानी के साथ-साथ निबंध में भी अभिव्यक्ति पाती है। निबंध में लेखक का व्यक्तित्व सर्वाधिक अहमियत रखता है। रचनाकार भले ही अपनी इच्छा से साहित्य में अपने व्यक्तित्व का प्रक्षेपण न करे; किन्तु वह अनजाने ही उसके सृजन में समावेश कर जाता है। राकेशजी के निबंध उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं। उनके निबंध किसी एक वर्ग तक सीमित न रहकर शैली व विषय विविधता के कारण अनेक वर्ग के हो गए हैं। राकेशजी का निबंध साहित्य 'परिवेश', 'बकलम खुद' और 'मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक द्रष्टि-१९७५' इन तीन कृतियों में समाया हुआ है।

७.२.१ परिवेश :

'परिवेश' (१९६७) राकेशजी का प्रथम निबंध संग्रह है। इसमें संबंधित निबंधों को राकेशजी ने 'लेख' की संज्ञा दी है। यद्यपि निबंध और लेख समानार्थी होते हैं किन्तु जिन निबंधों में व्यक्तित्व का समावेश हो जाता है वे लेख से भिन्न दिखाई पड़ते हैं। 'परिवेश' में संकलित लेख व निबंध विषय, भाषा व मानसिकता तीनों ही द्रष्टियों से एक दूसरे से भिन्न है। स्वयं राकेशजी ने इनके अलगाव को व्यक्त करने के लिए इन निबंधों या लेखों को आठ शीर्षको में विभाजित किया है।

(१)	अपना आप और परिचित चेहरे	(२)	यात्रा-परक
(३)	तिरछे कोण	(४)	दायरे
(५)	सम्मेलन, प्रश्न और परि-संवाद	(६)	रचना द्रष्टि
(७)	समकालीन बिन्दु	(८)	इक चुनींदा शहर

इन आठ शीर्षकों में २१ निबंध समाहित है। ये एक दूसरे से अलग-अलग हैं - राकेशजी ने स्वयं ही भूमिका में यह लिखा है - "इस संग्रह के सब लेख कहीं एक-दूसरे से इतने अलग पड़ते हैं - भाषा, मानसिकता और निर्वाह सभी द्रष्टियों से कि यह अलगाव ही उन्हें एक जगह देने की एकमात्र संगति जान पड़ता है। अन्यथा इन्हें कम से कम तीन चार अलग-अलग पुस्तकों में देना होता और उस द्रष्टि से हर पुस्तक के लिए चार-चार, छह-छह लेख और लिखने की अनिवार्यता सामने आती।" [४]

'अपना आप और कुछ परिचित चेहरे' शीर्षक में चार लेख 'चीटियों की पंक्तियाँ : जमीन से कागजों तक', 'देखा बच्चू', 'कोई गलत फहमी नहीं' और 'दिल्ली रात की बाहों में' संकलित है। प्रथम में राकेशजी के आत्मपरिचय को प्रस्तुत करता है। दूसरे

निबंध में उन्होंने अपने परिवशे के प्रति पूरी सतर्कता व अस्वीकृति को चित्रित किया है। अपने परिवेश में "जय श्री कृष्ण" कहने के लिए विवश राकेशजी ने अपनी असंतुष्टता, विवशता एवम् घुटन का चित्रण बड़ी ईमानदारी से किया है। इस निबंध में अश्क व राजेन्द्र यादव के व्यक्तित्व का निरूपण संस्मरण शैली व आत्मीय शैली में किया गया है। तीसरे संस्मरण प्रधान रेखाचित्र शैली में लिखे गये निबंध में डॉ. इन्द्रनाथ मदान के व्यक्तित्व का विश्लेषण है। दिल्ली के यथार्थ परिद्रश्य को उभारने वाला चौथा निबंध द्रश्य बिंबों से सजकर आकर्षक हो गया है।

परिवेश के यात्रा परक शीर्षक में यात्रा का रोमांच निबंध में राकेशजी ने यायावरी वृत्ति को खुलकर चित्रित किया है। जिसको पथ के साथ मैत्री हो वही सच्चा यायावर है। राकेशजी स्वयं ऐसे ही यायावर रहे हैं। उनकी घुमक्कड़ प्रवृत्ति का प्रभाव उनके इस निबंध में है। 'गुलमर्ग की खिड़की से एक रात' में गुलमर्ग का सौन्दर्य वर्णन तथा उसके आत्मीय परिवेश को बिम्बों में बांधकर वर्णित किया है। 'एक हाथ : कावेरी के किनारे' का प्राकृतिक सौन्दर्य राकेशजी के निजीपन से मिलकर पाठक के साथ आत्मीयता बांध लेता है। 'तीरछे कोण' शीर्षक में आए निबंध ललित निबंध हैं। 'विज्ञापन युग' निबंध में वर्तमान युग में विज्ञापनों की आपा-धापी का प्रतिपल परिवर्तित परिवेश का बड़ी सहज भाषा में वर्णन हुआ है। वेज्ञानिक विकास के साथ साथ विज्ञापन कला भी उत्तरोतर बढ़ती जा रही है। "विज्ञापन कला जिस तेजी से उन्नति कर रही है, उससे मुझे भविष्य के लिए और भी अंदेशा है। लगता है ऐसा युग आने वाला है जब शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और साहित्य इनका केवल विज्ञापन कला के लिए ही उपयोग रह जाएगा।"[८] 'अस्वस्थ और अप्रसन्न' में राकेशजी ने मनुष्य की स्थिति को स्पष्ट किया है, कि वर्तमान क्षणप्रतिक्षण बदलते परिवेश में आज का मनुष्य एक साथ स्वस्थ व प्रसन्न नहीं रह सकता। परिवर्तित परिवेश की परिस्थितियाँ उसे कभी प्रसन्न, कभी अप्रसन्न, कभी स्वस्थ और कभी अस्वस्थ बनाती रहती हैं। 'अनात्मक कथ्य' इसी श्रेणी का निबंध है जिसमें आत्म व कथ्य समानार्थक है। मौलिकता का प्रश्न 'कोण' से जुड़ा है इसमें भी परिवेश में फैली विसंगतताओं का वर्णन हैं।

'दायरे' शीर्षक में यथार्थ की परिधियाँ तथा 'अंदर का घाव' निबंध हैं जिनमें यथार्थ परिवेश में बढ़ती विषमताएं व आंतरिक पीड़ा के कारण व उनके परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। 'सम्मेलन, प्रश्न और परिसंवाद' के अंतर्गत भी निबंधों का विषय भी वर्तमान परिवेश से संबंधित है। 'मिलते हैं' और 'बिखरे जाते है' में एक परिसंवाद

पाँचवे अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। 'कमरे कमरों से बाहर' में राकेशजी ने अपने उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' के प्रति उठाए गए प्रश्नों का समाधान पत्र रूप में किया है। "जिंदगी में बहुत कुछ है जिसके प्रति विद्रोह और आक्रोश मेरे मन में हैं। वह आज जैसा है वैसा कल नहीं रहेगा, न ही रहना चाहिए। इस विद्रोह और आक्रोश की कुछ परिस्थितियाँ हैं जिनमें मैं कई बार अपने को अकेला भी पाता हूँ। पर यह अकेलापन झूझने की एक स्थिति है, किसी तरह का अलगाव नहीं, यह जिंदगी से अकेला होना नहीं है, जिंदगी के बीच अकेला पड़कर अपने जुड़े होने का निर्वाह करता है।"[६] अकेलेपन की व्याख्या राकेशजी ने अपने निबंध 'अकेलापन' और 'विकासोन्मुखता और नया आदमी' में की है। विकासोन्मुखता को राकेशजी ने किसी एक अनुकरण नहीं वरन् प्रयोगशील होना भी माना है। 'नया आदमी' में राकेशजी ने दर्शाया है कि अब साहित्य में विशिष्ट व्यक्ति का प्रयोग अनिवार्य नहीं रहा वरन् उसका स्थान साधारण से साधारण व्यक्ति ने ले लिया है। इस विषयपरक निबंध में, रोकशजी की स्वयं की मान्यताएँ अभिव्यक्त हुई हैं। 'पुस्तकों को चाहिए' में हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन लेखन व विक्रय की समस्या पर विचार विमर्श किया है। इसमें उन्होंने स्पष्ट किया है, कि इस समस्या का कारण गैर जिम्मेदारी से लेखन, प्रकाशन व दोनों से अधिक कारण खरीदा जाना है। पुस्तकें अध्ययन हेतु नहीं पुस्तकालय की शोभा बढाने हेतु खरीदी जाने लगी हैं। यह निबंध राकेशजी की जागरुकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रचना द्रष्टि से शीर्षक में 'अनुभूति से अभिव्यक्ति तक' निबंध यह स्पष्ट करता है कि अनुभूति अभिव्यक्ति हुए बिना नहीं रह सकती। इन दोनों का साथ चिरंतन है। 'उपन्यास और यथार्थवाद' निबंध में राकेशजी ने यथार्थ को परिभाषित किया है तथा उपन्यास में चित्रित यथार्थ के संबंध में अपने विचार बताए हैं। 'समकालीन बिन्दु' शीर्षक में 'संदर्भों की भाषा' तथा 'समय और यथार्थ के शिल्प में' मौलिकता व गंभीरता लिए हुए निबंध है। प्रथम निबंध में भाषा का क्या स्वरूप हो, शब्द के प्रयोग व उससे निकलने वाले अर्थ की व्याख्या की गई है। दूसरे निबंध में यथार्थ अकेले व्यक्ति का न होकर समाज का होता है स्पष्ट किया है। राकेशजी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि आज हमारे सामने प्रमुख प्रश्न यथार्थ और उसकी अनुभूति को शिल्प में ढालने का है। 'परिवेश' में संकलित राकेशजी के समस्त लेख उनके निबंधकार के बहुरंगी व्यक्तित्व की छटा चारों ओर बिखेरते हैं। इन निबंधों में रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रा सभी की

मधुरता का आभास होता है। इनमें शब्दों का महल, शैली की चमक-दमक की अपेक्षा भाषा यथार्थ है। राकेशजी के सभी निबंध मौलिक, रोचक व विचारयुक्त हैं।

७.२.२ बकलम खुद :

सन् १९७४ ई. में प्रकाशित 'बकलम खुद' में राकेशजी के विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानी संबंधी निबंध संकलित है। इन निबंधों की शैली वार्तालाप का रूप धारण किए है। कहीं-कहीं पर राकेशजी पाठकों से सीधे बातें करते प्रतीत होते हैं। विषय की गंभीरता ने राकेशजी की भाषा शैली को प्रभावित नहीं किया। कुल बाईस समीक्षात्मक निबंधों में नयी कहानी से इतर समकालीन विषयों पर आठ निबंध लिखे गए हैं। इस कृति में आए निबंधों को तीन भागों में बाँटा है। 'बकलम खुद', 'नयी निगाहों के सवाल' और 'कुछ और अस्वीकार'। 'बकलम खुद' शीर्षक में आए निबंधों में नयी कहानी संबंधित प्रश्नों व समस्याओं का विवेचन हैं। राकेशजी ने अपने निबंध में नयी कहानी के शिल्प पर विचार किया है। विषय की गंभीरता ओढे हुए सादगीपूर्ण भाषा में रचित ये निबंध विवेचनात्मक हैं। वर्तमान युग की जिस स्वतंत्र आलोचनात्मक शैली की आवश्यकता थी वह राकेशजी के निबंधों से प्रारंभ हो चूकी थी।

'नयी निगाहों के सवाल' में १९६४ में लिखे गये 'इमारते टूटने पर', 'माध्यम की खोज', 'बातों के तिलिस्म में' और 'बदलता बलाघात' ये चार निबंध संकलित हैं। 'इमारते टूटने पर' निबंध में नयी व पुरानी पीढ़ी का संघर्ष चित्रित है। देश के विभाजन के समय पुराने आदर्श ढह गए विभाजन की प्राणघाती मार ने मनुष्य के बाह्य व अंतर दोनों स्थितियों को हिला दिया। जिंदगी का सारा ढांचा भरभराकर टूट गया वह आदर्शों को तिलांजलि देकर यथार्थमय वातावरण में लिखा गया साहित्य था। पुरानी पीढ़ी के टूटते मूल्यों पर नई पीढ़ी ने नई इमारतों के निर्माण का बीड़ा उठाया उसी भाव का चित्रण इस निबंध में राकेशजी ने बड़े रोचक ढंग से प्रतिपादित किया है।

'माध्यम की खोज' में राकेशजी ने प्रतिपादित किया कि नयी कहानी के माध्यम से पीढ़ियों के संघर्ष से उत्पन्न संकट बोध को अभिव्यंजित किया जा सकता है। 'बातों के तिलिस्म में' समीक्षात्मक निबंध है जिसमें राकेशजी ने मनुष्य की बातों के तिलिस्म गढ़ने की प्रवृत्ति के विषय में कहा है, कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी इस प्रवृत्ति को छोड़कर सही द्रष्टि को ग्रहण करे। 'बदलता बलाघात' का विवेचन विषय नयी कहानी ही है। 'बकलम खुद' के तीसरे भाग में 'आज की संवादहीनता' निबंध में राकेशजी ने

कहा है कि किसी भी संवाद की शुरुआत भी वास्तव में तभी हो सकती है जब उसका आधार रचना हो । इस निबंध में उन लोगों पर व्यंग्य है जो नए संदर्भ में बिना रचना को आधार बनाए एक से शब्दों में बारबार एक ही बात दोहराते है । 'मार्क्सवादी दर्शन' निबंध में राकेशजी ने समकालीन परिवेश में लिखे जा रहे साहित्य पर द्रष्टिपात किया है । राकेशजी ने मनुष्य के मन में जन्में स्वीकार और अस्वीकार उसके चिंतन का परिणाम है या नहीं इसे महत्त्वपूर्ण माना है । किसी दर्शन विशेष के मायाजाल में उलझकर व्यक्तित्वहीन हो जाने की अपेक्षा वैयक्तिक साक्षात्कार को नयी जीवन पद्धति की खोज को महत्त्वपूर्ण माना जाता है । "आज की संकटकालीन स्थितियों में व्यक्ति का वास्तविक संघर्ष अपने अस्वीकार को खुलकर व्यक्त करने का नहीं है, उस अस्वीकार की प्रकृति निर्धारित करने का भी है ।"[७] उपर्युक्त कथन राकेशजी ने 'समय से कटी हुई समकालीनता' निबंध में वर्तमान परिवेश की परिवर्तित स्थितियों से प्रभावित जीवनमूल्यों व अस्वीकार बोध का सही मूल्यांकन प्रस्तुत करने हेतु कहा है । अतीत और भविष्य के अंतराल में पीसता वर्तमान क्षण नयी युवा पीढ़ी के अस्वीकार की परिणति नहीं हो सकता । राकेशजी के निबंध आलोचनात्मक व चिंतनात्मक दोनों हैं । इनकी शैली में तिक्तता के साथ मिठास, गंभीरता के साथ व्यंग्य भी शामिल है ।

७.२.३ मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि :

प्रस्तुत कृति में सैद्धांतिक चर्चा विषयी निबंध, समीक्षात्मक निबंध और सांस्कृतिक निबंध संकलित है । प्रथम वर्ग के निबंधों में साहित्यकार की समस्याएँ, रचनाकार के संकटों तथा आज की कहानी के प्रेरणास्रोत, नवीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण हुआ है । कहानी विषयक सैद्धांतिक प्रश्नों पर विचार तथा सैद्धांतिक मान्यताओं को प्रस्तुत किया है । इन निबंधों में स्पष्ट, सुचिंतित, सीधी सरल भाषा में कहानी लेखन की रचना प्रक्रिया व प्रेरक तत्त्वों पर विश्लेषण है । द्वितीय वर्ग के निबंधों में राकेशजी की समीक्षक द्रष्टि स्पष्ट देखी जा सकती है । 'पंत और नवीन जीवन दर्शन' और 'तुलसी की भक्ति' शीर्षक से लिखे गये निबंध उनके समीक्षक रुप को देखने के अच्छे उदाहरण हैं । नाटक साहित्य से संबंधित निबंधों में कुछ मौलिकता की ओर संकेत किया है तथा नाट्य प्रयोगों की समीक्षा की है । 'दायरे से हटकर एक दायरा' और 'खड़िया का घरा' समीक्षक की प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हैं । 'रंगमंच और नाटक' शीर्षक में संकलित निबंधों में नाटक की कुछ नयी मान्यताओं की स्थापना व पुरानी मान्यताओं का विरोध झलकता है । उनकी शैली स्पष्ट कथन व साहसिकता की शैली

है। वस्तुतः राकेशजी के समीक्षात्मक निबंधों में उनकी आलोचकीय वृत्ति द्रष्टिगत हुई है।

तीसरे वर्ग में 'आधुनिकता के तत्त्व बनाम भारतीयता के तत्त्व' में राकेशजी की सांस्कृतिक द्रष्टि मुखरित हुई है। इसमें धर्मयुग द्वारा आयोजित एक विशेष परिचर्चा का वर्णन हुआ है। राकेशजी का निबंध संग्रह उनकी समीक्षक व गंभीर विवेचक की द्रष्टि स्पष्ट करता है। उनके विषय मौलिक हैं तथा शैली में वैविध्यता है। राकेशजी की इस कृति के आदि व अंत में एक अंतरंग परिचय 'एक महत्त्वपूर्ण भेंट' भी संकलित है।

पूर्व समय में विषयीनिष्ठ तथा विषयनिष्ठ निबंध लिखे जाते रहे हैं किन्तु वर्तमान समय में इस क्षेत्र में विस्तृति आ गई है आज के विषय अलग–अलग व अनेक हैं। निबंधों में विषय वैविध्य, अनुभूति और चिंतन के नए आयाम, शैली की अभिनवता के कारण उनके प्रकार भी अनेक हो गए हैं। राकेशजी के निबंधों में भी विविधता है अतएव उनके निबंध को वर्गीकरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है – सैद्धांतिक निबंध – इस प्रकार के निबंधों में साहित्यिक सिद्धांतों व लेखकीय सिद्धांतों का विश्लेषण होता है। राकेशजी ने अपने कतिपय निबंधों में रचना प्रक्रिया शैली, नाटक एवम् रंगमंच के संबंध को स्पष्ट करनेवाले निबंध लिखे हैं। इनमें साहित्य के मूल्यांकन विशिष्टतः कहानी व नाटक के मूल्यांकन में उपयोगी प्रतिमानों को प्रस्तुत किया है। समीक्षात्मक निबंधों में 'हिन्दी कथा साहित्य की नवीन प्रवृत्तियाँ' शीर्षक में दो निबंध 'आज की कहानी के प्रेरणा स्त्रोत', 'दायरे से हटकर एक दायरा', रेडियो नाटक पंत और नवीन जीवन दर्शन, तुलसी की भक्ति, प्रेम तिकौन अंदर की उफनती हुई दुनिया, युग – प्रर्वतन की चिंता, आज के संदर्भ में विद्रोह का सेफ्कोर्स, बदलता बलाघात, उपन्यास और यथार्थ चित्रण, आसपास के लोग आदि आते हैं। राकेशजी का समीक्षक रूप इन निबंधों में उभरा है। राकेशजी ने साहित्यिक विधा की समीक्षा तथा नए साहित्य के कथ्य और शिल्प की समीक्षा अपने निबंधों में की है। इनमें राकेशजी का समीक्षक रूप जागरूकता व साहसिकता लिए हुए हैं। राकेशजी ने चिंतन–मनन व तर्क पर आधारित निबंधों की रचना भी की है। इन निबंधों में भावना व कल्पना की अपेक्षा चिंतन और मनन प्रधान होता है। इन निबंधों से राकेशजी का विचारशील व्यक्तित्व उजागर हुआ है। राकेशजी के समय और यथार्थ के शिल्प में, इमारते टूटने पर, माध्यम की खोज, बातों के तिलिस्म में , मार्क्सवादी दर्शन और मार्जुआना की भाषा आज के संदर्भ में विद्रोह की सेफ्कोर्स, समय से कटी हुई समकालीनता, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक

संदर्भों की भाषा जैसे चिंतनपरक निबंध इस बात को प्रमाणित करते हैं कि राकेशजी विषय की गहराई में पूर्णतः उतरते चले गए हैं। इमारते टूटने पर निबंध में राकेशजी ने अत्यंत ही सूक्ष्मता से, गंभीरता से परिवर्तित परिवेश में टूटते बिखरते मूल्यों का उपयोगिता और कारणों का विश्लेषण किया है। राकेशजी के चिंतनपरक निबंधों में विषय की गंभीरता से शिल्प भी गंभीर हो गया है। उनके निबंधों में तार्किकता, सूक्ष्म विवेचन तथा विचार की तह तक पहुँचने की प्रवृत्ति मिलती है। गागर में सागर भरने के समान प्रत्येक अनुच्छेद में विचारों को दबादबा कर भरने की कोशिश, तर्कों की योजना विवेचना बात की बारीकी से पकड़ सभी राकेशजी के निबंधों की विशिष्टताएँ हैं। आत्मपरक निबंध भी निबंध का एक प्रकार है, जिसमें लेखक स्वयं के अनुभव के साथ जीवन की विविध घटनाओं का प्रस्तुतिकरण करता है। राकेशजी द्वारा लिखित निबंध चीटियों की पंक्तियां, जमीन से कागजों तक, ब्याह कर ही लू ?, खाकसार की मेज आदि आत्मपरक निबंध हैं। जिसमें स्वानुभूति, निजता, कल्पना आदि का अंश रहता है। राकेशजी के कुछ निबंध आत्मपरक निबंध तथा बाकी भाग साहित्यिक विवेचना में परिणति पा गये है। राकेशजी ने आत्मपरक निबंध कम ही लिखे है। आत्मपरक निबंधों के विषय में "व्यक्तिवादी निबंध का तीसरा प्रकार आत्मपरक निबंधों का है। इसमें निज या निज परिधि में आनेवाले व्यक्तियों या घटनाओं से संबद्ध या प्रेरित उत्तेजित और अदभुत मनोविकारों या विचारों का प्रकाशन रहता है।"[८] राकेशजी के करीबी व आत्मीय व्यक्तियों से संबंधित निबंध भी इसी श्रेणी में लिए जा सकते हैं। किन्तु फिर यह बात सिद्ध नहीं होती कि आत्मपरक निबंध 'आत्मत्व' की प्रधानता लिए होते हैं।

चीटियों की पंक्तियाँ और जमीन से कागजों तक में राकेशजी ने अपने माता पिता व अपना परिवेश अंकित किया है। इसमें लेखक की विनोदमयी वृत्ति, व्यंग्य, पीड़ा और करुणा सभी व्यक्त हुआ है। "पिता की असमय मृत्यु ने वेदना से भर दिया – मगर उस रात खिड़की की सलाखों के पास से, आकाश की गहराईयों में न जाने कितना कुछ देख लिया था, वह सब जो बीत रहा था, बीत चुका था और जिसे अभी बितना था। बीते हुए कल के कितने ही साये आने वाले कल के मोड़ पर आ जमा हुए थे। आने वाला वह कल बिजली के तारों तथा पेड़ों की टहनियों से परे कभी जुगनूं की तरह चमक जाता था, कभी झिलमिला उठता था।"[९] राकेशजी के जीवन के अनेक प्रसंग पारिवारिक परिवेश पर अंकित हुए हैं। दादी माँ, माँ, पिताजी, पडोस इन सबके मध्य राकेशजी का मन है, मनोभाव हैं। उन्हीं मनोभावों का चित्रण राकेशजी ने बखूबी किया है।

खाकसार की मेज के प्रारंभिक अंश आत्मपरक हैं । इसमें लेखक के लेखन स्थान का वर्णन हुआ है । लेखक की मेज का जो सुंदर बिम्ब प्रस्तुत किया गया है वह किसी भी लेखक की मेज का हो सकता है । राकेशजी के आत्मपरक निबंध उनकी निजता, भावुकता, विनोदवृत्ति और परिवेश सजगता को प्रस्तुत करते हैं । इन निबंधों में विषय की सीमा नहीं है मन तरंग में लिखे गए ये निबंध अपनत्व और व्यक्तिमत्ता के गुणों से भरपूर हैं ।

राकेशजी ने कुछ व्यक्तिपरक निबंधों की भी रचना की है । इसमें किन्हीं आत्मीय व्यक्तियों पर निबंध लिखे जाते हैं । राकेशजी के आत्मीय उपेन्द्रनाथ अश्क, राजेन्द्र यादव और डॉ. इन्द्रनाथ मदान हैं । उनके व्यक्तिपरक निबंधों में देखो बच्चू, एक एक्सक्लेमेशन मार्क उर्फ, कोई गलतफहमी नहीं विशिष्ट हैं । उपेन्द्रनाथ अश्क, राजेन्द्र यादव और डॉ. इन्द्रनाथ मदान तीनों के व्यक्तित्व विश्लेषण के साथ साथ लेखकीय द्रष्टि भी है । बिना किसी दुराव-छिपाव के विवेचित व्यक्ति के आसपास के परिवेश का सही सही चित्रण शैलीगत सहजता, सादगी, व्यंग्य, विनोद की प्रवृत्ति, राकेशजी के निबंधों को उच्चस्तरीय बना देती है । राकेशजी के 'परिवेश' में संकलित 'गुलमर्ग की खिड़की से एक रात', 'एक हाथ कावेरी के किनारे' और 'यात्रा का रोमांस' निबंध वर्णनात्मक निबंध की श्रेणी में आते हें इनमें यात्राओं का वर्णन है । यात्रा रोमांस में राकेशजी ने यायावर वृत्ति का वर्णन किया है । फिर स्वयं की यात्रा के प्रसंग दिए हैं । कृष्णासागर झील का वर्णन बहुत ही सुंदर और मनोरम बन गया है । गुलमर्ग की आभा, उसके प्राकृतिक परिवेश के बिंबों से सजा यह निबंध राकेशजी की कल्पनागत ताजगी व वर्णनगत सरसता का जीवंत प्रमाण है । कावेरी नदी के सौंदर्य और आकर्षण ने इस निबंध को सुद्रढ़ कड़ी दे दी है ।

उपरोक्त वर्गों में राकेशजी के निबंध यह स्पष्ट कर देते हैं, कि उनमें सर्वत्र एक ताजगी मौलिकता है । शैली में रोचकता, सरसता, कौतूहल जगाने का गुण है । राकेशजी ने कहानी लिखी या उपन्यास, चाहे निबंध वह किसी भी विधा में जीवन उतारने वाले, शैली में प्रतिपल बदलते परिवेश के बिंब प्रस्तुत करनेवाले ही रहे है ।

सैद्धांतिक निबंध :-

सैद्धांतिक निबंधों से तात्पर्य उन निबंधों से है, जिनमें साहित्यिक सिद्धांतों और लेखकीय सिद्धांतों का विश्लेषण हुआ है । राकेशजी के कुछ निबंध ऐसे हैं जो इस बात

के साक्षी हैं। उन्होंने कहानी की रचना-प्रक्रिया, उसकी शैली-सज्जा और नाटक तथा रंगमंच के संबंधों को निरूपित करने वाले अनेक निबंध लिखे हैं। इन निबंधों में 'कहानी क्यों लिखता हूँ', 'नश्वर ब्रह्म','रंगमंच और शब्द', 'नाटककार और रंगमंच' तथा 'संदर्भों की भाषा' आदि को लिया जा सकता है। इनमें राकेशजी ने समकालीन संदर्भों में साहित्य के क्षेत्र में ग्राह्य नये दावों को प्रस्तुत किया है। इस वर्ग के निबंधों में रचनाकार के संकट, रचना-प्रक्रिया, नाटक के लिए उपयुक्त रंगमंचीय आवश्यकताओं, साहित्य के मूल्यांकन-विशेषकर कहानी और नाटक के मूल्यांकन में उपयोगी प्रतिमानों को प्रस्तुत किया है। समस्त सैद्धांतिक विवेचन में राकेशजी की दृष्टि यह रही है, कि जीवन का कोई भी संदर्भ निबिद्ध कक्ष नहीं है। यदि पारंपरिक मान्यताएँ समकालीन संदर्भों के निष्कर्ष पर खरी नहीं उतरती हैं तो उनकी कैचुंल उतारकर प्रयोग की भूमि में प्रवेश करना न तो अपराध हैं और न किसी के प्रति अनावश्यक अस्वीकार ही है।

समीक्षात्मक निबंध :-

राकेशजी के सभी निबंधों में उनका समीक्षक रूप उभरकर आया है, किन्तु प्रमुखतः ऐसे निबंधों में 'हिन्दी कथा साहित्य की नवीन प्रवृत्तियाँ' शीर्षक से लिखे दो निबंध 'आज की कहानी के प्रेरणास्त्रोत', 'दायरे से हटकर एक दायरा','रेडियो नायक', 'पंत और नवीन जीवन दर्शन','तुलसी की भक्ति','प्रेम तिकोन','अंदर की उफनती हुई दुनिया','युग-प्रवर्तन की चिन्ता','आज के संदर्भ में विद्रोह का सेफकोर्स','बदलता बलाघात','उपन्यास और यथार्थ-चित्रण' और 'आसपास के लोग' आदि को लिया जा सकता है। राकेशजी के समीक्षात्मक निबंधों की दो श्रेणियाँ हैं। पहली उन समीक्षात्मक निबंधों की जो किसी साहित्यिक विधा की समीक्षा के संबंधित हैं और दूसरी वह जिनमें नये साहित्य के कथ्य और शिल्प की समीक्षा को आकार प्राप्त हुआ है। दोनों ही श्रेणी के निबंधों में राकेशजी का प्रभाव सक्षम, सजग और साहसिक दिखाई देता है।

चिंतनपरक निबंध :-

इस प्रकार के निबंधों में निबंधकार का विचारशील व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। इन निबंधों में भावना और कल्पना के स्थान पर चिंतन, मनन और तर्क प्रधान होता है। चिंतन की गहराई और घनता के कारण चिंतनपरक या विचारप्रधान निबंधों में कसाव अधिक होता है। इनकी शैली प्रायः सामाजिक होती है, किन्तु जब

निबंधकार व्याख्या और विश्लेषण की राह से गुजरता है तो व्यास शैली का प्रयोग स्वतः ही होता चला जाता है । चिंतनगर्भी निबंधों में लेखक आलोच्य विषय पर गहराई से विचार करता है । राकेशजी के समय और यथार्थ के शिल्प में 'इमारते टूटने पर', 'माध्यम की खोज','बातों के तिलस्मि में','मार्क्सवादी दर्शन और मार्जुआना की भाषा', 'आज के संदर्भ में विद्रोह का सेफ्कोर्स', 'समय की कटी हुई समकालीनता', 'अनुभूति से अभिव्यक्ति तक' और 'संदर्भो की भाषा' जैसे निबंध चिंतनपरक निबंधों की जमात में बैठने के अधिकारी हैं । ये वे निबंध है जिनमें चिंतन की गहराई है , विचारों की कसावट हैं और बौद्धिकता की चमक है । 'इमारते टूटने पर' निबंध में राकेशजी ने बड़ी सूक्ष्मता और गंभीरता के साथ परिवर्तित परिवेश में टूटते-बनते मूल्यों के स्वरूप, संदर्भ, उपयोगिता और कारणों का खुला सा विश्लेषण किया है । पुरानी पीढ़ी की जो इमारत बहुत ही बारीक टुकड़े जोड़कर जाने कितने वर्षों में तैयार की गयी थी और उसे बचाने के लिए न जाने कितनी सुरक्षा की गई थी, वही जब टूटने पर आई तो अचानक भरभराकर टूट गई । आदर्शों के रंगमहल में चिपके जो काँच के मूल्य अब तक हमें भरमाये हुए थे, वे जब टूट गये तो उनके स्थापनापन्न मूल्यों की यकायक पैर रखने को जगह नहीं मिली । निबंध में आई ये पंक्तियाँ प्रस्तुत है, जिनमें राकेशजी की चिंतनशैली कितनी ठोस, घनतायुक्त और तर्काश्रित है – "कहानी हो या कविता, जिसके पास मर्यादाओं के बने हुए साँचे हैं, उनके लिए 'क्राइसिस' का क्षण कभी आता ही नहीं – प्राप्त या आगत से विच्छिन्नता की बात वे सोच ही नहीं पाते । जहाँ विश्वास चेतना की परिणति नहीं, चेतना ही किन्हीं प्राप्त विश्वासों की प्रतिलिपि है, वहाँ यह सोचा ही कैसे जा सकता है, कि कहीं आकर आजमायी हुई मर्यादाएँ असमर्थ हो जाती हैं । चली आ रही टूट जाती हैं ।"[70] परिणामतः शैली में घनता और अन्विति तो आ ही गयी है, लेखक की चिंतना में भी निरंतर निखार और परिष्कार आ गया है, उदाहरण के लिए – "जिस भाषा को हम साहित्यिक भाषा के रूप में जानते हैं और जिसे रूप देने में अपने योग पर कुछ लोगों को बहुत गर्व है, वह वास्तव में भाषा नहीं, शब्द योजना की एक शैली मात्र है । और शैली भी ऐसी कि हमारे अंदर बाहर की परिस्थितियों को ठीक से व्यक्त करने की जगह उन्हें किसी-न-किसी रूप में ढाँप और लपेटकर प्रस्तुत करने की योग्यता ही कुछ हद तक उसमें लायी जा सकी है । वह एक ऐसी ऐंद्रजालिक-सी भाषा है कि जीवन की समर्थ और साहसिक अभिव्यक्ति तो उसमें संभव ही नहीं है – संभव है केवल उस साहसिक अभिव्यक्ति से बचना या जीवन से सीधा संपर्क न रहने पर अपनी तत्संबंधी कुंठाओं को शब्दजाल में छिपाये रखना ।"[71] 'अनुभूति से अभिव्यक्ति तक'

शीर्षक से लिखे गये निबंध में चिंतन और विचार की जो सूक्ष्मता है, जो तलस्पर्शी गहराई और मानस-सागर के गहन तल का बिंब है, वह इस निबंध को श्रेष्ठ चिंतनप्रधान निबंध सिद्ध करता है। राकेशजी के चिंतनपरक निबंधों में तार्किकता, सूक्ष्म विवेचनात्मकता और किसी विषय की या विचार की तह तक पहुँचने की प्रवृत्ति मिलती है। इनके इस श्रेणी के निबंधों की विवेच्य सामग्री या तो साहित्यिक है या बदलते परिप्रेक्ष्य में टूटते बनते मूल्य हैं या फिर समकालिन परिवेश है। प्रत्येक अनुच्छेद में विचारों को दबा-दबाकर भरने की कोशिश, बात की बारीकी, तर्कों की योजना-विवेचना के ढंग और प्रश्न उठाकर उसे एक निश्चित उत्तर से जोड़ने की प्रवृत्ति राकेशजी के चिंतनपरक निबंधों की शीर्षस्थ विशेषताएँ हैं।

आत्मपरक निबंध :-

निबंध का यह रूप सजग, प्राणवान और शक्तिमान है। राकेशजी द्वारा लिखित इस श्रेणी के निबंधों में 'चीटियों की पंक्तियाँः जमीन से कागजों तक','ब्याह कर ही लूँ', और 'खाकसार की मेज' को लिया जा सकता हैं। यों राकेशजी के कुछ निबंध ऐसे हैं, जिनका आधा भाग तो आत्मपरक निबंधों की श्रेणी में आता है और शेष किसी-न-किसी साहित्यिक विवेचना में परिणित पा गया है। 'चीटियों की पंक्तियाँः जमीन से कागजों तक' एक विशिष्ट निबंध है। इसमें राकेशजी का अपना और अपने माता-पिता का परिवेश अंकित है। राकेशजी ने इस आत्मांकन के सहारे कहीं अपनी विनोदवृत्ति, कहीं व्यंग्यवृत्ति, कहीं पीड़ा तो कहीं करूणा को व्यक्त किया है। पिता की मृत्यु का क्षण राकेशजी के अंतर को न केवल छील जाता है, अपितु वेदनामिश्रित करूणा से भी भर जाता है। इसीलिए राकेशजी के मन में जो आता है वह इस प्रकार है : "मगर उस रात खिड़की की सलाखों के पास से, आकाश की गहराईयों में न जाने कितना कुछ देख लिया था, वह सब जो बीत चुका था और जिसे अभी बितना था। बीते हुए कल के कितने ही साये आने वाले कल के मोड़ पर आ जमा हुए थे। आने वाला वह कल बिजली के तारों तथा पेड़ों की टहनियों से परे अभी जुगनूँ की तरह चमक जाता था कभी झिलमिला उठता था।"[१२] इस आत्मपरक निबंध में राकेशजी के जीवन के अनेक प्रसंग पारिवारिक परिवेश के साथ अंकित हुए हैं। कहीं दादी माँ, कहीं माँ, कहीं आस-पड़ोस, कहीं पिताजी तो कहीं कर्जदार हैं। इन सबके बीच राकेशजी का मन है, उसमें उठते-बैठते मनोभाव है। इस प्रकार विविध मनोभावों के चित्रण, परिवेश के अंकन और पारिवारिक संस्कारों की जकड़न को राकेशजी की कलम से सार्थक और यथार्थ

अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। 'खाकसार की मेज' निबंध का प्रारंभिक अंग आत्मपरक है, लेखक की निजता का अवबोधक है। उसमें लेखक के लेखन-स्थल का वर्णन हुआ है। लेखक की मेज का जो बिंब लेखक ने दिया है वह किसी भी लेखक की मेज का हो सकता है। रोचकता, विनोदवृत्ति और कलाकार के स्वभाव की परिचायिका 'खाकसार की मेज' सचमुच मेज नहीं - मूँह बोलती तसवीर और कोई धनिष्ठ चरित्र है। अन्य निबंधों की अपेक्षा राकेशजी ने आत्मपरक निबंध उनकी निजता, भावुकता, विनोदीवृत्ति, परिवेश सजगता और क्षण-प्रतिक्षण बदलते मनोभावों के अभिव्यंजक है। इनमें लेखक का हृदय रमता गया है और पाठकों को भी उसीमें बहाता चलता है। इन निबंधों का स्वभाव खुला हुआ, मन अनुरंजित व विनोदी तथा हृदय कल्पना तरंगों पर तैरता हुआ किसी ऐसे परिवेश में जा मिला है जहाँ उसे कोई अपना स्नेही मिल गया है।

व्यक्तिपरक निबंध :-

व्यक्तिपरक निबंधों से तात्पर्य उन निबंधों से है जो संस्मरण और रेखाचित्र शैली के योग से किन्हीं आत्मीय व्यक्तियों पर लिखे जाते हैं। व्यक्तिपरक निबंधों में 'देखो बच्चु ...!', 'एक एक्सक्लेमेशन मार्क उर्फ' और 'गलतफहमी नहीं' प्रमुख है। इन निबंधों के विषय क्रमशः उपेन्द्रनाथ अश्क, राजेन्द्र यादव और डॉ.इन्द्रनाथ मदान है। ये लेखक के आत्मीय है। उसके जीवन और परिवेश में ही साँस लेनेवाले सर्जक-कलाकार हैं। जहाँ तक राकेशजी के इस वर्ग के निबंधों की विशेषताओं के प्रश्न है, वे ये है :

(१) इन निबंधों में सहयोगी और सहयात्रियों के व्यक्तित्व का विश्लेषण पूरी तरह किया गया है। न कहीं कोई दुराव-छिपाव है और न ही कोई अतिरंजित वर्णन विश्लेषण ही है।

(२) ये निबंध आत्मीय व्यक्तियों के स्वभाव, आचरण और व्यक्तित्व का विश्लेषण करने के साथ-साथ लेखक के व्यक्तित्व और स्वभाव का भी विश्लेषण है।

(३) व्यक्तिपरक निबंधों की तीसरी विशेषता व्यक्ति के आस-पास के परिवेश के अंकन में भी निहित है। इनमें लेखकीय अनुभवों का भी सांकेतिक विवरण मिलता है। इससे जो महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आता है वह यह है कि भले ही गौण रूप में सही किन्तु लेखक व वर्णित व्यक्ति का जीवन-क्रम और कतिपय विशिष्ट घटना-प्रसंग भी इन निबंधों में आकार पाते हैं।

(४) शैलीगत सहजता, सादगी, निच्छलता, वर्णनपुष्ट कथात्मकता और व्यक्तिगत रुचि-अभिरुचि और प्रतिक्रिया भी इन निबंधों में मिलती है। कहीं-कहीं व्यंग्य-विनोद की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है।

(५) व्यक्तिपरक निबंधों की भाषा भावनाप्रधान कम और सीधी-सपाट अधिक होती है। उसमें अकृत्रिम शब्द-विधान, दैनिक-जीवन के शब्द और चालू मुहावरों में अपने कथ्य को अभिव्यक्त किया जाता है। यहाँ गंभीर से गंभीर तथ्य सरल से सरल भाषा में अभिव्यक्ति होता हुआ विषय को रोचक, आकर्षक और प्रभावी बना देता है।

राकेशजी के तीनों निबंधों में ये उपरनिर्दिष्ट विशेषताएँ बखूबी देखी जा सकती हैं। अश्क, यादव और मदान मे व्यक्तित्व-विश्लेषण के साथ-साथ इनमें लेखकीय दृष्टि भी दिखाई देती है। उसका निजी व्यक्तित्व एवम् स्वभाव भी इन सहयात्रियों की तरह है। 'देखो बच्चू... !' का प्रारंभिक अंश तो राकेशजी और उनके परिवेश का है। लगभग आधा निबंध पढ़ने के बाद जब यह अपने आत्मीय, विनोदी और जिंदादील साथी अश्क की तरफ मुड़ते हैं तो उनके व्यक्तित्व की हिंमत, जर्बादानी और विनोदवृत्ति स्पष्ट हो जाती है : "चार दोस्त आते तो उन्हें चाय पिलाने के लिए किसी होटल में ले जाता और अपना काम बिना पिये ही चला लेता। बनियान हाथ से धो लेता था, मगर उन्हें सूखने के लिए फैलाना भी होता है। यह बात इसे कम ही याद रहती।"[९३]

❋ वर्णनात्मक निबंध :-

जिन निबंधों के अंतर्गत किसी वस्तु, दृश्य, स्थान आदि का वर्णन किया जाता है, उन्हें वर्णनात्मक निबंधों की संज्ञा प्राप्त होती है। वर्णनगत सजीवता, यथार्थता, कल्पना, अलंकारिकता और प्राकृतिक छवियों का मूर्तिकरण इस श्रेणी के निबंधों का सहज गुण है। राकेशजी के 'परिवेश' में संकलित 'गुलमर्ग की खिड़की से एक रात', 'एक हाथः कावेरी के किनारे' और 'यात्रा का रोमांस' को वर्णनात्मक निबंधों की श्रेणी में लिया जा सकता है। इनमें यात्राओं का वर्णन किया गया है। अतः इस आधार पर इन निबंधों को यात्रा-निबंध भी कहा जा सकता है। इन निबंधों में 'यात्रा का रोमांस' एक ऐसा ही निबंध है, जिसमें राकेशजी ने पहले यायावर की आकांक्षा और वृत्ति का वर्णन किया है, फिर अपनी यात्रा के कुछ प्रसंग शब्दबद्ध किये है। पहला दृश्य है कृष्णासागर झील का और दूसरा है बाडीपुर की मंडी का और तीसरे का संबंध 'ग्लेशियर से

लिड्डरवटे' तक की यात्रा से है। लेखक ने पूरी तन्मयता के साथ इन सभी का वर्णन किया है। झील का सौन्दर्य इस निबंध में बड़ा आकर्षक बन पड़ा है। "कृष्णसागर झील। रंगीन प्रकाश से आलोकित झरना। वृन्दावन उद्यान के रंगीन फव्वारों की चकाचौंध। पीछे अँधेरा आकाश है जिसमें फीके से तारे झिलमिलाते हैं।"[७४] 'कोल्हाई ग्लेशियर' में पहाडी पर स्थित दूधसर झील के सौन्दर्य को स्पष्टतः वर्णित किया गया है। इसी क्रम में 'वूलर झील' के विस्तृत किन्तु, लहरिल प्रवाह का वर्णन भी बड़ा काव्यात्मक है। 'गुलमर्ग की खिड़की से एक रात' निबंध में गुलमर्ग की आभा, वहाँ की हरीतिभा, श्वेतिभा और बादलों के आकर्षण वलय का सौन्दर्य अंकित हुआ है। यहाँ के दिन, सूर्योदय, सूर्यास्त और रात्रियाँ इतनी मोहक और आकर्षक होती है, कि राकेशजी की अनुभूतियाँ शब्दों की जाली में पूरी तरह बँध नहीं पायी है। गुलमर्ग के प्राकृतिक परिवेश के बिंबों से सजा यह निबंध राकेशजी की कल्पनागत ताजगी, प्रकृतिपरक सद्यता और वर्णनगत सरसता का जीवंत प्रमाण है। राकेशजी ने अपनी कलम को भावों के रंगों में घोलकर, सौन्दर्य से सिक्त कर और शब्दों को सूर्य से दीप्त करके आलोच्य निबंध का सृजन किया है। 'एक हाथः कावेरी के किनारे' निबंध भी इसी श्रृंखला की एक अटूट और सुदृढ़ कड़ी है। इसमें कावेरी नदी के सौन्दर्य और आकर्षण को अभिव्यक्त किया गया है।

७.२.४ राकेशजी के निबंधों की भाषा-शैली :-

राकेशजी की साहित्यिक सफलता में उनकी भाषा-शैली का महत्वपूर्ण योगदान है। राकेशजी की शैली उनके व्यक्तित्व का ही प्रतिरूप प्रतीत होती है। व्यक्तित्व विरहित पर शैली की कल्पना थोपी है – "लेखक की शैली के निर्माण में परंपरा और व्यक्तित्व दोनों का योग रहा है। यदि परंपरा व्यक्तित्व को दबाले तो रचना में वह गुण नहीं आएगा जो साहित्य में उसे एक विशिष्ट स्थान दे सकता है। व्यक्तित्व का प्रभाव ही उसमें वह गुण ला सकता है और अनुभूति में तीव्रता होने पर प्रभाव स्वतः पैदा हो सकता है।"[७५] निबंध शैली की कसौटी है। शैली का सच्चा उत्कर्ष निबंध में ही देखा जा सकता है। रचनाकार की शैली का रूप स्वरूप लेखक के परिवेश, उसकी मनोदशा, ज्ञान गरिमा और अनुभूति पर निर्भर है। प्रसाद शैली, व्यास शैली, समास शैली, विवेचन शैली, हास्य-व्यंग्य शैली, भावात्मक शैली, तरंगशैली आदि शैली के मुख्य प्रकार है। राकेशजी की निबंध शैली में वैविध्य कम होते हुए भी मौलिकता की मुहर लगी है। उपरोक्त शैलियाँ राकेशजी के निबंधों में समकालीन प्रभाव से सुसज्जित मिलती हैं।

राकेशजी ने शैली में प्रतीक शैली, प्रलाप शैली, विक्षेप शैली, सुत्र शैली, मनोभावाभिव्यंजक शैली का प्रयोग किया है और प्रत्येक शैली प्रयोग में उनकी व्यक्तित्वमत्ता झलकती है। शैली के समान ही राकेशजी भाषा प्रयोग में भी सतर्क रहे हैं। उनके आत्मपरक व व्यक्तिपरक निबंधों में बोलचाल की प्रवाही भाषा हैं, जहाँ शब्द सस्वर गतिमान और आगे की ओर दौड़ते प्रतीत होते हैं। बोलचाल की शब्दावली का सार्थक व साभिप्राय प्रयोग राकेशजी की विशिष्टता रही है। उनकी इस भाषा के प्रयोग से वाक्य जीवंत हो चूके हैं। बोलचाल की भाषा में कही कहीं तो अत्यंत ही घरेलू शब्द जो जनमानस में रचे बसे हैं आए हैं। आधुनिक जटिल जीवन, विसंगति, निरर्थक व अर्थहीन जीवन स्थिति का प्रभावपूर्ण अभिव्यंजन हुआ है। कहीं कहीं पर उनकी भाषा काव्यात्मक हो उठी है। भाषा में वाक्य एक दूसरे के भीतर से विकसित होते प्रतीत होते हैं। उनके निबंधों की भाषा प्रभावी, आकर्षक और वजनदार है। वह परिष्कृत भी है बोलचाल की भी है। उनकी भाषा में सौन्दर्य है, करुणा है, तसल्ली है, यथार्थ है और है सरलता, भावुकता व अकृत्रिमता। शैली के जो प्रकार उपर आए हैं वे राकेशजी के निबंधों में कहीं न कहीं मिल जाते हैं। प्रसाद शैली अधिकांश सरल हास्य विनोद युक्त निबंधों में प्रयोग होती है। राकेशजी के निबंध 'देखो बच्चू...', 'यात्रा का रोमांस' और 'अस्वस्थ और अप्रसन्न' में इस शैली को देखा जा सकता है। व्यास शैली में एक ही भाव या विचार को कई तरह से घुमा फिराकर प्रस्तुत किया जाता है। राकेशजी के निबंध 'अनुभूति से अभिव्यक्ति तक', 'संदर्भों की भाषा' और 'समय व यथार्थ के शिल्प में' निबंधों में यह शैली व्यक्त है। भावोद्बोधक शैली में लेखक अत्यधिक भावुक हो जाता है। भावना का आवेग इतना बढ़ जाता है कि पाठक के मन को भी उसी प्रवाह में बहा ले जाता है। राकेशजी की यह प्रिय शैली है। इस शैली का प्रयोग उनके यात्रापरक, आत्मपरक एवम् भावात्मक निबंधों में हुआ है। व्यंग्य शैली की कोई सीमा नहीं होती। आधुनिक परिवेश में रचनाकार व्यंग्य से नहीं बच सकता। राकेशजी के निबंधों में इस शैली का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। उनका निबंध 'माध्यम की खोज' व्यंग्य शैली में लिखा गया है। पुस्तक प्रकाशन एवम् लेखन के विषय में राकेशजी ने माना है कि "जिस तरह हिन्दी का हर अध्यापक छोटा-मोटा लेखक होता है उसी तरह हर पुस्तक विक्रेता छोटा-मोटा प्रकाशक होता है।"[७६] राकेशजी के 'विज्ञापन युग' में इस शैली का भी प्रयोग हुआ है। तरंग शैली के निबंधों में विचारों की एक तरंग मिलती है। इसमें विचार विचार से भाव भाव से टकराते हैं। एक भाव दूसरे भाव पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करता है। राकेशजी के आत्मपरक निबंधों की

यह शैली है। इन शैलियों के अतिरिक्त राकेशजी ने अन्य शैलियों का प्रयोग किया है। धारा शैली कई बार सरल शब्दों के सहारे एक प्रवाही समा का निर्वाह किया करता है। 'दिल्ली रात की बाहों में' निबंध में इस शैली का प्रयोग किया है। सूत्र-व्याख्या शैली में लेखक अपने कथ्य को संप्रेषित करते सूत्र वाक्य लिखकर उसकी व्याख्या करता है। आचार्य शुक्ल ने इस शैली का सर्वाधिक प्रयोग किया था। राकेशजी के चिन्तनात्मक निबंधों में इस शैली का प्रयोग है। 'परिवेश' और 'बकलम खुद' राकेशजी के इस शैली से युक्त निबंध हैं। "जिंदगी एक वास्तविकता है और आत्महत्या उस वास्तविकता से आँख मूंद लेने का प्रयत्न।"[९७] हर अनुभूति, वह किसी विचार को जन्म दे या न दे, किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त अवश्य होती है। प्रश्न शैली में लेखक स्वयं प्रश्न उठाता है बाद में स्वतः ही विचार करता रहता है। राकेशजी ने जब जब इस शैली का प्रयोग किया है प्रश्न पर प्रश्न स्वतः ही उतरते चले गए हैं जिनका समाधान राकेशजी ने अपने निबंधों में किया है। 'समय से कटी हुई समकालीनता' नामक निबंध में राकेशजी ने इसी शैली का प्रयोग किया है। निर्णयात्मक शैली का प्रयोग स्पष्टतः निष्कर्ष देते समय होता है। विवेचनात्मक निबंधों में इस शैली का खुलकर प्रयोग हुआ है। कहीं -कहीं राकेशजी ने अपने अटल निर्णय भी दिए हैं। 'रंगमंच और शब्द', 'दिल्ली रात की बाहों में' और 'कहानी स्थावर और जंगम' में संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। राकेशजी ने सदैव नए प्रयोगों में विश्वास किया है। कुछ न कुछ नया करने की ललक थी। उपरोक्त शैलियों के अतिरिक्त उन्होंने अन्य शैलियों का प्रयोग किया है। 'देखो बच्चू ...' और 'कोई गलतफहमी नहीं' जैसे निबंधों में संस्मरण व रेखाचित्र शैली का मिला जुला रूप है। उनकी शैलियों में नयापन है और यह नयापन समकालीन परिवेश के दबाव के कारण है। इस प्रकार राकेशजी के पूरे निबंध साहित्य के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके निबंध शैली, शिल्प, विषय और मौलिकता की द्रष्टि से अतीय है।

७.३ डायरी :

"राकेशजी उन लोगों में थे, जो बड़ी लगन व नियमितता से डायरी लिखते हैं। इन डायरियों की सबसे बड़ी विशेषता है जीवन और माहोल की छोटी से छोटी चीज से बड़ी चीज तक अत्यंत बेलाग और गहन प्रतिक्रियाएँ।"[९८]

"डायरियाँ, लेखक को अपना और अपने हाथ से किया हुआ पोस्ट-मॉटम होती है। ...एक लेखक कैसे तिल-तिल जीता और मरता है - अपने समय को सार्थक बनाते हुए खुद को कितना निरर्थक पाता है और अपनी निरर्थकता में कैसे वह अर्थ पैदा करता है इसी रचनात्मक आत्मसंघर्ष को डायरियाँ उजागर करती है।"[१९] राकेशजी की डायरी इसी आत्म संघर्ष के एकांतिक क्षणों का लेखा-जोखा है, जिसे वह किसी के साथ नहीं बाँट पाये। उनकी डायरी में छोटी-से -छोटी घटनाएँ और बड़े-से-बड़े संदर्भ उल्लिखित हैं। राकेशजी की डायरी कविता और गद्य का मिश्रण है। सन व दिनांक वार लिखी उनकी डायरी साहित्यिक डायरी है। उनकी डायरी में कहीं प्रकृति की आकर्षक छवियाँ हैं, कहीं भावुक मन के बिंब है, कहीं जीवन के अनुभव के आधार पर व्यक्त प्रतिक्रियाएँ हैं तो कहीं अकेलेपन का असह्य अहसास है। अकेलापन अभिशाप भी हो सकता है, प्रत्यावर्तन भी। कटे होना भी हो सकता है जूडे होने का अंतराल भी। राकेशजी की डायरी में प्रकृति की अद्भूत छवि हैं - आँख बारबार इस तरफ से हटकर उस तरफ चली जाती हैं, बेइंतिहा खूबसूरती है दोनों तरफ - बादलों से ढ़ंकी हरियाली की। घने नाटे पेड़ों के बीच-बीच से उठे हुए नारियल के पेड़ गहरे बादलों के आगे अंकित और हल्की धुंध से ढ़ंके एक तरफ हल्की ऊँचाइयाँ और दूसरी तरफ हरे रोयों का समतल... । एक भावुक रचनाकार होने के कारण उनकी डायरी में काव्यात्मकता है - जुहू बीच। रात के ग्यारह। उमड़ती लहरें। नागिनों की तरह करवटें लेती। उनका पैरों तक आना और पानी हो जाना। शरीर में उठती कंपकंपी। स्नायुओं में दौडती झुरझुरी। सहसा तेज-तेज चलना। जैसे कि एक बीज अपने में भर आया हो। अपने भरे होने की अनुभूति से सामने के फैलाव को देखना, सरकती रेत पर पांव जमाए दूर से दूर के बिन्दु तक जाने की कोशिश करना ...। राकेशजी की डायरी में कविता बोलती प्रतीत होती हैं। राकेशजी ने अपनी डायरी में दैनिक जीवन में मिलने वाले मासूम और धूर्त चेहरों की धोखा-घडी का चित्रांकन साफ और स्पष्ट रूप में किया है उसमें किसी प्रकार का दुराव एवम् छिपाव नहीं है। इसी प्रकार स्त्री जाति के व्यवहार से संबंधित अपनी डायरी के अंश में राकेशजी ने लिखा है। "स्त्रियाँ प्रायः इस तरह क्यों करती हैं जैसे पुरुष से किसी बात का बदला ले रही हों। अच्छे से अच्छा खाना बनायेंगी, उसे खिला देगी खुद जैसे उसका दिल रखने के लिए थोड़ा सा चख लेगी। उसकी जरा सी बीमारी में अच्छे से अच्छा इलाज कराएगी, पर अपनी बीमारी में आँख मुंदकर पडी रहेगी। जब आदमी चाहेगा कि वे अच्छे कपड़े पहनकर आये, तो बहुत साधारण से कपड़े निकाल लेगी और साबित करेंगी कि उनसे अच्छे कपड़े हैं ही नहीं।"[२०]

वस्तुतः राकेशजी ने अपने साहित्यिक जीवन में प्रारंभ से ही डायरी लिखना शुरु कर दिया था। इसमें उन्होंने दैनिक जीवन की घटनाओं के अलावा अपने आसपास की जिंदगी, अपने पुरुष व महिला मित्रों के लेखन की प्रगति संबंधी योजनाओं, साहित्य की गतिविधि आदि सबतरह की बातों का उल्लेख किया है। यद्यपि वह क्रम बंद भी हो जाता था किन्तु शीघ्र ही शुरु करने की लालसा बराबर बनी रहती थी। उन्होंने अपनी डायरी बहुत ईमानदारी से लिखी है। अपनी महिला मित्रों, प्रेमिकाओं, विवाहों की चर्चा खुलेपन से की है, स्वयं की कमजोरियों को वर्णित किया है। वास्तव में डायरी मनुष्य के व्यक्तित्व की सच्चाई का आईना होती है। राकेशजी ने आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया था जिसका कुछ अंश सारिका के मार्च १९७३ अंक में प्रकाशित हुआ है। उनकी आत्मकथा अधूरी ही रह गई। आत्मकथा पूर्ण होने से पूर्व ही उनका जीवन पूरा हो चुका था। उनकी आत्मकथा के अंश यह सिद्ध करते हैं कि साहित्य जगत ने उस मनीषी को खो दिया है जो यदि जीवित रहता तो एक अनूठी चीज साहित्य को देता। उनकी आत्मकथा भावुकता के रंग में डूबी हुई है।

७.४ अनुवाद :

राकेशजी के द्वारा अनुदित तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं – 'मृच्छकटिक','शाकुन्तल', और 'एक औरत का चेहरा'। संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठित नाटककार शूद्रक का बहुचर्चित नाटक 'मृच्छकटिकम्' का हिन्दी अनुवाद राकेशजी ने प्रस्तुत किया है। संस्कृत की समृद्धनाट्य-परंपरा से गहरे परिचय के कारण उनकी नाट्य-कृतियाँ अधिक सफल हैं। कालिदास और शुद्रक की नाट्य-कृतियों की अभिनेयता और काव्यात्मकता से वे प्रभावित थे – 'आषाढ़ का एक दिन' उसका प्रमाण है। कालिदास की विश्व-पसिद्ध कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' और शुद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' का सरल भाषा-शैली में अनुवाद कर राकेशजी ने सामान्य पाठकों के लिए उसे सुलभ बनाया। अनुवाद विधा के प्रति राकेशजी की गंभीरता का पता इस बात से चलता है कि उन्होंने इन महान कृतियों को पूरे मनोयोग और गहनता से अनुवाद किया है। इससे पूर्व उन्होंने भास के 'प्रतिभा नाटक' का हिन्दी अनुवाद करने का प्रयास किया था, किन्तु उसके मंगलाचरण के श्लोक का रूपांतर ही ऐसी पेचीदा समस्या थी, कि उसने नाटक के अनुवाद का सारा जोश ठण्डा कर दिया। किसी भी रचना के भाव का व्याख्या द्वारा सम्प्रेषण तो संभव है, किन्तु अनुवाद द्वारा अन्यूनातिरिक्त भाव का पुनःस्थापन अत्यंत श्रम साध्य एवम् नाजुक कार्य है। सन् १९६१ ई. में 'मृच्छकटिकम्' का अनुवाद हुआ जिसके पीछे पूर्ववर्ती

अनुवादों के प्रति असंतोष का भाव छिपा था। आज के संदर्भ में रंगमंचीय रूप में नाटक को प्रस्तुति के लिए उन्होंने इस नाटक का अध्ययन एवम् अनुवाद किया। सन् १९६५ ई. में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। अनुवाद के संबंध में राकेशजी की धारणा और उनके विचार तथा अनुवाद के प्रति उनकी गंभीरता का परिचय शाकुन्तल की भूमिका से मिलता है। " 'मृच्छकटिकम्' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अनुवादों में शूद्रक और कालिदास के साथ कहाँ तक न्याय हुआ है यह मैं नहीं कह सकता। परंतु मेरा प्रयत्न अवश्य रहा है कि जहाँ तक बन पड़े मूल के भाव और अर्थ दोनों की अनुवाद में रक्षा की जाय, साथ ही यह भी कि अनुवादक की ओर से अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग कम हो और किसी भी तरह का अतिरिक्त आशय उसमें न आने पाए। फिर भी कुछ स्थल ऐसे हैं, जहाँ नाटकीय अन्विति के निर्वाह के लिए या श्लोकों के अनुवाद का मुक्तक लाभ बनाये रखने के लिए थोड़ी-बहुत स्वतंत्रता मुझे लेनी पड़ी है। उसके लिए बहुत अधिकार मैंने अपने को नहीं दिया, पर मूल का अनुसरण करने के लिए लय और अन्विति की उपेक्षा कर जाने से अनुवाद का उद्देश्य ही शायद पूरा न हो पाता। अनुवाद में बहुत-सी सीमाएँ अनुवादक की हो सकती हैं पर कुछ सीमाएँ ऐसी भी हैं जो इस तरह के प्रयत्न में स्वतः अन्तर्हित रहती हैं। फिर मूल रचना से आज का सदियों का अंतर-भाषा, शिल्प, भाव-योजना तथा परिकल्पना का - अपने में ही एक सीमा है।"[२१] राकेशजी इन अनुवादों में कितना सफल हैं यह संस्कृत और हिन्दी दोनों के प्रकांड विद्वान ही बता सकते हैं, पर सामान्यतः ऐसा कहीं भी नहीं लगता है कि ये अनुदित रचनाएँ हैं। भाषा के संदर्भ में भी हम पाते हैं कि अनावश्यक रूप से तत्सम शब्दों की बहुलता नहीं है। उनमें एक सहज प्रवाह है। मूल भावों की अभिव्यक्ति में राकेशजी ने हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप शब्दों का चयन किया है तथा भाषा को नाटकीय रखने का प्रयास भी किया है। उदाहरण स्वरूप 'मृच्छकटिकम्' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं - "मेघ के गर्भ में छिपी हुई विद्युत की तरह रात्रि के अंधकार में तू दिखाई नहीं दे रही ; परंतु ऐसा न हो कि तेरी माला की सुरभि और तेरे नूपुरों का शब्द तेरी स्थिति का आभास दे दें। बरसते हुए मेघ विद्युत की डोर बँधे हाथी हैं। जो इन्द्र का आदेश पाकर परस्पर प्रयत्न से चाँदी की रस्सी से धरती को उठा रहे हैं।"[२२] स्वयं नाटककार होने के कारण राकेशजी ने नाटकीय अन्विति के निर्वाह के लिए थोड़ी-बहुत स्वतंत्रता से काम लिया है। कई जगह अपनी ओर से कोष्ठक डाल दिये हैं तथा कहीं पात्रों के प्रवेश के संबंध में मौलिक निर्देशन दिये हैं। राकेशजी ने इन अनुवादों के संबंध में कहा है - "हर दूसरी-तीसरी पीढ़ी के बाद और नहीं तो भाषा की द्रष्टि से ही, इन

रचनाओं के नये अनुवादों की आवश्यकता पडती रहेगी। इस तरह यह अनुवाद भी आज के लिए है – आने वाले कल को इसका स्थान किसी और अनुवाद को लेना होगा।" अनुवाद के संबंध में राकेशजी की गहरी सूझ–बूझ और उनके वस्तुनिष्ठ द्रष्टि का परिचय रस से मिलता है। राकेशजी के ये अनुवाद काव्य–चेतना और रंग–द्रष्टि दोनों से महत्त्वपूर्ण हैं।

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हेनरी जेम्स की श्रेष्ठत्तम कृतियों में से एक है – 'दि पोट्रेट ऑफ ए लेडी' – इस उपन्यास में नायिका इजाबेल आर्चर के माध्यम से कुछ मौलिक समाजशास्त्रीय एवम् दार्शनिक प्रश्नों को उठाकर उनका समाधान देने का प्रयास किया गया है। अपने समय में एक वर्ग का यथार्थ अपनी समग्रता में इस उपन्यास में व्यक्त है। हेनरी जेम्स के उपन्यास के अनुवाद संबंधी कठिनाई से राकेशजी परिचित थे और उनके सामने प्रमुख रूप से दो चुनौतियाँ थीं – अंग्रेजी मुहावरे में जो फोर्स और सामर्थ्य हैं उन्हें हिन्दी में कैसे बनाये रखें ? दूसरी चुनौती अनुवाद को अनुवाद की कृत्रिमता से बचाते हुए अपनी भाषा की सहज अन्विति में अर्थ संप्रेषण की थी। प्रायः एक वर्ष के परिश्रम के उपरांत 'एक औरत का चेहरा' अनुदित रूप में सामने आया। विश्व की एक श्रेष्ठ कृति का अनुवाद राकेशजी की ही नहीं, हिन्दी साहित्य की उपलब्धि है। राकेशजी ने अनुवाद को एक पृथक् विद्या के रूप में स्वीकारा तथा उसके महत्त्व को भी अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त किया है।

७.९ जीवनी – साहित्य :–

तरूणों को ध्यान में रखकर 'समय सारथी' में राकेशजी ने ढ़ाई हजार वर्षों के विश्व के महान बारह समय सारथियों की जीवनियाँ ही नहीं, किन्तु इस अवधि की प्रमुख मनःस्थितियों का भी उल्लेख किया है। "सुदूर अतीत में गौतम बुद्ध के मन में उठे प्रश्नों से लेकर वर्तमान में मार्टिन लूथर किंग की हत्या तक कहीं एक श्रृंखला है जिसे यहाँ जोड़ने का प्रयत्न किया गया है।"[२३] भारतीय मनःस्थितियों के अध्ययन के साथ ही प्रत्येक काल खण्ड में विश्व मनःस्थिति का भी समानान्तर अध्ययन की सुविधा के लिए विश्व के विचारकों को भी सम्मिलित किया गया हैं।

गौतम बुद्ध :-

'गौतम बुद्ध' जीवनी में राकेशजी ने गौतम के जीवन-परिवेश को देने के बाद उनके मन को आहत, हंस, जीर्ण शरीर युक्त वृद्ध, रोगग्रस्त व्यक्ति तथा शव ले जाते दृश्य ने झकझोर दिया था । उनके युग-प्रश्नों की टकराहट ने उनमें अकुलाहट पैदा की । जिसके समाधान ढूँढ़ने सुंदरी यशोधरा और शिशु राहुल एवम् राजपाट को छोड़ तप करने लगे । उनके उपदेशों का सार सत्य, अहिंसा, प्रेम और त्याग का आचरण था जिसे विश्व के अनेक देशों ने अपनाया । राकेशजी ने उनके उपदेश को सरल और लोक हृदय को छू लेनेवाली भाषाशैली में प्रस्तुत किया है ।

सुकरात :-

'सुकरात' में राकेशजी ने सुकरात का जीवन-दर्शन उनके जीवन-दर्पण की खोज थी । "यह आत्मदर्पण की खोज ही उन्हें सालती रही । व्यक्ति की आत्मा महान् कैसे हो सकती है ?"[२४] इसी मनःस्थिति में उनके अन्तर से दर्शन तत्त्व फूटा था । सुकरात का जीवन उनके आदर्शों और सिद्धांतों का सजीव उदाहरण था । जीवन में अनेक कष्ट और अत्याचारों को झेला परंतु अपने क्रांतिकारी विचारों की चेतना जगाते रहे । वे मनुष्यता के अभाव में मनुष्य दो कौड़ी का समझते थे । युवा पीढ़ी को पथ भ्रष्ट करने के आरोप में उन्हें मृत्युदंड दिया गया । शरीर को मृत्युदंड मिला, पर उनके विचार अमर हैं ।

अशोक :-

'अशोक' में कलिंग के युद्ध में हुए नरसंहार के परिणामस्वरूप सम्राट अशोक ने बुद्ध के सिद्धान्तों को देश-विदेश जन-जन तक फैलाया । राजनीति में वे उग्र विचारधारा रखते थे । उनके जीवन का यह कलिंग-युद्ध अंतिम युद्ध था और अंत में आचार्य उपगुप्त से दीक्षा लेकर अपने सभी कार्य, कामनाएँ और साम्राज्य को धर्म के आश्रित कर लिया । अशोक साम्राज्य से उठी बौद्ध क्रान्ति पूरे एशिया की धार्मिक क्रान्ति बन गई ।

जोन आफ आर्क :–

'जोन आफ आर्क' में जोन एकान्तप्रिय, अशिक्षित और एक सामान्य किसान परिवार की पुत्री थी। एकान्त मनोयोग से उसने दैवी शक्ति प्राप्त कर ली थी। १६ वर्ष की अवस्था में उसने अपने अंदर के आदेश के अनुसार देश की रक्षा करने तथा वास्तविक शासक को राजमुकुट देने का निश्चय किया। फ्रान्स में १४१२ ई. में उसका जन्म हुआ था। जीवन में अनेक सफलताओं के साथ ही जोन को अनेक असफलताएँ भी मिली। कंथौनिए नगर पर आक्रमण का समाचार पाते ही वह युद्ध में कूद पड़ी। अंग्रेजों द्वारा उसे बंदी बनाकर ३० मई, १४३१ ई. में फ्रान्स के नगर ढआँ के चौराहे पर निर्वस्त्र कर जीवित जलाया गया। इस घटना का वर्णन राकेशजी ने हृदयद्रावी शैली में प्रस्तुत किया है।

कबीर :–

'कबीर' में कबीर राजनीतिक और सामाजिक संक्रान्तिकाल में तथा धार्मिक आंदोलन जब चल रहा था, उन्हीं दिनों उनका जन्म एक सामान्य परिवार में हुआ। मौलवी उसे काफिर कहते और पण्डित उसे अछूत कहकर स्वीकार नहीं करते थे। रामानन्दजी ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया था। कबीर साम्प्रदायिक कट्टरता से झुझने लगे। सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और भेदभाव की निंदा कर समाज में समानता की स्थापना करने लगे। उनका सूत्र था, "हरि को भजे सो हरि का होई।" बाह्य आचरण मूलक आडम्बर पूर्ण धर्माचरण का उन्होंने विरोध किया। कबीर के उपदेश और भक्ति का स्वर साढ़े चार सौ वर्ष बाद भी मानव मात्र को आज भी झकझोर रहा है। "यह संसार कागज की पुड़िया बूँद पडे घुल जाना है" तथा "करका मनका डार के मनका मन का फैर" जैसे क्रांतिकारी भाव और विचार उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व की चेतना स्फुरित करती रहेंगी।

मीरा :–

'मीरा' में जैसे जोन आफ आर्क ने अपने को आग की लपटों के हवाले कर दिया, उसी आस्था और धैर्य के साथ मीरा ने विष का प्याला होठों से लगा दिया था। महाराजा साँगा के पुत्र भोजराज की रानी मीरा 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' को समर्पित हो चूकी थी। विवाह के कुछ वर्ष बाद ही पति की मृत्यु के पश्चात् मीरा को

अनेक यातनाएँ दी गई । पर वह तो 'हेरी मैं तो प्रेम दिवानी, मेरे दरद न जाणे कोय ।' गाते हुए नंदलाल को अपने नैनों में बसाकर उसकी भक्ति में जीवन भर समर्पित रही ।

स्वामी दयानंद :–

'स्वामी दयानंद' की जीवनी राकेशजी ने सही ढंग से लिखी है । गौतम बुद्ध की तरह ही दयानंद स्वामी का व्यक्तित्व था । वे काठियावाड के अम्बाशंकर के पुत्र थे । देश का मानसिक जीवन अंधविश्वासों से खोखला हो रहा था । समाज में कुरीतियों और सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास हो चूका था, ऐसी परिस्थिति में गुढ का आदेश पाकर देश में ज्ञान और विद्या का प्रकाश फैलाने का कार्य दयानंद ने किया । स्वामी पूर्णानंद से संन्यास दीक्षा लेकर उन्होंने अपना नाम दयानंद धारण किया । इनका बचपन का नाम मूलशंकर था । स्वामी दयानंद जोधपुर के राजा का आतिथ्य स्वीकार कर वहीं रहने लगे थे । वे वर्णव्यवस्था पर जोर नहीं देते थे, कर्म व्यवस्था पर अधिक जोर देते थे । विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने दयानंद स्वामी के संबंध में कहा है – "जिसकी दिव्य दृष्टि ने भारत की आत्मगाथा में सत्य और एकता का बीज देखा, जिसकी प्रतिभा ने भारतीय जीवन के विविध अंगों को प्रदीप्त कर दिया । जिसका उद्देश्य इस देश की अविद्या, अकर्मण्यता और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व विषयक अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता के लोक में लाना था ... ।"[२७] भारतीय संस्कृति को नये ढंग से अर्थावित करने का प्रयत्न उन्होंने ही किया ।

भगतसिंह :–

'भगतसिंह' में राकेशजी ने बताया है, कि भगतसिंह उग्र क्रान्तिकारी विचारक थे । भगतसिंह को यह क्रान्तिकारी दृष्टि पिता और चाचा से विरासत के रूप में मिली थी । अपने विचारों के कारण भगतसिंह विद्यार्थी जीवन में ही राजनीति में रूचि लेने लगे थे । 'प्रताप' नामक पत्रिका में सहकारी के रूप में वह कार्य करने लगे । सायमन कमीशन का विरोध करते हुए लाला लजपतराय की गहरी चोट के कारण मृत्यु होने से भगतसिंह का खून खौल उठा । जिससे १९१८ ई. में सैण्डर्स को गोली से उड़ाकर लाला लजपतराय का बदला लिया । असेम्बली में 'पब्लिक सेफ्टी बिल' से अधिवेशन के अवसर पर बम्ब फोड़कर बटुकेश्वर दत्त के साथ में बंदी बना दिए गए । जेल में भगतसिंह को असह्य यातनाएँ दी गई । लेकिन राष्ट्रीय चेतना के संवाहक के रूप में भगतसिंह जन–जन के हृदय तक पहुँच चूके थे । २३ मार्च १९३१ ई. को भगतसिंह और

उनके साथियों को फाँसी की सजा दी गई। लेकिन उन्होंने जिस 'इंकलाब' की चेतना को जगाया था, वह भारत में साकार होकर रही।

वाल्टेयर :-

वाल्टेयर का जन्म पेरिस में नोतेअर एरूवे के यहाँ १६९४ ई. में हुआ। ये बचपन से ही उग्र विचारक होने से तेज-तर्रार कविताएँ भी लिखते थे। प्रतिभाशाली, क्रान्तिकारी विचारक तथा प्रशासन विरोधी स्वभाव के कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा। वे अपने युग के आधुनिक विचारक और युग प्रवर्तक रहे थे।

महात्मा गांधी :-

आगे चलकर राकेशजी ने महात्मा गांधी की जीवनी लिखी। युगद्दष्टा, विलक्षण व्यक्तित्व के स्वामी, राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक, सत्य और अहिंसा के प्रणेता और जनता के प्यारे बापू के नेतृत्व में देश १९४७ ई. में आजाद हुआ। गाँधीजी आत्म निरीक्षण के बल पर जीवन के हर क्षेत्र में आचरण करते थे और मार्गदर्शन देते थे। स्वदेशी आंदोलन और सत्याग्रह के महान शस्त्र द्वारा स्वतंत्रता युद्ध लड़ने लगे। भारत छोड़ो आंदोलन गाँधीजी के नेतृत्व में १९४२ ई. में हुआ। संगठित जनता के तेवर देखकर अंग्रेज भारत से चले गए। लेकिन देश के टुकडे कर गए। जिसका आघात गाँधीजी को सब से अधिक था। इसी विभाजन से उत्तजित होकर नाथूराम गोडसे ने उन्हें गोली मार दी थी। गाँधीजी की अच्छाई उनके मौत का पैगाम बनी, लेकिन उनके सिद्धांत और नीतियाँ अजर-अमर हैं।

जवाहरलाल नहेरू :-

राकेशजी ने 'समय सारथी' में जवाहरजी की भी जीवनी लिखी। नेहरूजी अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं – 'मैं अपने को पूरब और पश्चिम का एक विचित्र मिश्रण पाता हूँ।' क्योंकि वह हृदय से भारतीय थे और उनके सोचने का दृष्टिकोण पश्चिमी था। नेहरू ऐसे व्यक्ति थे, जिसे पूरे राष्ट्र का समर्थन प्राप्त था और वर्षो तक पूरे संसार की राजनीतिक हलचलों के मुखिया रहे। समय की बिखरी परिस्थिति से अकेले जूझते रहे। १९१७ ई. में उन्होंने आंदोलन में भाग लेना शुरू कर दिया था और गाँधीजी से प्रभावित होने लगे थे। अधिक जेल में रहने के कारण सुखमय दाम्पत्य जीवन भी न बिता सके। असहयोग आंदोलन के बीच ही पुत्री इन्दिरा

का जन्म हुआ। पत्नी कमला नहेरु के असामयिक निधन से वे अत्यधिक दुःखी होते हुए भी देश की समस्याओं से जूझ पड़े। जनता के हृदय में वे अपना स्थान बना चूके थे। बच्चों के चाचा नहेरु, जनता के लोकप्रिय नेता, सदैव प्रजातंत्रीय पद्धति की जड़ों को देश में सुस्थिर करते रहे। विश्व के अनेक नेता उनके व्यक्तित्व एवम् उनके विचारों से प्रभावित थे।

मार्टिन लूथर किंग :-

अंत में राकेशजी ने मार्टिन लूथर की जीवनी लिखी है। मार्टिन लूथर किंग ने नीग्रो जाति के उत्थान के लिए प्रशंसनीय कार्य किया तथा रंगभेद नीति को समाप्त किया। वे गाँधीजी के सिद्धांतों से प्रभावित थे। वे सत्य और अहिंसा के बल पर गोरों से संघर्ष करते रहे। एक नादान नीग्रो ने उसी संघर्ष में उनकी हत्या कर डाली। डॉ. लूथर किंग का जन्म पादरी परिवार में हुआ था। वे प्रतिभाशाली छात्र थे। कारेटास्काट नामक युवती से इनकी शादी हुई। पति-पत्नी दोनों ने रंगभेद नीति के असह्य अत्याचारों के सामने अहिंसात्मक आंदोलन कर अमरिका की सरकार को स्तब्ध कर दिया था। डॉ. किंग को मानवतापूर्ण कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार भी मिला।

अतः राकेशजी की ये जीवनियाँ तरुणों के लिए विशेष उपादेय हैं। सरल भाषा और रोचक शैली में भारतीय तथा विदेशी क्रान्तिकारियों एवम् विचारकों की जीवनियों के साथ ही उनके मुक्त चिंतन-प्रधान अदम्य व्यक्तित्व को विशेष रुप से उभार दिया है।

संदर्भ सूची

१.	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	४२२
२.	आखिरी चट्टान तक	मोहन राकेश	०९
३.	आखिरी चट्टान तक	मोहन राकेश	१९
४.	परिवेश – भूमिका से	मोहन राकेश	
५.	परिवेश – विज्ञापन युग	मोहन राकेश	९८
६.	परिवेश : अकेलापन, विकासोन्मुखता और नया आदमी	मोहन राकेश	१५७
७.	बकलम खुद – समय से कटी हुई समकालीनता	मोहन राकेश	१४१
८.	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. सुषमा अग्रवाल	३९७
९.	परिवेश – चीटियों की पंक्तियाँ जमीन से कागजों तक	मोहन राकेश	०४
१०.	बकलम खुद : इमारतें टूटने पर	मोहन राकेश	९४
११.	बकलम खुद : इमारतें टूटने पर	मोहन राकेश	९५
१२.	परिवेश : चीटियों की पंक्तियाँ : जमीन से कागजो तक	मोहन राकेश	०४
१३.	परिवेश	मोहन राकेश	३५
१४.	परिवेश	मोहन राकेश	७३
१५.	परिवेश	मोहन राकेश	१८२
१६.	परिवेश	मोहन राकेश	१६६
१७.	परिवेश	मोहन राकेश	१५७
१८.	सारिका मार्च १९७३		८६
१९.	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	११
२०.	सारिका १९७३		१७०
२१.	शाकुन्तल की भूमिका	मोहन राकेश	७
२२.	'मृच्छकटिक' की भूमिका	मोहन राकेश	९२-९३
२३.	समय सारथी	मोहन राकेश	०७
२४.	समय सारथी	मोहन राकेश	२१
२५.	समय सारथी	मोहन राकेश	७०

अध्याय :– ८

उपलब्धियाँ एवम् सीमाएँ – निष्कर्ष – उपसंहार

राकेशजी आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत के मसीहा है । वे अपने प्रगतिशील विचारों के कारण आधुनिक साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं । राकेशजी का व्यक्तित्व अंतर्विरोधों से परिपूर्ण था । वे अहंवादी, विनयशील, संवेदनशील, बुद्धिवादी, आधुनिक, परंपरावादी, नास्तिक और मानवीयता में आस्था रखनेवाले भी थे । वे निजी जीवन में जितने अव्यवस्थित रहे, लेखन में उतने ही व्यवस्थित और स्वभाव से जितने अस्थिर रहे, अपने कमिटमेंट के प्रति उतने ही दृढ़ । उन्होंने जिन्दगी को अपनी शर्तों पर जिया और जितनी ईमानदारी से जिया, लेखन में उतनी ही प्रामाणिकता बरती । राकेशजी का साहित्य उनके निजी अनुभवों और अनुभूत सत्यों का लिपिबद्ध इतिहास है, जो भूत और वर्तमान को एक साथ जीता है और भविष्य की प्रतीक्षा में खड़ा है । उन्होंने अपने जीवन में तनाव झेला, वैवाहिक जीवन की जिन विसंगतियों को देखा और जिस अस्तित्व–संकट को झेला उन सबको उनके सारे संदर्भों के साथ अपने साहित्य में प्रतिबिंबित किया है । उन्होंने साहित्य को जीवन में जिया है, अतः उनके कृतित्व में उनके व्यक्तित्व को ढूँढ़ना मुश्किल नहीं है । क्योंकि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में विभाजन–रेखा खींची नहीं जा सकती । राकेशजी को व्यक्ति के रूप में मात्र महान मानकर उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को भुला देना और इसी प्रकार व्यक्ति के रूप में कमजोर तथा घटिया करार देकर साहित्यिक रूप में महान सिद्ध करना – उनके साथ घोर अन्याय करना है । यह दृष्टिकोण का परिणाम है । वास्तविक यह है कि व्यक्ति में पायी जाने वाली मानव–सहज कमजोरियों से ग्रसित होने पर भी उनमें कुछ असाधारण गुण थे । अतः वे व्यक्ति के रूप में ही महान न थे, साहित्यकार के रूप में भी महान थे । वस्तुतः राकेशजी ने किसी भी विधा पर कलम चलायी उसे पूर्णत्व प्रदान करने का प्रयास किया । नाटककार से लेकर कहानीकार तक, उपन्यासकार से लेकर यात्रा–संस्मरण तक राकेशजी जिंदादिली के साथ लिखते रहे । अपने लेखन से राकेशजी ने समकालीन हिन्दी लेखन को गहराई के साथ प्रभावित किया है । उनका साहित्य उनकी अद्वितीय प्रतिभा और सर्जनात्मक क्षमता का प्रमाण है ।

राकेशजी ने अपने गद्य साहित्य में आज के मनुष्य के पारस्परिक संबंधों की वास्तविकता को उजागर किया है । उनका गद्य साहित्य स्वातंत्र्योत्तर भारत के औसत आदमी का सप्राण चित्रण है । राकेशजी के जीवन का अध्ययन करते समय मुझे यह प्रतीत हुआ, कि राकेशजी बाहर से जितने बिखरे हुए या टूटे हुए दिखाई देते है, भीतर से उतने नहीं है । यह सच है कि राकेशजी की पारिवारिक स्थिति संघर्षमय रही है और उन्हें नौकरी के लिए लगातार इधर से उधर घुमना पड़ा । किन्तु यह सब करते समय

राकेशजी के भीतर एक ऐसा व्यक्ति दिखाई देता है, जो कठिन से कठिन समय में भी उन्हें टूटने नहीं देता। एक अत्यंत स्वाभिमानी और साथ ही साथ जिन्दादिल व्यक्ति के रूप में ही राकेशजी जाने गये है। ऐसा लगता है कि राकेश उस व्यक्ति का नाम है जो अपने लिए कम और दोस्तों के लिए अधिक जिया है। उनका वैवाहिक जीवन असफल रहा और संभवतः इसी कारण उनके कथा साहित्य में जीवन का बिखराव, टूटन और अजनबीपन अनुभूति की प्रामाणिकता के कारण आया है।

राकेशजी मूलतः नाटककार के रूप में गौरवान्वित हैं, महान है। लेकिन कहानी के क्षेत्र में उनकी देन कम नहीं है। उनकी कहानियों ने 'नई कहानी' की नई संवेदना और चेतना को उजागर किया और कहानी के शिल्प को नया मोड़ दिया। नई कहानी को लाने तथा उसके मूल्यों को स्थापित करने में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, अमरकान्त, निर्मल वर्मा, राकेशजी आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है, एवम् नई कहानी के शीर्ष साहित्यकार हैं। उनकी कहानियाँ समाज के परिप्रेक्ष्य में उनकी जीवन संचेतना व्यक्त करती दिखाई देती है एवम् मानव संबंधों की व्याख्या, नये जीवन मूल्य ग्रहण करने की ललक है और यथार्थ का तीखा और सूक्ष्म बोध है। फल स्वरूप स्त्री–पुरुष संबंधों में धर्म, परंपरा और संस्कृति से प्रभावित परंपरागत संबंधों का चित्रण, आधुनिकता के स्पर्श से शिक्षा, सौंदर्य, सामाजिक जीवन तथा आचार व्यवहार के विविध संदर्भ, तनाव, आधुनिक संबंध, फैशन और मूल्यहीनता, निजी व्यक्तित्व, वैयक्तिक कला का स्पर्श, परस्पर सहयोग, निष्ठा एवम् पतिव्रता धर्म की नई व्याख्या और संबंध विच्छेद आदि मुख्य आयाम उभरकर आये हैं। उनकी कहानियों में घर एवम् पारिवारिक स्थिति की अभिव्यक्ति प्रमुख रूप से हुई है।

राकेशजी के रचना संसार का अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि वे एक प्रतिभासंपन्न रचनाकार थे। यद्यपि राकेशजी की पहचान साहित्य के क्षेत्र में एक श्रेष्ठ नाटककार, उत्कृष्ट कहानीकार और सफल उपन्यासकार के रूप में हुई। किन्तु उनके द्वारा लिखित अन्य ग्रंथों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है, कि वे उतने ही सफल और श्रेष्ठ एकांकीकार, जीवनी लेखक, संस्मरणकार, यात्रा–वृत्तांत लेखक है, यदि कविता के क्षेत्र को छोड़ दिया जाये तो साहित्य के सभी क्षेत्रों में राकेशजी ने कुछ न कुछ लिखा ही है। हिन्दी रंगमंच और जीवन मूल्यों की द्रष्टि से श्रेष्ठ और सफल नाटककार राकेशजी जैसा कोई नहीं हुआ है। वस्तुतः उनके नाटक चरित्र–सृष्टि, आधुनिक बोध और संवेदना के नये प्रतिमान स्थापित करते हैं। नाटक की भाँति ही राकेशजी के

एकांकी भी साहित्य और रंगमच की द्रष्टि से महत्त्वपूर्ण है। दायित्व बोध और जीवन मूल्यों को लेकर मनुष्य किस तरह कतराता है, एकांकियों में प्रभावशाली रूप में चित्रित किया गया है।

एक नाटककार के रूप में राकेशजी जितने चर्चित हुए उतने ही उपन्यासकार के रूप में भी चर्चित हुए। उन्होंने अपने उपन्यासों से जीवन के यथार्थ को परिभाषित करते हुए नये–पुराने मूल्यों के संघर्ष को और आधुनिक बोध को चित्रित किया है। बदलते मानवीय संबंधों का विविध आयामी चित्रण राकेशजीने अपने उपन्यासों में किया है। राकेशजी के उपन्यासों में वैवाहिक जीवन की विसंगतियों की ओर संकेत किया गया है। साथ ही आधुनिक जीवन की विसंगतियों और जटिलताओं को सशक्त रूप से व्यक्त किया गया है। राकेशजी का औपन्यासिक चिंतन अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित है। सभी पात्र एक चौकठे में बंद है और सभी को एक बिंदु की तलाश है। वे सब केवल एक ही चीज को खोज रहे है और वह चीज है – आने वाला कल। पर इन सब पात्रों की विडम्बना यह है कि किसी को भी अपने कल के बारे में कोई जानकारी नहीं है। मानवीय संबंधों के खोखलेपन को बड़ी मार्मिकता से राकेशजी ने चित्रित किया है। राकेशजी के उपन्यासों में अपने अस्तित्व को टिकाये रखनेवाले पात्रों का अंकन किया है और राकेशजी ने दाम्पत्य जीवन के माध्यम से अनेक घरों में स्थित घूटन और बिखराव को प्रतीत करते हुए स्त्री–पुरुषों की मनःस्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

राकेशजी के व्यक्तित्व की पहचान एक कहानीकार के रूप में हुई है । उन्होंने नई कहानी को एक निश्चित दिशा दी है । यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने हिन्दी को अनेक सशक्त कहानियाँ दी । उनकी कहानियाँ कहानी के माध्यम से ही जीवन की खोज करती है । वास्तव में वे एक प्रयोगशील और नवीन संवेदना के कहानीकार थे । उनकी कहानियों का परिवेश हमारे जीवन के आसपास का ही परिवेश है, जिसमें यथार्थ भारतीय जीवन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है । राकेशजी ने किसी एक मानसिक भूमि को लेकर कहानियाँ नहीं लिखी, बल्कि परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप उनकी मानसिक चेतना में बराबर परिवर्तन आया है । कुछ कहानियाँ तो ऐसी है, जिनमें राकेशजी की सही घटनाओं का निरुपण हुआ है । राकेश का व्यक्तित्व सदा ही गहरे दबाव और आघात को सहते रहा है । यही कारण है कि उनकी कहानियाँ भी उनके यथार्थ जीवन से अलग नहीं है ।

राकेशजी की कहानियों में व्यक्ति समाज की विडम्बनाओं का तथा समाज की यंत्रणाओं का आईना है । उनकी कहानियों में पात्रों की मनःस्थिति, उसके संघर्ष और आधुनिक जीवन में व्यक्ति के अलगाव का चित्रण किया गया है । उनकी कहानियों में मूल्य, संघर्ष एवम् तनाव की स्थितियों का चित्रण मिलता है । उनकी कहानियों में आर्थिक, राजनीतिक एवम् सामाजिक परिस्थिति से उत्पन्न त्रासद एवम् यंत्रणा मूल्य स्थितियों के कारण समकालीन व्यवस्था के प्रति आक्रोश और अनास्था प्रकट होती है । अधिकांश कहानियों में अकेलापन विद्यमान है । उनकी कहानियाँ सामाजिक चेतना से अनुप्रणित है जिसमें मोहभंग एवम् संवेदनशून्यता की स्थिति को अभिव्यक्ति मिली है, कथावस्तु के संयोजन में आर्थिक विवशता के कारण जीवन के दोहरेपन को भी रेखांकित किया गया है । वर्तमान समय की बेकारी और धनवितरण की अव्यवस्था व्यक्ति को व्यर्थ, निःसहाय और अजनबी बना चूकी है जिससे पारिवारिक, सामाजिक और व्यक्तिगत संबंध छिन्न–भिन्न हो रहे है, आधुनिक मनुष्य पैसे की अनिवार्यता से बंध गया है । अतः उनकी कहानियों में आर्थिक तनाव और अर्थाश्रित विवशताओं का वर्णन मिलता है । राकेशजी की कहानियाँ संत्रास और भयावहता को व्यक्त करती है । राकेशजी की कहानियों में आत्मनिर्वासन का बोध प्रकट होता है एवम् भारतीय परिवेश में निरंतर खंडित होते हुए आदमी का चित्रण प्रखरता से दिखाई देता है । राकेशजी की कहानियाँ अपने समय, समाज और उससे जुड़ी अवबोध की कहानियाँ है । अपने समय के वे दस्तावेज है, साथ ही समय का सारथी भी । आधुनिक विचार–बोध को पूर्णतः आत्मसात कर उनकी कहानियों को भारतीय जीवन की व्यापकता के संदर्भ में प्रस्तुत

किया गया है। मानव–मूल्यों के दबाव से मुक्त रखा गया है। वाद और विश्लेषण से मुक्त उनकी कहानियाँ समाज, व्यक्ति और उससे जुड़े प्रश्नों की कहानी है। राकेशजी की अन्य साहित्यिक विधाओं का भी इस संदर्भ में अध्ययन इस तथ्य को अधिक सशक्त रूप से उजागर करता है।

राकेशजी के उपन्यासों में व्यक्ति और व्यक्तिगत मूल्य, अकेलापन, टूटते संबंध एवम् दाम्पत्य जीवन की स्थिति का चित्रण मिलता है। राकेशजी के उपन्यासों में यथार्थ जीवन की स्थिति का भी चित्रण मिलता है। उनके उपन्यासों में पति और पत्नी के जीवन में तनाव और खिंचाव है। इसमें एक ओर विवाहित जीवन की अर्थहीनता का सशक्त और सजीव रूप उभर कर आया है तो दूसरी ओर मानवीय संदर्भों की अर्थहीनता और अकेलेपन की अनुभूति से उत्पन्न घुटन तीव्रतर रूप से मुखर हुई है। साथ में अर्थ से उत्पन्न घुटन और छटपटाते रहने की आज के आदमी की निरंतरता की अभिव्यक्ति भी गहराती चलती है। आज के बुद्धिजीवी वर्ग का उलझाव और उसके भावात्मक जीवन की असहाय चीख उनके उपन्यासों में प्रतिध्वनित हुई हैं। राकेशजी ने अपने उपन्यास में उन तमाम लोगों की अभावग्रस्त जिंदगी की रेखा खींची है जो दमघोंटू वातावरण में जी रहे हैं। उनके उपन्यासों में मानवीय संबंधों के विघटित स्वरूप गहरे रूप में मिलता है। इसमें मनुष्य के अस्तित्व की चेतना और संघर्ष की अभिव्यंजना का चित्रण भी मिलता है। आपके उपन्यासों में मनुष्य अपने घर, परिवार सामाजिक संस्थाओं की व्यस्तता में हैं, लेकिन उसके पैर तले की जमीन डोलायमान है। यथार्थ जीवन और परिवेशगत दबाव में उसके जीवन में बड़ी विसंगति, अजनबीपन, अकेलापन, अलगाव, अंतराल और यातना आदि की पीड़ा का संसार है। राकेशजी के तीनों उपन्यास उनकी चिन्तन–प्रणाली तथा परिवेश–बोध में एक विकास है और यह विकास स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर है। महानगरीय सभ्यता के दमघोंटू वातावरण में आधुनिकता के नाम पर बनते–बिगड़ते, उलझते–सुलझते मानव संबंधों की दारुण नियति का यथार्थ दर्शन हिन्दी उपन्यास में नया कहा जाएगा। यह नयापन मात्र कथ्य और शिल्प में नहीं अपितु बदलते परिवेश और नये संदर्भों के अंकन में हैं तथा उनमें खोये व्यक्ति के अस्तित्व की खोज है। दाम्पत्य जीवन की निरर्थकता, अकेलेपन का एहसास, प्रेम की मांसल तथा मानसी दृष्टि, बेनाम संबंधों का अस्तित्व आदि का अंकन राकेशजी के आधुनिक परिवेश–बोध की पुष्टि करता हैं।

राकेशजी ने कहानी, नाटक, उपन्यास एवम् लेख भी लिखे है । उन सभी के केन्द्र में व्यक्ति और उसकी स्थितियाँ प्रमुख हैं । उन्होंने मानव को उसके परिवेश के बीच सही दृष्टि से देखा और फिर उसकी पीड़ा एवम् अजनबीपन को वाणी दी । राकेशजी ने अस्तित्व में निहित करुणा, विवशता, विफलता और पीड़ा से घिरे आदमी की पहचान करायी । अस्तित्व के संकट बीच उन्होंने मानव की निजता तलाश की है और उसे पूर्ण आत्मनिष्ठा के साथ व्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया है । राकेशजी के चारों नाटकों की कथा स्वतंत्रता के बाद की सामाजिक एवम् आर्थिक विषमताओं तथा विसंगतियों के तथा महत्वकांक्षाओं के बीच संघर्ष के कारण संबंधों में विशेष रूप से पारिवारिक और वह भी पति–पत्नी के संबंधों में उत्पन्न तनाव के क्रमशः जटिल से जटिलत्तर होते जाने के क्रमिक विकास की सच्ची कहानी है । उनके चारों नाटकों का केन्द्रीय प्रतिपाद्य एक–दूसरे से आश्चर्यजनक रूप से इतना जूड़ा हुआ है, कि नाटकों का केन्द्रीय प्रतिपाद्य अपने अलग–अलग चार चरणों में क्रमशः उभरती इस तथाकथित जीवन दृष्टि का बोध करा देता है । प्रेमी–प्रेमिका के रूप में कालिदास और मल्लिका तथा पति–पत्नी के रूप में नंद और सुंदरी मिलन–बिछूड़न, और फिर बिछूड़न के द्वन्द्व को झेलते हुए संबंधों के बिखराव और बिछूड़ने के जिस तनाव को भोगते हैं, उनमें पीड़ा तो है पर कटूता नहीं है । एक में घर बसाने की आकांक्षा है, किन्तु विषम परिस्थितियों और मन का अनिश्चय घर बसने नहीं देता है, तो दूसरे में बसा–बसाया घर जीवन से विपरीत अपेक्षाओं और मन के अनिश्चय के कारण टूटने लगता है । परिवार और समाज दोनों ही स्तरों पर आज के पूँजीवादी अंतर्विरोधों की विषम और जटिल स्थितियों की भँवर में फँसे आज के मानव संबंध को राकेशजी ने अपने नाटकों में चित्रित किया है । राकेशजी की एकांकियों में भी नये पुराने विचारों के संघर्ष देखने को मिलतें हैं और उसमें मानसिक तनाव, मूल्य संघर्ष के बोध की संवेदना और स्थिति एवम् उसमें परिस्थिति जन्य यातना, संत्रास का बोध भी होता है । प्रथम, राकेशजी ने ही नाटक की सार्थकता उसकी रंगमंचीयता में मानी और रंगमंच की सार्थकता समकालीन युग–बोध के संप्रेषण की सफलता में । राकेशजी ने अपने नाटकों में इन्हें चरितार्थ किया है । जहाँ उन्होंने हिन्दी नाटक को कथ्य और शिल्प की दृष्टि से परंपरा और रूढ़ियों से मुक्त किया, वहाँ उन्होंने किसी जाति के रंगमंच में सही व्यक्तित्व की खोज एवम् स्वरूप का निर्धारण उसकी अपनी जातीय परंपरा में ही संभव बताया । परिपूर्णतः यह अंतर्विरोधी बात नहीं अपितु रंगमंच की सही पहचान है । उनके चार नाटक और एकांकी इसी खोज की उपलब्धियाँ हैं, जो हिन्दी नाट्य साहित्य की ही नहीं भारतीय नाट्य साहित्य

के विकास की सीढ़ियाँ हैं । अपने नाटकों में राकेशजी ने आधुनिक मानव का अस्तित्व–संकट और उसमें निहित संत्रास, पीड़ा, करुणा, विवशता एवम् विफलता को अभिव्यक्ति दी है, जो समकालीन जीवन बोध के गहरे साक्षात्कार के ज्वलंत प्रमाण हैं । उनके नाटकों में अभिव्याप्त अस्तित्ववादी चेतना पश्चिम का उधार नहीं है, बल्कि निजी परिवेश की उपज है ।

राकेशजी के समस्त सृजन की पृष्ठिका में उनका जीवन प्रभावी तत्त्व बनकर आया है । आत्मप्रकाशन मनुष्य की प्रबल प्रवृत्ति है जो नाटक, उपन्यास और कहानी में तो अभिव्यक्ति पाती ही है, उनकी अन्य साहित्यिक विधाओं निबंध, जीवनी, यात्रा–वृत्तांत और डायरी आदि में भी उसका स्वरूप संचरित होता दिखाई देता है । राकेशजी ने निबंधों में आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति निबंध का मूल ही माना है । यही कारण है कि निबंध में जिस तत्त्व को सर्वाधिक अहमियत प्राप्त है वह है–निबंध लेखक का व्यक्तित्व । राकेशजी के निबंध साहित्य में एक ओर तो व्यक्तित्व वर्णित निबंध देखने को मिलते है और दुसरी ओर ऐसे भी निबंध देखने को मिलते है जिन्हें हम 'लेख' भी कह सकते हैं और विशुद्ध मत–प्रतिपादक निबंध भी । राकेशजी के समस्त निबंधों में सैद्धांतिक, समीक्षात्मक, चिंतनपरक, आत्मपरक, व्यक्तिपरक एवम् वर्णनात्मक निबंध आदि रूप देखने को मिलते है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करने तथा उसमें विविध नये आयामों को उजागर करने का श्रेय राकेशजी को है । अभिनव जीवन–मूल्य, नवीन तौर–तरीके और आधुनिक परिस्थितियों में साँस लेता भारतीय जीवन का सही दस्तावेज राकेशजी के साहित्य में है ।

राकेशजी के साहित्य में शिल्प पक्ष पर प्रकाश डाले, तो उनका सारा ध्यान रचना के 'आंतरिक शिल्प' की खोज पर केन्द्रीत है, इसलिए उन्होंने शिल्प को एकदम तोड़ा नहीं है, हाँ बदला जरूर है । लेकिन बदलने की ईच्छा से नहीं रचना की अनिवार्यता से । राकेशजी ने शिल्प के लिए 'रोयें रेशें' शब्द का प्रयोग किया है और यही रचनाकार की अनुभूति और कृति को सँवारते है । राकेशजी की कहानियों में पात्र और उसके नाम विशेष महत्त्व के नहीं हैं । उनसे जुड़ी विशेषताएँ उनको महत्त्व का बनाती है । कहानियों में राकेशजी ने उच्चवर्ग, मध्यवर्ग, एवम् निम्न मध्यवर्ग के पात्र लिए हैं । राकेशजी के पात्र जीवन की यांत्रिकता, लघुमानव, अर्थहीन–रिश्तों और अकेलेपन की भयावहता की उपज है । राकेशजी के अनेक पात्र नामहीन हैं । नामधारी पात्र भी अपने परिवेश और सामाजिक संदर्भ से जुड़कर प्रभावी हैं । यही कारण है मात्र पात्र के व्यवहार, क्रियाकलाप

या उसके विश्लेषण के कारण राकेशजी का कोई भी पात्र सामाजिक संदर्भ से कटा हुआ नहीं है। राकेशजी के उपन्यास, कहानी एवम् नाटक के अध्ययन से हमारे सामने यह बात स्पष्ट होती है कि राकेशजी ने अपने जीवन की अतृप्ति, असंतोष, अधूरेपन की अनुभूति को अपने सभी पात्रों में किसी–न–किसी रूप में दिया है। उपन्यास के सभी पात्र मध्यवर्गीय परिवार के हैं एवम् सभी पात्रों के मन में असंतोष एवम् घुटन है। उनके उपन्यासों के पात्र अपने जीवन की जटिलताओं से घिरे, विविध संबंधों से बंधे साथ–साथ जीने को बाध्य हैं। चाहकर भी उन्हें एक–दूसरे से मुक्ति नहीं मिलती, अधिकांश पात्र विवाहित है। राकेशजी ने अपने उपन्यासों में कुंठा, तनाव, संत्रास, दाम्पत्य जीवन की विसंगति, असंतोष, अधूरेपन की अनुभूति को अपने चरित्रों में किसी–न–किसी रूप में व्यक्त किया है। राकेशजी के उपन्यासों के लगभग सभी पात्र जटिल और हमारे आस–पास दिखनेवाले आज के मनुष्यों जैसे हैं। कुछ प्रसंगों में ये विशेष भले ही लगें, किन्तु अधिकांशतः सामान्य परिचित व्यक्तियों की तरह हैं। राकेशजी ने विसंगत परिवेश में आस्था–अनास्था के बीच झूलते तथा विघटित होते मानवीय संबंधों की पीड़ा, घुटन और द्वन्द्व को भोगते व्यक्ति को अपना लक्ष्य बनाया। उनके प्रारंभिक ऐतिहासिक नाटकों के पात्र हो या परवर्ती सामयिक नाटकों के पात्र सभी अपने प्रतिरूप में मनुष्य के मानसिक संघर्ष और पराजित स्थिति का सशक्त प्रतीक हैं। राकेशजी ने अपने किसी भी नाटक में पात्रों की भीड़ एकत्रित नहीं की। विभिन्न सामाजिक विसंगतियों को मूर्त करने में आवश्यक पात्रों की ही योजना की है। हिन्दी नाटकों में पहली बार पात्रों के आंतरिक द्वन्द्व और मनोभाव की प्रभावशाली अभिव्यक्ति राकेशजी के नाटकों में ही देखने को मिली है। बाह्य विसंगतियों और संवेदनशील व्यक्ति के संघर्ष को, हर कदम जिंदगी की ऊब और निरर्थकता को तथा बेमानी होते पारस्परिक संबंधों के बोझ को ढोती व्यक्ति की विवशता को उनके नाटकों के पात्र बहुत सशक्त रूप में मूर्त करते हैं।

राकेशजी की संवाद–योजना का अध्ययन करने के पश्चात हम यह कह सकते है कि उनके साहित्य में संवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। राकेशजी की कहानियों में भी महत्त्वपूर्ण स्थान पाया जाता है। यद्यपि इसकी सर्वोपरि महत्ता नाटकों में होती है किन्तु कहानी–कला के संदर्भ में इन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता। राकेशजी की कहानियों में संवाद संक्षिप्त और चरित्र के परिचायक है। कटाक्ष और व्यंग्य को भी स्वर मिला है। संवाद प्रभावोत्पादक और तथ्य निरूपक है। राकेशजी के उपन्यासों के संवादों में व्यक्तिमन की अनुभूतियों, वासनाओं, कुंठाओं, टूटन, उदासी, ऊब, तनाव आदि की

झलक मिलती है । राकेशजी के नाटकों में संवाद कथोद्घाटन और विकास में सही भूमिका अदा करते है । राकेशजी के नाटकों में संवाद नाटकीय गरिमा और व्यंग्य से भरपूर, संक्षिप्त, सरल, सरस और गतिशीलता से ओतप्रोत एवम् उसके साथ–साथ उनमें पर्याप्त नाटकीयता भी मिलती है । भाषा में सरल, सहज और स्वाभाविक संवादों का प्रयोग राकेशजी ने समग्र साहित्य में किया है । हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अरबी–फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का सहजता से प्रयोग संवादों को काफी स्वाभाविक बना देता है । राकेशजी एक स्थापित नाट्य–लेखक थे । संवाद–लेखन में उन्हें अदभूत कौशल प्राप्त था । उनकी यह कुशलता उनके उपन्यास और कहानी में भी दिखाई देती है । संवाद पात्र एवम् परिस्थिति के अनुकूल हैं । चाहे पात्रों की आपसी संबंधों की कटूता का चित्रण हो, चाहे उसकी मनःस्थितियों का विश्लेषण या चाहे कथा की गतिशीलता का प्रश्न हो, उनके संवाद सर्वत्र एक विशिष्ट भूमिका निभाते जान पड़ते हैं ।

राकेशजी के साहित्य की भाषा–शैली पर विचार करने से हमें ज्ञात होता है, कि उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से उपन्यास, नाटक एवम् कहानी के चरित्रों की मनःस्थितियों को, अनुभूतियों और संवेगों को अभिव्यक्ति दी है । उनके साहित्य में शब्दावली बोलचाल की है, लहजा भी बोलचाल का है और शब्दों एवम् वाक्यों के संयोजन में लयात्मकता है । राकेशजी के साहित्य में भाषा के तीन स्तर स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं । पहला साहित्यिक स्तर जिसमें परिष्कृत शब्दावली आती है । इसका प्रयोग राकेशजी ने वहाँ किया है, जहाँ वे अधिक भावुक हो उठें है और उनकी कवित्व शक्ति मुखरित हो उठी है । इस शब्दावली में अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है । दूसरा स्तर जनभाषा का है, जो प्रायः राकेशजी की रचनाओं में मिलता है । भाषा का तीसरा स्तर राकेशजी ने अपने परिवेश से खोजा है तथा शब्दों को नये अर्थ दिये है । इसमें अंग्रेजी, उर्दू–फारसी तथा देहात एवम् अंचल के शब्दों का प्रयोग सहजता से हुआ है । राकेशजी की भाषा का सही स्तर बोलचाल का है । राकेशजी ने पात्रानुकूल, भावानुकूल एवम् प्रसंगानुकूल संस्कृत के तत्सम शब्दों से लेकर तद्भव, देशज, उर्दू–फारसी, अंग्रेजी आदि शब्दों का प्रयोग भी किया है । हिन्दी भाषा की अभिव्यंजना–शक्ति और शब्द–सामर्थ्य उसकी सीमाओं और विशेषताओं से वह परिचित ही नहीं थे, रचनाकार की दृष्टि से राकेशजी ने उस पर सोच–विचार भी किया है । वह भाषा को केवल शब्दों का समूह मात्र नहीं मानते बल्कि उसकी संबंध प्रक्रिया से नये–नये संदर्भों में प्रयोग को नई अर्थवत्ता प्रदान की है । इस अर्थवत्ता को लाने के लिए उनका ध्यान ध्वनि, स्वराघात और शब्दों के खास विन्यास पर केन्द्रित होता है । भाषा के

आंतरिक रूप परिवर्तन और उसकी विकास संभावनाओं की ओर राकेशजी का संघर्षशील मानस उनके समूचे साहित्य में विशेषतया नाट्य कृतियों में स्पष्ट होता है। राकेशजी ने अपने नाटकों द्वारा हिन्दी को एक समर्थ तथा सार्थक नाट्यभाषा दी है। नाट्य लेखन में किए गए उनके अनवरत प्रयोग का चरम लक्ष्य जानने की भाषा नहीं 'जीने की भाषा' की खोज थी। इसके लिए वे नाटकीय शब्द के अनुसंधान में लगे रहे और यह अनुसंधान की प्रक्रिया उनके जीवन की अंतिम साँस तक चलती रही, उन्होंने रंगमंच को मूलतः 'श्राव्य माध्यम' घोषित कर नाटकों में शब्दों की महत्त्वपूर्ण भूमिका की ओर नाटककारों का ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रकार उन्होंने सभी नाट्य कर्मियों को नाटक, रंगमंच और भाषा के संबंध में नये सिरे से सोचने के लिए मजबूर किया। नाटकों में उन्होंने बोलचाल की भाषा को रचनात्मकता का स्तर दिया और इसे नई अर्थवत्ता दी, अतः हिन्दी नाटक को उनकी सब से बड़ी देन है। राकेशजी ने अपने साहित्य में विभिन्न भाषा–शैलियों का प्रयोग करके अपने कथ्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने सरस काव्यमय, प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक एवम् सांकेतिक शैली का प्रयोग किया है। साथ ही मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग भी उनकी भाषा में हुआ है, किन्तु वे ही मुहावरे अपनाये गये हैं, जो जीवन के अंग बनते–बनते आम भाषा के हो गये हैं।

राकेशजी एक ऐसे कथाकार थे जिन्होंने हर विधा में कुछ न कुछ योगदान दिया है। वे एक उत्कृष्ट निबंधकार भी थे। राकेशजी की समीक्षात्मक और विश्लेषणात्मक द्रष्टि इन निबंध संग्रहों में व्यक्त हुई है। एक निबंधकार के साथ–साथ राकेशजी एक सफल अनुवादक भी रहे। उन्होंने संस्कृत के दो नाटक 'मृच्छकटिकम्' और 'शाकुंतल' का हिन्दी में उत्कृष्ट अनुवाद किया है। राकेशजी के यह अनुदित ग्रंथ अनुवाद कार्य में एक आदर्श है। उपर्युक्त गद्य रचनाओं के अतिरिक्त राकेशजी ने अन्य गद्य कृतियाँ भी लिखी है जैसे – जीवनी, डायरी, संस्मरण और यात्रा–वृत्तांत। इस प्रकार राकेशजी ने गद्य के विविध रूपों को लेकर विविध रचनाएँ लिखी है। इन रचनाओं में एक कलाकार के अकृत्रिम और भावुक मन ही अभिव्यक्त हुआ है। निबंध, यात्रा–संस्मरण, जीवनी आदि विधाओं में राकेशजी की अनूठी शैली द्दष्टव्य है। निबंधों में विषय जितने विविधात्मक है, शैलियाँ भी तदनुकूल निर्मित होती गई हैं। वैयक्तिक निबंधों में उनकी निच्छल–निर्भिक आत्माभिव्यंजना है। इनमें उनकी जिंदादिली और आंतरिक पीड़ा एक साथ अभिव्यक्त हुई है। आलोचनात्मक लेखों में उनकी गहन अध्ययनशीलता बहुश्रुतता और वस्तुपरक द्दष्टिकोण का परिचय मिलता हैं। उन्होंने आलोचना के नवीन मानदण्ड की ओर इंगित किया है और आलोचना को एक नई भाषा दी है। जीवनीकार

के रूप में राकेश विशिष्ट हैं। जीवनी में विश्व की महान विभूतियों की चिंता–धाराओं के निरूपण द्वारा पूरे युग की मनःस्थितियों की शब्द–चित्रात्मक अभिव्यक्ति परिलक्षित है। यात्रा–संस्मरण में अपरिचय की अनुभूति और पीड़ा को आत्मसात् करने का प्रयास तथा मानव और प्रकृति के सहज सौन्दर्य का अंकन उनकी आस्थावादी दृष्टि को प्रमाणित करता है। राकेशजी द्वारा अनुदित रचनाएँ हिन्दी के अनुवाद–साहित्य की निधि हैं। उभय भाषाओं की प्रकृति और संस्कृति–परंपरा का परिज्ञान तथा दूसरे की रचना–प्रक्रिया को अपने में आत्मसात् करके चलने का उनका प्रयास अनुवादक का आदर्श रूप उपस्थित करता है। राकेशजी की डायरी भी रचनात्मक साहित्य का एक अन्य रूप है। सच्चाई और ईमानदारी से लिखी यह डायरी दिनचर्या मात्र नहीं है। रचनात्मक अनुभूतियाँ और प्रेरणा का मूल स्त्रोत इस डायरी में देखा जा सकता है। प्रकृति का चित्रण और जीवन का माहौल, दार्शनिक अभिव्यंजना, जीवानुभूति आदि के समन्वय से यह सामान्य डायरी न रहकर एक साहित्यिक कृति बन जाती है।

अंत में इतना कहना पर्याप्त होगा कि 'अनुभूति की सच्चाई' राकेशजी के समस्त साहित्य की आधारशिला है। उन्होंने बदलते परिवेश और मूल्यों के अनुरूप बदलते मानवीय संबंधों को नये संदर्भों के बीच रखकर समझने और परखने की ईमानदारी से कोशिश की है। व्यक्ति के अधूरेपन की पहचान और जीवन की सार्थकता –निरर्थकता की खोज उनका मौलिक सर्जनात्मक प्रयास है। राकेशजी ने अपने साहित्य के द्वारा मानव की पीड़ा और समूचे युग के ताप को वाणी देने का प्रयास किया है।

परिशिष्ट–१

आधार ग्रंथ

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक
१.	आखिरी चट्टान तक	मोहन राकेश	भारतीय ज्ञानपीठ – १९६८ई.
२.	अंडे के छिलके	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९७३ ई.
३.	अंतराल	मोहन राकेश	राजकमल प्रकाशन–१९७३ ई.
४.	अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	राजकमल प्रकाशन – १९७२ई.
५.	आधे अधूरे	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९८९ ई.
६.	आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स –१९७५ई.
७.	इन्सान के खंडहर	मोहन राकेश	भारतीय ज्ञानपीठ – १९५० ई.
८.	एक और जिन्दगी	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९६१ई.
९.	एक औरत का चेहरा	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९७४ ई.
१०.	क्वार्टर	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९७२ई.
११.	जानवर और जानवर	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९५८ई.
१२.	न आने वाला कल	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९७४ई.
१३.	नये बादल	मोहन राकेश	भारतीय ज्ञानपीठ – १९५७ ई.
१४.	परिवेश	मोहन राकेश	भारतीय ज्ञानपीठ – १९६७ ई.
१५.	पहचान	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९७२ई.
१६.	पैरों तले की जमीन	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९७७ई.
१७.	प्यालियाँ टूटती हैं	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९७४ ई.
१८.	फौलाद का आकाश	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९६६ई.
१९.	बकलम खुद	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९७४ई.
२०.	मेरी प्रिय कहानिर्यां (१९७१)	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स
२१.	मोहन राकेश की डायरी	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स–१९८५ ई.
२२.	मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९७४ ई.
२३.	मृच्छकटिक	मोहन राकेश	राजकमल प्रकाशन – १९६२ ई.
२४.	लहरों के राजहंस	मोहन राकेश	राजकमल प्रकाशन–१९७३ ई.

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक
२५.	वारिस	मोहन राकेश	राजपाल एन्ड सन्स – १९७२ई.
२६.	समय सारथी	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९९१ ई.
२७.	शाकुन्तल	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९७७ ई.
२८.	सिपाही की माँ	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९७४ ई.
२९.	हिरोशिमा के फूल	मोहन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन – १९७४ ई.

सहायक ग्रंथ

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक
१.	अपने नाटक के दायरे में मोहन राकेश	तिलकराज शर्मा
२.	अज्ञेय और मोहन राकेश के उपन्यासों में यथार्थ की परिकल्पना	डॉ. रॉय जोसेफ
३.	आज का हिन्दी उपन्यास	डॉ.इन्द्रनाथ मदान
४.	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य	डॉ. देवराज
५.	एक दूनिया समानांतर	राजेन्द्र यादव
६.	कथाकृति मोहन राकेश	डॉ. ओम प्रभाकर
७.	कथायन भूमिका	सं. परमानन्द गुप्त
८.	कहानीकार मोहन राकेश	डॉ. सुषमा अग्रवाल
९.	डॉ. महेन्द्र भटनागर : आलोचना विशेषांक	डॉ. महेन्द्र भटनागर
१०.	दिशाओं का परिवेश	राही मासूम रजा
११.	दिशाओं के परिवेश में संकलित निबंध	शैल कुमारी
१२.	द्वितीय युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
१३.	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर
१४.	नई कहानी की मूल संवेदना	डॉ. सुरेश सिन्हा
१५.	नाटककार मोहन राकेश	जीवन प्रकाश जोशी
१६.	नाटककार मोहन राकेश	सुन्दरलाल कथूरिया
१७.	नाटककार मोहन राकेश : कल्पना का यथार्थ	विष्णुकान्त शास्त्री
१८.	नाटक रंगमंच और मोहन राकेश	डॉ. सुरेन्द्र यादव
१९.	नयी कहानी तथ्यों के दायरे में – अप्रैल – १९६४	छेदीलाल गुप्त

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक
२०.	नयी कहानी : प्रकृति और पाठ	श्री सुरेन्द्र
२१.	प्रतिक्रियाएँ	डॉ. देवराज
२२.	प्रतिपक्ष साहित्य : रिश्तों की अविश्वसनीय पहचान	महेन्द्र भल्ला
२३.	भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत	डॉ. सुरेश अग्रवाल
२४.	मोहन राकेश के नाटक	डॉ.द्विजराम यादव
२५.	मोहन राकेश के कथा-साहित्य में मानवीय संबंध	चमनलाल गुप्ता
२६.	मोहन राकेश का नारी-संसार	श्रीमति मीना पिंपलापुरे
२७.	मोहन राकेश की रंगसृष्टि	डॉ.जगदीश शर्मा
२८.	मोहन राकेश का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व	डॉ.सुषमा अग्रवाल
२९.	मोहन राकेश व्यक्तित्व एवम् कृतित्व	डॉ. धनानंद एम.शर्मा
३०.	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. रमेश कुमार जाधव
३१.	मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व में उदधृत	गिरीश रस्तोगी
३२.	विवेक के रंग में संकलित निबंध	श्रीकांत वर्मा
३३.	'विवेचना' संकलन	इलाचंद्र जोशी
३४.	व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डॉ. पुढषोत्तम दूबे
३५.	समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि	डॉ. जयदेव तनेजा
३६.	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप	डॉ. विमला शर्मा
३७.	सातवें दशक की कहानी में मानवीय संबंध	चंद्रकान्ता बंसल
३८.	सिलेक्टेड पोएमस्	टी.एस.इलियट
३९.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में	डॉ. रीता कुमार
४०.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास	डॉ. महेन्द्र भटनागर
४१.	हिन्दी उपन्यास	डॉ. सुरेश सिन्हा
४२.	हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा	डॉ. रामदरश मिश्र
४३.	हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख	इन्द्रनाथ मदान
४४.	हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. गिरधरप्रसाद शर्मा
४५.	हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास	धनराजे मानधाने
४६.	हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास	डॉ. सुरेश सिन्हा
४७.	हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक
४८.	हिन्दी नाटक और नाट्य समीक्षा	स. नरनारायण
४९.	हिन्दी नाटक और नाट्य समीक्षा	नरनारायण
५०.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
५१.	'हिन्दी साहित्य पचास वर्ष', लेख : हिन्दी कहानी में व्यक्ति, परिवार और समाज	डॉ. निरूपमा सेवती
५२.	श्रेष्ठ कहानियाँ, , भूमिका	डॉ. विजयपाल सिंह, डॉ. राजीव सिंह

शब्द कोश

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक/प्रकाशक
०१.	हिंदी-गुजराती कोश	मगनभाई देसाई
०२.	नन्हा कोश	अनडा प्रकाशन
०३.	कोमल ऑक्सफोर्ड हिन्दी शब्दकोश	इलाचंद्र जोशी
०४.	बृहद् हिन्दी कोश	कालीदास प्रसाद-ज्ञानमंडल प्रकाशन - बनारस

पत्रपत्रिकाएँ

क्रम	पत्रिका का नाम	संपादक
०१.	सारिका-१९७३ ई.	
०२.	सारिका - मार्च १९७३ ई. में प्रकाशित लेख	डॉ. धनंजय वर्मा
०३.	माध्यम - फरवरी, १९६५ ई. अंक	इलाचंद्र जोशी
०४.	नटरंग - अंक - २१	नैमिचंद जैन